*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# समकालीन दलित कविता के सामाजिक–राजनीतिक सरोकार

**प्रोफेसर आनन्द शुक्ल**
प्राचार्य
दयानन्द सुभाष नेशनल कॉलेज
उन्नाव

हिन्दी दलित कविता का प्रस्थान बिन्दु मध्यकालीन निर्गुण संत काव्य परॅपरा को माना गया है। सन्त कवि रैदास और कबीर ने तद्युगीन भारतीय समाज में व्याप्त असमानता, अंधविश्वास और रूढ़िवाद पर कठोर आघात किया था। निर्गुण संत कवियों में अधिकांश सदियों से शोषित–उत्पीड़ित निम्नवर्गीय जातियों से आये थे।कविता में दलित जीवन की अभिव्यक्ति की यह धारा पंद्रहवी शताब्दी के बाद क्रमशः क्षीण हो गई और लगभग पांच सौ वर्षों के अंतराल के बाद बीसवीं सदी के आरम्भ में दलित जीवन पर केन्द्रित कविता की आहटें फिर से सुनाई देने लगीं। 'सरस्वती' पत्रिका में सन् 1914 में पटना के हीरा डोम की भोजपुरी कविता 'अछूत की शिकायत' प्रकाशित हुई। इस कविता ने दलित कविता की क्षीण हुई धारा को नया जीवन प्रदान किया। यह वह समय था जब महाराष्ट्रमें महात्मा ज्योतिराव फूले, बंगाल में चॉद गुरू तथा उत्तर भारत में स्वामी अछूतानन्द के प्रयासों से दलित वर्गों में नवजागरण की चेतना विकसित हो रही थी। आगे चलकर स्वामी अछूतानन्द ने स्वयं दलित समाज की परिस्थितियों को लक्षित करते हुए सामाजिक सरोकारों की कविता लिखी है। उनकीकविता में 'आदि हिन्दू आंदोलन' के माध्यम से दलित समाज की अस्मिता और वैदिक दर्शन की ब्राह्मणवादी धारा के प्रतिरोध का स्वर प्रधान है।

बीसवीं सदी के चौथे दशक में डॉ. बी.आर.अम्बेडकर के रूप में दलित समाज को एक ऐसा प्रखर व्यक्तित्व मिला जिसने सदियों से उत्पीड़ित–शोषित दलित समाज को जाग्रत करने का काम किया। डॉ. अम्बेडकर नेराष्ट्रीय स्वाधीनता के आंदोलन में दलित मुक्ति के प्रश्न को केन्द्रीयता प्रदान की तथा दलित समाज को शिक्षित, संगठित और निरंतर संघर्षरत रहने का मूल मंत्र दिया। परिणामस्वरूप दलित समाज को अभिव्यक्ति का महत्व समझने और साहित्य को एक सशक्त माध्यम के रूप में विकसित करने का अवसर मिला। इस दौर में दलित चेतना की अभिव्यक्ति करने वाले रचनाकारों में बिहारीलाल हरित का नाम विशेष अल्लेखनीय है। उन्होंने स्वाधीनता के पूर्व और बाद के वर्षों में वर्ण–व्यवस्था, जातिभेद, आर्थिक असमानता, अशिक्षा, भूख और बेगारी आदि समस्याओं पर महत्वपूर्ण कविताऐं लिखीं।

सन् 1947 में स्वाधीनता मिलने के बाद भी दलित समाज की जीवन स्थितियों में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हो सका । इससे उपजी निराशा और असंतोष की अभिव्यक्ति इस दौर के साहित्य में देखी जा सकती है। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान उभरी मार्क्सवादी विचारधारा और गांधीवादी दर्शन से अलग रहकर इस दौर के रचनाकारों ने डॉ. अम्बेडकर के विचारों को अपनाते हुए दलितों को एक स्वतंत्र नागरिक के रूप में अपना विकास करने पर जोर दिया तथा सामाजिक–आर्थिक शोषण के खिलाफ आवाज उठाई। उन्होंने दलितों के राजनीतिक इस्तेमाल का विरोध करते हुए जाति–वर्ग विहीन समाज की स्थापना के लिए न्याय एवं समता आधारित लोकतंत्र की आवश्यकता पर बल दिया। इसी समय दलित कविता में प्रतिरोध के नए स्वर उभरे और उन्हें स्वतंत्र पहचान मिली।

आजाद भारत में सातवें–आठवें दशक की दलित कविता की मुख्य विशेषता यह थी कि अधिकांश रचनाकार दलित जातियों के थे और कुछएक पिछड़ी जातियों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। 'इस दौर की कविता ने जाति के तंग दायरे को तोड़ा और उस व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाई जो शोषण और अन्याय पर आधारित पूँजीवादी और ब्राह्मणवादी थी। ये कवि शोषक वर्गों की सत्ता को ध्वस्त कर दलित–सर्वहारा की सत्ता चाह रहे थे।'[1] इस दौर के कवियों में चन्द्रिका प्रसाद 'जिज्ञासु' उपनाम प्रकाश लखनवी, दुलारेलाल जाटव, रमेश चन्द्र मल्लाह, भीखाराम गड़रिया, रामस्वरूप अमर, सत्यमित्र विद्यालंकार, बदलूराम 'रसिक' आदि प्रमुख हैं। प्रकाश लखनवी ने आल्हा की तर्ज पर लिखी गई 'शोषित पुकार' कविता में लिखा कि –

बाह्मनशाही ढ़ोंग मिटाओ, अब तो भारत है आज़ाद।
साम्यवाद की बजे दुंदुभी, वर्ण–जाति होवे बर्बाद।।
लोकतंत्र का तत्व यहै, खुलैं तरक्की के सब द्वार।
बंद होयॅ शोषण की राहैं, अर्थ व्यवस्था का होय सुधार।।[2]

आठवें दशक की कविता का संघर्ष सामाजिक समानता और आर्थिक मुक्ति के लक्ष्यों पर केन्द्रित था। इस दौर की कविता जातियों की संकीर्णता से मुक्त होकर सम्पूर्ण शोषित वर्ग की हितचिंतक बनी। वह नए समाज और नई व्यवस्था के निर्माण के माध्यम से शोषित जनता के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना चाहती थी। कवि बदलूराम 'रसिक' ने 'शोषण की खूंखार हस्ती मिटाकर शोषितों की नयी बस्ती बसाने का' आह्वाहन करते हुए लिखा कि –

उठो क्रान्ति के दूत बन आगे आओ,
बढ़ा पाप–संताप सारा मिटाओ,
सुदृढ़ संगठित शक्ति अपनी बनाओ,
करो या मरो' पाठ सबको पढ़ाओ,
यही वक्त है, दो गुंजाअपना नारा,
न अब जुल्म जालिम चलेगा तुम्हारा।[3]

आठवें–नवें दशक में दलित कविता जब जाति के दायरे को तोढ़कर वर्ग–संघर्ष की चेतना से लैस हो रही थी उसी समय कवियों के एक वर्ग पर डॉ. अम्बेडकर और महात्मा बुद्ध की भक्ति भावना का रंग चढ़ रहा था। इन कवियों में लाल चन्द्र राही, रणजीत सिंह, राजपाल सिंह, मनोहर लाल 'प्रेमी', नत्थू सिंह 'पथिक', बुद्धसंघ प्रेमी, मिथन सिंह बौद्ध आदि डॉ. अम्बेडकर और महात्मा बुद्ध के जीवन, विचार और संघर्षों की अभिव्यक्ति के साथ ही अपने समय और परिवेश के प्रति जागरूकता का परिचय देते हुए शोषण की परम्परागत व्यवस्था का विरोध करते हुए दलितोंके साथहो रही

तत्कालीन अमानवीय घटनाओं, आरक्षण की समस्या तथा भूमि के बॅटवारे आदि ज्वलंत विषयों पर भी कलम चला रहे थे।

नवें और अंतिम दशक में दलित कविता की विषयवस्तु, संवेदना और अभिव्यक्ति कौशल में उल्लेखनीय परिवर्तन आया। इस दौर में कविता दलित–शोषित समाज के जीवन के विविध आयामों के यथार्थ चित्रण, दलित अस्मिता की पहचान, मूलभूत अधिकारों की आकांक्षा, परिवर्तनकामी विद्रोही चेतना और समाजिक–राजनीतिक व्यवस्था के आमूल परिवर्तन आदि की अभिव्यक्ति में सार्थक और निर्णायक भूमिका का निर्वाह करने में सफल रही है। इस अवधि में दलित अस्मिता और चेतना पर केन्द्रित अनेक रचनाकारों की कविताएं और काव्य संग्रह प्रकाशित हुए। इन कवियों ने उस सामाजिक यथार्थ को कविता का यथार्थ बनाया जिसे वह स्वयं जी रहे थे। इनमें भीमसैन 'संतोष', सोहनपाल 'सुमनाक्षर', मंसाराम 'विद्रोही', कुसुम वियोगी, जयराम हरनौटिया, श्यौराज सिंह 'बेचैन', ओमप्रकाश आल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश नवेन्दु, एन. सिंह, मनोज सोनकर, रामशिरोमणि होरिल, सुखबीर सिंह, चन्द्र कुमार वरठे, प्रेमशंकर, दयानन्द बटोही आदि प्रमुख हैं।

दरअसल, आजादी के कई दशक गुजर जाने के बाद दलित–शोषित–उपेक्षित समाज की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक जीवन स्थितियों में कोई व्यापक और महत्वपूर्ण बदलाव नहीं आया है। यह स्थितियॉ सामान्य व्यक्ति के मन को भी विद्रोही बना सकती हैं। इस दौर के दलित रचनाकारों की कविताओं में इस विद्रोह की अभिव्यक्ति कई रूपों में हुई है। वह अपनी सम्पूर्ण दुरावस्था का जिम्मेदार सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था को मानते हैं। सामन्ती समाज व्यवस्था और धार्मिक जकड़बन्दियों से कई स्तरों पर मुक्ति के बावजूद समकालीन राज व्यवस्था, संवैधानिक प्रावधानों, आधुनिक शिक्षा व विचारों के प्रवाह, आर्थिक विकास व सांस्कृतिक समावेशन के वर्तमान दौर में भी दलितों, पीड़ितों और उपेक्षितों के प्रति अवमानना, अत्याचार और शोषण में कमी नहीं आई है।'इन रचनाकारों की रचनाओं में इस वर्ग के प्रति शताब्दियों से बरती जा रही भेदभाव की नीति, अपने विकास के लिए छटपटाहट और उसके मार्ग में अवरोध उपस्थित करने वाली व्यवस्था के प्रति सतत आक्रोश दृष्टिगोचर होता है। धार्मिक और सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह भी इन कवियों की कविताओं का मुख्य स्वर है।'[4]

समकालीन दलित कवियों के लिए आज़ादी के कई दशक बीत जाने के बाद भी आज़ादी और लोकतंत्र का कोई मतलब नहीं है। श्यौराज सिंह 'बेचैन' लिखते है –

भूखों की भूख मिटा न सकी,
शोषण और लूट बचाा न सकी,
जिस सुबह की खातिर वीर मरे,
वो सुबह अभी तक आ न सकी।[5]

सवर्ण समाज द्वारा दलित जातियों पर लगाए गए अनगिनत प्रतिबन्धों और पाबन्दियों का आज के दौर में अमानवीय और शर्मशार करने वाला रूप देखकर जयप्रकाश कर्दम लिखते हैं कि –

बेमानी हैं उसके लिये
आज़ादी और लोकतंत्र की बातें
व्यर्थ हैं संसद और संविधान
नहीं चाहिए उसे
नीति और धर्म की शिक्षा

नहीं चाहिए अध्यात्म का ज्ञान
उसे चाहिए रोटी और सम्मान।[6]
इसके मूल कारण राजनीतिक सत्ता में समाज के प्रभुत्वशाली वर्ग की अधिकाधिक भागीदारी को स्पष्ट करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं –
चूल्हा मिट्टी का
मिट्टी तालाब की
तालाब ठाकुर का।
भूख रोटी की
रोटी बाजरे की
बाजरा खेत का
खेत ठाकुर का।
कुऑ ठाकुर का
पानी ठाकुर का
खेत–खलिहान ठाकुर के
गली–मुहल्ले ठाकुर के
फिर अपना क्या ?
गॉव ? शहर ?देश ?[7]
भीमसैन 'संतोष' ने अपनी कविता में उच्च जाति के भूस्वामियों के हाथ में स्वराज के कैद होने की बात कहते हुए देश की राजधानी में 'हिन्दू एकता' के खोखलेपन की बात कही है–
और देश की राजधानी मे
वोट क्लब पर
विराट हिन्दू समाज
अपनी दुमों के साथ
दलित–प्रेम का नारा
दलितों का हत्यारा
नारा लगाता है–
हमस ब हिन्दू एक हैं।[8]
आज की संसदीय, प्रशासनिक व न्याय व्यवस्था पर व्यंग करते हुए वरिष्ठ दलित कवि एन0 सिंह लिखते हैं कि–
उड़ रही हैं चिंदियॉ कानून की।
धार पैनी हो रही नाखून की।।
अर्थ बदले जा रहे हर शब्द के।
व्याख्याऍ यूँ हो रहीं मजमून की।।
जुल्म बढ़ते जा रहे हैं भाव से।
राजनीति हाट है परचून की।।
वोट की कीमत यहॉ सब ऑकते।
किन्तु कीमत कुछ नहीं है खून की।।[9]
ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता लोकतांत्रिक व्यवस्था पर तीखा व्यंग करती है –
जब तक रामेसरी के हाथ में
खड़ांग–खांग घिसटती लौह गाड़ी है
मेरे देश का लोकतंत्र

एक गाली है।[10]
सुखबीर सिंह अपनी कविता 'बयान बाहर' में दलित जनों की जीवन पर्यंत की मार्मिक पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए लिखते हैं –
ओ! मेरे गांव! तेरी जमीन पर
घुटी–घुटी सांसों के साथ
पलना पड़ता है अलग–थलग
लड़खड़ाते कदमों से
चलना पड़ता है अलग–थलग
मरने के बाद भी
जलना पड़ता है अलग–थलग।[11]
हिन्दी में किसी दलित लेखक की पहली आत्मकथा 'अपने–अपने पिंजरे' से विशेष चर्चा में आए मोहनदास नैमिशराय ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'फर्क तय करना है' में नई उभरती समस्या जिसमें गॉव और कस्बों के समान ही नगरों–महानगरों में भी दलितों को अपमानित किए जाने की प्रवृत्ति को तेजी से विकसित होते दिखाया है–
एक ही मनुष्य जाति के होने पर भी
जातिगत सम्बोधनों के आधार पर
कसैले से लगने वाले स्वर
कल तक जो गॉव और कस्बों के
परिवेश में सुनाई देते थे
आज उजालों के प्रतीक
महानगरों में भी
वही जातिगत सम्बोधन के आधार पर
कसैले से लगने वाले स्वर
सुनाई पड़ने लगे हैं।[12]

इसी तरह प्रेमशंकर ने आज के तथाकथित रूप से सभ्य और विकसित समाज पर गंभीर व्यंग करते हुए लिखा है –
वे सभ्य हैं
आदमी से
हाथ मिलाने के बाद
वे
हाथ धोते हैं मॉजते हैं
और फिर
मुस्कराकर कहते हैं
हम एक हैं
फिर हाथ धोते हैं
ताकि
हाथ में आदमी की
'जाति' न छप गयी हो।[13]
दलित कवियों ने धर्म, दर्शन और पौराणिक मिथकों की पुनर्व्याख्या करते हुए हिन्दू समाज की उन मान्यताओं पर जमकर प्रहार किया है जो समस्त मानव ही नहीं बल्कि जीव मात्र की आत्मा को एक मानती है और दलित जाति में जन्मे मनुष्यों के साथ

अमानवीय व्यवहार करती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी प्रसिद्ध कविता है 'शायद आप जानते हों' में लिखते है–

तुम्हारे रचे शब्द
तुम्हें डसेंगे सांप बनकर
गंगा किनारे कोई वटवृक्ष ढूँढ़ लो
कर लो भागवत का पाठ
आत्मतुष्टि के लिए
कहीं अकाल मृत्यु के बाद
भयभीत आत्मा
भटकते–भटकते
किसी कुत्ते या सुअर की मृत देह में
प्रवेश न कर जाए
या फिर पुनर्जन्म की लालसा में
किसी डोम या चूहड़े के घर
पैदा न हो जाए
चूहड़े या डोम की आत्मा
ब्रह्म का अंश क्यों नहीं है
मैं नहीं जानता
शायद आप जानते हों।[14]

सोहनपाल 'सुमनाक्षर' ने उच्च जातियों की संस्कृति, प्रतीकों, पर्वों और चरित्रों पर सवाल उठाते हुए लिखा कि –

राम सर्वव्यापी है
ढकोसला है
राम सर्वश्रेष्ठ है
सफेदझूठ है
राम अन्यायियों को
निहारता है, दण्ड देता है
महान धोखा है।[15]

दलित चेतना के क्रान्तिकारी कवि मलखान सिंह ने ब्राह्मणवाद की उस मजबूत शक्ति संरचना के खिलाफ आवाज़ उठाई है जो सदियों तक दलितों को सुधारवाद और आरक्षण के जाल में उलझाकर बेबस और गुलाम बनाए रखने की पानसिकता से संचालित है। वह इस व्यवस्था के समूल नाश की बात करते हुए लिखते हैं –

सुनो ब्राह्मण !
हमारी दासता का सफर
तुम्हारे जन्म से शुरू होता है
और इसका अन्त भी
तुम्हारे अन्त के साथ होगा।[16]

आजादी के सात दशकों में भी परम्परागत शिक्षा से वंचित दलित वर्ग के साथ शिक्षा व्यवस्था के हर स्तर पर भेदभाव किया जाता रहा है। दयानन्द बटोही ने अपनी कविता 'द्रोणाचार्य सुनें : उनकी परम्पराएं सुनें' में इस स्थिति का सच व्यक्त करते हुए लिखा है –

अब दान में अँगूठा माँगने का साहस कोई नहीं करता

प्रेक्टिकल में फेल करता है
प्रथम अगर आता हूँ तो छठा या सातवॉ स्थान देता है
जातिगंध टाइटिल में खोजता है
वह आत्मा को बेमेल करता है।[17]

आज भी कठिन संघर्ष करके जब दलित युवक पढ़–लिखकर आगे बढ़ने की सोचता है तो उसे कदम–कदम पर अपमान, अवरोधों और उपेक्षाओं का शिकार होना पड़ता है। इन स्थितियों का सामना करते हुए दलित युवा पीढ़ी का विद्रोह और आक्रोश से भर उठना स्वाभाविक है। एक वर्ग विशेष में जन्म लेने मात्र से किसी मनुष्य के प्रति घृणा, विद्वेष और अपमानित करने का भाव रखना सर्वथा अमानवीय कृत्य है। चन्द्र कुमार बरठे का मानना है कि अभी भी इस वर्ग के लोगों के लिए सूर्योदय नही हुआ है। अपनी कविता 'बसन्तोत्सव' में इसके कारणों को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं –

मगर क्या तुम जानते हो कि
हमारी पूरी की पूरी नस्ल
आज भी अंधी है
उसकी आंखें तो बहुत पहले ही
निकाल दी हैं
तुम्हारे बसन्तोत्सव की संस्कृति ने
और काट दिए थे हाथ
ताकि, वे मुठ्ठी की शक्ल में खड़े न हो सकें।[18]

दलित कविता की विद्रोही चेतना को जयप्रकाश नवेन्दु की कविताओं ने ने नई धार दी है। इन कविताओं के माध्यम से कवि का वह क्रान्तिकारी रूप सामने आता है जिसमें वह शोषण और उत्पीड़न की व्यवस्था से मुक्ति के लिए किसी भी सीमा तक जा सकता है–

मत रोक अब मत रोक
मुझे सम्पूर्ण उत्तेजना के साथ
अपनी पीढ़ी की तरह से वक्त के सीने पर
फट जाने दे बम की तरह
मैं शेष न रहने के लिए पूरी तरह कटिबद्ध हूँ।[19]

मोहनदास नैमिशराय हरप्रकार के दलित शोषण और दमन का प्रतिकार करते हुए प्रभुत्वशाली शोषक वर्ग व अलोकतांत्रिक राज व्यवस्था के खिलाफ साझा लड़ाई की बात करते हैं परन्तु यह लड़ाई राजनीतिक क्षेत्र की नहीं बल्कि शब्दों के क्षेत्र की है –

तुम्हारे पास केवल शब्द हैं
उन्हीं को तुम्हें आंदोलन बनाना है
क्रान्ति हथियारों से नहीं
शब्दों से ही आती है।[20]

विगत वर्षों में अनेक रचनाकरों ने दलित कविता के क्षेत्र में अपनी रचनात्मक उपस्थिति दर्ज़ कराई है जिसमें स्त्रियों का आना विशेष महत्व रखता है हालांकि यह काफी देर से आया है। इसके पीछे दलित स्त्रियों के मध्य शिक्षा का अभाव, पारिवारिक दायित्व की सघनता और क्रान्तिकारी दलित आंदोलन में उनकी कमतर उपस्थिति को मूल कारण माना जा सकता है। बावजूद इसके विगत दो दशकों में दलित कविता में उभरे स्त्री स्वर बहुत ही स्पष्ट और मूल्यवान हैं। इन कवयित्रियों में अनुसूया 'अनु', कुसुम मेघवाल, कावेरी, सुशीला टाकभौरे, रजनी तिलक आदि ने परिवार, जाति, समाज, धर्म

आदि से जुड़ी समस्याओं के साथ–साथ देश–दुनिया के मसाइल को भी अपनी कविताओं का विषय बनाया है। कावेरी अपने दौर के स्त्री संघर्ष को रेखांकित करते हुए लिखती हैं–

जिन्दगी की खाईयॉ
ढेर सारी
आती रहीं सामने
परिवार, जाति, समाज
और धर्म की खाईयॉ
राष्ट्र, अन्तर्राष्ट्र, बांटती अस्मिता को
जब–जब पग बढ़ा
सामने आई खाईयॉ।[21]

सुशीला टाकभौरे ने स्त्री पर लगे प्रतिबन्धों, समाज के यथास्थितिवाद, राजनीति व धर्म के गठजोड़ और साहित्य व इतिहास के विभाजनों आदि विषयों पर उल्लेखनीय कविताएं लिखी हैं। उनका मानना है कि –

किसने की थीं यहॉ की रचनाएं
धर्म, नीति, समाज की बातें
क्यों रह गया सब एकांगी
यह इतिहास अधूरा है।
परिभाषा धर्म की बदलनी है
राजनीति से धर्मनीति अलग करनी है
बंटवारे समाज के सभी बेढंगे
कथनी–करनी में बहुत अन्तर है।
बात छोटी हो या बड़ी
सब की अपनी बड़ी महत्ता है
निकालना है हर जगह से क्षेपक को
स्वार्थ की विद्रूपता हटाना है।[22]

रजनी तिलक अन्याय, शोषण और अत्याचार के खिलाफ शोषितों के संघर्ष को पूरा समर्थन देने के साथ ही नवसृजन की बात करती हैं। उनके लिएशोषणविहीन समाज की रचना ही मुकम्मल आज़ादी है, जिसके लिए वह हर तरह की प्रतिगामी ताकतों से मोर्चा लेने के लिए तैयार है –

मगर मेरे प्यारे देश
तुम उनके नापाक इरादों से
बच निकलोगे
तुम्हारे ये उपेक्षित बच्चे
उनकी मंशाओं को चाक कर देंगे।
तुम्हें कालिमा में
ढापने वाली सियासत से
मुक्त करायेंगे
मेरे प्यारे देश, हम तुम्हें
फिर से आज़ाद करायेंगे।[23]

समकालीन दौर की दलित कविता ने सामाजिक–आर्थिक विषमता, धार्मिक रूढ़िवाद व नए उभरते वैश्विक संकटों का विरोध करते हुए नई सृजनात्मकता का परिचय दिया है।

आज का दलित कवि हर उस पाबंदी को दूर कर देना चाहता है, जो जीवन के मौलिक अधिकार व स्वतंत्रता का हनन करना चाहती है।दलित कविता में दलितों, आदिवासियों, स्त्रियों और हाशिए पर के समाजों के शोषण, उत्पीड़न और भयावह जीवन स्थितियों के चित्रण के साथ ही उनके जीने के मूलभूत अधिकारों, उनकी आशाओं व आकांक्षाओं की सार्थक अभिव्यक्ति हुई है। इन कवियों के यहाँ शोषण, दमन, अन्याय और अत्याचार की व्यवस्था की नियामक शक्तियों की पहचान स्पष्ट है और वे सदैव इन ताकतों का विरोध और प्रतिकार करने के साथ ही निर्णायक संघर्ष आह्वाहन करते हैं।

इन कवियों ने दलित चेतना, अस्मिता और संघर्ष की अभिव्यक्ति के लिए जनभाषा को अपनी काव्यभाषा बनाया है। उनकी काव्यभाषा का आदर्श है संप्रेषणीयता और इसीलिए उनके यहाँ सपाट बयानी अधिक है। दलित कविता में अनुभूति की गहनता, प्रामाणिकता व विस्तार के साथ शिल्पगत प्रौढ़ता भी आई है। दलित कवियों ने मानव विरोधी शक्तियों का प्रतिकार और प्रतिरोध करने के लिए कविता में व्यंग्य का सार्थक उपयोग किया है। उन्होंने स्वाधीन भारत की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विसंगतियों और अन्तर्विरोधों को दलित चेतना के आलोक में व्यंग्य के माध्यम से सार्थक अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने सामाजिक अन्याय व असमानता, धार्मिक रूढ़ियों व पाखण्ड, आर्थिक विसंगतियों व अन्तर्विरोधों, भ्रष्ट राजनीति व राजनेताओं, कुप्रशासन, भ्रष्टाचार, स्वार्थलिप्त नौकरशाही, आदर्शवादी मान्यताओं, खोखले आभिजात्य आदि पर तिलमिला देने वाला व्यंग्य किया है।

दलित कविता में अभिव्यक्त आक्रोश, विद्रोह एवं क्रान्ति का आह्वान सोद्देश्य है जिसमें वर्तमान परिस्थितियों में परिवर्तन की आकांक्षा के साथ ही आने वाली पीढ़ी के बेहतर भविष्य की मंगल कामना भी है। दलित कविता केवल अपने वर्ग की मुक्ति तक सीमित न होकर मानव मुक्ति की कविता के रूप में उभर रही है। इन कवियों के लिए कविता केवल यथार्थ को चित्रित करने का माध्यम भर नहीं है बल्कि उसके माध्यम से यथार्थ को बदला भी जा सकता है। समकालीन दलित कविता 'सदियों का संताप' और 'दर्द का दस्तावेज' होने के साथ ही समता मूलक, न्यायपूर्ण और प्रगतिशील समाज की स्थापना का सार्थक प्रयास भी है। श्यौराज सिंह बेचैन लिखते हैं –

गुलामियों के खात्मे की
जिद किये हुए हैं हम
नहीं रुकेंगे अब हमारे
साथियों के ये कदम।
उठें कि रस्मे रूढ़ियों की,
बंदिशें हटा सकें।
उठें कि साफ स्वस्थ
नव समाज हम बना सकें।[24]

**संदर्भ :**


*1* कॅवल भारती, दलित कविता का संघर्ष, पृष्ठ 116
2 प्रकाश लखनवी, शोषित पुकार, पृष्ठ 13
3 बदलूराम 'रसिक', बहुजन हुंकार, पृष्ठ 9
4 डॉ. एन. सिंह, दलित चिंतन : अनुभव और विचार, पृष्ठ 45
5 श्यौराज सिंह 'बेचैन', नयी फसल, पृष्ठ 22

6 जयप्रकाश कर्दम, गूँगा नहीं था मैं, पृष्ठ 25
7 ओमप्रकाश वाल्मीकि, सदियों का संताप, पृष्ठ 3
8 भीमसैन 'संतोष', शोषित कहे पुकार, पृष्ठ 5
9 डॉ. एन. सिंह, हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ ग़ज़लें, गिरिराज शरण अग्रवाल, पृष्ठ 96
10 ओमप्रकाश वाल्मीकि, सदियों का संताप, पृष्ठ 17
11 डॉ. सुखबीर सिंह, दीर्घा, पृष्ठ 13
12 मोहनदास नैमिशराय, दर्द के दस्तावेज, पृष्ठ 89
13 प्रेमशंकर, कविता : रोटी की भूख तक, पृष्ठ 14
14 ओमप्रकाश वाल्मीकि, नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली, 26 जुलाई 1992
15 सोहनपाल 'सुमनाक्षर', अंधा समाज और बहरे लोग, पृष्ठ 34
16 मलखान सिंह, सुनो ब्राह्मण, पृष्ठ 87
17 डॉ. दयानंद बटोही, दीर्घा, पृष्ठ 13
18 डॉ. चन्द्रकुमार बरठे, अधूरी चिठ्ठी रोशनी की, पृष्ठ 33
19 जयप्रकाश नवेन्दु, कविताएँ 1991, पृष्ठ 43
20 मोहनदास नैमिशराय, आग और आंदोलन, पृष्ठ 36
21 कावेरी, भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर, सं0 विमल थोरात, पृष्ठ 20
22 सुशीला टाकभौर, यह तुम भी जानो, पृष्ठ 47
23 रजनी तिलक, पदचाप, पृष्ठ 18
24 श्यौराज सिंह बेचैन, क्रौंच हूँ मैं, पृष्ठ 36

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# देवी राठासण मंदिर (राष्ट्रश्येना), मरूवास (उदयपुर) : धार्मिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन

**डिम्पल शेखावत**
सीनियर रिसर्च फेलो,
इतिहास विभाग
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

**सारांश**

राजस्थान के उदयपुर जिले की गिरवा तहसील के गांव मरूवास (झालों का गुढ़ा) में एकलिंग जी ट्रस्ट (मेवाड़) के अंतर्गत एक प्राचीन देवी मंदिर है जिसे स्थानीय जनराठासेण (राठासण) माता जी के नाम से पुकारते हैं। लगभग 3000 फीट ऊँची दुर्गम पहाड़ी पर स्थित देवी राठासण का यह मंदिर अनेक कारणों से विशिष्ट प्रतीत होता है ऐसा ही एक कारण ऐतिहासिक व धार्मिक मूल ग्रंथों में इन देवी के संबंध में विवरणों का आना है। मेवाड़ के ऐतिहासिक महत्व के प्राचीन नागदा क्षेत्र (कैलाशपुरी के पास) जो 10वीं शताब्दी तक मेवाड़ की राजधानी रहा, यह मंदिर उसी नागदा के प्रसिद्ध ऐतिहासिक अवशेषों से थोड़ी ही दूरी पर स्थित है। मंदिर में विराजमान राठासण देवी को 'मेदपाट की रक्षिणी' होने की उपाधि भी दी गई थी, इतनी महत्वपूर्ण उपाधि धारिणी मेवाड़ की इन देवी के मंदिर के विशिष्ट होने का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण कुछ इतिहास की पुस्तकों व स्थानीय क्षेत्र में इन्हें राजस्थान की एक वीर राजपूत जाति 'राठौड़ों' की कुलदेवी के रूप में उल्लेखित करना है। यह तथ्य इन देवी तथा इनके मंदिर के संबंध में शोध की संभावना व जिज्ञासा दोनों को और अधिक बढ़ा देता हैं, क्योंकि राजस्थान के राठौड़ों के संबंध में यह सर्वज्ञात है कि उनकी कुलदेवी 'श्री नागणेचा' है जिनका प्रमुख धाम बाड़मेर स्थित 'नागाणा' नामक स्थान है।

अब यहाँ कुछ प्रश्न उत्पन्न होते है, जैसे – यदि देवी राठासण राठौड़ों की कुलदेवी है तो मेवाड़ क्षेत्र में इनका यह प्राचीन मंदिर कब तथा किसने बनवाया? साथ ही गुहिल राजवंश शासित क्षेत्र में राठौड़ों की कुलदेवी मंदिर को 'मेदपाट की रक्षिणी' होने की महान उपाधि क्यों दी गयी? क्या वास्तव में देवी राठासण और नागणेचा देवी में कोई संबंध है? मेवाड़ में देवी के इस मंदिर तथा मंदिर केइतिहास संबंधी ऐसे ही अनेक प्रश्नों का शोधपूर्ण उत्तर ढूंढने का प्रयास इस आलेख में किया गया है। यह शोध विशेष रूप से मेवाड़ के तत्कालीन इतिहास को अधिक स्पष्ट ढंग से समझने में भी हमारी सहायता करता है, इस कार्य में तथ्यों की सत्यता, उचित ऐतिहासिक साक्ष्यों

के प्रकाश में जांच कर ठोस जानकारियों के रूप में एकत्र की गई है। ऐतिहासिक साक्ष्यों के रूप में अधिकांशतः प्राथमिक स्रोतों का उपयोग कर अनुसंधान किया गया है, इन अध्ययनों का केन्द्र बिन्दु देवी राठासण का मरूवास गाँव (उदयपुर) स्थित यह मंदिर है।

**संकेताक्षर**

एकलिंग, राठासण, राष्ट्रश्येना, जगदीश, दुर्गम, शिला, प्रशस्ति, मैनाक, त्रिकूट, कैलाशपुरी, राठौड़, राष्ट्रकूट, विश्वेश्वरनाथ, वायुपुराण, एकलिंग पुराण, विन्ध्यवासिनी, मेदपाट, श्येना, पक्षिणी, नागणेची, महालक्ष्मी, करवीर, जनगणना, बप्पा रावल, हारित ऋषि, मरूवास, नागदा, नांदेसमा, जैत्रसिंह, हस्तिकुण्डी, धनोप, वागड़, नाडोल, अन्नल देवी, आल्हण, धवल, दयालदास, चक्रेश्वरी, राठेश्वरी चामुण्डा, जवंता, जगत सिंह, जसवंत सिंह महेचा, महकमा खास, महिषासुरमर्दिनी, राष्ट्रौढ़, राठवर, रठकुल, अमोघवर्ष, मीनाक्षी जैन, हेमाद्रि, चतुर्वर्ग चिन्तामणि, विश्वकर्माशास्त्र, नागछत्र, सिंह

उदयपुर जिले की गिरवा तहसील के गांव मरूवास (झालो का गुढ़ा) में श्री एकलिंग जी ट्रस्ट के अन्तर्गत एक प्राचीन मन्दिर है। जिसे स्थानीय स्तर पर राठासेण (राठसण) माता जी के नाम से जाना जाता है। इस मन्दिर की कई विशेषताएँ है, जिनमें से एक इन देवी को राठौडों की कुल देवी बताया जाना है।

**मरूवास स्थित राठासण देवी मंदिर**

इस सन्दर्भ में इस क्षेत्र (झालों का गुढ़ा) में एक कहावत बहुत प्रसिद्ध है कि –

*राठासण राठौडां सू रूठी तो झाला पर तूठी*[1]

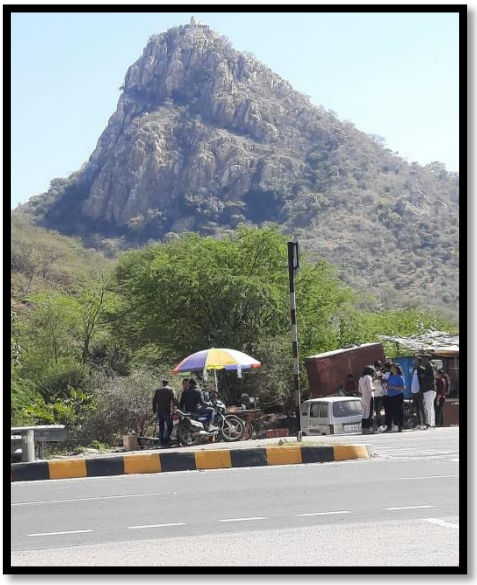

जिसका अर्थ है कि राठासण राठौड़ों से नाराज हुई तो झालों पर प्रशंसित हुई। मन्दिर से जुड़ी यही बात इसे सबसे रोचक बनाती है, यह मन्दिर धरातल से लगभग 3000 फीट की ऊँचाई पर एक दुर्गम पहाड़ी पर बना है। 13 मई 1652 का प्रतिष्ठित जगदीश मंदिर की प्रशस्ति की तृतीय शिला के 32वें तथा 33 वें श्लोक में देवी मन्दिर एवं इस पर्वत का वर्णन आया है। जो इस प्रकार है –

अथ द्वष्ट्रा महादेवी मत्युच्चाशिखरिस्थताम्।
राठासेनाभिधां बन्धां जानन्ति स्मेति देवता।।[2]

---

1 श्रीकृष्ण जुगनु, भंवर शर्मा, श्रीमद एकलिंग पुराणम्, आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2011, पृ. 120

2 श्रीकृष्ण जुगनु, भारतीय ऐतिहासिक प्रशस्ति परम्परा एवं अभिलेख, आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2019, पृ. 181

अर्थात्, अब देखिए उस महादेवी को जो अति उन्नत शिखर पर विराजमान है। उस देवी का नाम राठासन जानकर देवगण भी वन्दना करते है। आगे वर्णन है राठासेनगिरीन्द्रजेति सततं मैनाकनामानुज।
प्रीत्याह्वानरता न चाव जग तेपायस्त्रिकूटाचलात्।।

अर्थात् राठासेन का पर्वत, पहाड़ों को जीतने वाला और मैनाक नामक पर्वत का पुत्र लगता है और त्रिकूट (एकलिंग जी) से आने पर यह प्रीतिपूर्वक आमंत्रण और मनुहार करता प्रतीत होता है।

यह मन्दिर उदयपुर से नाथद्वारा जाने वाले राजमार्ग पर दायीं और ऊँचे पर्वत पर होने के कारण कैलाशपुरी की ओर से आने वाले जनों को सहज ही दर्शन देता है। इस मन्दिर के विषय में राष्ट्रकूटो (राठौड़ो) का इतिहास लिखने वाले पण्डित विश्वेश्वर नाथ रेऊ ने भी लिखा था तथा इनका (राष्ट्रश्येना) मन्दिर, एकलिंग महादेव मन्दिर से डेढ़ कोस की दूरी पर स्थित होना बताया[3], साथ ही पांच सौ वर्ष[4] प्राचीन तथा वायुपुराण से सम्बन्धित ''एकलिंग पुराण'' में भी देवी राष्ट्रश्येना का महत्वपूर्ण वर्णन प्राप्त होता है। यह पुराण एकलिंग जी की महिमा में महाराणा रायमल के शासन काल में लिखा गया था इसमें शैव तीर्थ स्थल को पुराण रूप में वर्णित किया गया है। इसके ग्याहरवें अध्याय में देवी को एकलिंग जी क्षेत्र के विन्ध्यवासिनी देवी के पूर्व दिशा की ओर प्राकार के अन्तर्गत हर्म्य में सुन्दर सोने के सिहांसन पर राष्ट्र की रक्षा के ध्येय से विराजमान बताया है जो इस प्रकार है –
प्राकारान्तर्गते हर्म्ये स्वर्ण सिहांसने शुभे। स्थित्वा तत्र मति चक्रे राष्ट्ररक्षण हेतवे।।
साथ ही आगे यह वर्णन भी है कि –
राष्ट्रसेनेति नाम्नीयं मेदपाटस्य रक्षणम् करोति न च भङ्गोऽस्य यवनेभ्योऽपराग दपि।।

अर्थात् यह राष्ट्रश्येना नामक देवी मेदपाट की रक्षक है। इन्हें यवन सेना तथा अन्य जन भी हानि नहीं पहुंचा सकते है। इस प्रकार देवी को मेवाड़ क्षेत्र की रक्षिणी के रूप में बहुत महत्वपूर्ण उपाधि दी गई है किन्तु यहां कौतूहल का विषय यह है कि राठौड़ों की कुल देवी को गुहिल/सिसोदिया शासित मेवाड़ (मेदपाट) की रक्षिणी की उपाधि क्यों दी गई? एकलिंग पुराण में देवी का ''राष्ट्रश्येना'' जैसा शास्त्रीय नाम आया है, यहाँ संभव है कि यह 'राठासण' नामक लोक शब्द के शास्त्रीयकरण का प्रयास हो एवं यह भी संभव है कि इस राष्ट्रश्येना नाम का लोक अपभ्रंश ही ''राठासण'' हो। 15वीं शताब्दी के इस ग्रंथ में देवी के महत्व का इतना वर्णन इस ओर संकेत करता है कि यह मन्दिर इस क्षेत्र में इस ग्रंथ निर्माण से कम से कम 100–200 वर्ष पूर्व से ही विद्यमान था जो रायमल जी के काल तक प्रसिद्धि लिए इस ग्रंथ में वर्णित हुआ लेकिन देवी का राठौडों की कुल देवी बताया जाना, इस क्षेत्र एवं इनके ज्ञात इतिहास की पृष्ठभूमि में एक अद्भूत तथ्य है। वर्तमान में यह मन्दिर बड़गांव पंचायत क्षेत्र में आता है किन्तु इससे पूर्व यह कैलाशपुरी ग्राम पंचायत के अन्तर्गत आता था तथा 1961 कि भारत सरकार द्वारा करवाई गई कैलाशपुरी ग्राम की जनगणना के संबंध में हुए ग्राम सर्वेक्षण में इतिहास व धर्म सम्बन्धी जानकारियों में देवी राष्ट्रश्येना की चर्चा आई है। जहां देवी को राठासण तथा राष्ट्रश्येना दोनों ही नामों से संबोधित किया है। इस

---

[3] विश्वेश्वरनाथ रेऊ, राष्ट्रकूटो (राठौड़ो) का इतिहास, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, पंचम संस्करण, 2016, पृ. 35

[4] श्रीकृष्ण जुगनु, भंवर शर्मा, श्रीमद् एकलिंग पुराण, आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2011, पृ. 25

चर्चा का प्रसंग यहां बप्पा रावल तथा हारीत ऋषि की प्रसिद्ध कथा का वह अंश है जब हारीत ऋषि बप्पारावल की सेवा से प्रसन्न हुए तथा उन्होंने देवी राष्ट्रश्येना (राठासण) के आर्शीवाद का प्रयोग किया, जिससे देवी ने बप्पा को दर्शन दिए एवं उन्हें (बप्पा) ''एकलिंग जी'' को प्रसन्न करने की बात कही, इसके आगे की कथा लोक में बहुत प्रसिद्ध है।[5]

इसी कथा को कुछ परिवर्तन के साथ मुहणौत नैणसी ने भी अपनी ख्यात में लिखा है जिसके अनुसार हारीत ऋषि ने 12 वर्ष तक राठासण देवी (राष्ट्रश्येना) की आराधना की तथा बप्पा ने जो हारीत की गायें चराया करते थे, उन्होंने 12 वर्ष तक हारीत की सेवा की, जब हारीत स्वर्ग जाने लगे तो उन्होंने बप्पा को कुछ देना चाहा तथा क्रोधित हो देवी राठासण से कहा कि ''मैंने 12 वर्ष तपस्या की है परंतु तूने कभी मेरा सुध नही ली'', इसके बाद देवी प्रकट हुई तथा उन्होंने कहा महादेव को प्रसन्न करो जिसके बाद पृथ्वी फटकर एकलिंग जी का ज्योर्तिलिंग प्रकट हुआ। ऋषि हारीत ने महादेव को प्रसन्न करते हुए तपस्या की और जब शिव ने हारीत को वर देना चाहा तब ऋषि ने प्रार्थना की कि बापा को मेवाड़ का राज्य दे दीजिए, फिर राठासण तथा महादेव ने बापा को वहां का राज्य दे दिया।[6]

यह कथा दैवीय चमत्कारों के साथ ऐतिहासिक चरित्रों तथा वर्तमान में इस क्षेत्र में विद्यमान दो मन्दिरों के देवताओं का वर्णन करती है तथा साथ ही हमें यह भी बताती है कि यह प्रसंग मध्यकालीन मारवाड़ की ख्यातों से लेकर आधुनिक भारत सरकार की जनगणना सर्वेक्षण के दस्तावेजों में भी दर्ज है तथा वर्तमान में भी मेवाड़ तथा झालों का गुढ़ा गांव के लोगों को मुँह जुबानी याद है। इस प्रसंग में हमारे अध्ययन विषय से संबंधित जो जानकारी अति महत्व की है वह है बप्पा रावल के राज्य शासन ग्रहण करने से पूर्व से ही इस क्षेत्र में देवी राठासण अपने महत्व सहित विद्यमान थी तभी ऋषि हारीत उनकी तपस्या में रत थे। मेवाड़ के शासकों में बप्पा रावल एक ऐसा चरित्र है जिनका कालक्रम वैसे तो विद्वानों में बहस का विषय रहा है। किन्तु फिर भी सामान्य समझ में 8वीं शताब्दी के आसपास अधिकांश विद्वान उनका होना स्वीकार करते है, इस प्रकार देवी राठासण इस क्षेत्र में कम से कम 8वीं शताब्दी से विद्यमान है। यदि ऐसा नहीं भी हो तो इतना तो यह कथाएं स्थापित करती ही है कि इस क्षेत्र में देवी का स्थान बप्पा रावल से भी पुराना है।

मरूवास स्थित देवी का यह मन्दिर, मेवाड़ की प्राचीन राजधानी नागदा के प्रसिद्ध सास–बहु मन्दिर (सहस्त्रबाहु) आदि ऐतिहासिक अवशेषों से कुछ ही दूरी पर स्थित है। नागदा के संबंध में यह ज्ञात है कि दिल्ली के सुल्तान इल्तुतमिश जिसका काल 1210 से 1236 है[7], ने नागदा को नष्ट किया था। इस समय का ईस्वी 1222 का एक शिलालेख नांदेसमा गांव में टूटे हुए सूर्य मन्दिर के स्तम्भ पर खुदा है, जिसमें जैत्रसिंह की राजधानी नागद्रह (नागदा) होना तथा उनके श्रीकरण (श्री के चिह्न वाली मुख्य मुद्रा या मोहर करने वाले मंत्री) का नाम डूंगरसिंह लिखा है। जिससे जानकारी मिलती है कि 1222 ईस्वी तक मेवाड़ की राजधानी नागदा टूटी नहीं थी, तथा कई

---

5 सी.एस.गुप्ता (1967), सेंसस ऑफ राजस्थान वॉल्यूम –VI-C पब्लिशर्स, पृ.4

6 गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, चतुर्थ संस्करण, 2015, पृ.119

7 जयचन्द्र विद्यालंकार, भारतीय इतिहास की मीमांसा, हिन्दी भवन, इलाहाबाद, 1960, पृ. 99–100

शिलालेखों व पुस्तकों के वर्णन से यह निश्चित होता है कि जैत्रसिंह (1213–1253) इस काल में मेवाड़ का राजा था। इन जैत्रसिंह से 23 पीढ़ी पहले वर्ष 977 ईस्वी में खुमाण के पुत्र भर्तृपट्ट–II राजा हुए जिनकी रानी राठौड़ वंश की राजकुमारी महालक्ष्मी थी तथा जी.एस ओझा इस प्रकार की संभावना प्रकट करते है कि यह हस्तकुण्डी अभिलेख में वर्णित हथूण्डिया (हठूण्डिया) राठौड़ मम्मट की पुत्री या बहिन थी। इस प्रकार यह उदाहरण इस काल में राठौड़ के गुहिलों से वैवाहिक संबंधों का सूचक है तथा जानकारी प्रदान करता है कि राजा अल्लट (मेवाड़), राठौड़ों के भाणजे थे। इतना ही नहीं, हस्तकुण्डी अभिलेख में ही वर्णित उपरोक्त राजा मम्मट के उत्तराधिकारी धवल के संदर्भ में यह उल्लेख आया है उसने शक्तिकुमार पर वाक्पति राज मुंज के आक्रमण के समय उसकी सहायता की थी [8] यह शक्तिकुमार राजा अल्लट के बाद हुए उत्तराधिकारियों में चतुर्थ स्थान पर थे।

धवल राठौड़ उस समय कितने शक्तिशाली शासक रहे होंगे कि ना केवल मालवा के परमारो के विरूद्ध उन्होंने आहड में गुहिलों की सहायता की अपितु अनहिलवाड़े (गुजरात) के चालुक्य राजा मूलराज के विरूद्ध आबू के परमार राजा धरणीवराह को आश्रय दिया[9] एवं दुर्लभराज चौहान (सांभर का चौहान) से नाडोल के चौहान राजा महेन्द्र की रक्षा की। इन्हीं नाडौल के चौहानो के आगामी उत्तराधिकारी आल्हण देव की पत्नी अन्नल देवी राष्ट्रौड़ भी एक राठौड़ राजकुमारी थी, इसकी जानकारी हमें 1161 के नाडोल के चौहान कीर्तिपाल के दानपात्र से मिलती है। यह विवेचन स्वतः सिद्ध करता है कि भले ही 10वीं से 13वीं शताब्दी के राव सीहा से प्राचीन इन वीर राठौड़ों के विषय में हमारी सूचनाएँ और शोध नगण्य है तथापि यह एक शिलालेख इसका साक्षी है कि वें अपने काल के शासन, प्रशासन समाज, राजनीति आदि में शक्तिशाली रूप से प्रतिष्ठित थे। इनके अतिरिक्त भी इस काल में राठौड़ों के प्रभावशाली अस्तित्व के अन्य कई उदाहरण भी है जैसे धनोप के राठौड़ चच्च का अभिलेख[10] तथा बागड के राठौडों का अभिलेख[11] जो संभवतः छप्पनियां राठौड़ कहलाते हैं। अब प्रश्न यह है कि अजमेर के चौहानों, गुजरात के चालुक्य तथा मालवा के परमारों के विरूद्ध अपने पडौसी एवं रिश्तेदार गुहिलों व आबू के परमारों की सहायता करने वाले यह राठौड़ क्या कुल देवी रहित थे? विद्ग्धराज हस्तिकुण्डी अभिलेख में वर्णन आया है कि विद्ग्धराज धवल राठौड़ के दादा जो कि लगभग 916 ईस्वी में हुए, उन्होंने एक जैन मन्दिर का निर्माण करवाया था इससे यहाँ सहज ही यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि क्या उन्होंने राजस्थान में कहीं अपनी कुल देवी की स्थापना नहीं की होगी? सामान्य ज्ञात तथ्य यह है कि राजस्थान के राठौड़ो की कुल देवी नागणेच्या जी है जिनका मन्दिर राठौडों के पितृ पुरुष राव सीहा के पोते धूहड द्वारा नागाणा में

---

8 गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, चतुर्थ संस्करण, 2015, पृ. 132

9 गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, छठा संस्करण, पृ. 87

10 श्री कृष्ण जुगनु, राजस्थान के प्राचीन अभिलेख, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, प्रथम संस्करण, 2013, पृ. 78

11 गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, छठा संस्करण, पृ. 89

बनवाया गया। तो क्या राव सीहा से प्राचीन राजस्थान के राठौड़ों की कुल देवी का यहां कोई मन्दिर नहीं था? क्या बप्पा रावल की कथाओं में वर्णित तथा एकलिंग पुराण में मेदपाट की रक्षिणी के रूप में प्रतिष्ठित देवी राष्ट्रश्येना का मरूवास स्थित यह मन्दिर प्राचीन राठौड़ की कुल देवी का मन्दिर हो सकता है? ठोस रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि प्राचीन राठौड़ों का मन्दिर से क्या संबंध रहा, लेकिन नए शोध व तथ्यों के आने तक यह मान्यता भी पूर्ण रूप से संभव है कि उक्त मन्दिर प्राचीन राठौड़ों की कुलदेवी का रहा होगा।

यहां एक तथ्य और है जो अपने नाम को लेकर अद्भूत आकर्षण रखता है वह हैं, मन्दिर के ग्राम–स्थल का नाम 'मरूवास' होना। कर्नल जेम्स टॉड अपनी पुस्तक 'एनल्स एंड एण्टिक्वीटीज' में जोधपुर राज्य के इतिहास के संबंध में ''मारवाड़'' शब्द को मारूवार का अपभ्रंश बताते है जिसका यर्थाथ में अर्थ ''मरूस्थल या मरूदेश'' से है इसका तात्पर्य 'मरे हुए जानवरों का देश' है। मुस्लिम लेखकों तथा अन्यों ने कई स्थान पर इसे 'मार' देश लिखा है जबकि कवियों ने 'मुरधर' भी कहा है इन सभी का अर्थ मरू देश ही है[12] तथा जिस प्रकार मेवाड़ गुहिलों के शासन का, ढूंढ़ाड कच्छावाहों का, हाडौती हाडो के शासन का सूचक है उसी प्रकार मारवाड़ राठौडों के शासन का सूचक है अतः नाम के संबंध में यह अनुमान होता ही है कि मरूवालों का वास ही मरूवास है। जैसा कि पूर्व में बताया गया है कि राष्ट्रकूटों (राठौडों) के इतिहास पर कार्य करने वाले पण्डित विश्ववेश्वरनाथ रेऊ भी इस मन्दिर को राठौड़ों की कुल देवी राष्ट्रश्येना के मन्दिर रूप में उल्लेखित कर चुके है साथ ही वे राठौडो की कुल देवी का 'राष्ट्रश्येना' भीएक नाम होना बताते है।[13]

सिंढ़ायच दयालदास द्वारा रचित ख्यात देश दर्पण में कुल अम्बा के रूप में राठेश्वरी, पंखिणी, चक्रेश्वरी तथा नागणेची के नाम आए है[14] तथा श्री नारायण (भगवान) से प्रारम्भ हुए वंश में क्रम संख्या 125 पर, देवी राठेश्वरी के वरदान से उत्पन्न राजा रठवर के बाद ही कुल के रठ्वर (रठवड़) कहलाने को जानकारी देते है।

**मरूवास स्थित राठासण देवी मंदिर**

---

12 बलदेव प्रसाद मिश्र, ज्वाला प्रसाद मिश्र तथा मुंशी देवी प्रसाद, जोधपुर राज्य का इतिहास (कर्नल जेम्स टॉड कृत), यूनिक ट्रेडर्स, जोधपुर, पृ. 2

13 विश्वेश्वर नाथ रेऊ, राष्ट्रकूटों राठौड़ों का इतिहास, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, पंचम संस्करण, 2016,पृ. 34

14 के.के. जैन (प्रधान संपादक) 1989, ख्यात देशदर्पण सिंढाचय व दयालदास कृत (बीकानेर राज्य का इतिहास), राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पृ. 3

देवी राष्ट्रसेना के इस मन्दिर को यदि अब अध्ययन किया जाए तो पता चलता है कि इसके धरातल से उठी बाहरी दीवारों का निचला हिस्सा–तेरहवीं शताब्दी के बाद का नहीं है जबकि अन्य भागों में तब से वर्ष 2001 तक समय–समय पर अनेक जीर्णोद्धार के कार्य हुए है, जिसके कारण स्थापत्य मिश्रित प्रकृति का है। नागर शैली में निर्मित इस मन्दिर के भवन निर्माण में धूसर इमारती पत्थर के साथ संगमरमर का प्रयोग दिखाई पड़ता है, इसे ऊँची कुर्सी देकर बनाया है। जिसके सभामण्डप के तीन द्वार है अर्थात् वर्तमान में यह त्रिमुखी है जबकि इसका चौथा हिस्सा गर्भगृह का है जिसके ऊपर मन्दिर का शिखर बना है। मन्दिर के शिखर में पत्थर की पट्टियों से हुए बेढंगी जीर्णोद्वार को स्पष्ट देखा जा सकता है, इस शिखर के मध्य जंघा भाग पर किसी प्रकार के सिहं (यालि) की मूर्ति नहीं है तथा मन्दिर पर कोई ध्वजा भी नहीं है, शिखर का निर्माण ईटों से हुआ है जबकि मध्य भाग की दीवारों में पत्थर का प्रयोग है, गर्भगृह की तीन तरफा बाह्य दीवारों पर देवी की मूर्तियां है जिनमें बायी और प्रेतवाहिनी चामुण्डा है जबकि दायीं और तथा पार्श्व में भी चामुण्डा देवी के ही किन्हीं स्वरूपों की मूर्तियाँ है जिनमें लांछन, बहुत अधिक सिन्दुर लगाने के कारण अस्पष्ट है अतः स्वरूप की पहचान निश्चित नहीं है। देवियों की इन मूर्तियों में से किसी देवी के कोष्ठक (ताक/आले) के अलंकरण स्पष्ट रूप से बाहर देखे जा सकते है जबकि कोई प्रतिमा दीवार में अधिक अंदर धंसी है, प्रतिमाओं को भित्ति में स्थापित करने में दिखाई पड़ने वाले इस अंतर से भी जानकारी होती है कि यह जीर्णोद्धार का प्रभाव है। यहां ध्यान देने योग्य एक तथ्य यह भी है कि बाहरी भित्तियों की इन मूर्तियों (चामुण्डा देवी) तथा श्री एकलिंग जी मन्दिर के बाहर स्थित भैरव प्रतिमा तथा गणेश प्रतिमा एवं उनके कोष्ठक (ताक/आला) निर्माण शैली एक समान है एवं ऐसी ही चामुण्डा देवी की 10वीं शताब्दी की प्रतिमाएं गंगूकुण्ड के भग्नावशेषों में विद्यमान है।

वहीं अब सभामण्डप को देखे तो इसके तीन द्वारों के साथ इनकी रचना ऐसी बन पड़ती है यह अष्टकोणीय है जबकि इसकी छत वृताकार एवं अलंकरण रहित है, जिसका भार अट्ठारह अलंकृत स्तम्भों पर है। यह सभी स्तम्भ अष्टकोण पर सोलहकोण की आकृति देकर बनाए है। जिनके ऊपरी भाग में घण्टी–सांकल का अलंकरण है जिसके ऊपर कीर्तिमुखों की रचना की गई है फिर इनके ऊपर वृत्ताकार आकृत्ति है जिसके ठीक ऊपर भारवाही चौकड़ी है सामान्यतः अन्य मन्दिरों में इस चौकड़ी पर कीचक की आकृति बनी होती है। किन्तु इस मन्दिर की चौकड़ीयां किसी प्रकार के अलंकरण से रहित है, आभास होता है कि इन स्तम्भों को नीचे बनाकर बहुत नियोजित प्रकार से ऊपर चढ़ाया गया होगा, ऐसे आभास का एक कारण मन्दिर की दुर्गम ऊँचाई तथा शिखर पर स्थान की कमी का होना है। इन सभी स्तम्भों पर विभिन्न काल में हुए जीर्णोद्वार के चिह्न स्पष्ट दिखाई पड़ते है। स्तम्भों को शीर्ष से मिलाने की सममिति में भी अंतर दिख जाता है। वही सबसे आधुनिक जीर्णोद्वार के चिह्न तीन बाह्य स्तम्भों पर दिखते है जिन्हें 2001 में आए भुज भूकम्प के प्रभावों के बाद बेढ़ंगे तरीके से सीमेन्ट के हाथी जैसे पांव बनाकर सहारा दिया गया। जीर्णोद्वार का एक अन्य चिह्न यह भी है कि गर्भगृह के ठीक सामने वाले स्तम्भ के ऊपरी भाग में मध्यकाल के चूने की मोटी परत से बाहर झांकता एक अभिलेख है जिसका कुछ अंश अभी भी चूने से ढंका है।

यह अभिलेख संवत् 1689 (विक्रम संवत) का है जिसका दृश्य पाठ इस प्रकार है –

*सं. १६८९(1689) वर्षे चैत्र भोम् जीजात्र सु .....*

*..... दास नाथ जी पुत्र जवंता जी कथा जी*

इस प्रकार इस अभिलेख में वर्ष 1632 ईस्वी अर्थात् विक्रम संवत् 1689 के चैत्र महीने के सोमवार (संभवत) को किसी यात्रा के सबंध में ..... 'किन्हीं' दास नाथ पुत्र जवंता जी की कथा संबंधी कोई बात लिखी गई है।

अब यहां उल्लेख करने योग्य जानकारी यह है कि यह महाराणा जगत सिंह जी के काल का अभिलेख है जो संभवतः किसी जीर्णोद्धार कार्य के समय यहां उत्कीर्णीत किया गया था। उनके समय अनेक पुराने मन्दिरों, तालाबों आदि का जीर्णोद्धार करवाया गया था साथ ही ज्ञात हो कि जवंता जी, महाराणा जगत सिंह जी की माता का नाम था। इनके संबंध में राजप्रशस्ति की छठीं शिला में यह जानकारी आई हैं कि विक्रम संवत 1664 में भाद्रपद शुक्ला द्वितीय के दिन राजा कर्ण सिंह की पत्नी, महेचा राठौड़ जसवंत सिह की पुत्री श्रीमती जाम्बुवती की कोख से महाबली जगत सिंह का जन्म हुआ[15] तथा आगे के श्लोकों से जानकारी मिलती है कि विक्रम संवत् 1698 के कार्तिक मास में दीपावली उत्सव पर बाईजी राज जवंता जी ने गुजरात के द्वारका की तीर्थ यात्रा की थी।[16]

किन्तु मन्दिर के इस अभिलेख में लिखित विक्रम संवत 1689 वर्ष में क्या विशेष घटना घटी थी यह अन्य स्त्रोतों से भी समझ नहीं आ सकी जबकि उक्त शिलालेख में आए'' ..... दास नाथ'' जी पुत्र जवंता जी को 'गरीब दास' के रूप में पढ़ा जा सकता है क्योंकि जगदीश मन्दिर प्रशस्ति की तृतीय शिला, जिसमें देवी राठासण तथा उनके पर्वत की महिमा का वर्णन हे उसी के आगामी 41वें श्लोक में जगत सिंह जी के भाई गरीब दास का भी वर्णन है जो दानादि में उनके साथ रहे।[17] किन्तु उक्त (राठासण मन्दिर) शिलालेख का आशय स्पष्ट नहीं है।

जिस स्तम्भ पर यह शिलालेख है इसी के निचले भाग पर भी एक धुंधला शिलालेख हैं, जिसे पढ़ा नही जा सकता ऐसे ही दो अन्य शिलालेख मन्दिर के सभामण्डप स्थित देवी के सम्मुख रखे सिंह की पट्टिका तथा पास की दीवार पर भी है किन्तु विधि पूर्वक साफ कर,छाप लेकर पढ़ने की अनुमति प्राप्त नहीं होने के कारण

---

15 श्री कृष्ण जुगनु, शिलोत्कीर्ण राजप्रशस्ति : महाकाव्यम् (मेवाड़ का अभिलेखीय इतिहास), आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2018, पृ. 91

16

17 श्री कृष्ण जुगनु, शिलोत्कीर्ण राजप्रशस्ति : महाकाव्यम् (मेवाड़ का अभिलेखीय इतिहास), आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2018, पृ. 183

उनका पाठ अज्ञात है जबकि गर्भगृह के समीप स्थित ताक के बीच अवस्थित शिलालेख की एक पट्टिका और है जिस पर "संवत 1763 वर्ष सावण बदि बुधे..... "

*संवत् (१७६३) वरिषे सावण वदी बुधे .....* पढ़ा जा सका है।

अर्थात् यह अभिलेख विक्रम संवत 1763 यानि 1706 ईस्वी के सावण कि एकादशी का है जिस दिन बुधवार था आगे का लेख अस्पष्ट है।

इसी ताक के पास वाले स्तम्भ पर भी एक अपेक्षाकृत बड़ा अभिलेख हैं, जिसका दीवार के पास वाला भाग घिसकर धुंधला हो चुका है जबकि आंतरिक भाग का पाठ इस प्रकार है –

**बाह्य भाग**

**आन्तरिक भाग**

**श्री देवी जी रठ .....सार मदर गे रे**
**र वरषे श्री सु .....त्रधार हमी .....**
**र जी सुत सा ..... दुल जी रा ..... त तेर .....**

यह लेख देवी राठासण के मन्दिर का उद्वरण (जीर्णोद्वार) करने वाले सूत्रधार हमीर जी, पुत्र सादुल जी के विषय में किसी जानकारी देने के संबंध में उत्कीर्णीत किया गया था जो कई स्थानों से घिस गया है। इस प्रकार इस मन्दिर के सभामण्डप क्षेत्र से इस अध्ययन के दौरान छह अभिलेख प्राप्त हुए, जो इस आलेख में प्रथम बार प्रकाशित हुए है। इतना ही नहीं विभिन्न स्थानों पर शिल्पकारों के आठ से अधिक नाम भी उत्कीर्णीत हैं, जैसे – गंगा, पदमा, वीलमू, टीलकू शिल्पकारों के अनेक चिह्न प्राप्त हुए हैं। भारतविद्या विद् श्रीकृष्ण जुगनू के अनुसार – इन चिह्नों के अभाव में शिल्पकारों को भुगतान नहीं होता था, तथा यह मन्दिर में किए उनके कार्य का सूचक था जिसका संबंध मजदूरी से होता था।

इसके अतिरिक्त राज्य अभिलेखागार, उदयपुर जिला से प्राप्त ''बही महकमा खास मेहता जालम सिंह जी' में वर्ष 1872 (विक्रम संवत् 1929) में सोलह दिवस की पूजा के लिए चैत्र सुदी 14; शुक्रवार को माता जी श्री राठासण जी को 154 रुपये के खर्च की फरद अर्थात् विवरण भेजा था। इस तरह लगभग आठवीं शताब्दी से सम्बन्धित कथाओं में इस मन्दिर के वर्णन से लेकर यह आज तक सतत रूप से यह मेवाड़ क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण मन्दिर रहा है लेकिन नीमज/खीमज माता तथा करणी माता मंदिर जितना जनसाधारण में लोकप्रिय नहीं है झालों का गुढ़ा क्षेत्र के अतिरिक्त मेवाड़ के अन्य लोगों को इस विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं है। अब पुनः एक बार मन्दिर के स्थापत्य को देखे तो गर्भगृह के उतरांग पट्ट पर अनेक आकृतियां थी जो कालान्तर में घिस गई अथवा सफेद चूने में इतनी अधिक पुती है कि घिसी हुई प्रतीत होती है। गर्भगृह के दोनों ओर दो कोष्ठक बने है। जिनकी प्रतिमा वहां नहीं हैं अनुमान है कि इन कोष्ठकों में महिषासुर मर्दिनी तथा गणेश जी की प्रतिमा रही होगी क्योंकि पहाड़ी मन्दिर के दुर्गम्य मार्ग से कुछ दूर (पर्वत के आन्तरिक भाग से) दो भग्नावशेष प्रतिमाएँ प्राप्त होती है जो उसी पाषाण व माप की है जैसी मूर्ति इन कोष्ठकों में कभी रही होगी। इनके नीचे गर्भगृह के द्वार पर कुल चार प्रतिमाएँ हैं, जिनमें से दो विकराल है जबकि अन्य दो उनके नीचे क्रमशः छोटी प्रतिमाएँ है, किन्तु सिन्दूर की लालिमा व माली पन्नो से ढंकी होने के कारण उनकी पहचान कठिन है। वहीं गर्भगृह की मुख्य देवी प्रतिमा को देखे तो देवी का श्रृंगार इस प्रकार का है कि मुख के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता तथा ''श्री एकलिंग जी ट्रस्ट प्रशासन'' ने मन्दिर की देवी प्रतिमा के अध्ययन व तस्वीरें लेने के सम्बन्ध में अनुमति प्रदान नहीं कि, अतः प्रतिमा नहीं देखी जा सकी एवं देवी की तस्वीरे इस शोध पत्र में सम्मिलित नहीं की जा सकी। किन्तु प्रतिमा को जानने की जिज्ञासा के कारण ग्राम में ऐसे बुर्जुग जानकार व्यक्तियों को ढूंढने का प्रयास किया जिन्होंने कभी प्रतिमा के दर्शन किए हो अथवा उन्हें इसके सम्बन्ध में जानकारी हो। ऐसे ग्राम जानकारों से जो जानकारी प्राप्त हुई, उसके अनुसार यह प्रतिमा काले ग्रेनाइट पत्थर की महिषासुर मर्दिनी स्वरूप की है, जिसमें देवी महिष (भैंसे) का संहार कर रही है तथा समीप ही देवी के सिंह का अंकन है एवं इस प्रतिमा में देवी के अष्टादश भुजाएँ है। यहाँ एक अन्य महत्त्वपूर्ण सूचना ग्राम के ही एक अन्य जानकार व्यक्ति से मिली की वे इस प्रतिमा का कर्नाटक से बनकर आया सुनते हैं। इन जानकारियों के साथ प्रतिमा के वास्तविक अध्ययन की आवश्यकता फिर भी बनी हुई है, लेकिन विकल्प के रूप में हम एकलिंग पुराण में आए देवी प्रतिमा के स्वरूप की सहायता ले सकते हैं। जो देवी प्रतिमा स्वरूप के सम्बन्ध में वर्णन करता हैं कि –

मुक्ता विद्रुममहारादयां पीनोन्नतपयोधराम्। खड्ग चर्मधरां वीरां धनुर्बाणोपशोभिताम्।।
सदा प्रसन्न वदनां शरच्चन्द्रनिभाननाम्। चतुर्भुजां महादेवी ब्रह्मादियुपतीवृताम्।।

अर्थात् –देवी ने मोती और विद्रुम के हार धारण किए हुए थे। उनका वक्षस्थल पीनोन्नत पयोधर वाला था। वह खड्ग, चर्म, धनुष तथा बाण धारण किए शोभित वीराकृति थी। सदा प्रसन्न मुद्रा शरद पूर्णिमा के चन्द्रमा की आभा विस्फारित करती थी। चार भुजाओं वाली वह महादेवी ब्रह्माणी आदि दैव–युवतियों से युक्त थी।[18]

इस प्रकार वर्तमान अष्टादशभुजा स्वरूप महिषासुर मर्दिनी देवी की अपेक्षा एकलिंग पुराण तो देवी प्रतिमा को चतुर्भुजा घोषित करता है अर्थात् एकलिंग पुराण के

---

[18] श्री कृष्णु जुगनु, भँवर शर्मा, श्रीमद् एकलिङ्गपुराणम् (शैवतीर्थ स्थल पुराण), आर्यावत संस्कृति संस्थान, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2011, पृ. 406

रचनाकाल के बाद यह प्रतिमा किसी काल में बदली गयी थी, बदलने के अनेक कारण हो सकते है। स्वयं एकलिंग पुराण के प्रारम्भ में यह वर्णन आया है कि विविध कारणों जैसे – पुजारी पलायन, आक्रान्ता अतिक्रमण, आक्रमणों के कारण प्रतिमा आघात आदि कारणों से कुछ प्रतिमाएँ स्पर्श दोषादि से निषिद्ध मान ली गई, इसलिए ग्रंथकार ने पुनः प्रतिष्ठा हेतु 24वां अध्याय के प्रतिष्ठा, पुर्नप्रतिष्ठा के विधान को न्यास सहित लिखा है तथा एक अन्य स्थान पर स्पष्ट किया है कि इस काल में कई प्रतिमाओं को बदला गया। काष्ठ की प्रतिमाओं को अग्नि को अर्पित कर दिया जबकि खण्डित व निषिद्ध प्रतिमाओं को जल में विसर्जित कर दिया।लेकिन देवी राठासण के सम्बन्ध में इस काल तक तो ऐसा नहीं हुआ होगा क्योंकि पुराण में देवी का चतुर्भुजा स्वरूप ही वर्णित है, अतः इसके बाद वाले पाँच सौ वर्षों में ही कभी देवी प्रतिमा परिवर्तित हुई है। इसी पुराण में देवी को ''श्येन (पक्षी)'' के रूप में वज्र हाथ में लेकर राष्ट्र के लिए सन्नद्व रहना बताया है। ध्यान रखने योग्य बात यहाँ यह है कि देवी नागणेची के सम्बन्ध में भी यह लोक प्रसिद्ध है कि देवी पंखिणी के रूप में रक्षा का कार्य करती है। 'दयालदास सिंढायच' ने 'ख्यात देशदर्पण'[19] में तथा 'राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान' द्वारा संपादित 'राठौड़ वंश री विगत एवं राठौड़ा री वंशावली'[20] में भी देवी नागणेची के पंखिनी स्वरूप में पूजे जाने का वर्णन है। उल्लेखनीय है कि एकलिंग पुराण में भी देवी राठासण (राष्ट्रश्येना) के सम्बन्ध में ऐसा ही श्लोक आया है। जो इस प्रकार है कि –

रणे क्रूरादि कार्येषु वज्रहस्तां च पक्षिणीम्। स्मरेत सर्वप्रयत्नेन सौम्यरूपां च सौम्य के।।

अर्थात् युद्ध के अवसर पर तथा क्रूरता सम्बन्धी कार्य के दौरान सर्वप्रयत्न करके देवी के हाथ में धारण किए पक्षिणी रूप का स्मरण करें किन्तु सौम्य कार्य होने पर उसके सौम्य स्वरूप का ध्यान करना चाहिए।[21]

इस तरह इस मन्दिर में विराजित देवी राष्ट्रश्येना तथा नागणेची में यह भी एक साम्य दिखाई पड़ता है। वही हम ख्यात देशदर्पण के राठेश्वरी देवी के वरदान से रठ्वर (रठवड) कहलाने वाली बात को ध्यान में रखकर यदि 'रठ्ठ' जाति या कुल को देखे तो राजस्थान से प्राप्त अभिलेखों में राठौड़ वंश काराठवर, राठवड़, राठउर, राठउड, राठड, रठडा और राठौड़ नाम मिलता है[22] तथा राष्ट्रकूटों के लेखों में उनकी जाति (वंश)का नाम 'रठ्ठ' देखने को मिलता है, वैसे भी राष्ट्रकूट व राठौड़ एक ही कुल के दो नाम है, इस पर कई इतिहासकारों का कार्य प्रकाशित व प्रसिद्ध है। कीर्तिपाल चौहान के अभिलेख में यह 'राष्ट्रौड'[23] तथा दक्षिण के राष्ट्रकूट वंशी मयूरगिरी के राजा

---

19 के.के. जैन (प्रधान संपादक) 1989, ख्यात देशदर्पण सिंढाचय व दयालदास कृत (बीकानेर राज्य का इतिहास), राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पृ. 3

20 फतहसिंह (1967) राठौड वंश री विगत एवं राठौड री वंशावली, निदेशक राजस्थान प्राच्य विद्या पब्लिकेशन, जोधपुर, राजस्थान, पृ. 7

21 श्री कृष्णु जुगनु, भँवर शर्मा, श्रीमद् एकलिङ्गपुराणम् (शैवतीर्थ स्थल पुराण), आर्यावत संस्कृति संस्थान, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2011, पृ. 410

22 विश्वेश्वर नाथ रेऊ, राष्ट्रकूटों (राठौड) का इतिहास, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, पंचम संस्करण, 2016, पृ. 12

23 गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, षठा संस्करण, 2018, पृ. 88

नारायण शाह के कवि रूद्र के द्वारा लिखे महाकाव्य 'राष्ट्रौढ़ वंश महाकाव्य' में यह 'राष्ट्रौढ़' दिखाई पड़ता है।[24]

इसी क्रम में यदि हम राष्ट्रकूटों का देवली ताम्रपत्र देखें तो उसमें वर्णन है कि इस वंश का मूलपुरूष 'रट्ट' था तथा सिरूर से प्राप्त अमोघवर्ष के लेख में उसे ''रट्ट वंशोद्भव'' कहा है। इन तथ्यों के प्रकाश में कुल देवी के अध्ययन के सम्बन्ध में यह भी एक दिशा है कि हम अमोघवर्ष की देवी सम्बन्धी मान्यता का अध्ययन करें, इस संदर्भ में संजनताम्रपत्र से यह जानकारी प्राप्त होती है कि किन्ही अनिष्ठों से बचाव हेतु उन्होंने महालक्ष्मी की अर्चना की थी तथा अपनी एक अंगुली उन्हें काटकर भेंट की थी, इस विवरण के सम्बन्ध में विद्वानों का मत है कि यह देवी कोल्हापुर की महालक्ष्मी थी।[25]

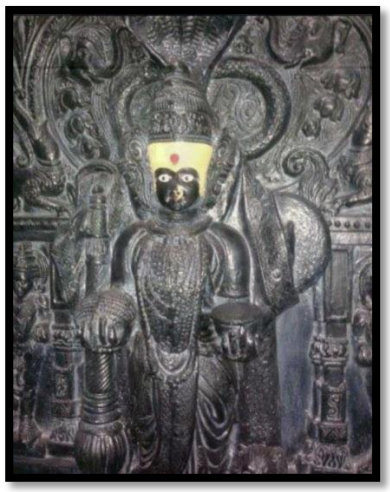

**कोल्हापुर महालक्ष्मी देवी प्रतिमा**

इतिहासकार पद्मश्री मीनाक्षी जैन भी इसी मत की पुष्टि करते हुए जानकारी देती है कि महालक्ष्मी का अब तक ज्ञात सबसे प्राचीनतम् उल्लेख 817 ईस्वी का राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष का ताम्रपत्र है। वह महालक्ष्मी का अनन्य भक्त था। वे अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ''फ्लाइट ऑफ डेअटिज् एण्ड रिबर्थ ऑफ टेम्पल्स्'' में देवी के मूर्तिकंन का उल्लेख भी करती है जिसके अनुसार देवी के प्रतिमांकन का प्राचीनतम् उल्लेख 13वीं शताब्दी का है जिसमें हेमाद्रि अपनी पुस्तक चतुर्वर्गचिन्तामणी में विश्वकर्माशास्त्र का उल्लेख कर प्रतिमा के बाएँ निचले हाथ में श्रीफल रखा होना तथा दाएँ निचले हाथ में प्याला होना बताते है जबकि वर्तमान में देवी प्रतिमा के बाएँ निचले हाथ में प्याला / खप्पर एवं दाएँ निचले हाथ में श्रीफल के स्थान पर मातुलिंग है, साथ ही देवी के मस्तक पर जो नागछत्र है उसका उल्लेख विश्वकर्माशास्त्र में नहीं है। वहीं देवी पुराण (महाभागवत) – शक्तिपीठाङ्क में करवीर शक्ति पीठ – कोल्हापुर की महालक्ष्मी देवी का प्रतिमांकन,

---

24 विश्वेश्वरनाथ रेऊ, राष्ट्रकूटों (राठौड) का इतिहास, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, पंचम संस्करण, 2016, पृ. 12

25 मीनाक्षी जैन, फ्लाइट ऑफ डेअटिज् एण्ड रिवर्थ ऑफ टेम्पल्स (एपीसोड्स फ्रॉम इण्डियन हिस्ट्री), आर्यन बुक्स इंटरनेशनल, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2019, पृ. 203

मार्कण्डेयपुराण के अन्तर्गत सम्मिलित 'देवी माहात्म्य' (श्री दुर्गासप्तशती) के अनुसार निम्नलिखित है।

मातुलुङ्गं गदां खेटं पानपात्र च विभ्रती। नागं लिङ्गं च योनिं च विभ्रति नृप मूर्धीन।।

अर्थात् चतुर्भुजा जगन्माता के हाथों में मातुलिंग, गदा, ढाल व पान पात्र है। मस्तक पर नाग व लिंग व योनि है तथा देवी के चरणों के पास उनका वाहन सिंह है।[26] इस प्रकार राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष की इष्ट देवी कोल्हापुर महालक्ष्मी भी चतुर्भुज है जिनके मस्तक पर नाग है किन्तु चतुर्वर्गचिंतामणी नामक साहित्यिक स्त्रोत उसका उल्लेख नहीं करता जबकि प्रतिमा में स्वयं तथा देवी माहात्म्य ने इसका वर्णन है। यह वर्णन एकलिंग पुराण में वर्णित देवी राष्ट्रश्येना के स्वरूप जैसा ही है किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि इन दोनों स्वरूपों का राजस्थान के राठौड़ों की नागणेची नाम से प्रसिद्ध तथा नागाणा प्रमुख धाम स्थित देवी प्रतिमा के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया जाए लेकिन, चूंकि, नागाणा नामक प्रमुख धाम स्थित देवी की प्रतिमा अस्पष्ट है।

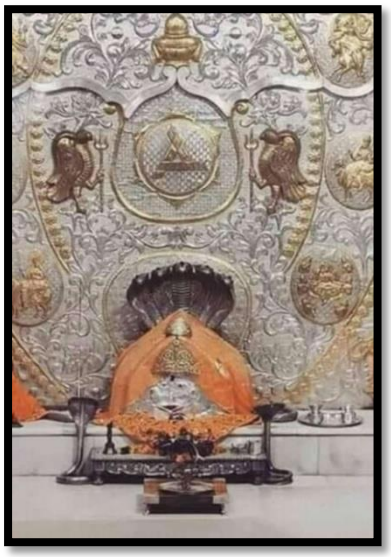

**नागाणा स्थित नागणेची देवी प्रतिमा**

अतः ऐसे में यदि मेहरानगढ़ दुर्ग में स्थित देवी नागणेची की प्रतिमा को देखे तो पता चलता है कि देवी चतुर्भुजा है जिनके हाथों में शंख, चक्र आदि है। मस्तक पर नाग छत्र है तथा देवी सिंह पर विराजमान है।[27]

**मेहरानगढ़ दुर्ग स्थित नागणेची देवी प्रतिमा**

श्रीमान् महेन्द्र सिंह नगर ने अपनी पुस्तक 'मारवाड़ के राजवंश की सांस्कृतिक परम्पराएँ' में इस प्रतिमा के संदर्भ में श्री हितपाल सिंह 'हितकर' की लेखनी का उल्लेख किया जो इस प्रकार है कि – 1515 चैत्रादि सं. 1516 की चैत्र सुदि 11 शनिवार को राव जोधा ने नागणेचा गांव से मूल मूर्ति मंगवाकर दुर्ग

---

[26] कल्याण देवी पुराण महाभागवत शक्तिपीठ, गीता प्रेस, गोरखपुर, उत्तरप्रदेश, पृ. 475

[27] महेन्द्र सिंह नागर, मारवाड़ के राजवंश की सांस्कृतिक परम्पराएँ, (प्रथम खण्ड), राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, द्वितीय संस्करण, पृ. 143

में स्थापित करवाई, परन्तु इस बात को साबित करने के पर्याप्त साक्ष्य नहीं है किन्तु इस लेखनी पर महेन्द्र सिंह नगर ने आगे टिप्पणी की है कि जोधपुर राठौड़ो का सिरमौर गढ़ है यदि राव जोधा ने ऐसा किया तो यह आश्चर्य की बात नहीं होगी। इस प्रकार इतिहास के विभिन्न उदाहरणों व प्रतिमाओं में यह अंकन स्पष्ट करते है कि तीनों देवियों में ना केवल साम्य है अपितु 'रट्ट कुल' से तीनों ही सम्बन्धित देवियाँ है जो इनके इतिहास को विभिन्न कालों में सांतत्यता का प्रदान कर रही है। अब यदि हम वर्तमान में मरूवास स्थित देवी राठासण के वर्तमान अष्टादश भुजाधारी महिषासुरमर्दिनी स्वरूप को संदर्भ में रखकर, बीकानेर स्थित नागणेची मंदिर की मूर्ति को देखे तो वह भी चाँदी की अष्टादश भुजा धारिणी महिषासुरमर्दिनी प्रतिमा है जो राव बीका को जोधपुर के पितृ राज्य की तरफ से प्राप्त हुई।

**बीकानेर स्थित नागणेची देवी प्रतिमा**

शकुन चिह्नों (पूजनीय वस्तुओं) की परम्परा में मिली यह प्रतिमा संभवतः कुल (वंश) की परम्परा में निरंतर रही होगी तभी राव बीका जी को नागणेची रूप में यह उपलब्ध करवाई गई पुनः उल्लेखनीय है कि बीकानेर में स्थित यह मन्दिर नागणेची माता का मंदिर ही कहलाता है किन्तु बिना किन्ही प्रमाणों के कुल देवियों पर लिखने वाले कई लेखकों व टिप्पणीकारों ने आगे से आगे यह प्रसारित किया है कि राठौडों द्वारा कुल देवी का बोध नहीं होने पर उन्होंने महिषासुरमर्दिनी स्वरूप की पूजा शुरू कर दी, जिसके कारण न राज्य स्थिर रहा ना यश मिला, यह यूं ही प्रसारित किया गया कथन है जिसे ऐतिहासिक रूप से प्रमाणित नहीं किया जा सकता। साथ ही राज्य और यश तो सभी कुलों (वंशों) के आते–जाते रहे है और जहाँ तक बात राठौड़ों द्वारा महिषासुर मर्दिनी स्वरूप को पूजने की है तो ''तन्त्रचूडामणी'' के संदर्भ से देवी पुराण में यह उल्लेख आया है कि करवीर (कोल्हापुर) में जहाँ महालक्ष्मी मंदिर है वहाँ देवी सती के तीन नेत्रों का पतन हुआ था, यहाँ की शक्ति महिषमर्दिनी तथा भैरव क्रोधीश है तथा यहाँ का महालक्ष्मी मन्दिर ही महिषमर्दिनी का स्थान है –

करवीरे त्रिनेत्र में देवी महिषमर्दिनी। क्रोधीशो भैरवस्तत्र ..... .....।।[28]

अतः इस प्रकार प्रस्तुत शोध से स्पष्ट है कि देवी राठासण (राष्ट्रश्येना) का मरूवास स्थित यह मंदिर अत्यधिक ऐतिहासिक महत्त्व का है, जिससे सम्बन्धित साहित्यिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक स्त्रोत उपलब्ध है और इन्हीं स्त्रोतों से इस मंदिर के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक जानकारी हमें प्राप्त होती है। इसी दिशा में इस मंदिर के राजपूत जाति के राठौड़ वंश से सम्बन्ध होने के साक्ष्य भी प्राप्त होते जो सिद्ध करते है कि किसी ना किसी रूप में यह मन्दिर प्राचीन समय में राष्ट्रकूट (राठौड़) वंश से जुडा था, साथ ही इस मंदिर तथा राजस्थान के प्राचीन राठौड़ वंश (राव सीहा से पहले) के सम्बन्ध में अधिक शोध की आवश्यकता भी बनी रहती है ताकि दोनों के साथ–साथ प्राचीन राजस्थान के इतिहास के धुंधले पक्षों की जानकारी अधिक स्पष्टता से जुटाई जा सके।

---

[28] कल्याण देवी पुराण, महाभागवत शक्ति पीठ, गीता प्रेस, गोरखपुर, उत्तरप्रदेश, पृ. 475

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# प्रवृत्ति का उत्थान : लोकमान्य तिलक

**डॉ. अर्चना सिंह**
असिस्टेंट प्रोफेसर राजनीति शास्त्र
महाराज बलवंत सिंह पी0जी0 कॉलेज,
गंगापुर (राजातालाब), वाराणसी

यूरोपीय सभ्यता और विचारधारा से भारत का जो सम्पर्क हुआ, उसका सब से कल्याणकारी प्रभाव प्रवृत्ति की दिशा में पड़ा। प्रवृत्ति का अर्थ है 'संन्यास न लेकर मरण–पर्यन्त चातुर्वर्ण्य–विहित निष्काम कर्म' करते जाना। प्रवृत्तिवादी विश्व को निस्सार नहीं मानता, न उसका यही भाव होता है कि मनुष्य–जीवन का चरम लक्ष्य ध्यान और समाधि है। इसके विपरीत, निवृत्ति का मार्ग संन्यास का मार्ग है, कर्म–त्याग का मार्ग है एवं निवृत्तिवादी यह मानता है कि विश्व माया है, सारहीन है, 'कुछ नहीं' में कुछ का भ्रम है; अतएव, मनुष्य का चरम लक्ष्य यह होना चाहिये कि वह संन्यास लेकर अपने मोक्ष की खोज करे तथा लोक का त्याग करके परलोक को सुधारने की चेष्टा में मग्न हो जाय। यह पिछला दृष्टिकोण भारत का सबसे बड़ा शाप प्रमाणित हुआ और इसी दर्शन में आसक्त रहने के कारण भारत वासियों ने लोक की उपेक्षा कर दी। कहावत प्रसिद्ध है कि जब यूरोपवाले जीवन के ब्यूह में प्रविष्ट हो कर रस और आनन्द का उपभोग करते रहे, पूर्व के लोग, विशेषतः भारतवासी, अँधेरे में भटकते हुए जीवन के अर्थ की खोज करते रहे हैं।

भारत का वैदिक काल जीवन के प्रति आस्था का काल था। वैदिक आर्य मरणोत्तर आरम्भ होने वाले जीवन की कल्पना में बहुत ग्रस्त नहीं थे। तब, उपनिषदों का युग आया और समाज में संन्यास की भावना फैलने लगी। किन्तु, उपनिषदों के युग में भी प्रवृत्ति का एक आदर्श जनक के व्यक्तित्व में प्रस्फुटित हुआ, जिसका लक्ष्य यह था कि संसार का कोई भी कर्म इतना गर्हित नहीं है कि उसे करते हुए हम मोक्ष से वंचित रह जायँ। योग को भोग में निहित रखो अथवा यह कि सच्चा योग वह है जो भोग के भीतर भी अक्षुण्ण रहता है, यह जनक के जीवन की सब से बड़ी शिक्षा थी। किन्तु, औपनिषदिक विचारधारा से जब बौद्ध और जैन धर्म निकले, तब उन्होंने संन्यास को बहुत अधिक महत्व दे डाला एवं लोकाराधना का महत्त्व उसी परिमाण में न्यून हो गया। तब के भारतवासी कर्मठता को हीन, गार्हस्थ को मलिन तथा संन्यास को देदीप्यमान धर्म समझने की आदी हो गये। बौद्ध और जैन विचार धाराओं का प्रभाव

हिन्दुत्व पर भी पड़ा और उसी के फलस्वरूप प्रस्थानत्रयी की टीका निवृत्ति की सिद्धि के लिए की जाने लगी। परिणाम यह हुआ कि हजारों वर्ष तक यह सुनते–सुनते कि गार्हस्थ्य हीन एवं संन्यास उच्च धर्म है, भारत के गृहस्थ भी विचारों से संन्यासी हो गये एवं समाज में फैले हुए अविचारों तथा देश पर आने वाली विपत्तियों का सामना करने की अपेक्षा वे सदैव मन्दिरों में आरती सजाने तथा प्राणायामपूर्वक मोक्ष खोजन को अपना महत् कर्म समझने लगे।

किन्तु, उन्नीसवीं सदी में जो सांस्कृतिक नवोत्थान हुआ, उससे भारतीयों की आँखें खुल गयी और वे स्पष्ट देखने लगे कि सम्पूर्ण इतिहास में उनका सबसे बड़ा दोष इसी निवृत्ति की उपासना थी। अतएव, इस नवोत्थान के सभी नेताओं ने यह घोषणा की कि प्रवृत्ति का मार्ग जीवन पर विजय का मार्ग है एवं जो भी निवृत्ति की ओर जाता है, वह, वास्तव में, पलायनवादी हो कर जीवन से भाग रहा है। वेदान्त को लोग संन्यास का पन्थ मानते आये थे। किन्तु, स्वामी विवेकानन्द के मुख से वही वेदान्त घोर कर्म–निष्ठा का समर्थक बन कर उतरा तथा हिन्दुत्व का सारा दर्शन उनकी वाणी में प्रवृत्तिवादी हो उठा। किन्तु, इस दिशा में, दर्शन के स्तर पर, सब से बड़ा काम लोकमान्य बाल गंगाधार तिलक ने किया, जिनका, गीता–विषयक ग्रन्थ, कर्मयोगशास्त्र, अभिनव हिन्दुत्व का सर्वश्रेष्ठ आचार–ग्रन्थ माना जाता है। वास्तव में, राममोहन से लेकर विवेकानन्द तक भारतीय दर्शन में जो विपुल मन्थन हुआ था, कर्मयोगशास्त्र में हम उसका तर्क–सम्मत दार्शनिक रूप देखते हैं। यह ग्रन्थ हिन्दुत्व की उस अवस्था का परिचायक है, जब यूरोपीय संस्कृति की टकराहट से उठने वाला कम्पन समाप्त हो जाता है एवं हिन्दुत्व नवीन जन्म ग्रहण करके अपने अनुयायियों को नयी परिस्थितियों से लोह लेने का उपदेश देता है।

उपनिषद, वेदान्त और गीता, ये हिन्दुओं के प्रधान ग्रन्थ रहे हैं तथा, समय–समय पर, हिन्दुत्व के भीतर जो भी सन्त और सुधारक उत्पन्न हुए, उनमें से कइयों ने इन तीनों पर टीकाएँ लिख कर हिन्दुत्व को उस दिशा की ओर मोड़ने की कोशिश की, जिधर वे उसे ले जाना चाहते थे। तिलकजी ने इन तीनों में से केवल गीता को लिया, क्योंकि उपनिषदों और वेदान्त के अपेक्षाकृत पीछे छूट जाने पर भी, गीता का हिन्दुओं के घर–घर में, प्रचार था और उसकी व्याख्या के द्वारा ही तिलकजी हिन्दुओं के भीतर नयी मानसिकता उत्पन्न करना चाहते थे।

बौद्ध धर्म के पतन के बाद, भारतवर्ष में, वैदिक धर्म के जो अनेक सम्प्रदाय उत्पन्न हुए (जैसे अद्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी और द्वैत तथा त्रेतवादी) उनमें से प्रत्येक सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक–आचार्य ने प्रस्थानत्रयी पर टीकाएँ लिखी थीं। इनमें से शंकराचार्य–कृत टीकाओं का भारत में व्यापक प्रचार हुआ, प्रत्युत, कहना यह चाहिये कि बौद्ध धर्म के लोप के बाद, हिन्दुत्व का जो रूप प्रचलित हुआ वह वही था, जिसका आख्यान शंकराचार्य ने किया था। किन्तु, शंकर भी वैदिक धर्म के प्रवृत्तिमार्गी रूप को जनता के समक्ष नहीं ला सके। उन्होंने श्रुति–स्मृति–सम्मत वैदिक धर्म की रक्षा करते हुए जिन दार्शनिक विचारों को उत्थान दिया, वे निवृत्ति के विचार थे। उन्होंने जिस धर्म को जनता के सम्मुख रखा, वह उपनिषदों का संन्यास–धर्म था। स्मृतियों में गृहस्थ के जो कर्त्तव्य बताये गये हैं, उन्हें शंकराचार्य ने आवश्यक तो बताया, किन्तु, उन्होंने यह भी कहा कि ''इन कर्मों का आचरण सदैव न करते रहना चाहिये, क्योंकि इनका त्याग करके, अन्त में, संन्यास लिये बिना मोक्ष नहीं मिल सकता। इसका कारण यह है कि कर्म और ज्ञान, अन्धकार और प्रकाश के समान, परस्पर–विरोधी है, इसलिए, सब कर्मों और वासनाओं से छूटे बिना ब्रह्म–ज्ञान की पूर्णता नहीं हो सकती।''

शंकराचार्य के बाद भी गीता पर कई टीकाएँ लिखी गयीं, किन्तु, किसी भी टीका में यह भाव प्रत्यक्ष नहीं हो सका कि गीता प्रवृत्ति को भी प्रोत्साहन देती है अथवा वह कर्म की विरोधिनी नहीं है। रामानुजाचार्य ने प्रस्थानत्रयी की टीका से यह तो सिद्ध किया कि शंकराचार्य का माया–मिथ्यावाद और अद्वैत–सिद्वान्त, दोनों झूठे हैं, किन्तु, गीता में प्रवृत्ति की प्रेरणा अथवा कर्म के लिए स्थान है, इसे वे भी नहीं स्वीकार कर सके। ''शांकर सम्प्रदाय के अद्वैत–ज्ञान के बदले विशिष्टाद्वैत और संन्यास के बदले भक्ति स्थापित करके रामानुजाचार्य के भेद तो किया, परन्तु, आचार–दृष्टि से उन्होंने भक्ति को ही अन्तिम कर्त्तव्य माना है। इससे वर्णाश्रम–विहित सांसारिक कर्मों का मरण–पर्यन्त किया जाना गौण हो जाता है और यह कहा जा सकता है कि गीता का रामानुजीय तात्पर्य भी, एक प्रकार से, कर्म–संन्यास–विषयक ही है। कारण यह है कि कर्माचरण से चित्तशुद्धि होने के बाद ज्ञान की प्राप्ति होने पर चतुर्थाश्रम स्वीकार करके ब्रह्मचिन्तन में निमग्न रहना या प्रेमपूर्वक निस्सीम वासुदेव–भक्ति में तत्पर रहना, कर्मयोग की दृष्टि से, एक ही बात है। ये दोनों मार्ग निवृत्ति–विषयक ही है।'' इसी प्रकार, मध्वाचार्य ने भी अपने गीता–भाष्य में यह बताया कि, यद्यपि गीता में निष्काम कर्म के महत्व का वर्णन है, तथापि वह केवल साधन है; अन्तिम निष्ठा तो केवल भक्ति है। भक्ति की सिद्धि हो जाने पर कर्म करना और न करना समान हो जाता है। और यही हाल बल्लभाचार्यजी का रहा, क्योंकि उन्होंने भी पुष्टि–मार्ग में परमात्मा के अनुग्रह को ही सब–कुछ माना एवं ''सर्वधर्मान् परित्यज्य मार्मिक शरणं व्रज'' वाले श्लोक से यह अर्थ निकाला कि भगवदनुग्रह प्राप्त होने पर कर्म की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

सारांश यह कि हिन्दू–धर्म के जितने भी आचार्य हुए, उनमें से किसी ने भी यह नहीं कहा कि गृहस्थ के कर्म भी धार्मिक कर्म हो सकते हैं अथवा यह कि गृहस्थ भी अपने– आपमें पूर्ण मनुष्य है। परम्परा से एक बात देश में चली आ रही थी कि जीवन का परम लक्ष्य मोक्ष है और मोक्ष संन्यास से प्राप्त होता है। स्पष्ट ही, यह सिद्धान्त गृहस्थ के पद को नीचे ले जाने वाला सिद्धान्त है। गार्हथ्य को लोग बहुत कुछ अनिवार्य हीनता के रूप में देखते थे तथा प्रत्येक गृहस्थ के मन में यह भाव रहता था कि कब उसे सुयोग मिले कि वह संन्यासी हो जाय। भक्तों और योगियों ने संन्यास के स्थान पर भक्ति और योग को अवश्य प्रतिष्ठित किया, किन्तु, जहाँ तक सांसारिक कर्मों का सम्बन्ध था, सभी ने उन्हें त्याज्य ही बताया। योगी और संन्यासी तो प्रत्यक्ष ही गृहस्थ–धर्म से दूर थे। रह गये भक्त, सो, उनमें भी कर्मचेष्टा उद्दामता तक नहीं जा सकती थी, क्योंकि भक्त के हृदय में भी यह कामना तो रहती ही है कि बाल–बच्चों की चिन्ता और सांसारिक कर्मों के जाल से आदमी जितना शीघ्र मुक्ति पाये, उसके लिए उतना ही अच्छा होगा। मूल्यों की दृष्टि से देखें तो संन्यास, भक्ति और योग, ये सभी गृहस्थ के मूल्य को गिराने वाले थे, क्योंकि, सब–के–सब यह मान कर चलते थे कि गार्हस्थ्य निश्चित रूप से त्याज्य है। हाँ, गार्हस्थ्य को छोड़कर व्यक्ति क्या करें, इस सम्बन्ध में उनके अलग–अलग सिद्धान्त अवश्य थे। एक तो गृहस्थों को संन्यासी बनाना चाहता था, दूसरा योगी और तीसरा भक्त। किन्तु, कोई भी पन्थ कर्मठ गृहस्थ को योगी, संन्यासी अथवा भक्त के समकक्ष मानने को तैयार नहीं था। यह अवस्था, बहुत कुछ उपनिषदों के समय से आ रही थी। बौद्धों ने उसकी तीव्रता को और भी बढ़ा दिया था। तथा शंकराचार्य और उनके बाद के वैष्णवाचार्य, यद्यपि यह सोचते होंगे कि निवृत्ति को ग्राह्य बताकर हिन्दुत्व की वे रक्षा कर रहे हैं किन्तु दर्शन के भीतर जो विष पहुंच गया था उससे हिन्दुओं की रक्षा नहीं कर सका। यह कार्य विवेकानन्द और उनसे भी अधिक, लोकमान्य तिलक के लिए रूका हुआ था तथा इसमें कोई सन्देह नहीं कि

हिन्दुत्व के भीतर प्रविष्ट जिस कालकूट को किसी भी तत्त्वचिन्तक की दृष्टि नहीं देख सकी थी, उसे तिलक की आँखों ने देख लिया। तिलकजी ने उसे केवल देखा ही नहीं, प्रत्युत, अपनी प्रखर बुद्धि से उसे उन्होंने दूर भी कर दिया। इसलिए, हमारा मत है कि गीता एक बार तो भगवान कृष्ण के मुख से कही गयी। किन्तु, दूसरी बार उसका सच्चा आख्यान लोकमान्य ने किया है। इन दोनों के बीच की अन्य सारी टीकाएँ और व्याख्याएँ गीता के सत्य पर केवल बादल बन कर छाती रही है।

सदियों से चली आती हुई परम्पराओं के विरूद्ध 'गीता रहस्य' में तिलकजी ने सुस्पष्ट घोषणा की कि गीता का उद्देश्य निवृत्ति नहीं, प्रवृत्ति का प्रतिपादन है। ''भारतीय युद्ध का आरम्भ होने के पहले जब कुरुक्षेत्र में दोनों पक्षों की सेनाएँ लड़ाई के लिए सुसज्जित हो गयी थी और जब एक–दूसरे पर शस्त्र चलने ही वाला था कि इतने में अर्जुन ब्रह्म–ज्ञान की बड़ी–बड़ी बाते बतलाने लगा और विमनस्क होकर संन्यास लेने को तैयार हो गया। तभी, उसे क्षात्र–धर्म में प्रवृत्त करने के लिए भगवान ने गीता का उपदेश दिया है। भगवान श्रीकृष्ण का यह उद्देश्य नहीं था कि अर्जुन संन्यास–दीक्षा लेकर और वैरागी बन कर भीख माँगता फिरे या लँगोटी लगाकर और नीम के पत्ते खाकर मृत्यु–पर्यन्त हिमालय में योगाभ्यास साधता रहे। भगवान का यह भी उद्देश्य नहीं था कि अर्जुन धनुष–बाण को फेंक दे और हाथ में वीणा तथा मृदंग लेकर कुरुक्षेत्र की धर्म–भूमि में उपस्थित भारतीय क्षात्र–समाज के सामने, भगवात्राम का उच्चारण करता हुआ, वृहन्नला के समान और एक बार अपना नाच दिखावे।'' योग और भक्ति में अकर्मण्यता का जो पुट है, उसकी ओर हिन्दू–जाति का ध्यान पहले–पहल तिलकजी ने ही आकृष्ट किया। ऊपर के उद्धरण में योग और भक्ति पर जो सूक्ष्य व्यंय है, वे तिलक महाराज के इसी दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करते है।

गाँधी–युग के भारतीयों को तिलकजी का यह कर्माकर्म–विचार अपूर्ण दीखता है। अपूर्ण इसलिए कि कर्त्तव्य की जिस कल्पना का आख्यान तिलकजी ने किया है, वह बहुत दिनों से संसार में आचरित होती रही है और उसी का यह परिणाम है कि संसार में युद्ध आज भी चल रहे है। सभी लोग यदि यही सोचे कि मुझे जो आँखे दिखायेगा उसकी आँखे निकाल लूँगा, तो फिर युद्ध की इति हो चुकी! किन्तु, दूसरा प्रश्न यह कि व्यक्ति तो दूसरों को अपनी आँखे निकाल लेने दे, किन्तु, क्या समाज को भी उसका अनुकरण करना चाहिये? परन्तु, यदि सभी समाज एक–से उन्मत्त रहे तो विश्व में शान्ति कैसे आयेगी? यह प्राचीन असिव्रत करने के समान है। यह ज्वालाओं में बैठ कर यह दिखाने का प्रयास करना है कि मैं जल नहीं रहा हूँ। गाँधी जी का प्रयोग नष्ट नहीं हुआ। उससे जो परिणाम निकले हैं, उन्हें पाथेय मान कर स्वतंत्र भारत की वैदेशिक नीति चल रही है। शंकाएँ अब भी है। किन्तु, यह प्रयोग बड़ी–बड़ी सम्भावनाओं से भी युक्त है। इसके विपरीत, तिलकजी ने जो विश्लेषण प्रस्तुत किया था, वह भी अभी नष्ट नहीं हुआ है। भारत के बाहर तो आज भी उसी नीति का बोलबाला है।

ये आज की बातें है। किन्तु, जिस समय तिलकजी का आविर्भाव हुआ, उस समय तिलक के ये उपदेश वीरता, निर्भीकता और सचाई के सब से बड़े उपदेश थे। हिन्दू–जाति लोकमान्य की चिर ऋणी रहेगी कि निवृत्ति का आलस्य छुड़ा कर उन्होंने उसे प्रवृत्ति के पथ पर लगा दिया। जातियाँ जैसे दर्शनों में विश्वास करती हैं, उनका स्वभाव भी वैसा ही हो जाता है, उनका आचरण और साहित्य भी वही रूप ले लेता है। यही कारण है कि जब कि हमारा अधिकांश प्राचीन साहित्य हमें जीवन से विमुख करने

का काम करता था, आज का सारा–का–सारा भारतीय साहित्य मनुष्यों की जीवन पर विजय प्राप्त करने की प्रेरणा दे रहा है।

योग शब्द का सामान्य अर्थ भारत में प्राणायाम और हठ–योग किया जाता था। तिलकजी ने ही यह बतलाया कि योग का अर्थ गीता में कर्म है। ''योगी और कर्मयोगी, दोनों शब्द गीता में समानार्थक हैं और इनका अर्थ युक्ति से कर्म करने वाला होता है। बड़े भारी कर्मयोग शब्द का प्रयोग करने के बदले, गीता और महाभारत में छोटे–से योग शब्द का ही अधिक उपयोग किया गया है। महाभारत में भी योग और ज्ञान, दोनों शब्दों के विषय में स्पष्ट लिखा है, 'प्रवृत्तिर्लक्षणो योगः ज्ञानं संन्यासलक्षणम्।' अश्वघोष ने अपने बुद्धचरित में यह दिखलाने के लिए कि गृहस्थाश्रम में रहकर भी मोक्ष की प्राप्ति कैसे की जा सकती है, जनक का उदाहरण दिया है। जनक के दिखलाये हुए मार्ग का नाम योग है। इसलिए, गीता के योग शब्द का भी यही अर्थ लगाना चाहिये। क्योंकि गीता के अनुसार जनक का ही मार्ग उसमें प्रतिपादित किया गया है।''

**सन्दर्भ –**


1. वर्मा, दीनानाथ–भारत का राजनीतिक चिन्तन।
2. जौहरी, जे0सी0–भारत के राजनीतिक विचार।
3. जैन, के.पी., 'काम्पिल्य' बी.सी.लॉ अभिनन्दन ग्रन्थ भाग–2
4. डा0 अरूण चतुर्वेदी,सोहन लाल मीणा राजनीति के विविध आयाम
5. पुरोहित डा0 बी0आर राजनीतिशास्त्र के मूल सिद्धान्त
6. लोकमान्य तिलक गीता रहस्य ,Diamond Pocket Books Pvt Ltd, 2022

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# योगदर्शन में ईश्वर की अवधारणा : एक दार्शनिक विश्लेषण

**धनंजय त्रिवेदी**
शोध छात्र दर्शनशास्त्र विभाग
दयानंद एंगलो वेदिक कॉलेज कानपुर
छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर
**प्रोफ़ेसर रंजय कुमार सिंह**
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
दर्शनशास्त्र विभाग
दयानंद एंगलो वेदिक कॉलेज कानपुर

**सार**
योगदर्शन में ईश्वर का स्वरूप न्याय वैशेषिक और वेदान्त के अनुसार ही स्वीकार किया गया है, किन्तु उसकी मान्यता का आधार न्याय वैशेषिक से कुछ भिन्न है। ईश्वर का स्वरूप महर्षि पतञ्जलि इस प्रकार कहा है, क्लेश, कर्म, कर्मविपाक तथा कर्माशय इन चारों से सर्वथा असम्बद्ध जो पुरुषविशेष है वह ईश्वर कहलाता है। सांख्य दर्शन दो प्रकार का है, सेश्वर सांख्य और निरीश्वर सांख्य महर्षि पतञ्जलि का यह योगसूत्र सेश्वर सांख्य है और कपिलमुनिकृत सांख्य सूत्र निरीश्वर सांख्य कहा जाता है। ईश्वर का कोई नाम या रूप नहीं होता, फिर भी उपासना की सुविधा के लिये उसके नाम और रूपों की कल्पना करनी पड़ती है। परमेश्वर के जितने भी नाम ब्रह्मा, विष्णु, शिव, कृष्ण, शंकर आदि हैं वस्तुतः वे नाम नहीं हैं अपितु विशेषण हैं। ईश्वरप्रणिधान का मुख्य प्रयोजन तो समाधिलाभ ही है किन्तु इसके साथ दो लाभ और भी हैं। एक है प्रत्यक् चेतना का अधिगम और योगविघ्नों का अभाव। ये तीनों लाभ एक साथ ही होते हैं।

**कूट शब्द :** योग, ईश्वर की अवधारणा, ईश्वरप्रणिधान ,सेश्वर सांख्य, ओम, परिचय

भारतीय दर्शनों में न्याय वैशेषिक योग और वेदान्त ये चार सम्प्रदाय स्पष्ट रूप से ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते हैं तथा उसकी सिद्धि में उन्होंने प्रबल तर्क दिये हैं। मुख्य रूप से तीन कारणों से ईश्वर की सत्ता को आवश्यक माना गया है। प्रथम कारण यह है कि जगत् की रचना ईश्वर के अतिरिक्त कोई अन्य मनुष्य देव सिद्धादि नहीं कर सकते। सृष्टिकर्ता ईश्वर ही हो सकता है। दूसरा कारण कर्मफलप्रदातृत्व । असंख्य जीवों के कर्मों का फल देना ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य के वश की बात नहीं है। तीसरा कारण है कि ईश्वर ने वेदों की रचना की है। सर्वज्ञकल्प वेदों की रचना सर्वज्ञ ईश्वर के अतिरिक्त कोई नहीं कर सकता। इस प्रकार जगत्कर्ता, कर्मफलदाता तथा वेदों

के रचयिता के रूप में ईश्वर को स्वीकार करना पड़ता है, ऐसी ईश्वरवादियों की मान्यता है।

**ईश्वर की आवश्यकता**

योगदर्शन में ईश्वर का स्वरूप न्याय वैशेषिक और वेदान्त के अनुसार ही स्वीकार किया गया है किन्तु उसकी मान्यता का आधार न्याय वैशेषिक से कुछ भिन्न है। योगदर्शन में ईश्वर के जगत्कर्तृत्व तथा कर्मफलप्रदातृत्व पर विशेष बल नहीं दिया गया है। यद्यपि योगदर्शन भी ईश्वर को जगत् का कर्ता कर्मफलप्रदाता तथा वेदों का रचयिता स्वीकार करता है किन्तु इनसे भी अधिक ईश्वर की उपयोगिता योगदर्शन में समाधि की सिद्धि के लिये स्वीकार की गयी है। 'ईश्वरप्रणिधानाद् वा '– 1। 23 । इस सूत्र के द्वारा पतञ्जलि यह कह रहे हैं कि ईश्वर की विशेष भक्ति से समाधि की सिद्धि शीघ्र होती है। भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् योगसाधक के मार्ग में आने वाले समस्त योगान्तरायों का निवारण कर देते हैं जिससे वह शीघ्र ही सम्प्रज्ञातरूप समाधि को प्राप्त कर लेता है। योगदर्शन में ईश्वर का स्वरूप कैसा स्वीकार किया गया है, इस विषय पर यहाँ विस्तार से चर्चा करना प्रासंगिक है।

ईश्वर का स्वरूप महर्षि पतञ्जलि ने निम्न सूत्र में ईश्वर का स्वरूप इस प्रकार कहा है **क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः**। 1। 24 ।

अर्थात् क्लेश, कर्म, कर्मविपाक तथा कर्माशय इन चारों से सर्वथा असम्बद्ध जो पुरुषविशेष है वह ईश्वर कहलाता है।

अविद्या अस्मिता राग द्वेष और अभिनिवेश ये पाँच क्लेश हैं। रागद्वेषादि से उत्पन्न शुभाशुभ कर्मजन्य होने से पाप पुण्य कर्म कहे जाते हैं। पुण्य और पाप से अन्य जाति आयु भोगरूप जो सुखदुःख हैं वे विपाक कहलाते हैं, तथा सुख और दुःख से उत्पन्न वासना आशय कही जाती है। इन सभी से रहित जीवादि से भिन्न चेतन तत्त्व ईश्वर है।

अन्य जीवात्माएँ क्लेशादि से परामृष्ट होने के कारण साधारण पुरुष हैं। यद्यपि पूर्वोक्त क्लेशादि चित्त में रहते हैं, पुरुष से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है फिर भी अविवेक से बुद्धि को अपना स्वरूप मान लेने से बुद्धिगत सुखदुःख का भेक्ता वह पुरुष ही माना जाता है। यह मान्यता वैसी ही है जैसे युद्ध में जय और पराजय सैनिकों की होती है किन्तु राजा में जय और पराजय का व्यवहार होता है। वह ईश्वर इस प्रकार के काल्पनिक सुख दुःख के भोग से असम्बद्ध है। इसलिए वह पुरुषविशेष कहलाता है।

यद्यपि विदेह और प्रकृतिलीन आदि अनेक केवली पुरुष भी क्लेश कर्मादि से रहित होते हैं फिर भी वे ईश्वर नहीं कहला सकते क्योंकि वे प्राकृतिक, वैकारिक और दाक्षणिक इन तीनों बन्धनों का छेदन करके कैवल्यभाव को प्राप्त हुए हैं। उनमें बन्धन की सम्भावना बनी रहती है किन्तु ईश्वर तो सदैव मुक्त है। इसलिए वह पुरुषविशेष है।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि ऐसे ईश्वर के ऐश्वर्य में क्या प्रमाण है? इसके उत्तर में व्यासदेव कहते हैं कि उसकी ईश्वरता में शास्त्र प्रमाण है। अब यदि यह प्रश्न किया जाय कि उस शास्त्र की प्रमाणता में क्या प्रमाण है तो इसका उत्तर यह है कि ईश्वर का प्रकृष्टरूप चित्त ही शास्त्र की स्वतः प्रमाणता में प्रमाण है। ईश्वर के सर्वज्ञत्वादि प्रकृष्ट ऐश्वर्य से वेदों की रचना हुई है इसलिए वेदादि शास्त्र प्रमाणभूत हैं।

यहाँ पर शंका हो सकती है कि ऐसी स्थिति में तो अन्योन्याश्रय दोष चरितार्थ होता है। ईश्वर के ऐश्वर्य में शास्त्र प्रमाण है और शास्त्र की प्रमाणता में ईश्वर का ऐश्वर्य प्रमाण है। यह अन्योन्याश्रय दोष है? इसका उत्तर यह है कि–

एतयोः शास्त्रोत्कर्षयोरीश्वरसत्त्वे वर्तमानयोरनादिः सम्बन्धः ।

अर्थात् उक्त शास्त्र और ईश्वर के ऐश्वर्य के उत्कर्ष में अनादि सम्बन्ध है। जैसे बीज और वृक्ष के कार्य–कारण भाव में अनादि सम्बन्ध है वैसे ही शास्त्र और ईश्वर के ऐश्वर्य में अनादि सम्बन्ध है। यहाँ अन्योन्याश्रय दोष नहीं माना जाता।

**योगदर्शन सेश्वर सांख्य है**

सांख्य दर्शन दो प्रकार का है, सेश्वर सांख्य और निरीश्वर सांख्य महर्षि पतञ्जलि का यह योगसूत्र सेश्वर सांख्य है और कपिलमुनिकृत सांख्य सूत्र निरीश्वर सांख्य कहा जाता है। सेश्वर सांख्य अर्थात् योगदर्शन छब्बीस तत्त्व स्वीकार करता है, प्रकृति, महतत्त्व, अहंकार, एकादश इन्द्रिय, पंचतन्मात्र, पंच महाभूत, पुरुष और ईश्वर। निरीश्वर सांख्य ईश्वर को स्वीकार नहीं करता। किन्तु वह ईश्वर का निषेध भी नहीं करता। वह केवल इतना कहता है कि सृष्टिप्रक्रिया में ईश्वर की उपयोगिता नहीं है। पुरुष भोक्ता है कर्ता नहीं, प्रकृति कर्त्री है भोक्त्री नहीं। ये दोनों मिलकर जगत् की रचना में समर्थ हैं। ईश्वर की आवश्यकता ही नहीं, अतः सांख्य सूत्र पच्चीस तत्त्वों को ही स्वीकार करता है। इस प्रकार पंतञ्जलि मुनि का योगसूत्र और कपिल मुनि का सांख्यसूत्र सांख्यशास्त्र के ही दो भाग हैं।

निरीश्वर सांख्यमतावलम्बी कहते हैं कि 'स सर्वज्ञः सर्ववित्' ,'स हि सर्ववित् सर्वकर्ता' इत्यादि श्रुतियों में जिसे सर्वज्ञ और सर्वकर्ता कहकर ईश्वर की संज्ञा दी गयी है वह वस्तुतः मुक्त पुरुषों की प्रशंसा की गयी है अथवा सिद्ध योगियों की स्तुतिमात्र है। उक्त श्रुतियाँ केवल अर्थवाद हैं। उन्हें ईश्वर के सद्भाव में हेतु नहीं माना जा सकता।

**जगत् की रचना में ईश्वर की भूमिका**

विचार करने पर निरीश्वरवादियों की उक्त मान्यता अविचारितरमणीय प्रतीत होती है। निरीश्वरवादियों के अनुसार पुरुष की सन्निधि मात्र से प्रकृति ही संसार की रचना करने में समर्थ है। किन्तु प्रश्न यह है कि जड प्रकृति संसार की रचना में स्वतः कैसे प्रवृत्त हो सकती है? जैसे लोक में चेतन सारथि की प्रेरणा के बिना रथ की गति सम्भव नहीं वैसे चेतन ईश्वर की प्रेरणा के बिना जड प्रकृति भी जगत्–रचना में प्रवृत्त नहीं हो सकती। पुरुष चूँकि असंग और निष्क्रिय है अतः वह प्रकृति का प्रेरक नहीं हो सकता। अतः प्रकृति के प्रेरक के रूप में सृष्टि के प्रति निमित्तकारण ईश्वर को अवश्य ही स्वीकार करना चाहिये। निमित्तकारण का प्रयोजक ज्ञान तथा प्रेरणारूप क्रिया ईश्वर में ही रह सकती है।

यद्यपि ईश्वर में ज्ञान और क्रिया का होना सम्भव नहीं है क्योंकि ज्ञान और प्रेरणारूप क्रिया रजोगुण और तमोगुण से रहित शुद्ध सत्त्वरूप चित्त का धर्म है। ईश्वर तो त्रैगुण्य से सर्वथा रहित है चित्त और ईश्वर का स्वस्वामिभाव सम्बन्ध का होना भी असम्भव है, क्योंकि सम्बन्ध अविद्या से प्रयुक्त हुआ करता है। ईश्वर में अविद्या है नहीं। अतः प्रकृति को प्रेरित करने के लिये ईश्वर को स्वीकार करना असमीचीन प्रतीत होता है फिर भी ईश्वर के साथ जो चित्त का सम्बन्ध है वह अविद्यापूर्वक नहीं है। जीव का चित्त के साथ जो स्वस्वामिभाव सम्बन्ध है वह अविद्याप्रयुक्त है क्योंकि जीव चित्त के स्वभाव को जानता नहीं है, किन्तु ईश्वर चित्त के स्वभाव को जानकर ज्ञानधर्मोपदेश के द्वारा तापत्रयपीडित प्राणियों के उद्धार के लिये तथा प्रकृतिप्रेरणा के द्वारा जगत् की रचना के लिये विशुद्ध सत्त्वरूप चित्त को धारण करता है। इसलिये ईश्वर के साथ चित्त का सम्बन्ध अज्ञानपूर्वक होता तो परिणामित्व दोष आ सकता था, किन्तु ईश्वर का चित्त के साथ सम्बन्ध आहार्यज्ञानपूर्वक है। अतः ज्ञानपूर्वक चित्त को धारण करने से ईश्वर में ज्ञान तथा प्रेरणारूप क्रिया रह सकती है। इससे ईश्वर में प्रान्तत्वरूप दोष भी नहीं आता। भ्रान्तत्व दोष वहाँ आता है जो अविद्या के स्वभाव को न जानकर अविद्या का

सेवन करता है। जैसे एक नट ज्ञानपूर्वक रामकृष्णादि का स्वयं में आरोप करके अनेक प्रकार के अभिनय करता है फिर भी भ्रान्त नहीं कहलाता। इसी प्रकार ईश्वर भी भ्रान्त नहीं। कहलाता अपितु तात्त्विक ज्ञानवान् कहलाता है।

**अन्योन्याश्रय दोष की आशंका और उसका परिहार**

अभी ऊपर हमने कहा कि ईश्वर तथा उसके साथ चित्त का सम्बन्ध अविद्यापूर्वक नहीं अपितु आहार्यज्ञानपूर्वक है। जीवों का उद्धार करने की इच्छा से ईश्वर चित्तरूप उपाधि को धारण करता है।

यहाँ पर आक्षेप हो सकता है कि जब जीवों का उद्धार करने की इच्छा होती है तो ईश्वर चित्तरूप उपाधि को धारण करता है, किन्तु जीवों का उद्धार करने की इच्छा तभी होगी जब चित्तरूप उपाधि को धारण करेगा। इस प्रकार चित्त होने पर इच्छा और इच्छा होने पर चित्त का धारण, यह तो अन्योन्याश्रय दोष हुआ ?

किन्तु ईश्वर में उक्त अन्योन्याश्रय दोष की आशंका का परिहार भी बीजांकुर के दृष्टान्त से हो जाता है। सृष्टिप्रवाह अनादि है। आदिमान् पदार्थों में ही उक्त दोष की सम्भावना है। जैसे बीज से अंकुर और अंकुर से बीज, यह प्रवाह अनादि है। इसमें अन्योन्याश्रय दोष नहीं माना जाता । वैसे ही जगत् की उत्पत्ति और प्रलय में अन्योन्याश्रय दोष नहीं है। जैसे लोक में कोई पुरुष ऐसी इच्छा करके रात में शयन करता है कि मैं प्रातःकाल में इतने समय पर उठकर अमुक कार्य करूंगा। वह प्रातःकाल में उठता है और कार्य करता है इसी प्रकार सृष्टि के समाप्ति काल में जब ईश्वर की संहार करने की इच्छा होती है तब वह यह संकल्प करता है कि 'जब प्रलय की अवधि समाप्त होगी तब मैं पुनः विशुद्ध चित्त को धारण करूंगा।' ऐसा संकल्प करके वह निज स्वरूप में अवस्थित हो जाता हैऔर तब उसका विशुद्ध चित्त प्रकृति में लीन हो जाता है। जब प्रलय की अवधि समाप्त होती है तब पूर्वोक्त संस्कार से वह पुनः विशुद्ध चित्त को धारण करता है। जैसे पूर्व का बीज उत्तर उत्तर के अंकुर का कारण और पूर्व पूर्व का अंकुर उत्तर उत्तर के बीज का कारण होने पर भी व्यक्तिरूप से कार्यकारणभाव न होने से, अन्योन्याश्रय दोष नहीं होता वैसे ही पूर्व पूर्व की ईश्वरेच्छा और उत्तर उत्तर के विशुद्ध चित्त का धारण करने में व्यक्तिरूप कार्यकारणभाव न होने से अन्योन्याश्रय दोष नहीं है।

**ईश्वर के नाम, अंग तथा अव्यय**

ईश्वर का कोई नाम या रूप नहीं होता, फिर भी उपासना की सुविधा के लिये उसके नाम और रूपों की कल्पना करनी पड़ती है। परमेश्वर के जितने भी नाम ब्रह्मा, विष्णु, शिव, कृष्ण, वासुदेव, शंकर आदि हैं वस्तुतः वे नाम नहीं हैं अपितु विशेषण हैं। उपासकों ने अपनी रुचि, श्रद्धा और सुविधा की दृष्टि से उन –उन नामों तथा रूपों की कल्पना कर ली है। वस्तुतः ईश्वर अनाम और अरूप है फिर भी कल्पित नाम और रूप के अतिरिक्त उसकी प्राप्ति का कोई अन्य उपाय भी उपासक के पास नहीं है। अतः नाम और रूप की कल्पना करना साधक की विवशता है। ईश्वर की उपलब्धि के पश्चात् तो नाम और रूप स्वतः ही दूर छूट जाते हैं। समाधि की सिद्धि होने पर इनकी कोई उपयोगिता नहीं रह जाती है। किन्तु जब तक समाधिलाभ नहीं होता तब तक आगमों ने ईश्वर के विभिन्न नाम और रूपों की कल्पना का निर्देश दिया है। यही बात भाष्यकार व्यासदेव कह रहें हैं कि ईश्वर की संज्ञाओं का ज्ञान आगम से करना चाहिये।

**तस्य संज्ञादिविशेषप्रतिपत्तिरागमतः बोध्या। व्यासभाष्य** । 1। 25 ।

**ईश्वर का वाचक शब्द ओम् है**

ईश्वरप्रणिधान से शीघ्र समाधिलाभ होता है, ऐसा सूत्रकार ने कहा था। वह ईश्वरप्रणिधान कैसे किया जाता है इस प्रश्न के समाधान के लिये सूत्रकार कहते हैं कि

ईश्वर के नाम का जप करने से ईश्वर भक्तों पर अनुग्रह करता है। ईश्वर का मुख्य वाचक नाम ओम् है

**तस्य वाचकः प्रणवः** । योगसूत्र । 1। 27 ।

ओंकार को प्रणव कहा जाता है। सूत्रकार ने ओंकार शब्द नहीं कहा अपितु प्रणव कहा है। प्रणव वस्तुतः ओंकार का विशेषण है। प्र उपसर्ग पूर्वक नु धातु से प्रणव शब्द बना है । नु धातु स्तुत्यर्थक है। प्रकर्षण नूयते स्तूयतेऽनेनेति प्रणव : चूँकि ओम् शब्द के द्वारा परमेश्वर की स्तुति की जाती है इसलिये ओम् को प्रणव कहा जाता है।

यूँ तो ओम् भी परमात्मा का नाम नहीं है अपितु उसका विशेषण ही है। अवति इति ओम्। चूँकि परमात्मा ही सबका रक्षक है इसलिये ओम् कहलाता है। फिर भी श्रुति, स्मृति, पुराणादि में परमेश्वर का मुख्य वाचक ओम् ही प्रसिद्ध है इसलिये ओंकार को ईश्वर का वाचक और ईश्वर को ओंकार का वाच्य कहा जाता है। जैसे लोक में भृंग पुच्छ और सास्ना आदि आकृति से युक्त पशुविशेष का वाचक गौः शब्द है उसी प्रकार सर्वज्ञत्व पूर्णकामत्व सत्यसंकल्प आदि धर्मो से विशिष्ट पुरुषविशेष का वाचक ओम् है। ईश्वर और ओंकार में वाच्यवाचकभाव अर्थात् प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव सम्बन्ध है।

**प्रणवजप और ईश्वरभावना ही ईश्वरप्रणिधान है**

जब योगसाधक ओंकार तथा ईश्वर के वाच्यवाचक भावरूप सम्बन्ध को अच्छी प्रकार समझ ले तब उसे ओम् का जप तथा उसके अर्थ ईश्वर की भावना करनी चाहिये पतञ्जलि कहते हैं

**तज्जपस्तदर्थभावनम्** । योगसूत्र 1। 28

अर्थात् योगसाधक को शीघ्र समाधिलाभ के लिये ओम् का जप तथा ईश्वर की भावना करनी चाहिये। यही ईश्वरप्रणिधान है। जप और भावना के निरन्तर आचरण से चित्त शीघ्र एकाग्र हो जाता है। यही बात भाष्यकार कह रहे हैं

**तदस्य योगिनः प्रणवं जपतः प्रणवार्थ च भावयतश्चित्तमेकाग्रं संपद्यते।** व्यासभाष्य 1। 28

**प्रणवजप का अर्थ**

वाणी से बार बार 'ओम्' शब्द का उच्चारण करना जप कहलाता है। उच्चारण करते समय मन का सम्बन्ध ओम् शब्द के साथ होना चाहिये, तभी वह उच्चारण जप कहलायेगा। मनःसम्बन्ध के बिना शुकवत् शब्द का पुनः पुनः उच्चारण जप नहीं कहलाता। शब्द का उच्चारण प्राणवायु के बिना सम्भव नहीं । अतः ओम् शब्द के उच्चारण के साथ प्राणवायु की गति पर भी ध्यान देना आवश्यक है।

यह जप तीन प्रकार का है– वाचिक, उपांशु तथा मानसिक श्रवण करने योग्य शब्द का उच्चारण करना वाचिक जप कहलाता है। इसमें वागिन्द्रिय के समस्त अवयव क्रियाशील रहते हैं। दूसरा व्यक्ति भले ही उस शब्द को न सुन सके। किन्तु उच्चारणकर्ता के अपने कान उस शब्द को अवश्य सुनें। बार–बार ओम्–ओम् का उच्चारण करने से चित्त एकाग्र होता है। यह वाचिक जप है।

उच्चारण करते हुए जब केवल ओष्ठ हिलते है शब्द का श्रवण नहीं होता, तब यह जप उपांशु कहलाता है। उपांशु जप का अभ्यास वाचिक जप के पश्चात् ही करना चाहिये। इससे उपांशु जप की दृढता होती है। यह जप वाचिक जप से शतगुणित प्रभावशाली होता है। जब ओष्ठ भी नहीं हिलते अपितु मन की क्रियाशीलता से अन्तःस्थित मध्यमा वाक् से मन्त्र का उच्चारण किया जाता है तब यह जप मानसिक कहलाता है। यह जप उपांशु जप से सहस्रगुणित प्रभावकारी है।

**निष्कर्ष**

योगदर्शन में ईश्वर का स्वरूप न्याय वैशेषिक और वेदान्त के अनुसार ही स्वीकार किया गया है किन्तु उसकी मान्यता का आधार न्याय वैशेषिक से कुछ भिन्न है। ईश्वर का स्वरूप महर्षि पतञ्जलि इस प्रकार कहा है, क्लेश, कर्म, कर्मविपाक तथा कर्माशय इन चारों से सर्वथा असम्बद्ध जो पुरुषविशेष है वह ईश्वर कहलाता है। ईश्वर में ज्ञान और क्रिया का होना सम्भव नहीं है क्योंकि ज्ञान और प्रेरणारूप क्रिया रजोगुण और तमोगुण से रहित शुद्ध सत्त्वरूप चित्त का धर्म है।

ईश्वरप्रणिधान का मुख्य प्रयोजन तो समाधिलाभ ही है किन्तु इसके साथ दो लाभ और भी हैं। एक है प्रत्यक् चेतना का अधिगम और योगविघ्नों का अभाव। ये तीनों लाभ एक साथ ही होते हैं। ऐसा नहीं है कि पहले समाधिलाभ हो, पुनः प्रत्यक् चेतना का साक्षात्कार हो और फिर विघ्नों का अभाव हो । अपितु ये तीनों प्रयोजन साथ,साथ ही सिद्ध होते हैं। योग के मध्य में आने वाले विघ्नों का नाश भी होता रहता है। योग की निर्विघ्न साधना से प्रत्यक् चेतना का साक्षात्कार भी प्रारम्भ हो जाता है और समाधिलाभ भी होता जाता है। ईश्वरप्रणिधान से योगसाधक को उक्त प्रत्यगात्मा का साक्षात्कार होता है।

**संदर्भ**


1. योगसूत्र । 1। 23 ।
2. योगसूत्र । 1। 24 ।
3. योगसूत्र । 1। 25 ।
4. योगसूत्र । 1। 27 ।
5. व्यासभाष्य । 1। 28 ।
6. व्यासभाष्य । 1। 25 ।
7. Karambelkar, P.V. (2020). Pātañjala Yoga Sutra. Puna: Lonavla Kaivalyadhama Publication:2-8
8. Swami Ramsukhdas, (2010). Srimad Bhagvad Gita" (Sadhak-Sanjivani) Vol-1, Vol-II, Gorakhpur: Gita Press
9. Rama Prasada, (2002). The Yoga Darsana of Patanjali with the Sankhya Pravacana Commentry of Vyasa and The Gloss of Vacaspati Misra. New Delhi: Logos Press: 1-15, 50-64.
10. Dasgupta, S.N. (1920). The Study of Patanjali, Kolkata: UNIVERSITY OF CALCUTTA. 1-30, 45-60, 89-114

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

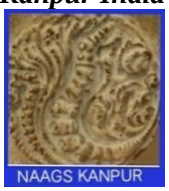


***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# साइबर अपराध : विधिक चुनौती एवं समाधान

**डा. अनीस अहमद**
सहायक आचार्य
विधि विभाग, विधि संकाय
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय
लखनऊ

**प्रस्तावना–**

मानवीय जीवन का विकास एक क्रमिक प्रक्रिया के माध्यम से हो रहा है। इसी क्रमिक विकास की प्रक्रिया में इण्टरनेट एवं तकनीक का अविष्कार हुआ। जिस तीव्र गति से इण्टरनेट व तकनीक का विकास हुआ है, उसी तीव्र गति से मनुष्य की निर्भरता भी इण्टरनेट व तकनीक पर बढ़ी है। और आज वह डिजिटल रूपी जीवन जी रहा है। एक ही स्थान पर बैठकर मनुष्य सम्पूर्ण विश्व के किसी भी कोने तक इण्टरनेट के माध्यम से अपनी पहुँच आसान बना सकता है। आज इण्टरनेट के माध्यम से मनुष्य लगभग प्रत्येक कार्य कर सकता है। कोरोना महामारी के कारण होने वाले लॉकडाउन ने जब लोगों को घरों में कैद कर दिया तब सूचना प्रौद्योगिकी ही एकमात्र ऐसा विकल्प था जिसके माध्यम से बाहरी दुनिया से सम्पर्क स्थापित कर व्यवसायिक, शैक्षिक इत्यादि गतिविधियों को सम्पादित किया जा सकता था। कोरोना जैसे संकटकाल में इण्टरनेट व तकनीक की मानव जीवन में उपयोगिता किसी से छिपी नहीं है। यही कारण है कि कोरोना काल में मानव की निर्भरता इण्टरनेट व सूचना प्रौद्योगिकी तकनीक पर पूर्व की तुलना में बहुत अधिक बढ़ी है।जितनी तीव्रता से हमारी निर्भरता इण्टरनेट पर बढ़ रही है उतनी ही तीव्रता से इण्टरनेट व सूचना प्रौद्योगिकी तकनीक के प्रयोग के माध्यम से होने वाले विभिन्न अपराधों में भी वृद्धि हुई है।

इण्टरनेट व तकनीक के माध्यम से होने वाले अपराधों को 'साइबर अपराध' कहा जाता है! ऐसे अपराधों को प्रभावी रूप से रोकने हेतु हमारे पास न तो कोई विशेष अधिनियम है और न ही कोई प्रभावी विधिक उपाय उपलब्ध है! भारत में प्रायः सामान्य पुलिस अधिकारी ही साइबर अपराधों से सम्बन्धित मामलों मे शिकायत प्राप्त कर कार्यवाही करते है! सूचना प्रौद्योगिकी आधारित साइबर अपराधों से प्रभावी रूप में निपटने हेतु तकनीकी ज्ञान मे दक्षता अपरिहार्य होती है! परन्तु हमारी विधिक व्यवस्था में पुलिस अधिकारियों को इस हेतु किसी भी प्रकार का विशेष प्रशिक्षण नही दिया जाता

है! इसके साथ ही साथ पुलिस अधिकारियों को साइबर अपराधों से निपटने मे होने वाली क्षेत्राधिकार सम्बन्धित अनिश्चितता का भी कोई समाधान हमारी विधिक व्यवस्था में अभी तक नहीं हो पाया है जबकि साइबर अपराधों में दिन–प्रतिदिन तीव्र गति से वृद्धि हो रही है जो कि स्पष्ट रूप से चिन्ताजनक है!

कोरोना महामारी काल में प्रायः यह देखा गया है कि साइबर अपराधों में पहले की तुलना में बहुत अधिक वृद्धि हुई है। जो इस बात का परिचायक है कि सुरक्षापूर्वक इण्टरनेट व सूचना प्रौद्योगिकी तकनीक का प्रयोग करना मनुष्य के समक्ष एक बहुत बड़ी चुनौती है। जहॉ एक ओर इण्टरनेट व तकनीक ने मानवीय जीवन को आसान बनाया है वहीं दूसरी ओर साइबर अपराधोंमें होने वाली वृद्धि ने मानवीय जीवन में समस्याओं को जन्म भी दिया है। यदि साइबर अपराध रूपी इस चुनौती का समाधान शीघ्र ही न किया गया तो मानव जीवन के विकास की गति थम जायेगी।

**साइबर अपराध– अवधारणा एवं विकास**

अपराध एक सार्वभौमिक व सार्वकालिक गतिविधि है। अपराध की अवधारणा उतनी ही प्राचीन है जितनी की मानव सभ्यता का इतिहास।

'अपराध' अंग्रेजी भाषा के शब्द 'क्राइम' का पर्याय है। 'क्राइम' शब्द की व्युत्पति लैटिन भाषा के शब्द 'क्राइमेन' से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ है, 'अलगाव' अर्थात् जब किसी व्यक्ति के मन में समाज के प्रति अलगाव उत्पन्न हो तो वह 'अपराध' होगा।

कोई भी ऐसा कार्य या कार्य का लोप जो कि विधि या समाज द्वारा स्थापित मानदण्डों के विपरीत हो, 'अपराध' कहा जाता है। हॉलाकि आधुनिक विधिक व्यवस्थाओं में प्रायः केवल विधि विरूद्ध किये गये कार्य या लोप ही 'अपराध' की श्रेणी में रखेजाते हैं। किन्तु प्राचीनकाल में आधुनिक विधि–निर्मात्री संस्थाओं के अभाव में समाज द्वारा स्थापित नियमों को ही विधि की श्रेणी में रखा जाता था और समाज द्वारा स्थापित इन नियमों के अतिक्रमण में किये गये कार्य या लोप ही 'अपराध' कहे जाते थे।

यद्यपि भारत में अभी तक किसी भी अधिनियम में 'साइबर अपराध' को परिभाषित नहीं किया गया है किन्तु भारतीय न्यायपालिका ने समय–समय पर विभिन्न वादों में साइबर अपराध की न्यायिक व्याख्या अवश्य की है। जिसके अनुसार, जब कोई भी गैर कानूनी गतिविधि इण्टरनेट की सहायता से या डिजिटल माध्यम से की जाती है तो इसे 'साइबर अपराध'कहा जाता है। 'साइबर अपराध' को 'इलेक्ट्रॉनिक अपराध' भी कहा जाता है। 'साइबर अपराध' डिजिटल संसार में ही किये जाते हैं जिसमें साइबर अपराधी एक स्थान पर बैठकर इण्टरनेट के माध्यम से विश्व के किसी भी कोने से अपराध को अंजाम दे सकता है। साइबर अपराधों में प्रमुख रूप से पहचान की चोरी, क्रेडिट कार्ड धोखाधड़ी, कम्प्यूटर से व्यक्तिगत डेटा हैक करना, फिशिंग, अवैध डाउनलोडिंग, साइबर स्टॉकिंग, वायरस प्रसार, सहित विविध प्रकार की गैर–कानूनी गतिविधियॉं शामिल हैं। सॉफ्टवेयर चोरी भी साइबर अपराध का ही एक रूप है, किन्तु इसमें यह आवश्यक नहीं है कि साइबर अपराधी, ऑनलाइन पोर्टल के माध्यम से ही अपराध को अंजाम दें।

विश्व में पहला साइबर अपराध वर्ष 1820 में फ्रांस में प्रकाश में आया था जो जोसेफ मैरी जैक्वार्ड नामक व्यक्ति द्वारा किया गया था। इसके बाद साइबर अपराध की छिट–पुट घटनाऐं ही प्रकाश में आयी। साइबर अपराध में थोड़ी वृद्धि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हुई जब अमेरिका के रक्षा विभाग द्वारा इण्टरनेट का प्रयोग प्रारम्भ किया गया। इसके बाद वर्ष 1981 में जब आईबीएम ने पहला पर्सनल कम्प्यूटर बनाया तो साइबर अपराधों में धीरे–धीरे वृद्धि होने लगी। 21वीं शताब्दी का पहला दशक इण्टरनेट

के प्रयोग व साइबर अपराध दोनों में तीव्र गति से वृद्धि का दशक कहा जा सकता है। वर्ष 2011 में भारत जैसे विकासशील देशों में सूचना संचार क्रान्ति की शुरूआत हुई जिसने कम्प्यूटर व इण्टरनेट के क्षेत्र में वृहत् स्तर पर वृद्धि हुई है।

भारत में 15 अगस्त 1995 में पहली बार वीएसएनएल (VSNL)द्वारा इण्टरनेट की शुरूआत हुई। वर्ष 1998 में सरकार ने इण्टरनेट के सम्बन्ध में वीएसएनएल के एकाधिकार को समाप्त कर दिया और निजी कम्पनियों के लिए इण्टरनेट बाजार को खोल दिया जिससे भारत में इण्टरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या में वृद्धि होना प्रारम्भ हुई। जहॉ वर्ष 1995 में भारत की कुल आबादी के 0.1 प्रतिशत लोग इण्टरनेट का प्रयोग करते थे वहीं आज लगभग 35 प्रतिशत से अधिक लोग इण्टरनेट का प्रयोग कर रहे हैं। भारत में इण्टरनेट के प्रयोग में वृद्धि के साथ ही साइबर अपराध में भी वृद्धि हुई है। इस प्रकार भारत में साइबर अपराधों का इतिहास बहुत अधिक पुराना नहीं है।

**साइबर अपराधों का वर्गीकरण–**

साइबर अपराध को तीन प्रमुख श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता हैः–

01. व्यक्ति विशेष के विरूद्ध साइबर अपराध,
02. सम्पत्ति विशेष के विरूद्ध साइबर अपराध
03. सरकार विशेष के विरूद्ध साइबर अपराध

**01. व्यक्ति विशेष के विरूद्ध साइबर अपराध–**

ऐसे अपराध, यद्यपि ऑनलाइन होते हैं, परन्तु वे वास्तविक लोगों के जीवन को प्रभावित करते हैं। इनमें से कुछ अपराधों में साइबर उत्पीड़न और साइबर स्टॉकिंग, चाइल्ड पोर्नोग्राफी का वितरण, विभिन्न प्रकार के स्पूफिंग, क्रेडिट कार्ड धोखाधड़ी, मानव तस्करी, पहचान की चोरी और ऑनलाइन बदनाम किया जाना शामिल है। साइबर अपराध की इस श्रेणी में किसी व्यक्ति या समूह के खिलाफ दुर्भावनापूर्ण या अवैध जानकारी को ऑनलाइन लीक कर दिया जाता है।

**02. सम्पत्ति विशेष के विरूद्ध साइबर अपराध–**

कुछ ऑनलाइन अपराध सम्पत्ति के खिलाफ होते हैं, जैसे कि कम्प्यूटर या सर्वर के खिलाफ या उसे ज़रिया बनाकर किये जाते हैं। इन अपराधों में हैकिंग, वायरस ट्रांसमिशन, साइबर और आइपो स्क्वाटिंग, कॉपीराइट उल्लंघन, आईपीआर उल्लंघन आदि शामिल है।

**03. सरकार विशेष के विरूद्ध साइबर अपराध–**

इस प्रकार के साइबर अपराधों को सबसे गम्भीर प्रवृत्ति का मानाजाता है। सरकार के विरूद्ध किये जाने वाले ऐसे साइबर अपराधों में'साइबर आतंकवाद' सबसे प्रमुख हैं। सरकार विशेष के विरूद्ध होने वालेअन्य साइबर अपराधों में सरकारी वेबसाइट या सैन्य वेबसाइट को हैक किया जाना शामिल है। गौरतलब है कि जब सरकार के खिलाफ एक साइबर अपराध किया जाता है, तो इसे उस राष्ट्र की संप्रभुता पर हमला और युद्ध की कार्यवाही माना जाता है। ये अपराधी विशेष रूप से आतंकवादी या अन्य शत्रु देशों की सरकारें होती हैं।

**भारत में साइबर अपराधों से सम्बंधित विधिक प्रावधान–**

साइबर विधि वह प्रयास है जिसके माध्यम से भौतिक दुनिया के लिए लागू विधि की प्रणाली का उपयोग, इण्टरनेट पर मानव गतिविधियों द्वारा प्रस्तुत चुनौतियों से निपटने के लिए किया जाता है। साइबर विधियों में, विभिन्न विधिक क्षेत्रों का समागम होता है, इसके अन्तर्गत बौद्धिक संपदा, गोपनीयता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और अधिकार इत्यादि विधि मामले/मुद्दे सम्मलितहोते हैं। साइबर विधि के विभिन्न उद्देश्य

होते हैं। कुछ कानून इस बात को लेकर नियम बनाते हैं कि व्यक्ति और कम्पनियाँ, कम्प्यूटर और इण्टरनेट का उपयोग कैसे कर सकती हैं, जबकि कुछ कानून इण्टरनेट पर अवैध गतिविधियों के माध्यम से लोगों को अपराध का शिकार बनने से बचाते हैं।

वर्तमान समय में साइबर अपराधों को रोकने की दिशा में भारत में प्रभावी विधिक उपायों का अभाव पाया जाता है। भारत में साइबर अपराधों को रोकने हेतु कोई विशेष अधिनियम अभी तक अस्तित्व में नहीं आया है। वर्ष 2000 में पारित किया गया **'सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम–2000'** के प्रावधानों के साथ–साथ **'भारत दण्ड संहिता–1860'** के प्रावधान संयुक्त रूप से साइबर अपराधों से निपटने हेतु प्रयोग में लाये जाते हैं। उपरोक्त विधिक प्रावधान साइबर अपराधों पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित करने हेतु नाकाफी प्रतीत होते हैं। **'सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम–2000'**में साइबर अपराधों पर नियंत्रण स्थापित करने हेतु कुछ ही प्रावधान किये गये हैं, क्योंकि यह अधिनियम विशेष रूप से व्यावसायिक अन्तरण की सुरक्षा हेतु पारित किया गया था वर्ष 2008 में **'सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम–2000'**को साइबर अपराधों की रोकथाम की दिशा में प्रभावी बनाने हेतु संशोधित किया गया। **सूचना प्रौद्योगिकी (संशोधन) अधिनियम 2008** के द्वारा कुछ नयी धाराऐं जोड़ी गयी तथा कुछ धाराओं में संशोधन भी किया गया। वर्तमान समय में **'सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम–2000'**में 'अपराध' शीर्षक से एक अलग अध्याय–11 उपलब्ध है। हालांकि इसमें कई त्रुटियॉ भी हैं और यह साइबर युद्ध की निगरानी के लिए एक बहुत प्रभावी कानून नहीं है। 'अध्याय–11' में 'अपराध' शीर्षक कुछ साइबर अपराधों का उल्लेख कर उनके लिए दण्ड का प्रावधान किया गया है। वर्तमान समय में **'सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम–2000'**की **धारायें 43, 43ए, 66, 66बी, 66सी, 66डी, 66एफ, 67, 67ए, 67बी, 70, 72, 72ए** और **74** हैकिंग और साइबर अपराधों से सम्बन्धित हैं।

इसके अतिरिक्त भारत में साइबर अपराधों के सन्दर्भ में कुछ अन्य कानून हैं, **भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872** की कुछ धारायें जो संशोधन के परिणामस्वरूप जोड़ी गयीं हैं, **भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934** की धारा 58 की उपधारा 2 और **द बैंकर्स बुक्स इविडेंस अधिनियम 1891**(संशोधन करके सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 की तीसरी अनुसूची में शामिल कर दिया गया है।)

सइबर अपराधों की बढ़ती हुई गति ने इस ओर सरकारों का ध्यान केन्द्रित किया फलस्वरूप कुछ महत्वपूर्ण कदम साइबर अपराधों से बचाव की दिशा में उठाए गये। इसी क्रम में भारत सरकार द्वारा व **''राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा नीति 2013''** जारी की गयी जिसके अन्तर्गत सरकार ने कुछ अति संवेदनशील सूचनाओं हेतु 'राष्ट्रीय अतिसंवेदनशील सूचना अवसंरचना संरक्षण केन्द्र (National Critical Information Infrastucture protection centere) का गठन किया।जिसके तहत साइबर अपराध हेतु न्यूनतम 2 वर्ष और अधिकतम आजीवन कारावास के दण्ड संहित जुर्माने का प्रावधान भी किया गया है।

ठसके अतिरिक्त साइबर अपराधों को रोकने हेतु दक्ष मानव संसाधन विकसित करने हेतु 'सूचना सुरक्षा शिक्षा और जागरूकता परियोजना' भी प्रारम्भ की गयी है। भारत सरकार द्वारा 'कम्प्यूटर इमरजेंसी रिस्पॉन्स टीम' की स्थापना की गई जो कम्प्यूटर सुरक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर की मॉडल एजेंसी है। देश में साइबर अपराधों से समन्वित और प्रभावी तरीके से निपटने के लिए 'साइबर स्वच्छता केन्द्र' भी स्थापित किया गया हे। यह इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय के अन्तर्गत भारत सरकार की 'डिजिटल इंडिया' अभियान का एक महत्वपूर्ण भाग है। इसके साथ ही

साथ भारत ने साइबर सुरक्षा के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सहयोग प्राप्त करने की दिशा में भी प्रयास किये हैं। जिसके तहत सूचना साझा करने व साइबर सुरक्षा हेतु सर्वोत्तम कार्य प्रणाली विकसित करने के लिए अमेरिका, ब्रिटेन और चीन जैसे देशों का सहयोग लिया जा रहा हे।

अंतर–एजेंसी समन्वय स्थापित करने हेतु जनवरी 2020 में भारत सरकार के गृह मंत्रालय द्वारा 'भारतीय साइबर अपराध समन्वय केन्द्र' की स्थापना की गयी। जिसका प्रमुख उद्देश्य साबर अपराधों से निपटना है। 'भारतीय साइबर अपराध समन्वय केन्द्र' को साइबर अपराधों से निपटने में प्रभावी बनाने हेतु इसके सात सहयोगी घटकों की भी व्यवस्था की गयी है, जो इस प्रकार हैं–

**01.** नेशनल साइबरक्राइम थ्रेट एनालिटिक्स यूनिट
**02.** नेशनल साइबर क्राइम रिपोर्टिंग पोर्टल
**03.** संयुक्त साइबर अपराध जॉच दल के लिए मंच
**04.** राष्ट्रीय साइबर अराध फोरेंसिक प्रयोगशाला पारिस्थितिकी तंत्र
**05.** राष्ट्रीय साइबर क्राइम प्रशिक्षण केन्द्र
**06.** साइबर क्राइम इकोसिस्टम मैनेजमेंट यूनिट
**07.** राष्ट्रीय साइबर अनुसंधान और नवाचार केन्द्र

भारत सरकार ने साइबर सुरक्षा हेतु सतर्कता से सम्बन्धित जागरूकता प्रसार, परामर्श का प्रबन्ध करने, साइबर विधि प्रवर्तन कर्मियों की क्षमता निर्माण हेतु प्रशिक्षण एवं ऐसे अपराधों को शीघ्रता से रोकने और जॉच में तेजी लाने हेतु साइबर फोरेंसिक सुविधाओं में सुधार इत्यादि की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर साइबर अपराधों से प्रभावी रूप से निपटने हेतु वर्ष 2001 में 'बुडापेस्ट कन्वेंशन' हुआ। बुडापेस्ट कन्वेंशन अवैध पहुँच, कम्प्यूटर व इण्टरनेट से सम्बन्धित धोखाधड़ी, चाइल्ड पोर्नोग्राफी, इण्टरनेट पर डेटा छेड़छाड़ से सम्बन्धित साइबर अपराधों व प्रक्रियात्मक विधिक उपकरणों से लेकर साइबर अपराधों की जॉच व साइबर अपराधों के सम्बन्ध में ई–साक्ष्य प्राप्त करने से सम्बन्धित है। इसके साथ ही साथ बुडापेस्ट कन्वेंशन साइबर सुरक्षा को अधिक प्रभावी बनाने व साइबर अपराध पर रोकथाम हेतु अंतराष्ट्रीय पुलिस बल व न्यायिक सहयोग प्रदान करने पर भी बल देता है।

हालॉकि भारत ने बुडापेस्ट अभिसमय के राष्ट्रीय सम्प्रभुता को क्षति पहुँचाने वाले प्रावधान के कारण इसमें अभी तक भाग नहीं लिया है। कन्वेंशन का अनुच्छेद 32बी ट्रांस–बॉर्डर डेटा तक पहुँच की अनुमति प्रदान करता है जो कि किसी भी देश की राष्ट्रीय सम्प्रभुता का प्रत्यक्ष रूप में उल्लंघन है। इसके अतिरिक्त अभिसमय का शासन प्रभावी नहीं प्रतीत होता इसमें किया गया सहयोग का वादा पर्याप्त रूप से दृढ़ नहीं है क्योंकि सहयोग करने से मना करने के लिए इसमें कई आधार प्रदान किये गये हैं।

**साइबर सुरक्षा संकटः त्वरित समाधान की चुनौती–**

इस भौतिक जगत मे प्रत्येक वस्तु की भॉति इण्टरनेट वसूचना प्रौद्योगिकी के भी अपने फायदे और चुनौतियाँ दोनों हैं। हालॉकि इण्टरनेट वसूचना प्रौद्योगिकी लगभग सभी क्षेत्रों में मानवीय जीवन को विकास की ओर ही उन्मुख करता है, चाहे वह शिक्षा हो, स्वास्थ्य हो, परिवहन हो, संचार हो इत्यादि। परन्तु ऐसी कई चुनौतियाँ भी हैं जिनका सामना हमें इण्टरनेटर व सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग करने पर करना पड़ता है। इन चुनौतियों को सुयुक्त रूप से साइबर अपराध का नाम दिया जाता है।

सूचनाप्रौद्योगिकी किसी अन्य स्पेक्ट्रम की तुलना में दिन–प्रतिदिन बड़ा खतरा बनती जा रही है। साइबर अपराधियों ने धोखाधड़ी और चोरी जैसी साइबर अपराधों को

बढ़ावा देने के लिए प्रौद्योगिकी नियंत्रित उपकरणों का दरूपयोग करना शुरू कर दिया है। जिससे साइबर अपराधों में तेजी से वृद्धि हो रही है। कोरोना जैसे संकटकाल में जब लॉकडाउन के कारण लोगों की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गयी है, तो सूचना प्रौद्योगिकी के विषय में अच्छी जानकारी करने वाले लोग ऑनलाइन धोखेबाजी से धन कमा रहे हैं। जिससे कोरोना के इस संकटकाल में साइबर अपराधों की घटनाओं में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। भारत समेत पूरी दुनियाँ में आज इण्टरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या बहुत ही तीव्र गति से बढ़ रही है। कोरोना महामारी के कारण होने वाले लॉकडाउन में तो इण्टरनेट ही एकमात्र माध्यम था जिसके द्वारा बाहरी दुनियाँ से लोगों ने न केवल सम्पर्क स्थापित किया बल्कि शैक्षिक, व्यावसायिक, कोरोना संक्रमण से बचाव के तरीके व जागरूकता सम्बन्धी संदेश प्राप्त करना, इत्यादि गतिविधियों को सम्पादित किया। जिससे इण्टरनेट व सूचना तकनीक के प्रयोग में तीव्र वृद्धि हुई और सूचनाप्रौद्योगिकी का दुरूपयोग करने वालों को ऑनलाइन धोखाधड़ी के माध्यम से धनार्जन का अवसर प्रतीत हुआ। साइबर सुरक्षा हेतु सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोगकर्ताओं को उसके सम्भावित खतरों का ज्ञान होना आवश्यक है। सुरक्षा एजेंसियों द्वारा यह भी पता लगाया गया है कि ऑनलाइन मुद्रा स्थानांतरित करने वाले विभिन्न ऐपके माध्यम से आतंकवादियों और देशविरोधी तत्वों को फण्डिंग की जाती है। साइबर अपराधी विभिन्न प्रकार के आकर्षक ऑनलाइन खेलों के माध्यम से बच्चों को निशाना बनाकर अपराध करने के लिये प्रोत्साति करते हैं। इसके साथ ही साथ यह भी देखा गया है कि विभिन्न सोशल नेटवर्किंग कम्पनियाँ लोगों की निजी पसंद नापसंद रूपी महत्वपूर्ण जानकारी राजनीतिक दलों को बेंच देते हैं जिसका उपयोग वे चुनावों में अधिक मत प्राप्त करने में करते है।

साइबर सुरक्षा से सम्बन्धित चुनौतियों की सूची बहुत वृहद् है फिर भी कुछ प्रमुख चुनौतियाँ इस प्रकार हैः–

**01.** डिजिटल डेटा धमकी साइबर सुरक्षा के सम्मुख सबसे बड़ी चुनौती है। आज ऑनलाइन लेनदेन का बोलबाला है जो साइबर अपराधियों को अवसर प्रतीत होता है और वे इससे बड़े प्रोत्साहित होते हैं। इसके अन्तर्गत प्रमुख रूप से ग्राहक जानकारी, उत्पाद सर्वेक्षण के परिणाम, और जेनेरिक बाजार की जानकारी इत्यादि प्रमुख रूप से आते हैं।

**02.** आपूर्ति श्रृंखला इंटर–कनेक्शन साइबर सुरक्षा की दिशा में दूसरी महत्वपूर्ण बाधा है। इसमें कम्पनियाँ विक्रेताओं और ग्राहकों से जुड़ने के लिए विभिन्न प्रकार के अवैध कार्य करती हैं।

**03.** हैकिंग सबसे सामान्य प्रकार का साइबर अपराध है। हैकिंग में डेटा की चोरी या डेटा को नष्ट करने हेतु अनाधिकृत ढ़ंग से किसी व्यक्ति के सिस्टम में प्रवेश किया जाता है। पिछले कुछ वर्षों में हैकिंग रूपी साइबर अपराध सबसे अधिक तेजी से बढ़े हैं। ऑनलाइन जानकारी की उपलबधता के कारण गैर–तकनीकी लोग भी बहुत आसानी से हैकिंग को अंजाम दे रहे हैं।

**04.** फिशिंग भी एक सामन्य प्रकार का साइबर अपराध है जिसको करने में बहुत कम प्रयास होने पर भी बहुत अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं। फिलिंग में नकली ईमेल भेजकर, टेक्स्ट संदेश भेजकर व वेबसाइट बनाकर प्रमाणिक कम्पनी के रूप में दिखने का प्रयास किया जाता है।

**05.** साइबर सुरक्षा के समक्ष एक महत्वपूर्ण चुनौती यह भी है कि साइबर अपराध की दुनियाँ बहुत वृहद् है अर्थात् विश्व के किसी भी कोने में बैठकर साइबर

उपराध किया जा सकता है। इस कारण साइबर अपराधियों को पकड़ना बहुत ही कठिन हो जाता है और वे अपराध करने के बाद भी बहुत आसानी से बच निकलते हैं।

06. लोगों को सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग के दुष्परिणामों अर्थात् सम्भावित खतरों की जानकारी बहुत कम ही होती है, जिससे वे बड़ी आसानी से साइबर अपराधियों के शिकार बन जाते हैं।
07. लोग प्रायः इस बात से अनजान होते हैं कि साइबर अपराधों के मामले में शिकायत कहाँ, किससे और कैसे की जाये? इस कारण वे शिकायत ही नहीं करते और साइबर अपराधी अपराध करने हेतु प्रोत्साहित होते हैं इत्यादि।

**साइबर अपराध एवं समाधान–**

डेटा चोरी की समस्या के समाधान हेतु इण्टरनेट व तकनीक को वर्चुअल संसार में डेटा के उपयोग को प्राथमिकता के साथ विनियमित करना होगा तथा स्पष्ट रूप से यह निर्देशित करना होगा कि इण्टरनेट उपयोगकर्ताओं द्वारा प्रदान की जाने वाली व्यक्तिगत जानकारी कब और किस परिस्थिति में दूसरों के साथ साझा की जा सकेगी। इसके साथ ही यह भी व्यवस्था करनी होगी कि उपयोगकर्ता अपनी जानकारी को दूसरों को साझा करने से प्रतिबंधित भी कर सकें।

ऑनलाइन सॉफ्टवेयर में उपस्थित बग या वायरस साइबर अपराधियों के लिए किसी भी इण्टरनेट उपयोगकर्ता की व्यक्तिगत जानकारी को प्राप्त करना सुकर बनाते हैं अतः बड़ी तथा प्रतिष्ठित ऑनलाइन सॉफ्टवेयर निर्माता फर्मो व कम्पनियों को अपने ग्राहकों की सुरक्षा बढ़ाने हेतु इस दिशा में समाधान करने का प्रयत्न करना चाहिए।

यह वास्तविकता है कि प्रायः इण्टरनेट उपयोगकर्ता इस ओर बिल्कुल भी ध्यान नहीं देते कि सोशल नेटवर्किंग साइट्स या अन्य इण्टरनेट गतिविधियों में उनकी व्यक्तिगत जानकारी की चोरी कर उसका दुरूपयोग किया जा सकता है। इसलिए ऐसे अधिकांश लोग प्रायः कभी भी अपने पासवर्ड को परिवर्तित नहीं करते हैं जिससे कि उनकी व्यक्तिगत जानकारी सुरक्षित रहे। अधिकांश इण्टरनेट उपयोगकर्ता न तो सतर्क होकर इण्टरनेट का उपयोग करने के विषय में जागरूकता रखते हैं और न ही साइबर हमले को लेकर ही सचेत होते हैं। इसी कारण साइबर अपराधियों को साइबर अपराध करने में आसानी होती है और वे अपराध करने को प्रोत्साहित होते हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हमें अपने आप को और दूसरों को इण्टरनेट का प्रयोग करते समय सतर्कता व साइबर सुरक्षा से सम्बद्ध विविध पहलुओं के बारे में जागरूक करना होगा। जिससे कि भावी साइबर अपराधों की गति पर लगाम लगाकर इण्टरनेट व तकनीक को अभिशाप होने से बचाया जा सके। इसके साथ ही साथ आवश्यकता इस बात की भी है कि साइबर अपराधों से निपटने के लिए विशेष प्रभावी अधिनियम को अधिनियमित किया जाए। साइबर अपराधों के मुद्दे से निपटने के लिए तकनीकि रूप से दक्ष अधिकारियों का एक विशेष पुलिस बल का गठन राष्ट्रीय स्तर पर किया जाए जोकि केवल साइबर अपराधों से सम्बन्धित शिकायतों पर कार्य करे। जिसके क्षेत्रीय कार्यालय पूरे देश में हों और जिनमें साइबर अपराध से जुड़ी शिकायत को ऑनलाइन या ऑफलाइन किसी भी माध्यम से किया जा सके। भारत का **सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000** स्पष्ट रूप से यह कहता है साइबर अपराधों का एक वैश्विक अधिकार क्षेत्र होता है इस लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक ही विशेष पुलिस बल होने से साइबर अपराधों की शिकायत करने में पीड़ितों को होने वाले क्षेत्राधिकार सम्बन्धित भ्रम से उत्पन्न परेशानियाँ स्वतः ही समाप्त हो जायेंगी।

**निष्कर्ष–**

वर्तमान समय में भारत, चीन के बाद दूसरा सबसे बड़ा इण्टरनेट उपयोगकर्ता देश है। विगत कुछ महीनों में विशेष रूप से कोरोना महामारी के कारण होने वाले लॉकडाउन के कारण भारत में इण्टरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या व उनकेद्वारा इण्टरनेट पर व्यतीत किये जाने वाली समयावधि में और भी अधिक वृद्धि हुई है। जिससे साइबर अपराधों में भी कई गुना बढ़ोत्तरी देखी गयी है। जबकि साइबर अपराधों को रोकने हेतु विधिक व्यवस्था का अभाव साइबर सुरक्षा के लिए एक गंभीर चुनौती है। भारत में साइबर सुरक्षा सुनिश्चित करने की दिशा में प्रभावी कदम उठाये जाने की शीघ्र आवश्यकता है। इसके लिए प्रभावी विशेष अधिनियम एवं दक्ष पुलिस बल के द्वारा ही संभव प्रतीत होता है। परन्तु हमें इस हेतु अपनी विधिक व्यवस्था में वांछित सुधार के लिए इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि सोशल मीडिया के माध्यम से होने वाली अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर कोई भी नकारात्मक प्रभाव न पड़े! भारत में सोशल मीडिया ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को एक नया आयाम दिया है। आज प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी भय के सोशल मीडिया के माध्यम से अपने विचार रख सकता है और उसे हज़ारों लोगों तक पहुँचा सकता है। अतः आवश्यकता इण्टरनेट व सोशल मीडिया का सावधानीपूर्वक उपयोग करते हुए साइबर सुरक्षा को मजबूत बनाने की है। जिससे साइबर अपराधों को रोका जा सके और इण्टरनेट व तकनीक को अभिशाप बनने से रोका जा सके।

**संदर्भ**


1. तलत फातिमा, इंटरनेट विधि एवं साइबर अपराधः(ईस्टर्न बुक कम्पनी लखनऊ, 2018)
2. पवन दुग्गल, साइबर लॉ, (यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 2016)
3. राजेश साहनी, साइबर संसार एक परिचयः– साइबर अपराधों का सामना कैसे करें? (ई–बुक)
4. एम. दासगुत्ता, साइबर क्राइम इन इण्डियाः अ कम्परेटिव स्टडी, (ईस्टर्न लॉ हॉउस, 2009)
5. डा0 अमिता वर्मा, वर्मा, साइबर क्राइम इन इण्डिया, (सेण्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, 2012)
6. रोहित अरविन्द जैन, साइबर क्राइम एण्ड लॉज़, (2018)
7. डा0 जे0पी0 मिश्रा, एन इण्ट्रोडक्शन टू साइबर क्राइम,(सेण्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स द्वितीय संस्करण, 2014)
8. निना गोडबोले एवं सुनितबेलापुर, साइबर सिक्योरिटीःइडरस्टैन्डिंग साइबर क्राइम, कम्प्यूटर फोरेंसिक एवं लीगल परस्पेक्टीव(वीली इण्डिया लिमिटेड, 2015)
9. नन्दन कामथ, लॉ रिलेटिंग टू कम्प्यूटर, इण्टरनेट एवं कामर्सः ए गाइड टू साइबर लॉज़ एण्ड इन्फारमेंशन टेक्नोलाजी एक्ट, 2000(यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 2009)
10. डा0 रेगा सूर्य रॉव, लेक्चर्स ऑन साइबर लॉज़ (जोजिया लॉ एजेंसी, हैदराबाद, प्रथम संस्करण, 2017)

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# विकास जनित प्राकृतिक आपदायें, विस्थापन और मानवाधिकार

**सुवेक सिंह चौहान**
शोध छात्र
विधि संकाय
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

**प्रस्तावना**

विकास का अधिकार, एक ऐसा अपरिहार्य मानव अधिकार है जिसके आधार पर व्यक्ति आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक गतिविधियों में सहभागिता कर वास्तविक रूप में मूलभूत स्वतंत्रता को महसूस करता हुआ, व्यक्तिगत और सामाजिक विकास की दिशा तय करता है विकास एक ऐसी प्रचलित अवधारणा है जिससे सदैव सकारात्मकता का बोध होता है। विकासोन्मुख होने की प्रवृत्ति रखना प्रगतिशीलता की निशानी है। परन्तु विकास पर अधिक केन्द्रित होने से कभी–कभी मानव अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ता है।

प्रारम्भ में अर्थशास्त्रियों ने विकास की अवधारणा को केवल आर्थिक विकास तक ही संकुचित कर दिया जिसके कारण विकास की वृहत संकल्पना केवल शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, उपयोगितावाद व विज्ञानवाद तक ही सीमित हो गयी और विकासकी एकांगी अवधारणा का जन्म हुआ जो मानव अधिकारों के प्रतिकूल थी।एकांगी विकास दो प्रकार से मानव अधिकारों के लिए अभिशाप हैं, प्रथम–विकास आधारित विस्थापन से उत्पन्न मानवाधिकार संकट के माध्यम से, और दूसरा–विकास जनित प्राकृतिक आपदाओं व महामारियों के माध्यम से।

विकास परियोजनाओं के अन्तर्गत बांधों का निर्माण, वृहद सिंचाई परियोजनाओं की स्थापना, राजमार्गों के निर्माण, शिक्षण–संस्थानों की स्थापना, अस्पतालों के निर्माण, वृहद औद्योगिक इकाइयों की स्थापना एवं शहरीकरण हेतु भूमि का अधिग्रहण किया जाना, असंख्य पेड़ों को काटा जाना, जंगलों का विनाश कर पशु–पक्षियों को प्राकृतिक आवास से वंचित किया जाना और प्राकृतिक संसाधनों का अनुचित दोहन किया जाना, प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में मानव अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

ऐसा माना जाता है कि भारत सहित सम्पूर्ण विश्व मे 1960 से 1970 के मध्य आद्युनिक विकास की शुरुआत हुई जो वर्ष 1980 तक आते– आते विस्थापन युक्त

विकास में परिवर्तित हो गई। विस्थापन युक्त विकास ने भूमिहीनता,रोजगार विहीनता, गृह विहीनता, हाशियाकरण, रुग्णावस्था, खाद्य असुरक्षा, सामुदायिक सम्पत्ति व साझी सांस्कृतिक विरासत से वंचित होना, इत्यादि समस्याओं को जन्म दिया।

वर्ष 2018 में भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की 25वीं वर्षगांठ के अवसर पर कहा था कि मानव अधिकारों का संरक्षण व संवर्धन भारतीय संस्क1ति का मूल एवं अनिवार्य भाग है जिसे राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग प्रभावी तरीके से पोषित कर रहा है। वास्तविक विकास के रूप में उसी विकास को अंगीकृत किया जाना चाहिए जो मानव अधिकारों के अनुकूल हो।

भारत जैसे विशाल आबादी वाले देश के लिए विकास बहुत जरूरी है लेकिन यह विकास समावेशी और चहुंमुखी होना चाहिए न कि एकतरफा। एकतरफा विकास समाज मे विद्वेष फैलाता है। विकास की कीमत पर विस्थापित होने वाले लोगों को कुछ आर्थिक मुआवजा तो दे दिया जाता है परन्तु यह विस्थापितों को होने वाली क्षति की पूर्ण क्षतिपूर्ति नहीं होती। विस्थापितों को होने वाली सामाजिक, सांस्कृतिक व अपनी पेतृक संपत्ति से आत्मीय लगाव रूपी अपूरणीय क्षति का मूल्यांकन धन केरूप में नहीं किया जा सकता है। जिसके कारण उन्हें अपने मानव अधिकारों से वंचित होना पड़ता है। मानव अधिकारों के प्रतिकूल इस प्रकार के विकास के कारण होने वाले विस्थापन से प्रभावित लोगों की संख्या के मामले में भारत विश्व में प्रथम स्थान पर है।

भारत में मानव अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु 12 अक्टूबर 1993 को राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना की गई थी जो कि मानवाधिकारों के संरक्षण की दिशा में विगत 28 वर्षों से प्रभावी भूमिका का निर्वहन कर रहा है। यही कारण है कि विकास परियोजनाओं में प्रत्यक्ष रूप से मानव अधिकार हनन की घटनाओं में कमी आयी है। इसके साथ ही साथ प्राकृतिक आपदाओं के फलस्वरूप होने वाले विस्थापन व पुनर्वास कार्यक्रमों में भी मानव अधिकारों का अतिक्रमण कम हुआ है। परन्तु अभी भी अप्रत्यक्ष रूप से विकास परियोजनाओं व प्राकृतिक आपदाओं के कारण होने वाले विस्थापन में मानव अधिकार हनन की घटनाऐं सामने आती हैं जिन्हें रोका जाना मानव अधिकारों के संरक्षण व संवर्धन हेतु अपरिहार्य है। इस लेख का उद्देश्य प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से मानवीय क्रिया–विधि व आचरण के कारण उत्पन्न होने वाले मानवाधिकार संकट की समस्याओं को सीमित कर मानवाधिकारों का संरक्षण व संवर्धन करना है।

**मानवाधिकार की अवधारणा और सतत् विकास**

मनुष्य होने के नाते मनुष्य को प्राप्त अधिकारों के समूह कोमानवाधिकारकी संज्ञा दी जाती है। मानवाधिकार की अवधारणा एक संश्लिष्ट अवधारणा है तथा प्रत्येक मानव अधिकार का विशिष्ट महत्व है। किसी एक मानव अधिकार को सीमित कर अन्य मानव अधिकार को महत्व दिया जाना मानवाधिकार की अवधारणा के विरुद्ध है। विकास के अधिकार को भी एक मानव अधिकार के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा दिसम्बर 1986 मे मान्यता प्रदान की गयी थी। परन्तु विकास का यह मानव अधिकार अब सभी मानव जाति यहां तक कि भावी पीढ़ियों तक विस्तृत हो गया है। व्यक्ति को प्राप्त विकास के इस अधिकार को किसी अन्य व्यक्ति के विकास के अधिकार को तिलांजलि देकर मान्यता प्रदान करना सबका विकास रूपी मानवाधिकार की वर्तमान अवधारणा के विपरीत होगा। संयुक्त राष्ट्र द्वारा जारी विकास के अधिकार आधारित

घोषणापत्र के अनुच्छेद 1 और 2 में यह प्रावधान किया गया है कि विकास के मानव अधिकार का सततविकास के साथ समन्वय स्थापित किया जाए। इस क्रम में विकास नीतियों एवं विकास परियोजनाओं को तैयार करते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि कहीं किसी विकास नीति या विकास परियोजना से समाज के किसी वर्ग या भावी पीढ़ी के मानवाधिकारों का हनन तो नहीं हो रहा है।

विकास तभी टिकाऊ रह सकता है जब वह प्राकृतिक संसाधनों के संतुलन की रक्षा करता हो। इसी विचार के केंद्र में सतत् विकासकी अवधारणा का जन्म ब्रंटलैण्ड आयोग की रिपोर्ट 1987 के द्वारा परिभाषित हुआ है। सतत् विकास की इस अवधारणा को चरितार्थ करने हेतु अर्न्तराष्ट्रीय समुदाय ने इस सम्बन्ध में निरन्तर प्रयास जारी रखा है।

सतत् विकास हेतु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से वर्ष 2015 के सितम्बर माह में एजेंडा–2030अनुमोदित किया गया। जिसमें सतत् विकास को प्रभावी रूप से अपनाने हेतु 17 लक्ष्यों एवम् 169 उद्देश्यों को निर्धारित किया गया।

सतत् विकास के लक्ष्य और उद्देश्य जिसमेंप्रमुख रूप से गरीबी, शिक्षा, स्वास्थ्य, लैंगिक समानता, जल एवं स्वच्छता,ऊर्जा, आर्थिक वृद्धि, बुनियादी सुविधाएं, उद्योग एवं नवाचार, संवहनीय शहर, उपभोग एवं उत्पादन,जलवायु कार्यवाही, पारिस्थितिक प्रणालियां, जैसे क्षेत्रों में उत्कृष्ट करने पर आधारित हैं। इनमें से लगभग सभी क्षेत्र मानव अधिकार से संबन्धित हैं।

**विकास, विस्थापन और मानवाधिकार संकट**

विकास को फील गुड कराने वाला शब्द, आंकड़ों की खुशनुमा तस्वीर उकेरने वाली पहेली, और अर्थशास्त्रियों एवं नीति नियंताओं द्वारा गरीबों को चकाचौंध कर देने वाले तिलिस्म की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। भारत जैसे विशाल आबादी वाले विकासशील देश के लिए विकास बहुत आवश्यक है, लेकिन विकास का सतत्, समावेशी और चहुंमुखी होना उससे भी अधिक आवश्यक है।

विस्थापन या दर बदर एक ऐसी सामाजिक समस्या है जिसमें कुछ विशेष कारणों के चलते समुदायों और लोगों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने को विवश होना पड़ता है।डब्ल्यूजीएचआर (WGHR)की ताजा रिपोर्ट के अनुसार विकास परियोजनाओं के कारण विश्व में सर्वाधिक विस्थापित होने वाले लोग भारत में हैं। भारत में आजादी के बाद से लगभग 6 से 6.5 करोड़ लोग विकास परियोजनाओं के चलते दर ब दर या विस्थापित हुए हैं। वहीं भारत में औसतन 10 लाख लोग प्रति वर्ष विकास परियोजनाओं के कारण विस्थापित होते हैं।

विस्थापन और अभाव का जन्मदाता विकास इन दिनों मानवाधिकार के हनन का यंत्र बनता जा रहा है। आंकड़ों और वास्तविक अनुभव दोनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि देश के विकास के नाम पर लोगों को उनकी आजीविका से, संस्कृति से और गौरवशाली इतिहास से वंचित कर उन्हें हाशिए पर धकेला जा रहा है। इससे उनकी विपन्नता दिन–प्रति–दिन तीव्रता से बढती जा रही है। विस्थापन के कारण उत्पन्न मानवाधिकार संकट की प्रतिक्रिया मेंसिंगूर, नंदीग्राम,नियामगिरि, काशीपुर, नवी मुंबई, मंगलौर इत्यादि स्थानों पर जन आन्दोलन हुए।इन आंदोलनों में कानूनों जैसे सेज(SEZ)भूमि अधिग्रहण इत्यादि, निर्णय प्रक्रिया व विस्थापन के पश्चात होने वाले लचर पुनर्वास में मानव अधिकारों के प्रति उपेक्षा को प्रमुख आधार बनाया गया था।

विकास हेतु अपनायी जाने वाली विस्थापन प्रक्रिया के तहत् अधिग्रहित भूमि के बदले में प्राप्त होने वाले मुआवज़े की प्राप्ति के लिये लोगों को संघर्ष करना पड़ता है। भूमि आय का स्थायी स्रोत है जबकि मुआवज़े के रुप में प्राप्त धनराशि अस्थायी स्रोत। भूमि की उपयोगिता व मूल्य में दिन–प्रति–दिन वृद्धि होती है जबकि मुआवजे के रूप में प्राप्त होने वाले धन की मुद्रास्फीति के कारण मूल्य में अवमूल्यन ही होता है। वहीं यदि एक साथ बहुत सारा धन मिल जाए तो उसका उचित उपयोग किस प्रकार करना है इसकी जानकारी सामान्य व्यक्तियों को नहीं होती है। जिसका परिणाम मुआवज़े की रकम के दुरुपयोग के रूप में सामने आता है। भूमि से व्यक्ति स्वयं का तो जीवन–यापन करता ही है इसके साथ ही साथ उसकी आने वाली पीढ़ियां भी अपना भरण पोषण कर सकती हैं जबकि मुआवज़े की रकम सामान्यत: व्यक्ति के भरण–पोषण में ही खत्म हो जाती है। उसकी पीढ़ियों को उससे कोई विशेष लाभ नहीं मिल पाता है। जब लोगों की भूमि को अधिग्रहित कर उनका विस्थापन होता है तो उन्हें केवल आर्थिक नुकसान ही नहीं होता अपितु उनका सामुदायिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक जीवन भी प्रभावित होता है जिसकी क्षतिपूर्ति आर्थिक रूप में कभी नहीं की जा सकती है।

विभिन्न अध्ययन बताते हैं कि विकास की परम्परागत संकल्पना के आधार पर होने वाले विकास ने भारत में आर्थिक विषमता में बहुत अधिक वृद्धि की है। यही कारण कि विस्थापन के अध्ययन में विकास के प्रतिमान केंद्र में आ जाते हैं। विकास प्रतिमानों से संबद्ध पूर्वानुमानों का परीक्षण होना चाहिए। जिसे सामाजिक प्रभाव मूल्यांकन भी कहा जाता है जिसको सभी विकास रूपी परियोजनाओं में समाहित करना अनिवार्य हो गया है।

भारतीय संविधान में मानव अधिकारों को मौलिक अधिकारों के रूप में मान्यता प्रदान करते हुए मानवअधिकार का संरक्षण व संवर्धन विभिन्न अनुच्देदों में किया गया है। इसी क्रम में व्यक्ति को प्राप्त जीवन के अधिकार में आर्थिक,सामाजिक तथा सांस्कृतिक तथा सामाजिक व्यवस्थाओं एवं हितों को मान्यता प्रदान की गयी है। यदि किसी विकास परियोजना में व्यक्ति के आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्थाओं एवं हितों की अनदेखी की जाती हैतो यह अप्रत्यक्ष रूप से अनुच्छेद 21 के तहत प्राप्त जीवन के अधिकार रूपी मौलिक अधिकार उल्लंघन होगा।

**प्राकृतिक आपदाएं, विस्थापन और मानवाधिकार संकट**

परिवर्तन प्रकृति का सार्वभौमिक नियम है।परिवर्तन सदैव मानव हितों के अनुकूल नहीं होता। जो परिवर्तन मानव हितों के अनुकूल होते हैं उन्हें प्राकृतिक वरदान की संज्ञा दी जाती है। लेकिन वहीं मानव हितों के प्रतिकूल होने वाले परिवर्तनों को प्राकृतिक आपदा की संज्ञा प्रदान की जाती है। ऐसी कोई भी प्राकृतिक घटना जिससे मनुष्य के जीवन या सामग्री को हानि पहुंचे या पहुंचने की संभावना हो प्राकृतिक आपदा कहलाती है। ऐसी आपदाएं प्राकृतिक या मानव निर्मित कारणों का परिणाम होती हैं जो जान और माल की गंभीर क्षति करके मानव जीवन को दुष्कर कर देती हैं।

मानव के अनवरत प्राकृतिक संसाधनो के अविवेकपूर्ण दोहन ने प्राकृतिक आपदाओं के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण किया है। मानव द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के इस प्रकार होने वाले दोहन के मूल में मानव की तीव्र एवम् किसी भी कीमत पर विकास की अनैतिक महत्वकांक्षायें हैं। जिसका परिणाम हमे वनों के विनाश, भूमि के क्षरण, जल संकट, भूकम्प, सुनामी, विनाशकारी तूफान व कोविड–19 जैसी

महामारी के रूप में देखने को मिलता है। इसी से ग्लोबल वार्मिंग की समस्या भी पैदा होती जा रही है जो कहीं न कहीं प्राकृतिक आपदाओं को उत्पन्न कर रही है। मानव जीवन के उपभोक्तावादी दृष्टिकोण व अंधाधुंध विकास की होड़ में लगातार प्राकृतिक संतुलन को बिगाड़ रहा है। मानव के द्वारा स्वयं प्राकृतिक आपदाओं को प्रत्यक्ष रूप से आमन्त्रण दिया जा रहा है।

विकास जनित ये प्राकृतिक आपदाएं दो प्रकार से मानव अधिकारों के लिए संकट उत्पन्न करती हैं। प्रथम प्रत्यक्ष रूप से प्राकृतिक आपदाओं के कारण मानवीय जीवन नरक बन जाता है। इन आपदाओं से प्रभावित लोगों को प्रत्यक्ष रूप से मूलभूत मानव अधिकारों से वंचित होना पड़ता है।

वहीं इन विकास जनित प्राकृतिक आपदाओं के चलते होने वाले विस्थापन में भी मानव अधिकारों के अतिक्रमण की घटनाएं बहुतायत में देखने को मिलतीं हैं। प्राकृतिक आपदाओं के कारण होने वाले विस्थापन में भी सरकारें विस्थापितों को आर्थिक सहायता प्रदान कर उनका पुनर्वास तो कर देती हैं परन्तु आर्थिक सहायता मानव जीवन के सभी आयामों को सन्तुष्ट नहीं कर पाती। विस्थापित जनों का अपने मूल स्थान से जो सामाजिक, सांस्कृतिक व पर्यावरणीय लगाव होता है प्राकृतिक आपदाओं के कारण होने वाले विस्थापन से होने वाली क्षति की पूर्ति आर्थिक सहायता या धन के रूप में कभी नहीं की जा सकती।

विश्व में विस्थापन का सबसे प्रमुख कारण प्राकृतिक आपदाओं को ही माना जाता हैं। क्योंकि वर्ष 2018 में 27 लाख तो वहीं वर्ष 2019 में 50,18,000 लोगप्राकृतिक आपदाओं के कारण विस्थापित हुये थे।संयुक्त राष्ट्र की वर्ल्ड माइग्रेशन रिपोर्ट–2020 के अनुसार वर्ष 2018 में लगभग 64 लाख अधिक लोगों का विस्थापन प्राकृतिक आपदाओं के कारण हुआ है। वहीं वर्ष 2018 में 148 देशों के कुल 2.8 करोड़ लोगों का विस्थापन हुआ है, इनमें से लगभग 1.72 करोड़ अर्थात 61 प्रतिशत लोगों का विस्थापन आपदाओं के कारण तथा शेष 1.08 करोड़ या 39 प्रतिशत लोगों का विस्थापन हिंसा और आतंकवाद या नस्लीय संघर्ष जैसी घटनाओं के कारण हुआ है।

वर्ष 2020 के प्रारम्भ से शुरू हुये कोरोना काल के दौरान मानव अधिकारों के हनन की घटनाएं सामने आयीं। कोविड–19 जैसी महामारी के उत्पति के मूल में मनुष्य की अन्धकारपूर्ण व तीव्र विकास की चाह ही है जो मानवाधिकारों के हनन हेतु उत्तरदायी है।

**निष्कर्ष व सुझाव**

मानव अधिकारों का संरक्षण भारतीय संस्कृति का मूल है। इसी कारण भारत में विकास को मानवीय विकास में परिवर्तित करने के प्रयास किये गये हैं जिसमें राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की भूमिका प्रशंसनीय है। परन्तु कभी कभी यह प्रतीत होता है कि विकास की दौड़ में मानव अधिकारों के संरक्षण का सांस्कृतिक विचार बहुत पीछे छूट जाता है। जोकि देश की संस्कृति के प्रतिकूल है। विकास के कारण होने वाले विस्थापन से उत्पन्न मानवाधिकार संकट की समस्या दिन–प्रति–दिन विकराल रूप लेती जा रही है। जहां एक ओर मानव अधिकारों का संरक्षण आवश्यक है वहीं दूसरी ओर विकास भी मानवीय जीवन का एक महत्वपूर्ण आयाम है।

आज हमें विकास के उस स्वरूप को अंगीकृत करने की आवश्यकता है जो प्राकृतिक आपदाओं को जन्म देकर विस्थापन या किसी अन्य माध्यम से मानव अधिकारों

के लिए संकट के वातावरण का निर्माण न करें अपितु मानव अधिकारों के संरक्षण व संवर्धन करे।

सतत् विकास की अवधारणा ही विकास का वह पैमाना है जिसके माध्यम से हम विकास व मानव अधिकारों के संरक्षण में समन्वय स्थापित कर सकते हैं।विस्थापन चाहे प्राकृतिक आपदाओं के कारण हो अथवा विकास परियोजनाओं के कारण, विस्थापितों के पुनर्वास हेतु प्रभावी पुनर्वास नीति का निर्माण किया जाना मानव अधिकारों के हित में समय की मांग है। पुनर्वास नीति का निर्माण करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाए कि विस्थापितों के पुनर्वासन की प्रक्रिया में किसी भी प्रकार से उनके मानव अधिकारों को नुकसान न पहुंचे। विस्थापितों के पुनर्वासन हेतु अपनायी जाने वाली प्रक्रिया का क्रियान्वयन सीधे राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग या राज्य मानवाधिकार आयोगों की निगरानी में होना चाहिए। यदि किसी भी क्षेत्र के व्यक्तियों को उनके मूल स्थान से विकास के नाम पर विस्थापित किया जा रहा है तो उनके विस्थापन से उत्पन्न होने वाली समस्याओं का अनुमान विस्थापन से पूर्व ही किया जाना चाहिए। विस्थापितों को मौद्रिक क्षतिपूर्ति प्रदान करते समय केवल उनको होने वाली आर्थिक क्षति को ही ध्यान में नही रखा जाना चाहिए अपितु उनको होने वाली सामुदायिक, सांस्कृतिक व धार्मिक क्षति का भी ध्यान रखा जाना चाहिए। हालांकि विस्थापितों को होने वाली सामुदायिक, सांस्कृतिक व धार्मिक क्षति की पूर्ति आर्थिक पैमाने से नहीं की जा सकती। इसलिए उनको होने वाली इस प्रकार की क्षति की पूर्ति हेतु उचित व प्रभावी पैमाने का निर्माण होना भी अपरिहार्य है जिससे विकास के कारण होने वाले विस्थापन में विस्थापितों के मानव अधिकारों के अतिक्रमण को सीमित कर मानव अधिकारों की रक्षा की जा सके।

**सन्दर्भ– ग्रन्थ**


01. बंदोपाध्याय, चंद्राणी 2007, डिजास्टर प्रीपेयर्डनेस फॉर नेचुरल हजार्ड्सः करंट स्टेटस इन इंडिया, काठमांडुः इंटरनेशनल सेंटर फॉर इंटीग्रेटेड माउंटेन डेवलपमेंट।
02. बख्शी, उपेंद्र 1983ः 'टवर्ड्स ए डिजायन ऑफ काउंटरवेलिंग पीपुल्स पावर इन फारेस्ट लॉ एण्ड एडमिनिस्ट्रेशनः एजेंडम फॉर डेमोक्रेटिक लॉ मेकिंग' वाल्टर फर्नांडीज तथा शरद कुलकर्णी, टुवर्ड्स ए न्यू कॉरेस्ट पॉलिसीः पीपुल्स राइट्स एण्ड एन्वायरोंमेंटल नीड्स, नई दिल्ली, इंडियन सोशल इंस्टीट्यूट, पृष्ठ संख्या 102–107।
03. भल्ला, सुरजीत एस 2001 इंडियन पूवर्टीः आइडियालॉजी एण्ड एविडेंस, सेमिनार संख्या 497, जनवरी, पृष्ठ संख्या 22–27।
04. डा0 शिवदत्त शर्मा, मानव अधिकार, विधि साहित्य प्रकाशन (विधायी विभाग), विधि और न्याय मंत्रालय भारत सरकार, प्रथम संस्करण 2006।
05. भानुमथी, के 'द स्टेटस ऑफ वूमन अफेक्टेड बाइ माइनिंग इन इंडिया, इन एनॉन (ईडी), वूमन एण्ड माइनिंगः ए रिसोर्स किट, नई दिल्ली, दिल्ली फोरम, पृष्ठ संख्या 20–24।
06. भौमिक सुबीर, 2005, इंडियाज़ नार्थ ईस्टः नोबॉडीज़ पीपुल इन नो मैनस लैंड इन पाउला बनर्जी, सब्यसाची बासु राय चौधरी तथा समीर दास, इंटरनेशनल डिस्प्लेसमेंट इन साउथ एशिया, नई दिल्ली, सेज प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 144–147।

07. दास, समीर 2005, 'इंडियाः होमलेसनेस एट होम' पाउला बनर्जी, सब्यसाची बसु रायचौधरी तथा समीर दास, पृष्ठ संख्या 113–143।
08. सी. राजकुमार, पावरटी ह्यूमन राइटस एण्ड डेवलपमेंट, द हिन्दू, 22 फरवरी 2007।
09. दासगुप्ता, राजदीप, 2007, डिजास्टर मैनेजमेंट एण्ड रिहैबिलिटेशन, नई दिल्ली, मिततल प्रकाशन, डीसूजा, अल्फ्रेड, 1986, रिलेवेंस ऑफ रिलीजन एण्ड इंटर–रिलीजियस डायलॉग्स इन इंडिया, नई दिल्ली, इंडियन सोशल इंस्टीट्यूट।
10. पारस दीवान, ह्यूमन राइट्स एण्ड लॉ (यूनिवर्सल एण्ड इण्डियन) दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली, (1998)।
11. फर्नांडीज वाल्टर, 1993, ' विकास की कीमत' सेमिनार, (एन 412, दिसम्बर) पृष्ठ संख्या 19–25।
12. फर्नांडीज वाल्टर तथा विजय परांजपे, 1997ः 'भारत में विस्थापन के सौ सालः क्या पुनर्वास नीति को प्र्याप्त प्रतिक्रिया मिली', फर्नांडीज वाल्टर तथा विजय परांजपे,
13. गांधी एम.के. 1948, सेंट परसेंट स्वदेशी, अहमदाबादः नवजीवन पब्लिशिंग हाउस
14. गांगुली ठुकराल, इनाक्षी 1989 'डैम्सः फॉर ह्यूज डेवलपमेंट' वाल्टर फर्नांडीज तथा इनाक्षी गांगुली ठुकराल, डेवलपमेंट, डिस्प्लेसमेंट एण्ड रिहैबिलिटेशनः इश्यूज फॉर ए नेशनल डिबेट, नई दिल्ली, इंडियन सोशल इंस्टीट्यूट, पृष्ठ संख्या 39–61
15. गर्ग, प्रणामी 2007, 'लेंगपुई एअरपोर्टः द वील्ड एण्ड द रियल विक्टिम्स' नेशलन सेमिनार ऑन इंटरनलीडिस्प्लेस्ड पसंर्स इन द नार्थईस्ट, सिलचर, असम यूनिवर्सिटी, फरवरी 8–9।
16. भारत सरकार 1985 विकास परियोजनाओं की वजह से विस्थापित आदिवासियों के पुनर्वास पर समिति की रिपोर्ट, नई दिल्ली, गृह मंत्रालय कार, एनसी 1990।
17. लेम्बो, लांसी तथा शशिकांत कुमार 2009 लैंड एक्विजिशन, डिस्प्लेस्मेंट एण्ड रिसेटलमेंट इन गुजरात 1947–2004, सेज प्रकाशन।
18. नई दिशाऐं, अंक 15, 2011 (राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा प्रकाशित)।
19. जर्नल ; (अंग्रेजी) भारतीय राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, अंक 15, वर्ष 2016

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

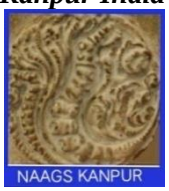


***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# धर्म विरोधी कानूनों का अंतर धार्मिक विवाह के संदर्भ में विश्लेषात्मक अध्ययन

**अंकेश नौटियाल**
विधि छात्र
लॉ कॉलेज,देहरादून
उत्तरांचल यूनिवर्सिटी भारत
**एवं मानसी शर्मा**
सहायक प्रोफेसर
लॉ कॉलेज, देहरादून
उत्तरांचल यूनिवर्सिटी भारत

धर्म निरपेक्ष और सहिष्णु होने पर गर्व करने वाले राष्ट्र के लिए बड़ी संख्या में धार्मिक मतभेद और समस्याएं मौजूद है। यह शोध पत्र भारत में अंतर धार्मिक विवाहों की जांच करता है। यद्यपि अंतर धार्मिक विवाह भारत में सभी विवाहों का अपेक्षाकृत सीमित अनुपात है। लेकिन जब हम भारत की विशाल जनसंख्या पर विचार करते हैं तो इसमें कई व्यक्ति शामिल होते है। भारत में अंतर धार्मिक युगल होना दिन–ब–दिन कठिन होता जा रहा है। सामाजिक दबाव के अलावा जोड़ों को कठोर और जटिल कानूनों द्वारा उत्पन्न कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ता है। यह समस्याएं हमारे धर्म निरपेक्ष देश के लिए वास्तव में सामंजस्य पूर्ण होना कठिन बना देती है। यह शोध पत्र इस बात पर करीब से नजर डालता है कि विभिन्न धर्मों का पालन करने वाले व्यक्ति कैसे शादी करते है,साथ ही उन बाधाओं और समस्याओं पर भी ध्यान केंद्रित करते हैं, जिनका वे सामना करते हैं। इस पत्र में हम अध्ययन करते हैं कि किस प्रकार अंतर धार्मिक जोड़े विवाह कर सकते हैं। सबसे पहले विशेष विवाह अधिनियम के माध्यम से फिर हम देखते हैं कि विशेष विवाह अधिनियम के तहत एक अंतर धार्मिक विवाह कैसे संपन्न होता है और यह भी उजागर करता है कि विशेष विवाह अधिनियम के माध्यम से विवाह करने पर जोड़ों को विभिन्न कठिनाइयों और बाधाओं का सामना करना पड़ता है और किस प्रकार विवाह को संपन्न करने केअन्य तरीकों को चुनना पसंद करते हैं। दूसरे काफी आसान तरीके से शादी के लिए किसी एक पक्ष के धर्म के रूपांतरण की आवश्यकता होती है और बाद में दोनोंके द्वारा विवाह व्यक्तिगत कानूनों के तहत किया

जाता है। यह शोध पत्र उन कानूनों के बारे में बताता है जिन्हें पेश किया गया है जो जोड़े के रास्ते में अतिरिक्त बाधाऐं डालते हैं। यह निष्कर्ष निकालने से पूर्व दोनों के समर्थन में और धर्मांतरण विरोधी कानूनों के प्रावधानों के खिलाफ अपनी बात स्पष्ट करता है।

मुख्य शब्द  अंतर धार्मिक विवाह विशेष विवाह अधिनियम धर्म विरोधी कानून धर्मांतरण

**भारत में अंतर धार्मिक विवाह**

भारत हमेशा से ही एक कठोर सामाजिक संरचना वाला स्थान रहा है। सभी धर्मों में और यहां तक कि विशेष धर्मों के भीतर संप्रदायों के बीच भी। धर्मनिरपेक्ष होने पर गर्व करने वाले देश में कई मौकों पर धार्मिक आधार पर शत्रुता की भावना आई है और आज जब अंतरजातीय विवाह करने से घृणा होती है विभिन्न धर्मों में विवाह करने से युगल के लिए और भी अधिक कठिनाइयां आती हैं। हालांकि केंद्र या राज्य द्वारा अंतर धार्मिक विवाह का लेखा–जोखा मौजूद नहीं है। परन्तु डायनामिक्स ऑफ इंटररिलिजियस एंड इंटर कास्ट मैरिज में एक अध्ययन में यह पाया गया है कि भारत में सभी विवाहों में केवल 2.1% ही अंतर धार्मिक है। यह केवल भारत में अंतर धार्मिक विवाह के आसपास के कठोर सामाजिक ढांचे को उजागर करता है। अपने धर्म से बाहर विवाह करने से व्यक्ति को पारिवारिक और सामुदायिक दोनों स्तरों पर समस्याओं का सामना करना पड़ता है। भारत में ऐसे कई मामले सामने आए हैं जिनमें से ऐसे जोड़े के परिवार थे जो अंतर धार्मिक विवाह के खिलाफ थे और उन्होंने हिंसा का सहारा लिया। इसके अतिरिक्त हिंसा, सामुदायिक बहिष्कार और ऑनर किलिंग जैसी घटनाओं का अंतर धार्मिक युगल के साथ घट चुकी हैं। भारत में अंतर धार्मिक विवाह की संख्या का कोई रिकॉर्ड नहीं है। केंद्र और राज्य दोनों में सरकार अंतर धार्मिक विवाह पर सर्वेक्षण करने में विफल रही है।  अध्ययन के दायरे में 15–49 वर्ष कीआयु में, 2.21% महिलाओं का विवाह उनके धर्म से बाहर विवाह किया गया था। ईसाईयों में 3.5 प्रतिशत के साथ मिश्रित विवाह में महिलाओं की दर सबसे अधिक है। सिख 3.2 प्रतिशत के साथ दूसरे स्थान पर हैं, हिंदुओं में 1.5 प्रतिशत और मुसलमानों के पास 0. 6 प्रतिशत है। दूसरी ओर, विवरण यह नहीं बताता है कि महिलाएं किस धर्म मेंशादी कर रही हैं। पंजाब में अंतर–धार्मिक विवाहों की दर सबसे अधिक 7.8% है। यह उच्च संख्या दरइस तथ्य के कारण हो सकती हैं कि सिख धर्म और हिंदू धर्म में समान धार्मिक परंपराएं और अनुष्ठान हैं। झारखंड (5.7 फीसदी) और आंध्र प्रदेश (4.9 फीसदी) में भी मिश्रित विवाह प्रचलित हैं। बंगाल में मिश्रित विवाहों की संख्या सबसे कम 0.3 प्रतिशत है, और छत्तीसगढ़ में सबसे कम है।[1]

**विशेष विवाह अधिनियम**

अंतर धार्मिक विवाह के मामले में पक्ष कारों के लिए विशेष विवाह अधिनियम 1954 के माध्यम से से एक दूसरे से शादी करने का एक संभावित विकल्प मौजूद है। विशेष विवाह अधिनियम 1954 में पेश किया गया था जो व्यक्तिगत मामलों के आसपास के कानून में कई सुधारों और अधतनो में से एक के रूप में पेश किया गया था। इसे तत्कालीन प्रधानमंत्री द्वारा प्राथमिकता दी गई थी। विशेष विवाह अधिनियम ऐसे विवाह को विनियमित करने के लिए बनाया गया था, जिन्हें धार्मिक परंपराओं के अनुसार नहीं

[1] शेख, एक्सप्लेंड : व्हाट ए स्टडी इन 2013 रिविल्ड अबाउट इटरफेद मैरिज इन इंडिया., द इंडियन एक्सप्रेस, 22 अक्टूबर, 2020

माना जा सकता था, जिसका मूल रूप से उद्देश्य अंतर धार्मिक या अंतरजातीय संघ था।

इस अधिनियम के तहत किसी भी धार्मिक रीति रिवाजों और प्रथाओं की कोई आवश्यकता नहीं है। वह तो सरकार द्वारा निश्चित प्रक्रियाओं के बाद स्थापित किया जाता है। यह कहा जाता है कि ऐसी प्रक्रिया व्यापक है साथ ही साथ जोड़े की गोपनीयता और सुरक्षा पर आक्रमण करती हैं। विशेष विवाह अधिनियम के तहत कोई धार्मिक अनुष्ठान शामिल नहीं है और विवाह सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी द्वारा नोटरी कृत और अनुशासित किया जाता है जिसे विवाह में शामिल पक्षों द्वारा निर्दिष्ट प्रारूप में अधिसूचित किया जाना चाहिए। इस विवरण को विवाह अधिकारी के रजिस्टर में दर्ज कराना होगा और आपत्ति प्रस्तुत करने के लिए एक सार्वजनिक सूचना प्रकाशित करनी होगी। शादी सार्वजनिक सूचना जारी होने के 30 दिनों के बाद और नोटिस जारी होने के 2 महीने के भीतर होनी चाहिए। 3 गवाहों के साथ आवेदक को बताए गए तरीके से एक बयान पर हस्ताक्षर करना चाहिए। अधिकारी विवाह को प्रमाणित करता है और इसे विवाह प्रमाण पत्र पुस्तक में पंजीकृत करता है। केवल तभी जब अधिनियम, 1954 की धारा 15[2] के सभी प्रावधानों को पूरा किया जाता है। जिन प्रावधानों को उजागर करने की आवश्यकता है और अक्सर विवाह के अधीन है कि पति–पत्नी का कम से कम 30 दिनों के लिए विवाह सलाहकार कार्यालय के जिले में रह रहे हो। इसके अलावा लेखकों ने कहा कि विशेष विवाह अधिनियम के अंतर्गत प्रावधान जोड़ों के लिए संवेदनशील प्रकृति के साथ उनके परिवार की आपत्तियों और सामाजिक दबाव भी उत्पन्न करते हैं। विशिष्ट प्रमुख प्रावधान जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जोड़ों के लिए उत्पीड़न का कारण बन सकते हैं उनमें शामिल है। धारा 5 यह जोड़ों के लिए पहली चुनौती है। यह खंड इच्छुक जोड़ों के निवास स्थान से संबंधित है। उनमें से कम से कम एक को उस तारीख से 30 दिनों के अवधि के लिए विवाह कार्यालय के जिले में रहने की आवश्यकता है।

धारा 6 के अनुसार जब ऐसी सूचना विवाह कार्यालय को दी जाती है तो विवाह कार्यालय को विवाह का नोटिस प्राप्त होने पर विवाह अधिकारी द्वारा इस तरह के नोटिस को कार्यालय में सहज दृश्य स्थान पर लगाना होगा।

उक्त सूचना को स्थान में सभी प्रासंगिक विवरणों के साथ प्रकाशित करने की आवश्यकता होती है। यह धारा लागू है इसलिए वैध आपत्ति उठाई जा सकती है। जो या तो एक जीवित पति या पत्नी से संबंधित है या पति पत्नी के प्रतबंधित रिश्ते की डिग्री में होने पर आपत्ति उठाती है। लेकिन कुछ सामाजिक चरमपंथियों की मौजूदगी के कारण अंतर धार्मिक विवाह के जीवनसाथी की संवेदनशील जानकारी उजागर करने वाली यह धारा चिंता और भय का कारण बन गया है। धारा 7 धारा किसी व्यक्ति को उस तारीख से 30 दिन की समाप्ति तक विवाह पर आपत्ति करने की अनुमति देती है जिस पर इस तरह के आधार पर आपत्ति जारी की जाएकिधारा 4 में निर्धारित एक या अधिक आवश्यकताओं को का उल्लंघन करेंगे। साथी,पागलपन और न्यूनतम आयु के कारण कोई भीसहमति देने में असमर्थ है। इस धारा में विवाह अधिकारी को आपत्ति की जांच करने और यह निर्धारित करने की आवश्यकता है कि विवाह को स्थापित होने से नहीं रोकता है। यदि 30 दिनों के भीतर आपत्ति को बरकरार रखा जाता है ता

[2] विशेषविवाह अधिनियम, 1954,(1954 का 43)

`प्रस्तावित विवाह का कोई भी पक्ष जिला अदालत में अपील दायर कर सकता है, जिसका निर्णय अंतिम होगा। हालांकि इन धाराओं[3] का इरादाअंतर धार्मिक जोड़ों केलिए उत्पीड़न का नहीं था, परंतु अंतरधार्मिक विवाह में जोड़ों के लिए उत्पीड़न का एक उपकरण रहा है। यह पक्षकारों के निजता के अधिकार का उल्लंघन करते हैं क्योंकि विशेष विवाह अधिनियम के तहत शादी करने वाले कई जोड़ों के परिवार ऐसे होते हैं जो इनके मिलन का विरोध करते हैं।बहुत से लोग जो विवाह का विरोध करते हैं केवल अपनी नियोजित शादी से बाहर निकलने के लिए जोड़े को शादी करने के लिए धमकाने की अपनी इच्छा को पूरा करने के लिए ऐसा कर सकते हैं। इसलिए यह कानून अंतर धार्मिक विवाह में जोड़ों के लिए मुश्किल बनाते हैं और पक्षकारों को परेशान करने के लिए आमंत्रण के रूप में कार्य करते है।

**भारत में धर्मांतरण**

धर्मांतरण की प्रथा से तात्पर्य कोई व्यक्ति अपने द्वारा अपनाए जाने वाले धर्म को बदलता है। भारत में यह नया नहीं है और सदियों से होता आ रहा है। मुगल साम्राज्य के दौरान लोग या तो इस्लाम का अभ्यास करना चुनते या इसमें जबरदस्ती किया जाता था। बाद में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन के दौरान ईसाई धर्म में धर्मांतरण के दोनों विकल्प उदाहरण स्वतंत्र सहमति और दबाव होने के साथ थे। भारतीय उपमहाद्वीप के दौरान कई राजाओं ने नागरिकों को प्रोत्साहन या हथियारों के माध्यम से धर्मांतरण के लिए विवश किया। समकालीन भारत में सभी नागरिकों को अपने मनचाहे धर्म का पालन करने का अधिकार है।

लेकिन यह अधिकार अक्सर छीन लिया जाता है। कभी राज्य द्वारा कभी साथी नागरिकों द्वारा आधुनिक भारत में ऐसे कई उदाहरण हैं जहां निगरानी समूह द्वारा दूसरे धर्म में धर्मांतरण पर राष्ट्रीय कृत कानूनों को लाने की कई प्रयास हुए हैं। हालांकि वे विफल रहे हैं। कुछ राज्यों ने प्रस्तावित करने लागू करने से नहीं रोका है। इन कानूनों का ऐसे रूपांतरण के उदाहरण को लक्षित करना है जो बिना पक्षकार की सहमति के हैं। कई राज्यों में कानून का उद्देश्य स्वतंत्रता प्रदान करना है। यह कानून अनुचित प्रभाव, प्रलोभन, कपट बल के द्वारा धार्मिक रूपांतरण को प्रतिबंधित करने के लिए हैं।

यूनाइटेड स्टेट्स कमिशन ऑन इंटरनेशनल रिलिजन फ्रीडम में किए गए अध्ययनों के आधार पर 2016–2018 तक की समय अवधि में। धर्मांतरण विरोधी कानून, धार्मिक अल्प संख्यकों के लिए धमकी भरा और कभी–कभी अपमानजनक माहौल बनाता है क्योंकि वह कदाचार के आरोपों को सही ठहराने के लिए सबूत की मांग नहीं करते हैं। एक कारक जो कई व्यक्तियों को जब एक ही धर्म के सदस्यों के बीच लेकिन शादी की पेशकश में आसानी होती है, उसी समय विवाह को भी अमान्य घोषित कर दिया जाता है। यदि धर्मांतरण विवाह के उद्देश्य से किया गया था। हिमाचल प्रदेश उत्तर प्रदेश उत्तराखंड में पारित कानून के अनुसार ये कानून जोड़ों पर सख्त आवश्यकताओं के साथ–साथ कठोर प्रतिबंध लगाते हैं और व्यक्ति जो राज्य को अधिक शक्ति देते हैं। भारत के प्रत्येक नागरिक को स्वतंत्रता है। भारतीय संविधान के तहत अपने धर्म को मानने अभ्यास करने का, प्रचार करने के लिए हालांकि इस स्वतंत्रता पर उचित सीमाएं लगाई, जिसमें धार्मिक रूपांतरण की जबरदस्ती भी शामिल है।

एक व्यक्ति को वास्तव में भौतिक लाभों के लिए परिवर्तित करने के लिए बहकाया या लालच दिया जा सकता है। जबरदस्ती और भ्रामक धर्मांतरण देश की सामाजिक

[3] विशेष विवाह अधिनियम, 1954 की धाराऐं 5,6,7,8

सरंचना के लिए एक गंभीर चुनौती है। धर्मांतरण में जबरदस्ती की घटनाओं ने अक्सर धार्मिक समूह के कई सदस्यों के विश्वासों को एक दूसरे से मिटा दिया है। लेकिन किसी को भी यह विचार करना चाहिए कि धर्मांतरण विरोधी कानून सामाजिक पदानुक्रम को बनाए रखता है। उन सामाजिक आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्तियों को सहज रूप से आखिरकार व्यक्तियों के लिए अपनी पहचान बनाकर नियम, परंपराओं को बनाए रखते हैं। समाजिक श्रेणियों में धर्मांतरण का प्रयास करते समय धर्मांतरित लोगों की व्यावहारिक बाधाओं को दूर करना चाहिए। एक और धर्म या यहां तक कि धर्मांतरण की अनुमति का अनुरोध करना, वास्तविक रुप से नोटिस भेजने का कार्य और धर्म परिवर्तन की अनुमति का अनुरोध करने से एक व्यक्तिगत निर्णय सार्वजनिक हो जाता है। धर्मांतरण कानून कुछ समुदायों के उद्देश्य से रक्षात्मक नियमों की एक बड़ा हिस्सा है। सबसे अधिक बार महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करते हैं, लेकिन यह प्रतिबंध लगाते हैं धर्मांतरण को लेकर परंपरागत रूप से आशंका रही है। लेकिन अचानक ऐसा उछाल राजनीति से प्रेरित और आंशिक रूप से एक राजनीतिक गणना है जिसे पेश कर बहुमत जितना है ।धार्मिक तत्वों के साथ सामाजिक प्रश्न एक लोकप्रिय चुनावी रणनीति है। कुछ राज्यों में जो राजनेता धर्मांतरण का विरोध करते हैं, वे अल्पसंख्यक समूह का ध्रुवीकरण करते हैं और मतदाताओं को आकर्षित करते हैं।

**धर्मांतरण विरोधी कानूनः राज्य स्तरीय अधिनियम**

धर्मांतरण विरोधी कानून राज्यस्तरीय अधिनियमित कानून है जिन्हें धर्म की स्वतंत्रता कहा जा सकता है। अधिनियम जो मुख्य रूप से रूपांतरण के नियमन से संबंधित हैं, उन विशुद्ध रूप से जो स्वैच्छिक नहीं है। राष्ट्रीय स्तर पर इतने प्रयासों के बाद मध्य प्रदेश और उड़ीसा राज्य हैं जो इस कानून का पालन किया। राज्य का कानून किसी तरह से भिन्न है, लेकिन इसकी सामग्री और संरचना समान है या कानून समुदाय के पूर्वजों के धर्म से मुख्य रूप से परिवर्तित होने की क्षमता को बाधित करता है। समाज के कमजोर वर्गों मेंजो अधिक आसानी स `प्रभावित होता है। धर्मांतरण को रोकने के लिए जो बल से कपट पूर्ण साधनों से होता है।

उड़ीसा में धर्म स्वतंत्रता अधिनियम, 1967। जिसमें कहा गया कि कोई भी व्यक्ति धोखाधड़ी प्रलोभन के इस्तेमाल से किसी व्यक्ति को एक से दूसरे धर्म में धर्मांतरण नहीं करेगा ना ही कोई व्यक्ति किसी को उकसाएगा। यदि कोई व्यक्ति अधिनियम के प्रावधान का उल्लंघन करता है तो वह व्यक्ति रू0. 500 के जुर्माने से दंडित किया जाएगा।

यदि मामला नाबालिक व्यक्ति या महिला से संबंधित है या अनुसूचित जाति से संबंधित है तो 2 साल का कारावास और रू0. 10000 के जुर्माने का प्रावधान है, लेकिन 1973 में उड़ीसा उच्च न्यायालय ने इस आधार पर असंवैधानिक घोषित किया कि राज्य विधानमंडल को धर्म पर कानून बनाने की कोई शक्ति नहीं है।

सन 2003 में गुजरात की सरकार ने धर्म की स्वतंत्रता विधेयक पारित किया। तत्कालीन मुख्यमंत्री वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने इस अधिनियम को सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक बताया। यह अधिनियम बल, प्रलोभन, साधन से एक धर्म से दूसरे धर्म में बदलने पर रोक लगाने से संबंधित हैं। बाद में गुजरात धर्म स्वतंत्रता अधिनियम 2021 को मुख्य रूप से विवाह के लिए किए गए धर्मांतरण से संबंधित जिसमें 3 साल 5000 का मौद्रिक जुर्माना की सजा का प्रावधानहै।

20 नवंबर 2017 को उत्तराखंड उच्च न्यायालय में दायर बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका में राज्य सरकार से कहा गया कि मध्य प्रदेश धर्म स्वतंत्रता अधिनियम के आधार पर

राज्य में भी ऐसा अधिनियम पारित करें। कोर्ट ने यह नोटिस भी किया कि यह पहला मामला नहीं है। अंतर धार्मिक मामलों से संबंधित परन्तु ऐसे बहुत से मामले हैं जिनमें शादी के लिए धर्मांतरण करवाया जाता है। राज्य सरकार न धर्म की स्वतंत्रता अधिनियम पारित किया जो कि मध्य प्रदेश धर्म स्वतंत्रता अधिनियम 1968 और हिमाचल प्रदेश धर्म स्वतंत्रता अधिनियम 2006 के समान है। प्रांतीय सरकार ने हाईकोर्ट के आदेश जो कि मार्च 2018 में दिया गया था उसके आधार पर राज्य विधान मंडल में। उत्तराखंड धर्म की स्वतंत्रता अधिनियम पारित करवाया जिसे 18 अप्रैल, 2018 को राज्यपाल की स्वीकृति प्राप्त हुई और यह उत्तराखंड धर्म स्वतंत्रता अधिनियम 2018 में अस्तित्व में आया।

अन्य राज्यों के धर्मांतरण विरोधी कानूनों की ही तरह सन 2006 में हिमाचल प्रदेश फ्रीडम ऑफ रिलिजन एक्ट पारित किया गया जो कि 18 फरवरी 2007 को अस्तित्व में आया। यह अधिनियम विवाह के लिए धर्मांतरण पर प्रतिबंध लगाता है।

उत्तर प्रदेश सरकार के द्वारा हाल ही में लव जिहाद नामक चर्चित विषय पर 28 नवंबर 2021 को उत्तर प्रदेश कन्वर्जन ऑफ रिलीजन रेगुलेशन 2020 को मंजूरी दी। इस अधिनियम ने मुख्यता दो आधारों पर ध्यान केंद्रित किया हुआ है ,पहला धर्मांतरण प्रवचना, दुर्विनियोग, कपट, बल से और दूसरा "धर्मांतरण केवल विवाह के लिए"को दंडित प्रावधान बनाया और 10 वर्ष की सजा का प्रावधान किया। इस अधिनियम की धारा 6 यह घोषित करती है की ऐसा विवाह अवैध ओर शून्य है जो धर्मांतरण के प्रयोजन से किया गया है और साथ ही धर्मांतरण भी अवैध होगा। उपरोक्त सभी राज्यो द्वारा पारित कानूनों में बल, प्रलोभन, कपटपूर्ण, बहकावे ओर केवल विवाह के उद्देश्य से धर्मांतरण पर रोक लगाते है। साथ ही नाबालिग या अनुसूचित जातियां, अनुसूचित जनजाति के सदस्यों का उपरोक्त कारणों पर धर्मांतरण के लिए कठोर करावा सका और जुर्माने का प्रावधान किया गया है। इसके अलावा कोई धर्मिक संघठन यदि इस प्रकार का धर्मांतरण करता तो उसके पंजीकरण को भी रद्द करने का प्रावधान है।

**धर्म विरोधी कानून और भारतीय संविधान।**

हमारे भारतीय संविधान की प्रस्तावना में शुरुआत में सेकुलर शब्द नहीं था, जिसे बाद में 42 वे संविधान संशोधन, 1976 द्वारा जोड़ा गया। अनुच्छेद 25 से 28[4] का अर्थ है कि राज्य किसी भी धर्म के विषय में भेदभाव नहीं करेगा और यह मौलिक अधिकारों के रूप में धार्मिक अधिकारों की रक्षा करता है। अनुच्छेद 25 में कहा गया है कि सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य के अधीन सभी लोगों को अधिकार है स्वतंत्र रूप से धर्म को मानने और अभ्यास करने और प्रचार करने के लिए इसका तात्पर्य है कि व्यक्ति किसी भी विश्वास के लिए स्वतंत्र है। राज्य किसी भी व्यक्ति के धार्मिक या नैतिक विचारों की जांच नहीं कर सकता। 19 (1) (ए) जो सभी लोगों को दी गई अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार करता है। अनुच्छेद 26 में कहा गया है कि सभी संप्रदाय धर्म के मामले में अपने कार्यों का प्रबंध कर सकते हैं और इन्हें राज्यों द्वारा विनियमित किया जाता है। इसके अलावा कानून में आवश्यक धर्मांतरण के ब्योरा का अनिवार्य प्रावधान अनुच्छेद 19 (1)(बी) और (सी) का उल्लंघन करता है जो निम्नलिखित से संबंधित है। किसी भी व्यक्ति को शांति से इकट्ठा होने दें, यदि पुर्न धर्मांतरण का बहिष्कार होता है तो यह अनुच्छेद 14 के तहत कानून के समक्ष समान अधिकारों का उल्लघंन है। कई अंतरराष्ट्रीय अनुबंध थे जो धर्मांतरण के कानून से भी

[4] जे०एन०पांडेय, कॉन्स्टिट्यूशनल लॉ ऑफ इंडिया 339–355 (48 वांसंस्करण, 2015)

संबंधित हैं। उनमें अंतरराष्ट्रीय दस्तावेजों में धार्मिक स्वतंत्रता का प्रतिबिंब जैसे कियू०एन०एच०आर०डी में दिखाया गया है। 'आध्यात्मिक या विश्वास उन्मूलन पर घोषणा, 'अंतरराष्ट्रीय अफ्रीकी' अधिकार चार्टर 'मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा' के साथ 'अत्याचार के खिलाफ अमेरिकी कन्वेंशन', 'स्टैटलेंसनेस में कमी पर 'विश्व शिखर सम्मेलन' जिसमें भारत ने कई लोगों के साथ सहयोग किया है। वह संधिया जो नागरिक और राजनीतिक अधिकार अंतरराष्ट्रीय वाचा, के अतिरिक्त कानून को परिवर्तित करने का विरोध करती है। यू.डी.एच.आर का अनुच्छेद 18 मुख्य रूप से धर्म बदलने की क्षमता के साथ रक्षा करने के अधिकारों से संबंधित है जो कि विचार मन और धार्मिक विश्वास की स्वतंत्रता के अलावा अंतःकरण के माध्यम से हो। आईसीसीपीआर का अनुच्छेद 18 अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता अंतः करण और पूजा का अधिकार देता है। सार्वजनिक सुरक्षा व्यवस्था, स्वास्थ्य और दूसरों का मनोबल और बुनियादी अधिकार राज्य पाटिया इस प्रकार हो सकती हैं कि सीमा लगा सकती है।

मानवाधिकार समिति ने 48 सत्र में विचार करते हुए आईसीसीपीआर के अनुच्छेद 18 के खंड 3 में कहा, यह कि खंड 18 जो स्वतंत्र चिंतन की बात करती है। धर्म की स्वतंत्रता से भिन्न थी। अनुच्छेद 18 और 17 के अनुसार किसी को भी बाध्य नहीं किया जा सकता है। अपने विचारों का खुलासाकरनेके लिए स्वतंत्र चिंतन पर कोई प्रतिबंध नहीं है लेकिन स्वतंत्रता है अनुच्छेद 19 के तहत सूचना के अधिकार के रूप में सुरक्षा इसके अलावा अनुच्छेद चार खंड 2 के अनुसार युद्ध सहित किसी भी परिस्थिति में अमेरिकी कन्वेंशन के और धर्म की स्वतंत्रता किसी भी समय नहीं हट सकती। आज के समय में आध्यात्मिकता और विचार मानवता का मूल तत्व किसी भी लोकतांत्रिक देश के धर्म की स्वतंत्रता को महत्वपूर्ण माना जाता है। यदि उनके स्वतंत्र अभ्यास में कोई प्रतिबंध है तो वह स्वतंत्रता का गंभीर उल्लंघन होगा।

**धर्मांतरण और विवाह के अधिकार से संबंधित न्याय निर्णयन**

**सरला मुद्गल बनाम भारत संघ और लिली थॉमस बनाम भारत संघ[5]**

इन दोनों मामलों मेंअदालतन मानाकी अगर बिना किसी वास्तविक इरादे ओर उद्देश्य से धर्मांतरण होता है अवैध है। इसके इलावा अदालत ने इच्छित विवाह की अनिवार्य सूचना, जिसक ेसूचना प्रकाशित और आपत्ति आमंत्रित करना है की आवश्यकताको हटा देता है। विशेष विवाह अधिनियम, 1954 की धारा 5,6,7 घोषणात्मक हैंऔर अनिवार्य नहीं है क्यों कि यह नागरिको ंकी" निजता का उल्लघंन" करता है, जो एक मौलिक अधिकार है जैसा कि के. एस.पुट्टा स्वामी के मामले में घोषित किया गया है। उपरोक्त मामले ने कानूनी सिद्धांत को स्थापित कियाकि" केवल विवाह केलिए किया गया धर्मांतरण अवैध",हालांकि विशेष विवाह अधिनियम ने अंतार्धर्मिक विवाहों की अनुमति दी है।

**नूरजहाँ बेगम उर्फ अंजलि मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[6]** में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने कहा कि केवल विवाह के उद्देश्य से धर्म परिवर्तन स्वीकार्य नहीं है। इस प्रकार इस्लाम में धर्म का रूपांतरण, इस्लाम में विश्वास और विश्वास के बिना लड़कियों के वर्तमान सेट में, और लड़कों के उदाहरण, केवल शादी के उद्देश्य के लिए, इस्लाम धर्म और इन विवाहों के लिए एक वैध रूपांतरण नहीं कहा जा सकता है।

---

[5] ए.आई.आर.1995 (3) एससीसी 635

[6] ए.आई.आर. 2014 एससी 57068

**सरला मुद्गल बनाम भारत संघ**[7] में अदालत ने कहा कि पहली शादी को हिंदू विवाह अधिनियम 1955 के तहत भंग करना होगा, इसलिए पुरुष की पहली शादी वैध होगी और हिंदू कानून के तहत दूसरी शादी की जाती है, उसके धर्मांतरण के बाद भारतीय दंड संहिता कीधारा 494 के तहत अवैध होगा।

**लता सिंह बनाम यू.पी.**[8] सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि एक ष्महत्वपूर्ण परिवर्तनकारी अवधिष् और संविधान के माध्यम से जाने वाले विचार तभी मजबूत रहेंगे जब हम अपनी संस्कृति की बहुलता और विविधता को स्वीकार करेंगे (भारत एक ऐसा विषम देश है) अपने प्रियजन के अंतर्धार्मिक विवाह से असंतुष्ट रिश्तेदार हिंसा या उत्पीड़न का सहारा लेने के बजाय 'सभी सामाजिक संबंधों में कटौती' का विकल्प चुन सकते हैं।

**न्यायमूर्ति के.एस. पुट्ट स्वामी (सेवानिवृत्त) और एक अन्य बनाम भारत संघ और अन्य**[9] अदालत ने माना कि व्यक्ति की शारीरिक रचना जीवन पर एक बार के व्यक्ति की चिंतन के महत्वपूर्ण मामले में निर्णय लेने की क्षमता थी जो शादी करने का अधिकार या निजता का अधिकार है।

**शाफीन जहां वी अशोकन के.एम**[10]. हादिया मामले के रूप में भी जाना जाता है, अदालत ने माना कि पोशाक, भोजन के विचार और विचारधारा, प्रेम और साझेदारी का मामला पहचान के केंद्रीय पहलू के भीतर है, न तो राज्य और न ही कानून साथी की पसंद को निर्देशित करता है और प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्र क्षमता को सीमित करता है।

**सलामत अंसारी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**[11] में अदालत ने माना कि साथी चुनने या पसंद के व्यक्ति के साथ रहने का अधिकार नागरिकों का मौलिक अधिकार है और अनुच्छेद 21 के तहत स्वतंत्रता का हिस्सा है, इस मामले में अदालत ने माना कि विवाह के धार्मिक रूपांतरण के विचारों को बरकरार रखना अस्वीकार्य है, अच्छा नहीं है।

**पक्ष में तर्क**

**केवल विवाह के उद्देश्य के लिए धर्मांतरण पर रोक लगाना**

**नाबालिग लड़कियों की भेद्यता को विनियमित करने के लिए–** प्रभावशाली उम्र में लड़कियों के शोषण को रोकने के लिए जो शादी के बहाने आसानी से 'मोहित' हो सकती हैं।

**कपटपूर्ण इरादों की जांच करने के लिए–**कानून उन संगठनों पर रोक लगाएगा जो विवाह के हड़पने के तहत सामाजिक सद्भाव को समृद्ध और बाधित करने के लिए कपट पूर्ण इरादे रखते हैं।

---

[7] ए.आई.आर. 1995 एससीसी 1531

[8] 2005 क्रि.लॉ.जर्नल 208

[9] ए.आई.आर. 2017 एससी 4161

[10] 2017 क्रि.लॉ.जर्नल 577

[11] (1994) 3 एससीसी 1

**वास्तविक अंतर्धार्मिक विवाहों के खिलाफ नहीं–** ये कानून अंतरधार्मिक विवाह को नहीं रोकते हैं और न ही धर्मांतरण को रोकते हैं बल्कि यह धोखे से किए गए धर्मांतरणों पर रोक लगाने के लिए दबाव में आते हैं।

**संविधान के विरुद्ध ये कानून–** इन कानूनों को अनुच्छेद 21 और 25 के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकार का उल्लंघन करने के लिए एक उपकरण के रूप में तैनात किया जा सकता है।

**अस्पष्टता–**ये कानून 'अनुचित प्रभाव', 'लुभाना', 'गलत बयानी' और 'जबरदस्ती' जैसे खुले बनावट वाले वाक्यांशों को नियोजित करते हैं।

**विधायिका के लिए कोई साक्ष्य समर्थन नहीं –**बलपूर्वक धर्मांतरण के सिद्धांत का समर्थन करने के लिए साक्ष्य की कमी इसके खिलाफ सबसे महत्वपूर्ण तर्कों में से एक है।

**समाज के कुछ वर्गों का सत्यापन–** समाज के एक निश्चित वर्ग को राजनीतिक खतरे के रूप में उद्धृत करने से कुछ समुदायों के और अधिक हाशिए पर जाने का मार्ग प्रशस्त होगा

**समाज में विभाजन –**अंतर्धार्मिक विवाहों की अवधारणा को संस्थागत बनाने और कानूनी समर्थन देने वाला ऐसा कानून सामाजिक ताने–बाने को और विकृत करेगा और साथ ही सामाजिक विचजन का कारण बनेगा।

**निष्कर्ष**

विशेष विवाह अधिनियम और राज्य की धार्मिक स्वतंत्रता कानूनों के व्यापक विश्लेषण और परीक्षण ने निष्कर्ष निकाला कि इन कानूनों की जटिलता, अंतर्धार्मिक विवाह का मार्ग आसान नहीं लगता है। भारत में कानूनी रूप से अंतर–धार्मिक विवाहों को मान्यता दी जाती है, भले ही उन्हें रूढ़िवादी तत्वों द्वारा पूरी तरह से खारिज कर दिया गया हो। विशेष विवाह अधिनियम और राज्य के धर्म की स्वतंत्रता कानूनों को भारत में धर्मांतरण विरोधी कानूनों के रूप में भी जाना जाता है, जो धर्मनिरपेक्ष और प्रगतिशील हैं, लेकिन जो आपत्तियां उठाई जा रही हैं, उन पर भी गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है। विशेष विवाह अधिनियम, 1954 के कुछ प्रावधानों को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई है, ऐसी स्थिति में सर्वोच्च न्यायालय इससे संबंधित विवादित मुद्दों पर निर्देश या दिशानिर्देश जारी कर सकता है। इस तरह की गाइडलाइन जारी करते हुए निजता के अधिकार और शादी के अधिकार को लेकर चल रही अनिश्चितता पर भी स्थिति स्पष्ट की जाए। साथ ही अधिनियम के कानूनी पहलुओं को भी संबोधित किया जाना चाहिए, इसके अलावा सरकार द्वारा विशेष विवाह अधिनियम के तहत शादी करने वाले जोड़ों के लिए इस कानून में सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए ताकि ऐसे जोड़े को किसी भी खतरे का सामना न करना पड़े। साथ ही सरकार को उन लोगों के प्रति सख्त रवैया अपनाना चाहिए जो धर्मांतरण के लिए मजबूर हैं या धर्मांतरण के लिए दबाव बनाते हैं और पीड़ितों के पुनर्वास और कानूनी सहायता के प्रयास किए जाने चाहिए। इसी तरह समान नागरिक संहिता की ओर बढ़ने के लिए कदम उठाए जा सकते हैं। आज भी यह आवश्यक है कि इस संदर्भ में गंभीरता से विचार किया जाए और जल्द से जल्द एक कानून बनाया जाए ताकि सद्भाव बना रहे और लोगों के संवैधानिक अधिकार की रक्षा की जा सके

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों पर कोविड–19 के प्रभाव का एक अध्ययन

**डा0 प्रदीप कुमार**
सहायक आचार्य, विधि विभाग
विधि अध्ययन विघापीठ
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविघालय
लखनऊ

असंगठित क्षेत्र के दैनिक भोगी श्रमिक पहले से ही असुरक्षित हैं। भारत के श्रम कानून, रोजगार की कमी, असंगठित क्षेत्र में मजदूरों की वृद्धि तथा कम प्रतिव्यक्ति आय भारत की प्रमुख समस्या है। असंगठित क्षेत्र के श्रमिक वे कहलाते हैं, जो किसी संगठन या सामाजिक सुरक्षा की किसी व्याप्ति (कवरेज) में नहीं आते हैं। भारत में अधिकतर लोग एक आय के लिए काम करके अपना जीवनयापन करते हैं। इसके अर्न्तगत वे सभी संस्थायें आती हैं जिनको कारखाना अधिनियम, 1948 के अर्न्तगत नही लाया जा सकता। भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में असंगठित क्षेत्र के श्रमिक एक या अधिक नियोक्ता के लिए कार्य करते है। असंगठित क्षेत्र के मजदूर दैनिक मजदूरी पर काम करते है जिस दिन उन्हें काम मिलता है उस दिन वे लोग आजीविका अर्जित कर पाते है। कोई कार्य नहीं मिलने पर उन्हें निराश होकर घर लौटना पड़ता है। फिर भी असंगठित क्षेत्र के श्रमिक भारत के सकल घरेलू उत्पाद (भारतीय अर्थव्यवस्था में) से अधिक योगदान दे रहें है। देश की अर्थव्यवस्था में 50 प्रतिशत से अधिक योगदान देने वाले असंगठित क्षेत्र के लोगों का कुल श्रमिकों की आबादी में हिस्सा 80 प्रतिशत है। वर्तमान विगत दो वर्षों से कोविड–19 की स्थिति में असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों को कार्य मिलना लगभग बंद हो गया है। जिसके कारण असंगठित क्षेत्र के मजदूरों के सामने रोजगार की समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया है।

**असंगठित क्षेत्र की परिभाषा**

असंगठित क्षेत्र शब्द का प्रयोग सामान्य तौर पर बहुत ही व्यापक और अलग–अलग अर्थों में होता आया है। असंगठित क्षेत्र के लिए गठित भारत सरकार के आयोग ने अपनी रिपोर्ट में असंगठित क्षेत्र को परिभाषित करते हुए कहा कि असंगठित क्षेत्र वस्तुओं और सेवाओं के विक्रय और उत्पादन की उन इकाईयों को समेटता है जो व्यक्तियों और घरों के गैर निगमित किये गये निजी उद्यम है जो निजी स्वामित्व का साझेदारों के आधार पर चलाये जाते है तथा जिसमें दस से कम लोग कार्य करते हैं

## असंगठित क्षेत्र का ऐतिहासिक परिदृश्य

असंगठित क्षेत्र के विभिन्न स्वरूपों का एक लम्बा इतिहास है यह एक सामान्य अवधारणा है कि सभी प्राचीन सभ्यता की सामाजिक संरचना में असंगठित क्षेत्र के मजदूरों की उत्पत्ति हुई। प्राचीन समाज खानाबदोश और अस्थिर था। भारत में इसकी उत्पत्ति प्राचीन काल में ऐतिहासिक रूढ़ि व व्यापारिक कियाकलापों में प्रतिबिम्बित होती हैं। वैदिक काल में ऋण, दासता के रूप में असंगठित क्षेत्र में प्रचलन में था। मौर्य काल में दास और किराये पर लिए गये श्रमिकों का प्रचलन था। गुप्त काल में श्रम सेवा के बारे में स्पष्ट उल्लेख मिलता है। किसान लोगों को राजा के लिए श्रम सेवा करनी पड़ती थी। श्रम की यह सामाजिक संरचना मध्यकालीन भारत में लम्बे समय तक निरंतर बनी रही। 18वीं और 19वीं सदी में भारत के लगभग सभी भागों में कृषि दासता सामान्यतः प्रचलित थी। लगभग इसी समय कारखानों में श्रमिकों का एक नया वर्ग औद्योगिकीकरण के कारण विश्व अर्थव्यवस्था में उभरा। पूंजी और श्रम औद्योगिक क्रान्ति के मुख्य कारण थे। परिणामस्वरूप मालिक और श्रमिकों की परम्परा का उदय हुआ। समाज के कल्याण के लिए यह आवश्यक था श्रमिकों के लिए श्रम–मानक बनाया जाये और उनको सुविधायें प्रदान की जायें। इस प्रकिया में केवल औद्योगिक या संगठित क्षेत्र में श्रमिकों को सुरक्षा प्रदान की गई। इस प्रकिया ने असंगठित क्षेत्र को संगठित क्षेत्र से पृथक किया। उसके बाद उदारीकरण के दौर में विकासशील देशों में असंगठित क्षेत्र के आकार में वृद्धि की प्रवृत्ति देखी जा रही है। विकासशील देशों में ग्रामीण क्षेत्रों से श्रमिकों का विस्थापन और अधिशेष जनसंख्या के कारण शहरी क्षेत्रों की जनसंख्या की वृद्धि का दबाव देखा जा सकता है तथा असंगठित क्षेत्र के श्रमिक विकासशील देशों की आवश्यकता बने हुए हैं।

## अवधारणात्मक स्पष्टीकरण

असंगठित क्षेत्र शब्द का प्रयोग अनौपचारिक क्षेत्र के लिए भी किया जाता है। यद्यपि कि अनौपचारिक शब्द का प्रयोग हार्ट द्वारा 1971 ई0 में इनफार्मल इनकम अपार्चन्यूटी एण्ड अर्वन इम्प्लाइमेन्ट इन घाना शीर्षक पर बोलते हुए किया गया था। 1975 में औपचारिक व अनौपचारिक क्षेत्र के बीच स्पष्ट रूप से अंतर किया गया। वह जो केवल शारीरिक परिश्रम का कार्य करके अपनी आजीविका चलाता है और जिसकी मजदूरी या मेहताना तय हो या तय न हो, श्रमिक या मजदूर कहलाता है श्रमिकों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता हैभारत सरकार के श्रम मंत्रालय ने असंगठित क्षेत्र को निम्न चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया है–

**(क) व्यवसाय के संदर्भ में** कृषि श्रमिक, छोटे और सीमांत किसान, भूमिहीन खेतीहर मजदूर, हिस्सा साझा करने वाले, बीड़ी श्रमिक, पशुपालक, ईंट भट्टो और पत्थर खदानों में कार्य करने वाले श्रमिक, निर्माण और आधारभूत संरचनाओं में कार्यरत श्रमिक, चमड़े के कारीगर, बुनकर, छोटे विक्रेता, रेहड़ी–पटरी आदि में कार्यरत श्रमिक को इस श्रेणी में माना गया है।

**(ख) रोजगार की प्रकृति के संबंध में** खेतिहर श्रमिक, बधुआ मजदूर, प्रवासी श्रमिक, चाय बागान के श्रमिक, अस्थायी मीडिया कर्मी, व्यापारिक प्रतिष्ठानों में कार्य करने वाले प्राइवेट सुरक्षा गार्ड, प्राइवेट ऑटो रिक्शा/टैक्सी चालक, परिवहन ट्रक एवं बस के ड्राइवर, ठेका श्रमिक व दैनिक श्रमिक आदि इस श्रेणी में आते हैं।

**(ग) विशेष व्यक्ति श्रेणी के संबंध में** सफाई कर्मी, कूड़ा बीनने वाले, सिर पर भार उठाने वाले, हाथ ठेला चालक, तेंदू पत्ता संग्रह करने वाले, पशु चालित वाहन चलाने वाले श्रमिक इस श्रेणी के अंतर्गत आते है।

**(ध) सेवा श्रेणी के संबंध में** घरेलू कामगार महिलायें, मछुआरें, नाई, धोबी, सब्जी एवं फल विक्रेता, अखबार वेण्डर, अस्पताल के कर्मचारी, दैनिक वेतन भोगी कर्मचारी, टिफीन कोरियर, धर्मिक कार्य कराने वाले (पुजारी, मौलाना आदि), होटल, कर्मचारी आदि इस श्रेणी के अन्तर्गत आते है।

**असंगठित क्षेत्र के मजदूरों के लिए विधिक संरक्षा**

यह ध्यान देने योग्य है कि भारत की स्वतन्त्रता से पहले के अधिकांश श्रम कानून संगठित क्षेत्र के श्रमिकों से सम्बन्धित थे। लेकिन स्वतंत्रता के बाद सामाजिक सुरक्षा, श्रम मानक से संबंधित कानून संगठित और असंगठित दोनों क्षेत्रों के लिए बने और ये कानून आंशिक रूप से स्वतंत्रता संग्राम के नेताओं के दर्शन तथा भारतीय संविधान के प्रावधानों को ध्यान में रखकर बनाये गये। ये कानून मानवाधिकार व संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर के प्रावधानों से भी प्रभावित है। स्वतंत्रता के बाद कई सारे श्रमिक अधिनियम पास किये गये और समय–समय पर इन कानूनों में आवश्यकतानुसार संशोधन भी हुआ।

असंगठित क्षेत्र के प्रवासी मजदूरों के लिए कई केन्द्रीय कानून बने। यह कानून जो प्रवासी मजदूरों के अधिकार का संरक्षण करते हैं तथा असंगठित क्षेत्र के मजदूरों के कार्य की दशा को नियंत्रित करते हैं उनको हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं–

**प्रथम** सामान्य तौर पर असंगठित क्षेत्र पर लागू होते हैं।

**द्वितीय** वे कानून जो असंगठित क्षेत्र के कुछ विशेष समूह पर लागू होते हैं जिनके रोजगार की प्रकृति और आकार का दायरा सीमित है।

**तृतीय** मुख्य रूप से संगठित क्षेत्र के श्रमिकों या ऐसे उद्यमों जिसमें श्रमिकों की संख्या 10 या उससे अधिक है पर लागू होते हैं लेकिन कुछ मामलों में या रोजगार के मामलों में ढील देकर यह कानून असंगठित क्षेत्र के मजदूरों पर लागू हो सकते हैं।

**संवैधानिक प्रावधान**

भारतीय संविधान का भाग 3 मौलिक अधिकार की बात करता है, अनुच्छेद 14 इस प्रकार है कि राज्य किसी भी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता और विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा। किसी भी व्यक्ति में असंगठित क्षेत्र के श्रमिक भी शामिल हैं। अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता को समाप्त करती है अस्पृश्यता असंगठित क्षेत्र में काम कर रहे श्रमिकों की एक अंतर्निहित समस्या है। अनुच्छेद 17 में अस्पृश्यता के विरूद्ध प्राप्त संरक्षण असंगठित क्षेत्र के मजदूरों को भी प्राप्त होगा। नागरिक अधिकार अधिनियम, 1955 के अंतर्गत भी अस्पृश्यता प्रतिबंधित है। अनुच्छेद 19 (1) सी में संघ बनाने की स्वतंत्रता प्राप्त है भारत के सभी नागरिक चाहे, वह असंगठित क्षेत्र के मजदूर क्यों ना हो अपना संघ या संगम बना सकते हैं। अनुच्छेद 21 में आजीविका को मौलिक अधिकार माना गया है, भारतीय संविधान का अनुच्छेद 23 व 24 असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों पर भी लागू होता है तथा भाग 4 में राज्य के नीति निर्देशक तत्व में आजीविका के साधनों के संरक्षण और संवर्धन की बात कही गई है। असंगठित क्षेत्र के सभी वर्ग पर लागू होने वाले कानून, संविधान का अनुच्छेद 39 (डी) जो समान कार्य के लिए समान वेतन का प्रावधान करता है को लागू करने के लिए भारत सरकार ने समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 को पारित किया।

**कर्मकारों के आर्थिक एवं न्यायसंगत उपबंध**

बंधुआ मजदूरी प्रणाली (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 जो बंधुआ मजदूरी को समाप्त करती है, लागू करने के लिए बनाया गया। कमजोर वर्ग के लोगों को आर्थिक

और शारीरिक शोषण से मुक्ति के लिए यह अधिनियम प्रावधान करती है कि असंगठित क्षेत्र के मजदूर से भी बंधुआ मजदूरी नहीं करा सकतें।

संविधान के अनुच्छेद 42 एवं 43 में कर्मकारों को न्यायिक तथा आर्थिक अधिकार दिए गए हैं। अनुच्छेद 42 महिला कर्मकारों की प्रसूति सहायता से सम्बन्धित है। इसमें कहा गया है कि राज्य काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए और प्रसूति सहायता के लिए उपबंध करेगा। इस संबंध में भारत की संसद द्वारा अनुच्छेद 42 को कारगर रूप में परिणत करने के लिए प्रसूति सुविधा अधिनियम, 1961 अधिनियमित किया गया है। इस अधिनियम में महिला कर्मकारों को प्रसूति प्रसुविधा के रूप में अवकाश वेतन सहित दिए जाने का उपबंध है। इस अधिनियम में 2016 में संशोधन भी किया गया है। **डा0बी0एम0 पटनायक बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य,** ए0आई0आर0 1974 एस0सी0 2092 यह सुविधा न्यायालय ने दैनिक वेतनभोगी महिलाओं तथा तदर्थ आधार पर कार्यरत महिलाओं को भी देने का निर्णय दिया है। असंगठित कर्मकार सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 2008 इस अधिनियम के प्रस्तावना यह प्रदर्शित करती है कि असंगठित कर्मकारों की सामाजिक सुरक्षा और उनके कल्याण के लिए तथा उनसे संबंधित या उनके अनुषांगिक अन्य विषयों का उपबंध करने के लिए यह अधिनियम बनाया गया है इसका विस्तार संपूर्ण भारत पर है।

यह अधिनियम संगठित क्षेत्र और असंगठित क्षेत्र में अंतर ही नहीं करती बल्कि यह नियोजक अस्थाई कर्मकार, पहचान पत्र, राष्ट्रीय बोर्ड, स्व–नियोजित कर्मकार, मजदूरी कर्मकार आदि को भी परिभाषित करती है।

इस अधिनियम की धारा 3(1) केन्द्रीय सरकार पर यह अधिरोपित करती है कि निम्नलिखित से सम्बन्धित विषयों पर कल्याणकारी योजना बनाए

**(क)** जीवन व निशक्तता सुरक्षाए **(ख)** स्वास्थ्य एवं प्रसूति फायदे **(ग)** वृद्धावस्था संरक्षण **(ध)** ऐसा कोई फायदा जो केन्द्रीय सरकार द्वारा अवधारित किए जायें

अधिनियम की धारा 3(4) राज्य सरकार को अधिरोपित करती है कि राज्य सरकार समय–समय पर असंगठित कर्मकारों के लिए निम्नलिखित में से सम्बन्धित कल्याणकारी स्किमें बनायेगी

**(क)** भविष्य निधि **(ख)** नियोजन क्षति फायदा **(ग)** आवासन **(ध)** बालको के लिए शिक्षा संबंधी योजना **(ङ)** कर्मकारों के कौशल का उन्नयन **(च)** अंत्येष्टि सहायता **(छ)** वृद्ध आश्रम

इसके अलावा यह अधिनियम राष्ट्रीय असंगठित कर्मकार सामाजिक सुरक्षा बोर्ड एवं राज्य असंगठित कर्मकार सामाजिक सुरक्षा बोर्ड की स्थापना का प्रावधान करता है।

**बंधुआ मुक्ति मोर्चा** के वाद में सुप्रीम कोर्ट ने यह निर्णय दिया कि बंधुआ मजदूरी प्रणाली (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 भारतीय संविधान में राज्य के नीति–निदेशक तत्व को लागू करने तथा असंगठित क्षेत्र के मजदूरों को स्वतंत्र करने और उनका पुर्नवासित करने के लिए पारित किया गया। बंधुआ मजदूरी प्रणाली (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 के प्रावधानों का उल्लंघन भारतीय संविधान में वर्णित अनुच्छेद 21 अनुच्छेद 23 के प्रावधानों का अतिक्रमण माना जाता है। इस प्रकार असंगठित क्षेत्र के मजदूरों का स्वतंत्र किया जाना और उनको पुनर्वासित किया जाना संवैधानिक अधिकार माना गया। **भेल वर्कर्स एसोसिएशन और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य** ए0आई0आर0 1985 एस0सी0 409 के वाद में सुप्रीम कोर्ट ने यह निर्णय दिया कि अगर कोई व्यक्ति ठेकेदार के द्वारा नियुक्त किया जाता है तो उसको प्रमुख

द्वारा नियुक्त माना जाएगा और उसको वह सभी अधिकार मिलेंगे जो कि प्रमुख द्वारा अपने कर्मचारी को दिया जाता है इस वाद में सुप्रीम कोर्ट ने ठेका श्रम (विनियम और उत्सादन) अधिनियम, 1970 के उद्देश्यों का उल्लेख करते हुए कहा कि संविदा कर्मी पर वही मजदूरी, छुट्टी, कार्य की घंटो और अन्य शर्तें लागू होंगे जो प्रमुख द्वारा नियुक्त किए गए कर्मचारी पर लागू होते है, हम सभी जानते है कि संविदा कर्मी असंगठित क्षेत्र के मजदूर माने जाते है। इस प्रकार असंगठित क्षेत्र के मजदूरों को समान कार्य के लिए समान वेतन दिया जाना चाहिए। इस प्रकार जो सुविधाएं ठेका श्रम (विनियम और उत्सादन) अधिनियम, 1970 में प्रमुख के द्वारा अपने कर्मचारी को नियुक्त करने में दिया जाता है वही मजदूरी कार्य के घंटे और कार्य की दशा ठेकेदार द्वारा लाए गए मजदूर को भी दिया जाएगा।

**प्रधानमंत्री श्रमयोगी मान–धन योजना**

भारत सरकार ने असंगठित कामगारों की वृद्धावस्था सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए प्रधानमंत्री श्रमयोगी मान–धन (पीएमएसवाईएम) पेंशन योजना प्रारम्भ की हैं। इस योजना के अन्तर्गत पंजीकरण फरवरी, 2019 से आरम्भ हो गई। जिनकी मासिक आय 15000 रू0 या उससे कम हो, वे ही पीएमएसवाईएम के तहत् निम्न शर्तों के साथ अपना पंजीकरण करा सकते है जिनकी आयु 18 से 40 वर्ष हो, नई पेंशन योजना के अर्न्तगत न आता हो, कर्मचारी भविष्य निधि संगठन का लाभार्थी न हो, आयकर दाता न हो।

**असंगठित क्षेत्र और राज्य की भूमिका**

नेशनल कमीशन ऑन लेबर एंड अनअर्गनाइज्ड सेक्टर के अनुमोदन को स्वीकार करते हुए असंगठित क्षेत्र के मजदूरों की समस्या जानने के लिए प्रथम राष्ट्रीय श्रम आयोग, 1996 तथा द्वितीय राष्ट्रीय श्रम आयोग, 2002 में स्थापित किया गया। सरकार समय–समय पर असंगठित क्षेत्र के मजदूरों के लिए नीतियां और योजनाओं का निर्माण करती रही हैं। असंगठित कर्मकार सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 2008 के अनुसूची–1 में निम्नलिखित असंगठित कर्मकार सामाजिक सुरक्षा योजना घोषित किया गया है–

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना, राष्ट्रीय कुटुंब फायदा योजना, जननी सुरक्षा योजना, हथकरघा बुनकर, समग्र कल्याण योजना, हस्तशिल्प कारीगर समग्र योजना, मास्टर क्राफ्ट व्यक्तियों के लिए पेंशन, मछुआरों के कल्याण और प्रशिक्षण के लिए राष्ट्रीय योजना तथा उसका विस्तार जनश्री बीमा योजना, आम आदमी बीमा योजना, राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना।

यह ध्यान देने योग्य है कि कोविड–19 और लॉकडाउन में सरकार द्वारा असंगठित कर्मकारों के लिए कोई विशेष राहत व अनुदान योजना शुरू नहीं की गई बल्कि जिन महिलाओं के पास जनधन वित्तीय समावेशन कार्यक्रम के अर्न्तगत बैंक खाते थे उन्हे वर्ष 2020 में अप्रैल, मई और जून के महीने में 500–500 रूपये प्रतिमाह देने की व्यवस्था की गयी।

**कर्मकारों को आर्थिक एवं सामाजिक संरक्षण**

आर्थिक, सामाजिक एंव सांस्कृतिक अधिकारों की अर्न्तराष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966 के अनुच्छेद 7 में प्रत्येक व्यक्ति के लिए काम की ऐसी न्यायोचित और अनुकूल दशाओं को बनाए जाने के लिए राज्य सरकार को प्रयास करने का दायित्व सौंपा गया है। महिलाओं के लिए पुरूष से कम मानदेय दिए जाने पर प्रतिबंध लगाया गया है। दोनों के लिए समान कार्य हेतु समान वेतन का उपबंध किया गया है। कर्मकारों तथा उनके

परिवार के लिए प्रसंविदा के अनुसार समुचित जीवन निर्वाह की व्यवस्था की जाएगी। काम की निरापद और स्वास्थ्यप्रद दशाएं बनाई जाएंगी। ज्येष्ठता और सक्षमता के अधीन रहते हुए प्रत्येक व्यक्ति को अपने नियोजन में समुचित उच्चतर स्तर पर प्रोन्नति का समान अवसर उपलब्ध होगा। सभी कर्मकारों को विश्राम अवकाश और कार्य के घंटों की युक्तियुक्त सीमा और साप्ताहिक तथा लोक अवकाश वेतन सहित प्राप्त होगा। मानवाधिकार की सार्वभौमिक घोषणा के अनुच्छेद 23 (2) एवं (3) में भी इस प्रकार के अधिकार प्राप्त है।

**असंगठित क्षेत्र के मजदूरों के मानवाधिकार पर कोविड–19 का प्रभाव**

मानवाधिकार वे अधिकार है, जो मनुष्य को उसके जन्म से उसकी जाति, पंथ, धर्म, लिंग और राष्ट्रीयता पर ध्यान दिए बिना मानव प्राणी होने के नाते प्राप्त होता है।

मानवाधिकार, वह अंर्तराष्ट्रीय नैतिक व कानूनी मापदंड है जो हर जगह सभी लोगों को गंभीर सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक कानूनी दुर्व्यवहारों से बचाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा अपनाया गया है।

कोविड–19 और लॉकडाउन के कारण असंगठित क्षेत्र के मजदूरों के आर्थिक शोषण (कई मामलों में बकाया वेतन भी नही दिया गया) किया गया उनको काम से वंचित किया गया जो उनके मानवाधिकारों का खुला उल्लंघन था। आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों की अर्न्राष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966 यह प्रावधान करती है कि किसी व्यक्ति को समानता स्वास्थ्य व सामाजकि सुरक्षा से वंचित नहीं किया जाएगा। लेकिन कोविड–19 काल में असंगठित क्षेत्र के कर्मचारियों की सामाजिक सुरक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक सुरक्षा आदि का अतिक्रमण हुआ। यह अभिसमय यह भी प्रावधान करती है कि जीवन स्तर को ऊॅचा उठाना, शिक्षा का अधिकार, उचित मजदूरी का अधिकार, काम के दौरान बेहतर सुरक्षा उपाय के साथ लागू करना आदि। लेकिन यह सभी मानवाधिकार कोविड–19 और लॉकडाउन में प्रभावित हुए।

**असंगठित कर्मकारों पर कोविड–19 का प्रभाव**

भारत सरकार व राज्य सरकार ने देश भर में लाकडाउन (मार्च, 2020 में) किया जिसके वजह से करोड़ों कर्मकारों पर असर पड़ा। आजीविका की संकट कामगारों के समक्ष खड़ी हो गई। लॉकडाउन के दौरान असंगठित क्षेत्र के कामगारों पर निम्नलिखित प्रभाव देखा गया –

**(क) कार्य पर प्रभाव** 24 मार्च 2020 को भारत में 21 दिनों का प्रथम लॉकडान लागू किया गया जिसके कारण भीड़ और कोलाहल से भरे शहरों को एकदम से रोक कर रख दिया, इससे असंगठित क्षेत्र के कामगारों में गंभीर वित्तीय व मानसिक तनाव पैदा हो गया। असंगठित श्रमिकों के ऊपर महामारी के मुकाबले सख्त लाकडाउन का ज्यादा गंभीर प्रभाव पड़ा। काम बंद हो जाने से श्रमिकों के पास अजीविका का कोई साधन नहीं बचा।

**(ख) भरण–पोषण पर प्रभाव** कोविड–19 और लॉकडाउन के प्रतिबंधों के कारण असंगठित क्षेत्र के कामगारों के परिवार पर भरण–पोषण संबंधित समस्या सामने आयी भरण पोषण जैसी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में भी सक्षम नहीं दिखें। जिसके चलते कामगारों के परिवार के सदस्यों को जो उनपर अश्रित थे उनको भूखा रहना पड़ा, यद्यपि नागरिक समाज संगठन जगह–जगह खाना पहुॅचाने का काम कर रहे थे जो सभी जरूरतमंदों का भूख मिटाने के लिए पर्याप्त नहीं थे।

**(ग) शिक्षा सेवा से जुड़े लोगों के नियोजन पर प्रभाव** यह संर्वविदित है कि स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय, कोचिंग संस्थान बंद कर दिए गए कोचिंग संस्थानों और गैर सरकारी स्कूल, कालेज आदि में असंगठित क्षेत्र के कर्मकारों की आजीविका चली गई।
**(घ) स्वास्थ्य पर प्रभाव** सामान्य असंगठित क्षेत्र के कर्मकारों पर सर्वदा यह आरोप लगाया जाता है कि वे बीमारी फैलाने के माध्यम होते हैं लेकिन कोविड–19 के समय में यह देखा गया कि असंगठित क्षेत्र के कामगार स्वयं ही पीपीई किट खरीद रहे थे मास्क और दास्तानों का प्रयोग कर रहे थे। इसके अलावा नियोक्ता द्वारा पीपीई किट मुहैया कराया गया। असंगठित क्षेत्र के मजदूरों पर कोविड–19 से स्वास्थ्य पर कम प्रभाव पड़ा लेकिन लॉकडाउन का ज्यादा प्रभाव था। यह भी पाया गया है कि इस दौरान अन्य बिमारी के मारीजों को स्वास्थ्य सुविधायें नहीं मिल पायी। कोविड़ के मरीजों के अलावा किसी भी बिमारी से ग्रसित गंभीर रोगी को भी सही समय से इलाज नहीं मिल पाया।
**(ङ) असंगठित क्षेत्र के महिला श्रमिकों पर प्रभाव** असंगठित श्रेत्र में कार्य करने वाली महिला श्रमिक समाज के निर्धन वर्ग से आती हैं। असंगठित क्षेत्र के महिला श्रमिकों पर पुरूषों की अपेक्षा कोविड–19 का नकारात्मक प्रभाव अधिक पड़ा महिलाएं शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक व सामाजिक प्रताड़ना की शिकार हुई। असंगठित क्षेत्र के महिलाओं पर घरेलू हिंसा में बढ़ोत्तरी पायी गई।

## निष्कर्ष और सुझाव

भारत सहित पूरा विश्व कोविड–19 की दूसरी लहर का सामना कर चुका है, अभी बाजार में वैक्सीन आने के बावजूद भी भारत में तीसरी लहर की संभावना बनी हुई है। कोविड–19 की पहली और दूसरी लहर से भारत में असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों को पारिवारिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक सभी प्रकार के असहनीय दुख का सामना करना पड़ा और अभी भी कर रहे हैं। लॉकडाउन की वजह से असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों की आजीविका प्रभावित हुई अतः सरकार को असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों की आजीविका को पुनः प्रारम्भ करने के लिए मदद करनी चाहिए। असंगठित क्षेत्र के नियुक्तियों की जिम्मेदारी तय करना होगा कि जिससे श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी, स्वास्थ्य संबंधित सुरक्षा–उपकरण को ईमानदारी से मुहैया कराए जाय।

## संदर्भ


1. एस डी पुनेकर, इकोनामिक रिव्योल्यूशन इन इण्डिया, 1994
2. रिपार्ट आन कन्डीशन ऑफ वर्क एण्ड प्रमोशन ऑफ लिवलीहुड इन द अनअर्गनाइज्ड सेक्टर
3. सुभाष कश्यप, भारत का संविधान, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, 2012.
4. डा0 शिव दत्त शर्मा, मानव अधिकार, विधि साहित्य प्रकाशन(विधायी विभाग), विधि और न्याय मन्त्रालय, भारत सरकार, प्रथम संस्करण 2006.
5. पी.के. गोयल, हयूमन राइट्स एण्ड हयूमन्टेरियन अफेयर्स, 2005.
6. भारत 2021, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 65वां संस्करण 2021.
7. मानव अधिकारः नई दिशाएं, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली, भारत, अंक 14, 2017

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

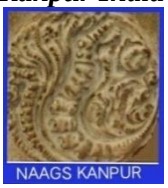


***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# आदिवासियों के मानवाधिकार

**डॉ मुनीश स्वरुप**
रिसोर्स पर्सन
डिपार्टमेंट ऑफ लॉ
स्कूल ऑफ लीगल स्टडीज
बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर यूनिवर्सिटी लखनऊ
**डॉ पंकज कुमार रावत**
रिसोर्स पर्सन
डिपार्टमेंट ऑफ लॉ
स्कूल ऑफ लीगल स्टडीज
बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर यूनिवर्सिटी लखनऊ

**प्रस्तावना**

परमात्मा की सर्वोत्कृष्ट कृति मानव है। सर्वविदित है मानव मे वो सभी गुण विद्यमान है जो ईश्वर मे है, अन्तर सिर्फ इतना है कि ईश्वर सर्वव्यापी और सर्वज्ञ है तथा मनुष्य एक देशीय और अल्पज्ञ ।

"ईश्वर अंश जीव अविनाशी । चेतन अमल सहज सुख राशि।।"[1]

की सार्थकता पर विचार करने पर यह तथ्य तर्क संगत लगता है कि मनुष्य उस सम्पूर्ण परमात्मा के पूर्ण का अंश मात्र है। अर्थात बिना संसय के कह सकते है कि संसार के सभी जीवों में मानव सर्वश्रेष्ठ जीव है जोपूर्ण ईश्वर का अंश है। मनुष्य को इस बात का बोध है कि–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भुर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।[2]

अर्थात मानव केवल कर्म करने का अधिकारी है और कर्मो का परिणाम देने वाला, कर्ता के अनुकूल बनाने वाला कोई और बैठा है। अतः मनुष्य या किसी भी प्राणी का पहला और प्रधान गुण कर्म को ही माना जा सकता है।सृष्टि के आरम्भ से ही मनुष्य जन्म से

[1] रामचरित मानस उत्तरकाण्ड
[2] भगवद गीता 2/47

कभी अकेला नही रहा जब वह पैदा हुआ तो उसके माता–पिता, भाई–बन्धु सहित पूरा परिवार व उसका मानव समाज था। मानव के सामने सबसे पहले जो उसकी प्राकृतिक मूल आवश्यकतायें रोटी, कपड़ा और मकान था यानि वह पैदा होते ही भूखा था।सबसे पहलेउसकी मॉ द्वारा अपना दूध पिला कर उसकी भूख मिटाई गयी। उसके बाद उसकोशरीर की सुरक्षा हेतु तन ढकने के लिए वस्त्र की एवं मौसम और अन्य जीवों से सुरक्षा हेतु घरौंदे की आवश्यता सदैव रहेगी।

इन मूलभूत आवश्यकताओं के पूर्ति की बात आई है, तो जहॉ से, जैसे और जब जो आवश्कता पूर्ति होती देखी गयी है, उस दशा मे इस मनुष्य नेउस स्थान पर, उस माध्यम में और उस काल में अपना अधिकार समझता चला आया है। बच्चा जिस मॉ से दूध पीता है उस पर वह अपना अधिकार[3] समझता है। जब पीता है, जैसे पीता है उन सारे घटकों परवह अपना अधिकार समझता है। मनुष्य के इस विकास प्रक्रिया मे अन्य घटक जैसे ज्ञान, विज्ञान, कला–कौशल, प्रौद्योगिकी आदि सबका विकास साथ–साथ होता है, होता रहा है और होता रहेगा। इसीलिए मानव अपने आप मे अकेला नही रह जाता उसके साथ सारी दुनिया रहती है। इस कथन की पुष्टि हेतु अथर्ववेद में इस बात को कुछ इस तरह से कहा गया है–

"मानव मात्र एक व्यक्ति नही है, वह एक सामाजिक जीव है। ईश्वर मात्र उन्हे स्नेह करते है, जो अन्य मनुष्यों, पशुओं, प्राणियों की सेवा करते है। मनुष्य की गरिमा परिवार के सदस्य होने में है । एक ओर मनुष्यअपने खून के रिश्तों माता पिता, भाई, पत्नि व बच्चो से बधा हैऔर साथ ही साथ वह दूसरी ओर समाज के प्रत्येक इकाई से भी बंधा है। इन्ही क्रिया कलापों में मनुष्य के कभी ना अलग होने वाले अधिकार भी शामिल होते है। यह सारा संसार मनुष्य से यह आशा करता है कि वह विभिन्न कलाओं को खोजेगा और विकसित करेगा। अथर्ववेद के इस सूक्त को समझने के पश्चात देखते है कि उपर्युक्त सूक्त प्रसंग मे मनुष्यों के पारस्परिक अधिकार और कर्तव्य[4] दोनो सम्मिलित है। अधिकार तथा कर्तव्य दोनो अलग अलग इकाईयॉ नही है। कर्तव्य करने के बाद ही मनुष्य कुछ पाने का अधिकारी होता है और कुछ अधिकार प्राप्त करके वह कर्तव्य परायण हो जाता है। अतः स्पष्ट है कि बिना कर्तव्यों के निर्वहन किये मनुष्य कोई भी अधिकार प्राप्त नही कर सकता है। कोई भी मनुष्यवहीं तक स्वतंत्र है जब किसी अन्य की स्वतंत्रता बाधित नही होती है। अतः सब समान है और सबको समानता का अधिकार मिलना चाहिए। और अधिकारों के मिलने का मतलब ये नही है कि आप किसी दूसरे के अधिकारों का अतिक्रमण करेंगें अर्थात दूसरे का अधिकार छींननें का अधिकार किसी का नही हो सकता। इस प्रकार मानवाधिकारों की मॉग उठने लगी हालॉकि मानवाधिकारों का बहुत लम्बा इतिहास नही है। जब एक मानव दूसरे मानव के अधिकारों का हनन करने लगाए एक दूसरे मानव का अधिकार छीनने लगा तब मानवाधिकार की कहानी शुरु हो गयी ।

---

[3]– अधिकार एक ऐसी व्यवस्था है जिसके बिना सामान्यतः कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नही कर सकता। हैराल्ड लास्की

[4]कर्तव्यों का अर्थ उन कार्यो से है जो व्यक्ति अपने हित के लिए अपनी इच्छानुसार नही, बल्कि निष्चित नैतिक सिद्धांतों और कानूनो के आधार पर करता है। समाज के नैतिक सिद्धांत और राज्य के कानून व्यक्ति के लिये कुछ काम करने के लिये और कुछ ना करने के लिये निष्चित करते है। इन निष्चित कार्यो के अनुपालन को कर्तव्य कहा जाता है।

## आदिवासियों के मानवाधिकार

पृथ्वी पर पैदा होने वाले सभी मानव एक समान है। मानव अधिकारों से तात्पर्य मानव के उन न्यूनतम अधिकारों से है, जो प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यक रुप से प्राप्त होने चाहिए क्योकि वह मानव परिवार का सदस्य है। प्रकृति ने प्रत्येक व्यक्ति को कुछ प्रकृतिक शक्तियॉ प्रदान कर रखी है। परन्तु दूसरा व्यक्ति इस व्यक्ति की इन शक्तियों के उपयोग मे बांधा डालता है । उससे अधिकार छीनने की कोशिश करता है और उसके विकास को रोकने की कोशिश करता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शान्ति स्थापित करने के लिये प्रत्येक मनुष्य को संतोशजनक पर्यावरण विकसित करने का अधिकार है, धार्मिक और मानवजातीय वे सभी अधिकार है, जिनसे वैश्विक स्तर पर शान्ति और सद्भाव विकसित किया जा सके।भारत मे मानवाधिकार[5] को समझने के लिए वृहदारण्यक उपनिषद के इस श्लोक का सहारा ले सकते है क्योंकि इस श्लोक मे मानवाधिकारों की सारी बातें समाहित है–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित दुःख भागभवेत ।।

सनातन धर्म के दृष्टिकोण से मानव अधिकारों की सुरक्षा मानव जीवन के सुरक्षा से सम्बन्धित है। प्रत्येक मनुश्य के ह्रदय में दयाभाव होना चाहिए। दया भाव के कारण ही एक मनुश्यदूसरे मनुश्य के जीवन की रक्षा करता है तथा यह कामना करता है कि सभी मनुश्य सुखी हो, निरोगी हो, कभी किसी को कोई कश्ट न भोगना पड़े।

ईसाई धर्म ग्रंथ बायबिल मे भी मनव के अधिकारों के सम्बन्ध मे चर्चा की गयी है और बताया गया है कि जो व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति से नफरत या ईर्श्या के भाव रखते है उनके बारे मे ईश्वर सब जानता है औरईश्वर उनकी सहायता कभी नही करता।[6]

इस्लाम धर्म के संस्थापक मुहम्मद साहब का कहना है कि "सभी मनुश्य आपस में भाई–भाई है। गैर मुस्लिम भाईयों को भी मुस्लमान भाईयों के समान इज्जत मिलनी चाहिए, उनसे गोरे काले, ऊॅच–नीच का भेदभाव नही होना चाहिए।" यह भी मानवाधिकार की सुरक्षा ही है। सभी धर्मो ओर मानव सभ्यता के अनुसार सभी मनुश्य एक दिव्य प्रतिभा लेकर जन्म लेते है और सभी का सम्मान, सभी की स्वतंत्रता और समानता एक जैसी है। इन्हे बनाये रखना सभी का अधिकार है। मानवाधिकार समाज में विकास करने तथा सुखी रहने की एक जीवन पद्धति का विकास करते है।[7]

मानवाधिकारों को कभी–कभी बुनियादी अधिकार, संवैधानिक अधिकारएवं प्राकृतिक अधिकार या जन्मजात अधिकार के रुप मे भी जाना जाता है, लेकिन मानव व्यक्तित्व का और इसके अधिकारों का संरक्षण करना प्रत्येक नागरिक और प्रत्येक राश्ट्र का उद्देश्य होता है।15 जनवरी 1941 को अमेरिकन राश्ट्रपति रुजवेल्ट ने सर्वप्रथम कांग्रेस को सम्बोधित अपने प्रसिद्ध सन्देश मे मानव अधिकार पद का प्रयोग किया था।

---

[5]मानव अधिकार संसार के समस्त व्यक्तियों को प्राप्त है, क्योकिं ये स्वयं मे मानवीय है वे पैदा नही किये जा सकते, खरीद या संविदावादी प्रक्रियाओं से मुक्त होते है।*डेविड सेलवाई*

[6] "Do not do unto others what is hateful to you, the God will know. Do into others as you would have them do unto you."

[7].Human right means the rights rela to life, liberty, equality and dignity of the individual Guaranteed by the constitution or embodied in international cobenants and emforced by courts of India.मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993

1945 में जब संयुक्त राश्ट्र संघ की स्थापना हुई तो इसने अपने प्रमुख उद्देश्यों मानव अधिकारों के संवर्द्धन और संरक्षण को रखा। मानवाधिकार की उत्पत्ति और विकास राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दो स्तरों पर हुई है। यद्यपि मानव अधिकार की संकल्पना पुरातन काल से ही प्राकृतिक विधि और प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धांतो में पाया जाता है, किन्तु व्यवहारिक दृश्टि से मानव अधिकारों के अंतर्राष्ट्रीय पहलू की उत्पत्ति द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान नाजियों ने मानव अधिकारों का विश्व स्तर पर खुलेआम उलंघन किया। जिसके वजह से अंतर्राश्ट्रीयशान्ति को बहुत खतरा पहुॅचा। इस युद्ध के प्रभाव में यह अनुभव किया गया कि विश्व शान्ति के स्थापना के लिये मानव अधिकारों की उपलब्धि परम आवश्यक है इसी कारण 10 दिसम्बर 1948 को संयुक्त राश्ट्र महासभा ने मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोशणा को अंगीकृत किया । इसके विश्वव्यापी प्रभाव के वजह से यह मानव अधिकार आंदोलन पूरे विश्व मे फैल गया।

प्रकृति के साहचर्य में मानव सभ्यता पल्लवित एवं पुश्पित हुई है। तब प्रकृति की गोद में इंसान जीवन–बसर करता था। चैन से रहता था। प्रकृति माँ सरीखी थी। मनुश्य कीआवश्यकताएँ पूरी करती थी। साहचर्य का सुख देती थी। इसी विकास क्रम में संस्कृतिभी पनपी, पल्लवित पुश्पित हुई। यह संस्कृति सीख देती थी कि इंसान को अपनीआवश्यकताएँ सीमित रखनी चाहिए। कुदरत से उतना ही लेना चाहिए, जितने सेउसका जीवनयापन चल सके। इसी जीवन–दृश्टि का नतीजा था। संतोश को परमसुख का दर्जा देना। कालांतर में जीवन–दर्शन बदला। असर संस्कृति पर पड़ा।सभ्यता के मानदंड भी बदले। अब माना यह गया कि प्रकृति का जितना दोहन करेंगे,उतना विकसित बनेंगे। विकास की परिभाशा बदल गई। प्रतिमान भी बदल गए।महात्मा गांधी ने याद दिलाया कि ''प्रकृति के पास सबकी जरूरतें पूरीकरने लायक संसाधन हैं, पर किसी एक व्यक्ति के भी लोभ को पूरा करनेलायक नहीं।''आज हम जिसे आदिवासी या वनवासी के नाम से जानते हैं, वह प्रकृति की गोदमें रहने वाला तबका है। प्रकृति के साहचर्य में जीवन–बसर करने वाला समाज है।आदिवासी समाज का बहुतायत उसी जीवन–दर्शन में विश्वास करता है, जहां प्रकृतिके दोहन की मनाही थी। यही वजह है कि आज भी आदिवासी लोग प्रकृति की गोदमें रहना पसंद करते हैं। आदिवासी समाज जिन इलाकों में है वहां प्रकृति औरप्राकृतिक संसाधन पर्याप्त धनी है।आदिवासी इलाकों के संसाधनों के दोहन पर आधारित विकास के मौजूदामॉडल के साथ आदिवासी समाज कदमताल मिला पाने में असफल साबित हो रहा है।इन दोनो नजरियों के बीच का द्वन्द्व कई तरह की चुनौतियों को जन्म देता है।मानवाधिकार के प्रश्न भी इन्हीं जटिलताओं की पैदाइश हैं। विकास की इस संस्कृतिमें जो तबका जितना नीचे रहता है, उसके मानवाधिकार का उतना ही अधिक हनन होता है।[8]

**आदिवासियों का प्रकृति एवं विकास**

आदिवासी समाज से आशय एक ऐसे समूह से लिया जाता है, जिसके पास अपना एक विशिश्ट नाम, बोली एवं क्षेत्र हो, साथ ही विशिश्ट रीति–रिवाज, विश्वास एवं धार्मिक अनुश्ठान हो तथा जो सामान्य उद्देश्य के लिए साथ काम करता हो। आदिवासी,जनजाति, वनवासी, गिरिजन तथा आदिम समूह आदि अन्य नामों से जाने जाने वाले इस समूह को आक्सफोर्ड शब्दकोश एक ऐसे जनसमूह के रूप में परिभाशित करता है, जो विकास की आदिम या बर्बर अवस्था में रह रहा हो, जिसका एक प्रमुख हो तथा जो अपने को एक ही वंश का माने। अपनी दीर्घ जीवन यात्रा में आदिवसी

[8]मानव अधिकार नई दिशायें वार्शिक अंक 11, 2014 डॉ0 रणजीत सिंह

प्रमुखतः पहाड़ों और जंगलों में निवास करती रही हैं और अपने अस्तित्व के लिए उन्हीं पर निर्भर रही हैं। जातीय समाज की भाँति स्तरीकरण का प्रचलन इनमें नहीं रहा है। विभिन्न आदिवासी कबीले रक्त सम्बन्धों के आधार पर निर्मित थे और स्वतंत्र समाज के रूप में व्यवहार करते थे। प्रत्येक आदिवासीसमाज अपनी जातीय पहचान और विशिश्ट संस्कृति के प्रति संवेदनशील होता था तथा आर्थिक संसाधनों के सामूहिक स्वामित्व को स्वीकार करने वाला होता था।

## जनजातीय लोगों के लिए भूमि अधिकार

आादिवासी लोग विश्व में प्रायः सबसे अधिक अभावी समूह है। अफ्रीका एवं दक्षिण अमेरिका के कई देशों में वे बहुसंख्यक हैं, पर वे आज भी वर्तमान पूंजीवादी तन्त्र के कारण शोशित हैं। इसी कारण अफ्रीका एवं दक्षिण अमेरिका में प्रायः हिंसक नागरिक आन्दोलनों होते रहते हैं। भारत जैसे बड़े देश में जनजातीय लोगों की जनसंख्या कुल आबादी का प्रायः आठ प्रतिशत है पर कई क्षेत्रों में वे बहुसंख्यक हैं। आज इन क्षेत्रों में भी नक्सलवादी हिंसक आन्दोलन जड़ जमा चुका है। इस आन्दोलन के मूल में इनकी जमीन सम्बन्धी अधिकारों की मांगें हैं। वैसे तो भूतकाल में इनकाकाफी भूमि पर अधिकार था पर शनैः–शनैः आधुनिक सभ्यता ने उन्हें वनवासी बना दियातथा इनके भूमि सम्बन्धी अधिकार छीन लिए। ये लोग मुख्यतः कृशिजीवी हैं तथापरिश्रमशील हैं। अतः यदि इन्हें जमीन दी जाये तो आदिवासी लोग अपना जीवनयापनकर सकते हैं। 'जीने का अधिकार' मुख्य मानव अधिकार है। हम यहाँ पर विश्लेशणकरेंगे कि किस प्रकार इन्हें जमीन सम्बन्धी अधिकार सुनिश्चित करके इनके मानवअधिकारों को संरक्षण दिया जा सकता है।[9]

वियना घोशणा एवं कार्य–योजना, 1993 के भाग 1 अनुच्छेद–14 के अनुसारव्यापक रुप से घोर गरीबी फैली होने के कारण मानवाधिकारों के पूर्ण और प्रभावकारीउपभोग में बाधा पड़ती है। इसलिए उसका तात्कालिक शमन और अन्ततः उसकी पूर्णसमाप्ति को अंतराश्ट्रीय समुदाय के लिए उच्च प्राथमिकता का विशय बना रहना चाहिए।अनुच्छेद 20 के अनुसार आदिवासी लोगों के मानवाधिकारों और मूलस्वतन्त्राओं का, समानता के स्तर पर और बिना किसी विभेद के, सम्मान किया जायेऔर साथ ही इन राज्यों को संगठन के महत्व तथा उनकी विविधता को स्वीकार करनाचाहिए।

भारत के संविधान की पांचवी अनुसूची तथा छठी अनुसूची में सन् 1950 से ही जनजातीय क्षेत्रों के लिए विशेश प्रावधान है ताकि वे अपने हितों के लिए स्वशासितइकाइयों, जिला–परिशदों तथा प्रादेशिक परिशदों के माध्यम से स्थानीय निर्णय ले सके।ये स्वशासी इकाईयां खनिजों के लिए भूमि के पट्टे भी दे सकती है। ये प्रावधानअसम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के जनजातीय क्षेत्रों में लागू हैं। ये क्षेत्र घटायेया बढ़ाये जा सकते हैं। कई जनजातीय समुदाय के लोग वनों पर निर्भर हैं पर अधिकांश कृशि भूमि परनिर्भर हैं। वे ही आदिकाल से भूमि स्वामी थे पर विकास के नाम पर तथा उत्तमहथियारों के बल पर उन्हें जंगल में धकेल दिया गया तथा उनकी जमीनों तथाखनिज–सम्पत्ति पर शनैः–शनैः विकास या उदारीकरण के नाम पर धनी–वर्ग का कब्जाहोता जा रहा है। सभी देशों में भूमि–सुधारों के माध्यम से उनको जमीन लौटाने केप्रयास किये जा रहे हैं पर उनके पालतू पशुओं के लिए सार्वजनिक चारागाह आरक्षितकिये गये पर वे भी शनैः–शनैः उनके समुदाय से बाहर चले गये। कई देशों मेंजनजातीय लोगों द्वारा अन्य लोगों को भूमि हस्तान्तरण पर विधि द्वारा रोक

[9]डॉ0 प्रमोद कुमार अग्रवाल आई. ए. एस. (सेवानिवृत्त), एवं वरिश्ठ लेखक, दिल्ली

लगाई गईपर अभाव के कारण तथा पूंजीवादी तन्त्र की शक्ति के सामने यह नहीं रुक सका।उनके समुदाय के नेतश्त्व वर्ग को यह अधिकार दिया गया कि वे उद्योग एवं खनन केलिए अन्य लोगों को भूमि पट्टे पर दे सके पर इस अधिकार का जनजातीय लोगों केहित के संरक्षण की अपेक्षा दुरुपयोग अधिक हुआ। आस्ट्रेलिया के मौलिक–जनजातीय लोगों से मुख्य ग्रामों तथा नगरों की ज़मीनें छीन ली गई हैं तथा उन्हें आरक्षित वनों में निवास करने के लिए मजबूर कर दिया गया है।

जमीन के असमान स्वामित्व को समाप्त करने के लिए ज़मीन का पुनः वितरण मानव अधिकार सुनिश्चित करने के लिए एक आवश्यक कदम है। जिन लोगों के पास जमीनों के बड़े–बड़े क्षेत्र हैं, लोकप्रिय सरकारों ने उनके पास से आवश्यकता से अधिक ज़मीनें सरकारी अधिनियम द्वारा लेकर भूमिहीनों तथा निर्धनों में बांटने के प्रयास किये हैं। यह सर्वविदित है कि भूमिहीनों को यदि जातीय आधार पर चिन्हित किया जाये, तो जनजातीय लोग उनमें सर्वाधिक होंगे। अतः लोकप्रिय सरकारों ने जनजातीय लोगों को भूमि वितरण में अग्राधिकार दिया है तथा भूमि–वितरण के लिए जो सूचियां तैयार की जाती हैं उनके नाम उनमें स्वयं ही ऊपर आ जाते हैं। भारत के सभी राज्यों में विभिन्न भूमि सुधार अधिनियमों में यह प्रावधान है कि आदिवासी लोगों को सरकारी भूमि के वितरण में प्राथमिकता दी जायेगी। उनमें सेअधिकांश अधिनियमों को भारत के संविधान की नवीं अनुसूची का कवच उपलब्ध है तथा इनकी वैधता या संवैधानिकता पर किसी भी कारण प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। भारत जैसा प्रावधान दक्षिण अफ्रीका, अलबानिया, ब्राजील, केन्या, मलावी, नामीबिया,फिलीपाइन्स, जिम्बाबे तथा विभिन्न राश्ट्रमंडलीय देशों में है जहाँ ब्रिटिशशासन काराज्य था एवं भूमिहीनों का ब्रिटिश राज्य में वर्शों तक शोशण होता रहा। केन्या एवंजिम्बाम्बे में विशेशतः विदेशी अंग्रेजों के स्वामित्व वाले बड़ी–बडी जागीरों को अधिग्रहणकरके दशीय गरीबों में वितरण किया जा रहा है जबकि ब्राजील, फिलीपाइन्स तथाकोलंबिया में उन जमीनों को लेकर वितरण किया जा रहा है जो या तो खाली पड़ी हैंअथवा जिनका पूर्णरुप से उपयोग नहीं हो रहा है।

**उपसंहार**

आज वे देश ही प्रगति की दौड़ में आगे हैं जिन्होंने अपने भूमिहीन या छोटे तथा सीमांत कृशकों के हितों पर उचित ध्यान दिया है। जापान में प्रायः 81 प्रतिशत भूमिहीनों कोसरकारी जमीनें वितरित की गई हैं जबकि चीन में नब्बे प्रतिशत से अधिक भूमिहीनों कोसरकारी जमीनें दी गई हैं। भारत में यह प्रतिशत केवल प्रायः 28 प्रतिशत है। अतःआवश्यक है कि कोई भी जनजातीय व्यक्ति भूमिहीन न रहे तथा यदि आवश्यकता पड़ेतो लोकप्रिय सरकारें उनके पड़ोस के क्षेत्रों में जमीनें खरीदकर उन्हें छोटे–छोटे जमीनके टुकड़े 16 डेसीमल तक वितरित करे। यदि काश्तकार दूसरे की जमीन पर खेतीकरता है, तो उसको काश्तकारी के अधिकार को मान्यता प्राप्त हो ताकि वह शांति तथानिरापदता से अपनी कृशि–जीविका का निर्वाह कर सके। इनस्वैच्छिक दिशा–निर्देशों के अनुसार भूमि, मत्स्य पालन तथा वन–क्षेत्रों में काम करनेवाले काश्तकारों, दखलदारों तथा निर्धन काबिज व्यक्तियों के अधिकारों को और उत्तमढंग से सुरक्षा देने की परम आवश्यकता है। काश्तकारी के अधिकारों के द्वारा हीजनजातीय लोग भूमि तक पहुँच सकते हैं तथा मत्स्य पालन एवं वन–क्षेत्र में अपनेपरम्परागत अधिकारों को कुछ सीमा तक प्राप्त कर सकते हैं।

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# 21वीं सदी में मानव अधिकार के प्रश्न

**डॉ0 राजकुमार परिचेता**
विशेषज्ञ संसाधक, विधि विभाग
विधि अध्ययन विद्यापीठ
बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय
लखनऊ
**इरशाद अहमद**
शोध छात्र, विधि विभाग
विधि अध्ययन विद्यापीठ
बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय
लखनऊ

**सारांश**

मानव अधिकार सभी व्यक्तियों को जन्म लेने के समय से ही प्राप्त होते हैं। वैश्विक समुदाय ने इन अधिकारों को अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय अभिलेखों में जगह दी है परंतु 21वीं सदी वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास सैन्य एवं औद्योगिक विकास तथा इण्टरनेट का युग है, जिससे कुछ नये अधिकारों को इन अभिलेखों में मान्यता देने की आवश्यकता है।

चूँकि इस समय इण्टरनेट जानकारी पाने तथा अभिव्यक्ति का एक प्रमुख साधन है, इसलिए इसका एक पृथक मानवाधिकार के रूप में मान्यता देने की आवश्यकता हुई जिससे प्रत्येक व्यक्ति तक इसकी पहुंच सरकारें सुनिश्चित करें। आर्थिक विषमता एवं महामारी मुक्त समाज में रहने का अधिकार होना चाहिए। महामारी के समय आवश्यकताजनित व्यक्ति की अस्पतालों तक पहुंच, सभी के लिए चिकित्सा सुविधा, सम्मानपूर्ण अन्तिम संस्कार का अधिकार तथा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा आदि कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु है जिनपर विचार की आवश्यकता है।

**प्रस्तावना**

मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो हमारे पास केवल इसलिए हैं, क्योंकि हम मनुष्य के रूप में मौजूद हैं, वे किसी भी राज्य द्वारा प्रदान नहीं किए गए हैं। राष्ट्रीयता, लिंग, राष्ट्रीय या जातीय मूल, रंग, धर्म, भाषा या किसी अन्य स्थिति की परवाह किए बिना, ये सार्वभौमिक अधिकार हम सभी के लिए निहित हैं। वे ऐसे अधिकार होते हैं, जो जीवन को पूर्ण एवं सरल बनाते हैं। मानवाधिकारों के विषय में ए0एच0 रॉबर्टसन ने

कहा है कि,''मानव अधिकार वह मूल अधिकार हैं, जिसे प्रत्येक पुरुष, स्त्री एवं बच्चे जो इस पृथ्वी पर रह रहे हैं इस नाते हकदार हैं क्योंकि उन्होंने मानव के रूप में जन्म लिया है, मानवाधिकारों को उन अधिकारों का समूह कहा जा सकता है, जो मनुष्य को मानवीय जीवन जीने में सहायता प्रदान करते हैं इसके बिना जीवन तो रहेगा परंतु पशुवत जीवन। यह मनुष्यों को केवल मानव के रूप में जन्म लेने से ही प्राप्त हो जाते हैं। मन बनाम इलीनायसकेवाद में अमेरिका के उच्चतम न्यायालय ने कहा कि, "जीवन का तात्पर्य पशुवत जीवन से अधिक है, इसलिए मानवीय जीवन जीने के लिए कुछ बातों की आवश्यकता होती है जो जीवन को संपूर्णता प्रदान करते हैं।" मानव के जीवन के लिए जिन बातों की आवश्यकता है उन्हें मानव अधिकार के रूप में वैश्विक अभिलेखों एवं राज्यों की विधियों में स्थान मिला हुआ है, क्योंकि प्रकृति (Nature) सभी मनुष्यों को सामान मानती है, इसलिए प्राकृतिक वस्तुओं एवं अधिकारों पर सभी का समान रूप से हक है और यह अधिकार सभी व्यक्तियों को केवल इसलिए मिल जाते हैं क्योंकि वह मानव के रूप में जन्म लिए हुए हैं। चूँकि यह वह समय नहीं है जब मनुष्य केवल खाने की ही तलाश में रहता था और भूख की तृप्ति उसके लिए सबसे बड़ी आवश्यकता थी। आज मनुष्य सामाजिक प्राणी है उसके लिए सामाजिक दायित्व भी हैं तथा साथ ही साथ उसे अपने राष्ट्र के लिए भी एक बड़ी भूमिका निभानी पड़ती है। यह सब तभी संभव हो पाएगा, जब उसे उसके अधिकारों का उपयोग करने का अवसर मिले। ऐसे अधिकार उसे जन्म से ही प्राप्त होते हैं भले ही वे किसी देश की विधियों में स्थान ना बना पाये हो।

**अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं एवं अभिसमयों में मानव अधिकारों को मान्यता**

मानवाधिकारों को प्रथम बार वैश्विक रूप से लेखबद्ध सन् 1948 ई0 में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा 1948के रूप में अपनाया गया इसमें 30 अनुच्छेद हैं जिनमें मानव अधिकारों को दो भागों में बांटा गया है प्रथम भाग में सिविल एवं राजनैतिक मानवाधिकार और द्वितीय में आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार रखे गए हैं, यह लिखत वर्तमान एवं भविष्य के मानवाधिकार सम्मेलनों, संधियों, प्रसंविदाओं और अन्य प्रकार के कानूनी लिखतों के लिए आधार प्रदान करता है।मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के पश्चात मानव अधिकारों की अभिवृद्धि एवं पालन के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकारों की सिविल और राजनीतिक प्रसंविदा तथा अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकारों की आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक प्रसंविदा 1966 तथा उनके वैकल्पिक प्रोटोकॉल को अंगीकार किया। मानवाधिकार सार्वभौमिक और अन्य अन्तरणीय हैं, मानव अधिकार प्राप्त करने के लिए किसी विशेष प्रकार की व्यक्ति या किसी विशिष्ट राष्ट्रया धर्म का सदस्य होने की आवश्यकता नहीं है। सार्वभौमिकता के विचार में स्वतंत्र अस्तित्व की कुछ अवधारणा शामिल है।

मौरिस क्रैंस्टन ने माना कि मानवाधिकार सर्वोपरि महत्त्व के मामले हैं और उनका उल्लंघन न्याय के लिए एक गंभीर खतरा है। यदि मानवाधिकारों की उच्च प्राथमिकता नहीं होती तो वे राष्ट्रीय स्थिरता और सुरक्षा, व्यक्तिगत और आत्मनिर्णय तथा वैश्विक समृद्धि जैसे अन्य शक्तिशाली विचारों के साथ प्रतिस्पर्धा करने की क्षमता नहीं रखते। यद्यपि उच्च प्राथमिकता का आशय यह नहीं है कि मानवाधिकार निरपेक्ष है।

मानवाधिकार सार्वभौमिक और संक्रमणीय नही है, दुनिया में प्रत्येक जगह सभी लोग उसके हकदार हैं। कोई भी स्वेच्छा से उनका त्याग नहीं कर सकता ना ही दूसरे उन्हें उससे दूर ले जा सकते हैं। मानवाधिकार अविभाज्य भी है। कोई भी सिविल,

राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक या सांस्कृतिक प्रकृति के हो, यह सभी मानव व्यक्ति की गरिमा में निहित है। नवीनतम उन सभी के अधिकार के रूप में समान दर्जा प्राप्त है, मानवाधिकारों का कोई पदानुक्रम नहीं है।

## भारत में मानवाधिकार की सुरक्षा हेतु तंत्र

भारत में मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 पारित किया गया। जो मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए कदम उठाता है तथाराष्ट्रीय मानव अधिकार कमीशन के माध्यम से मानव अधिकारों के उल्लंघन होने पर उनका संज्ञान लेकर उनकी रक्षा करता है। भारत के संविधान के भाग 3 एवं 4 उनके अधिकारों को स्थान मिला हुआ है। अनेक अधिकार ऐसे हैं, जिनको गारंटीकृत किया गया है तथा उनकी सुरक्षा राज्य का कर्तव्य है। उच्चतम न्यायालय ने भी अनेक निर्णय में नए–नए अधिकारों को मान्यता दिया है। भारतीय संविधान पर मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का प्रभाव स्पष्ट झलकता है तथा इस बात को उच्चतम न्यायालय ने भी स्वीकार किया है। केशवानंद भारती बनाम केरल राज्यके वाद में संविधान के भाग 3 में वर्णित मौलिक अधिकारों के बारे में बोलते हुए मुख्य न्यायमूर्ति सीकरी ने कहा था मैं यह धारित करने में असमर्थ हूँ कि यह अधिकार नैसर्गिक या असंक्रमणीय नहीं है।

## 21वीं सदी में मानव अधिकारों के नए आयाम

21वीं सदी में मानव अधिकारों की धारणा में आमूलचूल परिवर्तन हुआ है। यह युग डिजिटलीकरण का है, जिसमें मानव नित्य नए आयाम बनाते जा रहे हैं। इससे मानव अधिकारों का क्षेत्र भी व्यापक हो गया है जिस गति से वैश्विक विकास हो रहा है उनसे कहीं ना कहीं मानवाधिकारों में खलल डालना शुरू कर दिया है। वैश्विक औद्यौगिकीकरण की वजह से पर्यावरण पर प्रभाव पड़ा है, जिसके परिणाम स्वरूप लोगों के स्वच्छ वातावरण में रहने के अधिकार पर प्रभाव पड़ा है, क्योंकि मनुष्य एवं जीव जंतुओं के एक मात्र रहने की जगह (पृथ्वी) पर नई चुनौतियों ने जन्म लेना शुरू कर दिया है। अतः आज यह महसूस किया जा रहा है कि मानवाधिकारों का क्षेत्र विस्तृत किया जाए और लोगो को अनेक चुनौतियों के विरुद्ध रक्षोपाय प्रदान किए जाए। आज पूरा विश्व कोविड–19 महामारी के कारण से परेशान है। इस महामारी ने एक बार में समूचे विश्व को रोक सा दिया था बहुत से देशों में बड़ी संख्या में लोगों की मृत्यु हुई। इस महामारी में विश्व में अपूरणीय क्षति कारित की है। इसने लोगों के मानवाधिकार की पोल खोल कर रख दी है, लोगों को स्वास्थ्य एवं सुरक्षा का अधिकार है, लेकिन बहुत से व्यक्तियों को अस्पताल की सुविधा नहीं मिल पाई है।

साधारणतया प्रत्येक वर्ष दुनिया के किसी ना किसी हिस्से में किसी ना किसी ऐसी बीमारी के वायरस की खबर आती है जिसके खतरे सामान्य से बहुत ज्यादा होते हैं। निश्चित रूप से यह दुनियाभर में बदलते पर्यावरण, जलवायु में होने वाले उथल–पुथल, मनुष्य और उसकी बस्तियों की जीवन शैली में असंतुलन की वजह से होता होगा। प्रायः आजकल यह भी सुनने में आता है कि यह बीमारियां मनुष्यों द्वारा वायरसों पर प्रयोग का नतीजा है। देशों ने वैश्विक स्तर पर दूसरे देशों से आगे निकलने की होड़ में जैविक हथियारों पर प्रयोग करना शुरू कर दिया है। जिसका परिणाम अत्यंत विनाशकारी होगा। अतः समय की मांग है कि, मानव को इन सभी बीमारियों मुक्त वातावरण में रहने का अधिकार होना चाहिए।

**1. आधुनिक युग में विचारणीय कुछ प्रश्न निम्न हैं**

**(क) आर्थिक समानता वाले समाज में रहने का अधिकार**

जब प्रकृति ने मानवों में भेदभाव नहीं किया तो प्राकृतिक संसाधनों पर सिर्फ कुछ व्यक्तियों का ही अधिकार क्यों है? अधिकतर देशों की मातृ विधियों में आर्थिक असमानता को कम करने के विषय में प्रावधान किया गया है, परंतु लोगों माध्य यह असमानता कम होने के बजाय बढ़ती जा रही है। इसलिए आर्थिक समानता वाले राज्य में रहने का मानव अधिकार होना चाहिए।

**(ख) भ्रष्टाचार मुक्त शासन का अधिकार**

संपूर्ण विश्व आज इस बीमारी से पीड़ित है। यदि किसी देश की व्यवस्था में भ्रष्टाचार नामक बीमारी आ जाती है तो उसे अंदर से खोखला कर देती है। यह ना केवल शासन प्रशासन को दूषित करती है बल्कि वहां के व्यक्तियों पर इसका गहरा प्रभाव पड़ता है। भ्रष्टाचार युक्त शासन में व्यक्तियों का समान अवसर की क्षमता प्रभावित होती है। व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुसार लोक सेवाओं में भागीदारी सुनिश्चित नहीं हो पाती है। भ्रष्टाचार किसी भी देश के विकास को प्रभावित करता हैं। इसलिए व्यक्तियों को भ्रष्टाचार मुक्त शासन का अधिकार दिया जाना बहुत जरूरी हो गया है। भारत जैसे विकासशील देश के लिए यह और भी घातक है। भ्रष्टाचार पर लगाम लगाने को लेकर सरकार भले कितने दावे कर ले लेकिन वास्तविकता है कि भ्रष्टाचार कहीं कम नहीं हुआ है, बल्कि बढ़ता जा रहा है।

दावोस में 2020 में हुए विश्व आर्थिक मंच के सम्मेलन में ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल ने भ्रष्टाचार पर 180 देशों की जो सूची जारी की है इसमें भारत 80वें स्थान पर था और 2021 में वह 86वें स्थान पर खिसक गया।

**(ग) गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का अधिकार**

बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देना 21वीं सदी के मानवाधिकारों में प्रमुख स्थान रखता है। ऐसी शिक्षा आधुनिक समाज की मांग है। जब किसी कार्य में उस कार्य से संबंधित सभी गुणों का समावेश होता है तो उसे उस कार्य की गुणवत्ता के रूप में देखा जाता है और यही पहलू शिक्षा में भी होता है। हम शिक्षा में गुणवत्ता की बात जब करते हैं तो हम ऐसी शिक्षा को गुणवत्तापूर्ण मानेगें। जो छात्रों को उस शिक्षा का लाभ पहुंचाऐ तथा उससे समाज भी लाभान्वित हो सके।

**(घ) रहने योग्य ग्रह (पृथ्वी ) का अधिकार**

अधिकांश देशों ने पृथ्वी पर मौजूद तत्वों एवं प्रकृति का दोहन इस प्रकार किया है जिससे अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गई है। अधिकतर खनिजों का उपयोग, महासागरों एवं अंतरिक्ष में नित् नए प्रयोग, औद्योगिकरण, वनों की अंधाधुंध कटाई एवं सैन्य प्रयोग आदि ने अभी तक ज्ञात मनुष्यों के रहने की एकमात्र जगह पृथ्वी को बड़ी क्षति कारित की है। परिणाम स्वरूप दुनिया के अधिकांश शहरों में पर्यावरण ह्रास हुआ है। इस समय लोगों को शुद्ध वायु मिलना मुश्किल हो गया है। इसलिए जरूरत है कि, प्रत्येक व्यक्ति को जो इस धरा पर रह रहा है उसे रहने योग्य धरा का मानव अधिकार होना चाहिए।

**(ङ) विरलतम बीमारियों में आर्थिक एवं सामाजिक सुरक्षा का अधिकार**

विरलतम बीमारियों में जैसे मोटर न्यूरान डिजीज, कैंसर, मल्टीपल सिरोसिस आदि से पीड़ित व्यक्तियों के इलाज का खर्च सरकार द्वारा वहन किया जाना चाहिए। साथ ही साथ ऐसी बीमारियों से पीड़ित व्यक्तियों को समाज में उचित जीवन निर्वाह करने के लिए प्रभावी कदम उठाए जाने चाहिए और ऐसे व्यक्तियों के मानवाधिकारों के रूप में इन बातों को राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय अभिलेखों में स्थान मिलना चाहिए।

**(च) महामारी मुक्त वैश्विक समुदाय में रहने का अधिकार**

कोविड–19 ने मनुष्यों की स्थिति इतनी दयनीय कर दी है, जिससे भविष्य में ऐसी किसी महामारी के खतरे से इंकार कर पाना कठिन है। क्योंकि यह अभी तक पुष्टि नहीं हो पायी है कि यह बीमारी प्राकृतिक या कृत्रिम है, इसलिए ऐसे महामारी मुक्त समुदाय में रहने का प्रत्येक व्यक्ति को मानव अधिकार होना जरूरी है।

**(छ) वैश्विक महामारी में मुफ्त टीके का मानवाधिकार**

प्रत्येक व्यक्ति को वैश्विक महामारी से बचाव के लिए निर्मित टीके का मुफ्त में प्राप्त करने का मानव अधिकार होना चाहिए, क्योंकि महामारी से बचाव के जो प्रमुख तरीके हैं उनमें टीकाकरण प्रमुख है।

**(ज) सम्मानजनक अंतिम संस्कार का अधिकार**

वैश्विक महामारी कोविड–19 ने एक बार फिर इस बात पर वैश्विक बहस शुरू कर दी है कि, प्रत्येक व्यक्ति को सम्मानपूर्ण अंतिम संस्कार का अधिकार होना ही नहीं चाहिए बल्कि उसका पालन भी अपरिहार्य है।

**(झ) मुफ्त इंटरनेट सेवा का अधिकार**

21वीं सदी का विश्व इंटरनेट के युग का है फिर भी विश्व के अधिकांश व्यक्तियों तकइसकी पहुँच नहीं है । भारत जैसे वृहत जनसंख्या एवं शिक्षा की कमी वाले देश में इंटरनेट तक लोगों की पहुँच और भी कम है। समय की माँग है कि, अधिकाँश व्यक्तियों तक इसकी पहुँच बनाने के लिए इसको मानवाधिकारों की कोटि में स्थान मिलना चाहिए। यह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का एक प्रमुख माध्यम भी है। इसलिए यह अपरिहार्य हो जाता है।

**(ञ) डिजिटल डाटा सुरक्षा का अधिकार**

यह सदी डिजिटल युग की है अधिकांश व्यक्तियों का डाटा किसी ना किसी माध्यम से इंटरनेट पर पड़ा हुआ है। अब जरूरत इस डाटा को सुरक्षा प्रदान करने की है,जिससे कोई अन्य इसका दुरपयोग ना कर सके। क्योंकि इसका संबंध व्यक्ति की गोपनीयता से है इसीलिए इसको सुरक्षा के अधिकार को व्यक्ति के मानवाधिकार के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए।

**(ट) बिजली का अधिकार**

चूँकि इस अधिकार पर दूसरे अधिकार आश्रित हैं, जैसे जब बिजली रहेगी तभी लोगों को इंटरनेट चलाने में कामयाबी मिलेगी और बिजली पर भी ऑनलाइन शिक्षा पद्धति आश्रित है। इसलिए बिजली का अधिकार आज भी प्रासंगिक है जैसे 20वीं शताब्दी में था।

**(ठ) मृत्युदंड की समाप्ति**

किसी व्यक्ति को मृत्युदंड एक सजा के रूप में देना, जिसने किसी अन्य व्यक्ति की हत्या की हो, उसके द्वारा किए कृत्य को गलत कैसे दिखा जा सकता है? मृत्युदंड किसी भी अपराध की दिशा में एक उचित एवं मानवीय दंड नहीं है। 15 दिसंबर 1989 ई0 को महासभा ने सिविल एवं राजनीतिक अधिकारों के प्रसंविदा का द्वितीय ऐच्छिक प्रोटोकाल को एक प्रस्ताव द्वारा अंगीकार कर लिया। द्वितीय ऐच्छिक प्रोटोकाल के राज्य पक्षकारों ने इसकी प्रस्तावना में यह विश्वास व्यक्त किया है, कि मृत्युदंड की समाप्ति से मानव गरमा में वृद्धि होगी तथा मानव अधिकारों का क्रमिक विकास होगा। सियरा लियोन में मृत्युदंड को समाप्त करने के लिए 23 जुलाई को मतदान किया गया।

**(ड) त्वरित न्याय**

''विलम्ब न्याय को विफल कर देता है''। किसी चिर–परिचित सूत्र है। यदि पीड़ित व्यक्ति को समय पर न्याय नहीं मिली तो उसके लिए न्याय व्यर्थ एवं बेमानी हो जाता है।

**(ढ) भिखारियों का पुनर्वास**

अभिप्राय वेलफेयर सोसाइटी बनाम गवर्नमेंट ऑफ़ आंध्र प्रदेश के मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने भिखारियों के प्रति संवेदना जताई उच्च न्यायालय ने कहा कि यद्यपि देश में भिखारियों की एक गंभीर समस्या है, तथापि उनके पुनर्वास करना सरकार का दायित्व है।

**2. निष्कर्ष**

21वीं सदी में आज विश्व चौथी पीढ़ी के मानवाधिकारों पर बात कर रहा है, जिसमें सामाजिक सुरक्षा का अधिकार, काम का अधिकार, शिक्षा का अधिकार आदि चौथी पीढ़ी के अधिकार हैं। संयुक्त राष्ट्र की उत्पत्ति के बाद से मानवाधिकारों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अभिलेखों में मान्यता मिली है। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा, 1948, सिविल और राजनैतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा 1966, तथा आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा 1966, और उनके प्रोटोकाल आदि अंगीकृत कर मानवाधिकार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है। क्योंकि आज का युग इंटरनेट का है किसी वजह से विश्व में एक क्रांति सी आ गई है। इस डिजिटलीकरण के युग में आज जरूरत है की कुछ नए अधिकारों को मान्यता देने की, जिससे प्रत्येक व्यक्ति की पहुंच उन तक हो सके। आज जरूरत है पांचवीं पीढ़ी के मानव अधिकारों को मान्यता देने की। जिसमें इंटरनेट डेटा सुरक्षा, स्वच्छ वातावरण, सम्मानपूर्ण अंतिम संस्कार, त्वरित न्याय भिखारियों का पुनर्वास आदि है।

**सन्दर्भ**


1. डॉ एस0के0 कपूर, मानवाधिकार एवं अंतर्राष्ट्रीय विधि, (सेंट्रल लॉ एजेंसी) 28वॉ संस्करण, 2010।
2. डॉ0 एन0वी0 परांजपे, स्टडीज इन जूरिप्रूडेंस लीगल थ्योरी, (सेंट्रल लॉ एजेंसी) पृष्ठ संख्या 386।
3. डॉ0 बसंतीलाल बाबेल, न्यायिक प्रक्रिया,(सी0एल0पी0).
4. योजना ह्यूमन राइट्स एंड सोशल जस्टिस अप्रैल 2011.
5. जनसत्ता संपादकीय, 25 जनवरी 2020.
6. मन बनाम इलीनायस, 94 U.S.113 (1876).
7. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य, AIR 1973 SC 1461
8- अभिप्राय वेलफेयर सोसाइटी बनाम गवर्नमेंट ऑफ़ आंध्र प्रदेश, AIR 2001 Andhara Pradesh 273.
9- Human Rights Standard encyclopedia of Philosphy

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# डीएनए प्रोफाइल के साक्ष्य की अपराधिक न्याय प्रक्रिया में प्रासंगिकता

**डा. सूफिया अहमद**
असिस्टेंट प्रोफेसर, विधि विभाग
बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर यूनिवर्सिटी
लखनऊ
**दिनेश कुमार सिंह**
शोध छात्र, विधि विभाग
बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर यूनिवर्सिटी
लखनऊ

प्राचीन काल से ही मानव समाज में अपराध किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है जहाँ होता है। समय की गति और समाज की तकनीकी प्रगति के साथ, अपराध करने में अपनाए गए तरीकों और तकनीकों में एक असाधारण बदलाव आया है। आधुनिक आपराधिक न्याय प्रशासन में आपराधिक जांच और कानून प्रवर्तन में वैज्ञानिक प्रौद्योगिकियों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। वास्तविक अपराधियों और अपराधियों का पता लगाने के लिए पुलिस बल कई तकनीकी आपराधिक जांच उपकरणों का उपयोग करते हैं। कानून का उद्देश्य निर्दोष की सुरक्षा सुनिश्चित करना और दोषियों को बरी होने से रोकना है, ऐसा करने में कानून एक उपकरण के रूप में कार्य करता है। जब कानूनी प्रणाली विज्ञान और प्रौद्योगिकी के सहयोग से अपराधियों की पहचान करने और अपराध करने में शामिल अभियुक्तों को दंडित करने के लिए काम करती है, तो कानून समाज में सार्वजनिक सुरक्षा और व्यवस्था सुनिश्चित करने के लिए एक शक्तिशाली आपराधिक न्याय तंत्र बन जाता है।फोरेंसिक डीएनए प्रोफाइलिंग के साक्ष्य का उपयोग अदालत में मातृत्व विवाद, बच्चे की चोरी, यौन अपराध, अपहरण, बलात्कार हत्या, आव्रजन जैसे जटिल आपराधिक और दीवानी मामलों को सुलझाने के लिए किया जा रहा है।

विज्ञान एवं तकनीकी के तीव्र विकास ने मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया हैआपराधिक न्याय व्यवस्था भी इससे अछूती नहीं है जहां वैज्ञानिक साक्ष्यों की उपयोगिता दिन– प्रतिदिन बढती ही जा रही है प्डीएनए साक्ष्य फॉरेंसिक विज्ञानं कि

ऐसी ही एक विश्वसनीय एवं प्रमाणिक तकनीक है जिसका प्रयोग अपराधिक न्याय प्रक्रिया में अपराधियों कि पहचान, पीड़ित और प्राकृतिक आपदा के शिकार व्यक्तियों कीपहचान के लिए किया जाता रहा है प्डीएनए तकनीक आपराधिक न्याय प्रक्रिया में दो तरीके से योगदान देती हैरू एक तो वास्तविक अपराधी की पहचान करा करके और दूसरा निर्दोष व्यक्ति को सजा होने से रोक करके ५ यह फोरेंसिक वैज्ञानिक द्वारा संबंधित डीएनए प्रोफाइल के माध्यम से व्यक्ति की पहचान के उद्देश्य से उपयोग की जाने वाली तकनीक है। चुनौतियों के बावजूद डीएनए प्रोफाइलिंग आपराधिक जांच की एक शक्तिशाली तकनीक के रूप में सिद्ध हुई है। इस तकनीक का उपयोग चुनौतियों और संघर्षों से मुक्त नहीं है। न केवल यूडीएचआर में बल्कि भारतीय संविधान और कई अन्य अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में भी व्यक्ति की गोपनीयता और गरिमा को मानव अधिकार की नींव माना गया है। आपराधिक जांच में परीक्षा की अन्य तकनीक की तुलना में डीएनए प्रोफाइलिंग सबसे अधिक उद्देश्यपूर्ण, निष्पक्ष और व्यावहारिक रूप से सटीक तकनीक है ५

डीएनए शब्द का अर्थ डीऑक्सीराइबोज न्यूक्लिक एसिड है। यह मानव शरीर की प्रत्येक कोशिका में अनूठी विशेषताओं और संरचनाओं के रूप में पाया जाता है। यह कहना सही होगा कि डीएनए मानव शरीर का ब्लूप्रिंट है दूसरे शब्दों में डीएनए प्रत्येक व्यक्ति के भौतिक शरीर का जेनेटिक–बेयर–कोड है। डीएनए आनुवंशिक जानकारी या आनुवंशिक कोड को कवर करता है जो किसी व्यक्ति या व्यक्ति की पहचान करने के लिए आनुवंशिक जानकारी की आवश्यकता होती है। डीएनए व्यक्तियों की वंशानुगत विशेषताओं को परिभाषित करता है जो व्यक्ति की डीएनए संरचना में अंतर खोजने की भूमिका निभाते हैं।

डीएनए साक्ष्य सबसे पहले अमेरिका के वैज्ञानिक कार्लमुलीशऔर ब्रिटिश वैज्ञानिक एलेकजेफफ्री द्वारा विकसित किया गया था५ सामान्य शब्दों में इसे वन्शानुक्रम का निर्माण करने वाले बिल्डिंगब्लाक के नाम से जानते है प्आपराधिक जाँच में डीएनए साक्ष्यो का सर्वप्रथम प्रयोग एक वाद ब्रिटिश में किया गया था जिसमे १५ बर्ष की एक बालिका का बलात्कार एवं हत्या की गई थीप्न्यायालय ने डीएनए के सक्ष्य के आधार पर अपराध की सुनवाई की और अपराधी को सजा सुनाई५

अपराधिक जाँच प्रक्रिया में डीएनए साक्ष्य की तकनीक का प्रयोग विवादों से परे नहीं है क्योंकि डीएनए तकनीक का अपराधिक जाँच में प्रयोग से राज्य द्वारा एकान्तता, गोपनीयता एवं मानव गरिमा जेसे अधिकारों के हनन का खतरा रहता है ५ यह अधिकार व्यक्ति को संविधान द्वारा प्रदान एवं रक्षित किया गया है प्डीएनए को साक्ष्य के रूप में प्रयोग करने के लिए संधिग्द व्यक्ति के शरीर से अनुवांशिक सामग्री लेना अनिवार्य होता है५ इस सम्बन्ध में व्यक्ति की सहमति होना अनिवार्य होती है ५

डीएनएप्रोफाइल को साक्ष्य के रूप में प्रयोग करने के लिए पहली शर्त ये है कि संदिग्ध व्यक्ति के शरीर से आनुवंशिक सामग्री एकत्रित की जायेपविधि कहती है कि किसी भी व्यक्ति को उसके शरीर पर पूर्ण स्वायत्तता होती है इसलिए आनुवंशिक सामग्री एकत्र करने में उस व्यक्ति की पूर्ण सहमति होनी चाहिए अन्यथा ये अवैध होगा प्इस परिपेक्ष्य में देखा जाये तो डीएनए साक्ष्य का अपराधिक अन्वेषण में उपयोग व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं आत्म अभिशंसन के सिद्धांत का अतिक्रमण करता है प्परन्तु यदि विधिक प्रक्रिया के अंतर्गत आनुवंशिक सामग्री एकत्रित की जाये तब ऐसी स्तिथि में कोई विवाद उत्पन्न नहीं होगा, क्योंकि उस स्तिथि में डीएनए साक्ष्य का उपयोग या तो किसी अपराध के नियंत्रण के लिए होगा या फिर किसी के अधिकार के संरक्षण के लिए किया

जायगा प्इस सम्बन्ध में न्यायलय एवं यूरोपियनकौंसिल का सुझाव है की न्यायलय को तीन हितोव्यक्तिगत हित पारिवारिक हित, और सामाजिक हितों के बीच तर्कसंगत संतुलन बनाते हुए व्यक्ति की गरिमा एवं स्वयात्यता में अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए. क्योंकि बिना सूचित सहमती के आनुवंशिक सामग्री एकत्रित करना एकान्तता के अधिकार के घोर उल्लंघन मानाजायगा ८

ब्रिटन में जब डीएनए  बैंक के स्थापना का प्रस्ताव रखा गया तब इसकी सामाजिक एवं राजनेतिक स्तर पर घोर आलोचना की गयी इस आधार पर कि इस तकनीक का बैंक द्वारा दुरुपयोग किया जा सकता है प्भारतीय अपराधिक न्याय व्यवस्था में डीएनए साक्ष्य को बहुत महत्व दिया गया है प्बहुत सारे वादों में डीएनए साक्ष्य को एक विश्वसनीय साक्ष्य के रूप में मान्यता प्रदान की गई हैऔर इसके आधार पर अभियुक्त को दोषसिद्धि अथवा दोषमुक्ति प्रदान की गई है ८

डीएनएसाक्ष्य  की इतनी अधिक महत्वा एवं उपयोगिता के बाद भी आज तक  भारतीय विधायिका द्वारा कोई विशेष विधि का निर्माण नहीं किया गयाप् सबसे पहले २००६ में ह्यूमनडीएनए बिल संसद में प्रस्तावित किया गया. इसके बाद २०१६ में आखिरी बार डीएनए बिल प्रस्तुत किया गया प्यह बिल सरकार को अनुसूची में दिए गए मामलों में डीएनएपरिक्षण के उपयोग करने का अधिकार प्रदान करता है.  यह बिल ये प्रावधान करता है की डीएनएपरिक्षण का उपयोग अपराधियों की पहचान, पित्रत्व निर्धारण एवं लापता व्यक्तियों की पहचान स्थापित करने के लिए किया जा सकता है पबिल यह भी प्रावधान करता है कि सरकार ऐसे मामलों में जहाँ आरोपित व्यक्ति सात साल या अधिक  के कारावास से दण्डित अपराध के लिए गिरफ्तार किया जाना है या गिरफ्तार किया गया है वहां उस व्यक्ति की सहमती के बिना भी उससे आनुवंशिक सामग्री एकत्र की जा सकेगी प्लेकिन यदि अपराध सात साल से कम कारावास से दंडनीय है तब ऐसी स्तिथि में उस व्यक्ति की लिखित सहमती अपरिहार्य होगी और बिना सहमती से आनुवंशिक सामग्री प्राप्त करने का अधिकार सरकार को नहीं होगा ८

और यदि आरोपित व्यक्ति उम्र १८ साल से कम है तब ऐसी सहमती  माता पिता या संरक्षण के द्वारा प्रदान की जायगी प्और उसके मना करने पर ऐसी सहमती न्यायिक मजिस्ट्रेट के द्वारा प्रदान की जायगी. २०१६ के बिल में  राष्ट्रिय एवं क्षेत्रीय डीएनए डाटा बैंक की स्थापना का प्रावधान करता है प्जो अपराध स्थल सूचकांक, संदिग्ध व्यक्ति सूचकांक,  अपराधी सूचकांक, लापता सूचकांक तथा मरे हुए अनजान व्यक्तियों का सूचकांक के रखरखाव के लिए उत्तारदायी होगा ८ बिल में डीएनए नियामक बोर्ड राष्ट्रीय एवं  क्षेत्रीय स्तर पर होगा, डीएनए डाटा बैंक नियामक बोर्ड की निगरानी में होंगे ८ इसके आलावा बोर्ड के अन्य कार्यो मेंय डीएनए डाटा बैंक एवमप्रयोगशालाओ की स्थापना में सरकार को सलाह देगाप्डीएनएप्रयोगशालाओ को मान्यता प्रदान करने में सरकार को सलाह देनाप्डीएनए डाटा बैंक, प्रयोगशाला और डीएनएप्रोफाइल की उचित गोपनीयता को सुनिश्चित बाले विशेषज्ञों के लिए मानको के निर्धारण के सम्बन्ध में सरकार को सलाह देना  भी सामिल होगा ८  डीएनए बिल में बिना सहमती के नमूने के इस्तेमाल पर दंड का प्रावधान किया गया है जो की ३ बर्ष तक की काराबास और १ लाख रूपए तक का जुरमाना हो सकता है ८

भारतीय संसद ने आपराधिक प्रक्रिया (पहचान) अधिनियम, 2022 पुलिस को किसी भी अपराध के लिए दोषी ठहराए गए किसी भी व्यक्ति या अपराधी की जांच और पहचान के लिए किसी अन्य व्यक्ति की माप लेने के लिए पुलिस को सशक्त बनाने के लिए अधिनियमित किया गया है। यह अधिनियम 75 वर्षों के लिए आकस्मिक उद्देश्यों के लिए

ऐसे मापों का रिकॉर्ड रखने का अधिकार देता है। अधिनियम के अंतर्गत एक व्यक्ति से पुलिस या जेल अधिकारी द्वारा साक्ष्य लेने की अनुमति होगी। केवल 7 वर्ष से कम कारावास से दंडनीय अपराध के लिए गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को अपना जैविक नमूना देने की अनुमति देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है, जब तक कि उस पर महिलाओं या बच्चों के खिलाफ अपराध का आरोप न हो।

आपराधिक पहचान के लिए फोरेंसिक डीएनए प्रोफाइलिंग उपकरण आपराधिक न्याय प्रशासन में सबसे विश्वसनीय और महत्वपूर्ण तकनीक है। डीएनए साक्ष्य एक दोहरी धार वाली तलवार की भूमिका निभाता है। एक तरफ यह अदालत को बिना किसी गलती के वैज्ञानिक रूप से वास्तविक अपराधी की पहचान करने में मदद करता है और दूसरी तरफ, यह गलत तरीके से दोषी या आरोपी व्यक्ति को दोषमुक्त करता है।अपराधिक न्याय व्यवस्था में नवीन वैज्ञानिक तकनीक के रूप में डीएनए साक्ष्य की तकनीक सबसे अधिक विस्वसनीय नवाचार तकनीक है ᑊ जिसके माध्यम से वास्तविक अपराधी तक वैज्ञानिक एवं विश्वसनीय साक्ष्य के माध्यम से पंहुचा जा सकता है. यदि इसका अपराधिक न्याय व्यवस्था में सही तरीके से इसका इस्तेमाल किया जाय तो परिस्थितिजन्य साक्ष्यो के माध्यम भी अपराध को सुलझाया जा सकता है ्रइसकी यह आवश्यक शर्त है कि इसके लिए एक ऐसी विधि व्यवस्था बनाई जाय जो की मानव अधिकारों को सुनिचित करते हुए डीएनए तकनीक का इस्तेमाल करेऔर एकान्तता एवं गोपनीयता के अधिकार का उल्लंघन न करे ᑊ इसके आलावाडीएनए तकनीक के उचित प्रयोग के लिए यह आवश्यक है कि जाँच एजेंसियों को इस सम्बन्ध में उचित प्रशिक्षण प्रदान किया जाय और डीएनएप्रोफाइल को साक्ष्य के रूप में इस्तेमाल करने के लिए स्पष्ट विधिक प्रावधान बनाया जायᑊ

भारत में फोरेंसिक विज्ञान संकट की स्थिति में है। विज्ञान और अंतःविषय प्रौद्योगिकी की तेजी से प्रगति के साथ, जांच आज जटिल साक्ष्य संग्रह प्रक्रियाओं की मांग करती है और वैज्ञानिक रूप से सटीक और निष्पक्ष निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अपराध स्थल का विश्लेषण करती है। वर्तमान में, भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली में फोरेंसिक साक्ष्य का कम उपयोग सर्वविदित है। इसके अलावा, पिछले कई दशकों में किए गए अधिकांश नीति सुधार क्षेत्र में संरचनात्मक अपर्याप्तताओं को दूर करने के लिए औपचारिक कानून और नीतियों के अधिनियमन के आसपास केंद्रित हैं। भारत में फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशालाओं में कई नियामक चुनौतियां हैं, जिन्हें इस अध्याय में संबोधित किया गया है। अन्य देशों में कार्यरत प्रणालियों के साथ भारतीय ढांचे की जांच के अनुसार, एक गंभीर दोष हैरू वास्तव में फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशालाओं के आंतरिक कामकाज और उनके द्वारा उपयोग किए जाने वाले कई वैज्ञानिक दृष्टिकोणों पर अनुभवजन्य अध्ययन और छात्रवृत्ति की कमी है। इसका एक परिणाम यह है कि हमारी न्याय वितरण प्रणाली, पूर्व–परीक्षण से लेकर सजा तक, अब अच्छी तरह से समझ में नहीं आ रही है, और अदालतों के निर्णय लेने वाले दोषपूर्ण और गलत फोरेंसिक साक्ष्य पर भरोसा कर रहे हैं।

उपरोक्त चर्चा के आधार पर लेखक निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत कर रहे हैंरू

1. आपराधिक न्याय प्रशासन में डीएनए प्रौद्योगिकी के विनियमन को कवर करने वाला एक विशिष्ट कानून होना चाहिए।

2. साक्ष्य अधिनियम, 1872 के तहत डीएनए साक्ष्य की स्वीकार्यता को विशेषज्ञ राय के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए।

3. निजता का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत एक मौलिक अधिकार है। आपराधिक न्याय प्रशासन में डीएनए प्रोफाइलिंग तकनीक को लागू करते समय यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि जैविक नमूने और डीएनए प्रोफाइलिंग के संग्रह की प्रक्रिया में गोपनीयता अधिकार से समझौता नहीं किया जाना चाहिए।

4. जिला स्तर पर उचित और प्रशिक्षित, वैज्ञानिक रूप से सुसज्जित जांच प्राधिकरण स्थापित किए जाने चाहिए।

5. पारदर्शिता सुनिश्चित करने और डीएनए से संबंधित डेटा के दुरुपयोग से बचने के लिए डीएनए डेटा के संग्रह, संरक्षण, और विश्लेषण के लिए उचित निगरानी एजेंसी की स्थापना की जानी चाहिए।

6. आपराधिक न्याय प्रशासन में डीएनए प्रौद्योगिकी के उचित उपयोग के लिए, प्रस्तावित कानून में फोरेंसिक विज्ञान विशेषज्ञ, जांच विंग, प्रयोगशालाओं, डीएनए बैंक का गठन और डीएनए नमूना संग्रह, प्रतिधारण और हटाने का एक कुशल, पारदर्शी और जवाबदेह तंत्र शामिल होना चाहिए।

**सन्दर्भ**


**1.** Patricia E.J. Wiltshire, *Crime Scene to Court: The Essentials of Forensic Science*, 54 : RSC Publishing, 3rd edition, 2010

2. Sharma M and Singh R.K. "Evolution of Criminal investigation with time and New Technology" Research Journal of Forensic Science, 2015

3. Yashpal Singh and Muhammad Zaidi, *DNA Test in Criminal Investigation: Trial and Paternity Disputes,*Alia Law Agency, Allahabad, 2006

4. Law Commission of India, 271st Report on Human DNA Profiling; a draft Bill for the use and Regulation of DNA based Technology, 2017

5. Dr. A.K. Srivastava, "DNA Testing and Human Rights Implications in Civil and Criminal Investigation", *Criminal Law Journal*,81, 2007

6. V.R Dinkar, *Justice in Genes; Evidential fact of Forensic DNA Fingerprinting*, Asia Law House, Hyderabad, 1st edition,2008

7. Bob Hopple, "The Right to Privacy and Criminal Detection*"*, Vol. 68 *Cambridge Law Journal*, 2009

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

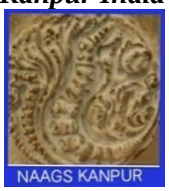


***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# कोविड महामारी के समय में बच्चों के स्वास्थ्य एंव शिक्षा के अधिकार का संरक्षण में केन्द्र सरकार की भूमिका का संक्षिप्त मूल्यांकन

**नीतेश कुमार चतुर्वेदी**
शोध छात्र, विधि विभाग
विधि अध्ययन, विद्यापीठ
बी0बी0ए0यू0, लखनऊ
**प्रवीन कुमार मौर्या**
शोध छात्र, विधि विभाग
सेंट्रल यूनिवर्सिटी आफ हरियाना, महेन्द्रगढ
**प्रो0 सुदर्शन वर्मा**
विधि अध्ययन, विद्यापीठ
बी0बी0ए0यू0, लखनऊ

## सामान्य परिचय

भारत ने मार्च से मई, 2020 में कोविड–19 महामारी के प्रारंभिक चरण के दौरान एक कठोर राष्ट्रव्यापी तालाबंदी लागू की, जिसके बाद क्रमिक उपायों को शामिल किया गया और रोकथाम उपायों को चरणबद्ध किया गया। मार्च 2020 में इसकी घोषणा के दो साल बाद, भारत के सख्त कोविड–19 लॉकडाउन उपायों और अप्रभावी नीति प्रतिक्रियाओं के परिणामों को महसूस किया जाना जारी है, चाहे वह आजीविका के नुकसान और आर्थिक मंदी के संदर्भ में हो या समाज के कमजोर वर्गों के बढ़ते हाशिए पर। 24 मार्च 2020 को, भारत में कोविड–19 महामारी के लगभग 500 पुष्ट सकारात्मक मामलों के साथ, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने देश को संबोधित किया और देशव्यापी तालाबंदी की घोषणा की। लॉकडाउन के शुरुआती महीनों में "आवश्यक सेवाओं" के अलावा सभी प्रकार, कार्य, यात्रा और आर्थिक गतिविधियों को प्रभावी ढंग से रोक दिया गया। 24 मार्च से, देश के 1.3 बिलियन लोगों ने मानव इतिहास के सबसे गंभीर लॉकडाउन में से एक को देखा, इसके बाद 31 मई 2020 तक लॉकडाउन के एक और "चरण" और उसके बाद, एक चरणबद्ध तरीके से "अनलॉक" किया गया। कोविड महामारी की पहली लहर के दौरान, कोविड–19 के मामलों की संचयी संख्या

मई 2020 के महीने से उत्तरोत्तर बढ़ने लगी और सितंबर 2020 के मध्य में चरम पर पहुंच गई। इसके बाद, देश को मार्च 2021 के दौरान कोविड–19 मामलों में भारी उछाल का सामना करना पड़ा, मई 2021 में चार लाख से अधिक दैनिक मामलों और मई 2021 के अंत में 4400 से अधिक दैनिक मौतों के साथ भयावह प्रकोप सहना पड़ा।[1]

दिनॉक 2 मार्च 2022 तक भारत में कुल 4,29,38,599 कोविड–19 से प्रभावित मरीज मिले है, जिसमें से अभी तक करीब 4,23,38,673 मरीज पूर्ण रूप से उपचारित होकर अस्पतालो से घर जा चुके है, तथा करीब 85,680 मरीज अभी भी अस्पतालों में उपचार हेतु भर्ती है। जिनका उपचार हो रहा है, 514246 मरीजो का कोविड–19 से प्रभावित होने से मृत्यु हो गयी है। भारत ने तेजी से अपनी क्षमता बढ़ाई, जनवरी 2020 में, भारत में पुणे के नेशनल इंस्टीटड्डूट ऑफ वायरोलॉजी में कोविड–19 के पहचान के लिए केवल एक प्रयोगशाला में परीक्षण किया जाता था, आज देश भर में कुल 3306 से अधिक प्रयोगशालाएँ हैं, जो इसके निदान के लिए आणविक परीक्षण करती हैं–भारतीय स्वास्थ्य प्रणाली के इतिहास में एक अद्वितीय उपलब्धि है। दिनांक 2 मार्च 2022 तक, कुल 1422 सरकारी प्रयोगशाला और 1880 गैर–सरकारी प्रयोगशाला मे कुल 3306 प्रयोगशालाएँ कोविड–19 का परीक्षण कर रही हैं। ''टेस्ट, ट्रैक एंड ट्रीट'' रणनीति पर ध्यान देते हुए, भारत ने दिनांक 1 मार्च 2022 तक संचयी टैस्ट पॉजिटिव दर के साथ लगभग 76,91,67,052 संचयी कोविड–19 नमूनों का परीक्षण किया है।

कोविड–19 एक वैश्विक महामारी के रूप में विश्व के समक्ष आया है, इसके प्रभाव से शायद ही कोई मनुष्यों का वर्ग अछूता रहा है। बच्चे भी इसके प्रभाव से वंचित नहीं रहें हैं उनके समक्ष प्रारम्भ से ही स्वास्थ्य, शिक्षा, शारीरिक एवं आर्थिक सुरक्षा, विधिक अधिकारों का सरंक्षण आदि जैसी प्रमुख चुनौतियां रही है, कोविड महामारी काल में इन सब चुनौतियों ने अपना विकराल रूप ले लिया। कोविड महामारी बच्चों के अधिकारों के विरुद्ध एक संकट है, यह एक वैश्विक संकट है और कुछ बच्चों पर इसका परिणाम उनके संपूर्ण जीवनकाल तक होगा। कोविड महामारी बाल पोषण, बाल विवाह प्रतिषेध और लैंगिक समानता जैसे मुद्दों में हुई प्रगति पर गंभीर प्रभाव डाल रहा है, जैसा कि हम जानते हैं कि उच्चतम न्यायालय ने शीला बारसे वाद[2] के निर्णय में कहा कि बच्चे राष्ट्रीय संपत्ति हैं और राज्य का यह कर्तव्य है कि वह बच्चों के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास को सुनिश्चित करने के लिए उसकी देखभाल करे। अतः इस महामारी काल में राज्य की महती जिम्मेदारी हो जाती है कि वह बच्चों का संपूर्ण देखभाल करें। कोविड महामारी ने बच्चों के शिक्षा एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को और विस्तृत रूप से प्रभावित किया है।

### 1. भारत के संविधान में बच्चों के स्वास्थ्य एंव शिक्षा का अधिकार

व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक हितो की सुरक्षा करना ही मानवाधिकार का संरक्षण है इनके रूप भिन्न–भिन्न है लेकिन लक्ष्य मानव हितो की संरक्षा एवं सुरक्षा है। भारत में आवश्यक मानवाधिकारों को संविधान के मौलिक अधिकारो (भाग–3) एवं राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तो (भाग–4) वाले हिस्से में शामिल किया गया है।

### (क) बच्चों के स्वास्थ्य का अधिकार

[1] आर्थिक सर्वे रिपोर्ट 2021–22 पृष्ठ 350

[2] AIR 1987 SC 656.

संविधान की प्रस्तावना में परिकल्पित लोकहितकारी राज्य एवं समाजवादी समाज की स्थापना का आदर्श तभी प्राप्त किया जा सकता है, जब कि सरकार नीति निर्देशक तत्वो (भाग–4) को लागू करने का प्रयत्न करें। नीति निर्देशक तत्वो में वे आदर्श निहित है जिनको प्रत्येक सरकार अपनी नीतियों के निर्धारण और कानून बनाने में सदैव ध्यान में रखेगी, अनु0 37 के अनुसार नीति निर्देशक तत्व देश के शासन में मूलभूत है तथा विधि बनाने में इन तत्वो को लागू किया जायेगा। भारतीय संविधान के भाग–4 में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रावधान है, जैसे अनु0 39(ङ)[3] (च)[4], 41[5] एंव 47[6] है।

प्रत्येक मनुष्य गरिमापूर्ण जीवन जीने के लिये उपयोगी साध्य स्वास्थ्य मानको के आस्वादन का हकदार है। मनुष्य के अन्य मानवाधिकारो की कवायद के लिये यह अधिकार अपरिहार्य है सभी व्यक्तियो के स्वास्थ्य का सम्बर्धन, संरक्षण एवं परिरक्षण करना राज्य का दायित्य है भारत के संविधान में स्वास्थ्य के अधिकार को अनु0 21 के अन्तर्गत मौलिक अधिकार का दर्जा दिया गया है। भारतीय संविधान के अन्तर्गत लोक स्वास्थ्य एवं स्वच्छता राज्य सूची का विषय है, जबकि जनसंख्या नियन्त्रण एवं परिवार नियोजन चिकित्सीय शिक्षा एवं दवाओं का गुणवत्ता नियन्त्रण समवर्ती सूची का विषय है अर्थात केन्द्र एवं राज्य दोनो ही विषय पर कानून बना सकते हैं।

भारतीय संविधान के अनु0 21 में जीवन एवं दैहिक स्वतन्त्रता का अधिकार उल्लिखित है, मेनका गॉधी[7] के निर्णय ने जीवन के अधिकार का विस्तृत वर्णन करते हुए कहा जीवन के अधिकार केवल पशुवत जीवन तक विस्तृत नहीं है, बल्कि मानव गरिमा से युक्त जीवन जीने का अधिकार सम्मिलित है। परमानन्द कटारा बनाम भारत संघ[8] के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि जीवन के अधिकार के अन्तर्गत स्वास्थ्य का अधिकार भी सम्मिलित है तथा पश्चिम बंग खेत मजदूर समिति बनाम पश्चिम बंगाल[9] के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्टया कहा कि भारतीय संविधान का अनु0 21 राज्यों को बाध्य करता है कि वह अपने नागरिको की स्वास्थ्य की सुरक्षा करना प्राथमिक कर्तव्य है। चुंकि नागरिकों में बच्चे शामिल है अतः राज्य की जिम्मेदारी है कि कल्याणकारी राज्य की अवघारणा को और विस्तारित करें तथा बच्चों के स्वास्थ्य के अधिकार को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करें।

**(क) बच्चों के शिक्षा का अधिकार**

---

[3]भारतीय संविधान 1950 के अनुच्छेद. 39(ङ)– पुरुष या स्त्री कर्मकार के स्वास्थ्य और शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग ना हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगार में ना जाना पड़े जो उसके आय या शक्ति के अनुरूप ना हो।

[4]भारतीय संविधान 1950 के अनुच्छेद. 39(च)–बालकों को स्वतंत्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएं दी जाएं और बालकों को अल्पवय व्यक्तियों की शोषण से तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से रक्षा की जाए।

[5]भारतीय संविधान 1950 के अनुच्छेद 41. कुछ दशा में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार।

[6]भारतीय संविधान 1950 के अनुच्छेद. 47. पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊंचा करने तथा लोक स्वास्थ्य का सुधार करने का राज्य का कर्तव्य।

[7]AIR 1978 SC 597.

[8]AIR 1989 SC 2039.

[9]AIR 1996 SC 2426.

मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य के वाद उच्चतम न्यायालय ने माना कि संविधान ने अपने सभी नागरिकों को शिक्षा देना अनिवार्य कर दिया है। उच्चतम न्यायालय ने कहा "शिक्षा का अधिकार सीधे जीवन के अधिकार से प्रभावित होता है। अनुच्छेद 21[10] के तहत जीवन का अधिकार और किसी व्यक्ति की गरिमा को तब तक सुनिश्चित नहीं किया जा सकता जब तक कि उसके साथ शिक्षा का अधिकार न हो, राज्य अपने नागरिकों को सभी स्तरों पर शैक्षिक सुविधाएं प्रदान करने के लिए प्रयास करने के लिए बाध्य है"। जे.पी., उन्नीकृष्णन और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में मोहिनी जैन के वाद में दिए गए फैसले की सटीकता का अवलोकन उच्चतम न्यायालय ने किया, पांच न्यायाधीशों की संवैधानिक पीठ ने 3–2 बहुमत से मोहिनी मामले के फैसले से आंशिक रूप से सहमति व्यक्त की और कहा कि शिक्षा का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत मौलिक अधिकार है क्योंकि यह सीधे "जीवन के अधिकार" से आता है। अनुच्छेद 41[11], 45[12] और 46[13] द्वारा सृजित कर्तव्य को राज्य द्वारा या तो अपनी संस्थाओं की स्थापना करके या निजी संस्थानों को सहायता, मान्यता या संबद्धता देकर निष्पादित किया जा सकता है।

दिसंबर, 2002 को संविधान में 86वाँ संशोधन किया गया और इसके अनुच्छेद 21–क[14] के तहत शिक्षा को मौलिक अधिकार बना दिया गया है। इस मूल अधिकार के क्रियान्वयन हेतु वर्ष 2009 में भारत सरकार ने शिक्षा के क्षेत्र में एक युगांतकारी कदम उठाते हुए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम (The Right of Children to Free and Compulsory Education Act 2009) पारित किया। इसके तहत 6–14 वर्ष की आयु के प्रत्येक बच्चे के लिये शिक्षा को मौलिक अधिकार के रूप में अंगीकृत किया गया।

## 2. अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं एंव अभिसमयों में बच्चों के स्वास्थ्य एंव शिक्षा का अधिकार

विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं एवं अभिसमयों में समय–समय पर बच्चों के शिक्षा एवं स्वास्थ्य संबंधी अधिकारों की घोषणा की गई हैं जिसमें स्पष्टतया कहा गया कि राज्य पक्षकारों की यह प्रमुख जिम्मेदारी है कि वह अपने राज्य में बच्चों की इन मूलभूत मानवाधिकारों के संरक्षण का प्रयास करें तथा उनका संवर्धन करें। जिसका उद्देश्य प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में सार्वभौमिक समावेशन को बढ़ावा देना तथा माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अध्ययन के नए अवसर सृजित करना है।

**बच्चे के शिक्षा एंव स्वास्थ्य सम्बंधी अधिकार**

[10]भारतीय संविधान 1950 के अनुच्छेद 21. प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण–किसी भी व्यक्ति को, उसके प्राण और दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा है, अन्यथा नही।

[11]भारतीय संविधान 1950 के अनुच्छेद 41. कुछ दशा में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार।

[12]भारतीय संविधान 1950 के अनुच्छेद 45. प्रारंभिक शैशवावस्था की देखरेख 6 वर्ष से कम आयु के बालकों की शिक्षा का प्रावधान।

[13]भारतीय संविधान 1950 के अनुच्छेद 46. अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गों की शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि।

[14]भारतीय संविधान 1950 के अनुच्छेद 21–क. शिक्षा का अधिकार–राज्य 6 से 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों को निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा किस प्रकार प्रदान करेगा जिस प्रकार से राज्य विधि के अधीन निर्धारित करें।

| अधिकार | मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा, 1948 | बाल अधिकारों पर अभिसमय 1989 | मानव और व्यक्तियों के अधिकारों पर अफ्रीकी घोषणापत्र, 1981 | आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966 |
|---|---|---|---|---|
| शिक्षा का अधिकार | अनुच्छेद 26. | अनुच्छेद 28 | अनुच्छेद 17 | अनुच्छेद 13 एंव 14 |
| स्वास्थ्य का अधिकार | अनुच्छेद 25(1) | अनुच्छेद 19 एंव 25(1) | अनुच्छेद 16 | अनुच्छेद 12(1) |

### 3. कोविड–19 महामारी के समय मे स्कूली शिक्षा पर प्रभाव

यूएनडीपी के मानव विकास रिपोर्ट 2020 के अनुसार मानव विकास सूचकांक में वर्ष 2018 के 129वें रैंक की 129 की तुलना में वर्ष 2019 में भारत का रैंक 131 था वर्ष 2020 में भारत का रैंक 134 है, उल्लेखनीय है कि एचडीआई रैंकिंग में वर्ष 2019 की तुलना में 2020 में आई 3 प्वाइंट की गिरावट अन्य देशों के सापेक्ष है। भारत में अगले दशक में दुनिया में सबसे अधिक युवा लोगों की आबादी होगी, और उन्हें उच्च गुणवत्ता वाले शैक्षिक अवसर प्रदान करने की हमारी क्षमता हमारे देश के भविष्य का निर्धारण करेगी (राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020)।

**(तालिका 1)**

सरकार द्वारा समाज सेवा क्षेत्र में व्यय रुझान (केंद्र और राज्यों का संयुक्त रूप से[15]

| वर्ष | 2014–15 | 2015–16 | 2016–17 | 2017–18 | 2018–19 | 2019–20 | 2020–21 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| मद | लाख करोड़ में | | | | | | |
| कुल बजट व्यय | 32.85 | 37.61 | 42.60 | 45.16 | 50.41 | 58.76 | 64.70 |
| शिक्षा | 3.54 | 3.92 | 4.35 | 4.83 | 5.26 | 6.13 | 6.75 |
| स्वास्थ्य | 1.49 | 1.75 | 2.13 | 2.43 | 2.66 | 3.12 | 3.51 |
| अन्य | 2.65 | 3.48 | 3.93 | 4.13 | 4.86 | 6.06 | 6.90 |
| संयुक्त व्यय= समाज सेवा पर | 7.68 | 9.16 | 10.41 | 11.40 | 12.78 | 15.31 | 17.16 |

**(तालिका 2)**

कुल व्यय के प्रतिशत के रूप में बजट व्यय[16]

[15] आर्थिक सर्वे रिपोर्ट 2020–21, पृष्ठ 340

[16] आर्थिक सर्वे रिपोर्ट 2020–21, पृष्ठ 340

| वर्ष | 2014–15 | 2015–16 | 2016–17 | 2017–18 | 2018–19 | 2019–20 | 2020–21 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| शिक्षा | 10.8 | 10.4 | 10.2 | 10.7 | 10.4 | 10.4 | 10.4 |
| स्वास्थ्य | 4.5 | 4.7 | 5.00 | 5.4 | 5.3 | 5.3 | 5.4 |
| अन्य | 8.1 | 9.3 | 9.2 | 9.1 | 9.6 | 10.3 | 10.7 |
| कुल व्यय समाज सेवा पर | 23.4 | 24.3 | 24.4 | 25.2 | 25.4 | 26.1 | 26.5 |

कोविड–19 महामारी और अचानक लंबे समय तक लॉकडाउन ने देश में शिक्षा प्रणाली को अस्त–व्यस्त कर दिया। स्कूलों और कॉलेजों को बंद करना सेमेस्टर या वार्षिक परीक्षाओं के पूरा होने से पहले ही शुरू हो गया और पूरे शैक्षणिक चक्र पर संकट आ गया। लंबे समय तक बंद रहने, फिर से खोलने के समय के बारे में अनिश्चितता, शैक्षणिक कैलेंडर में संभावित अवरोध और छात्रों के बीच परिणामी सीखने की असंततता जैसे मुद्दों के प्रभाव ने राज्यों और शैक्षणिक संस्थानों को एक व्यवहार्य विकल्प खोजने तथा उनकों आत्मसात करने के लिए मजबूर किया है।

लॉकडाउन प्रतिबंधों के साथ, नीति निर्माताओं ने एक विकल्प के रूप में ऑनलाइन शिक्षा का प्रस्ताव रखा। शारीरिक दूरी बनाए रखने संबंधी गाइडलाइन ने इस संबंध में सबसे अधिक प्रोत्साहन दिया है। पारंपरिक कक्षा प्रणाली के विकल्प के रूप में ऑनलाइन शिक्षा की जोरदार सिफारिश करने के लिए इसका सक्रिय रूप से उपयोग किया जा रहा है। जैसे–जैसे महामारी की अवधि और लॉकडाउन प्रतिबंध लंबे होते जा रहे हैं, पाठ्यक्रम को पूरा करने, मूल्यांकन और उच्च कक्षाओं में पदोन्नति जैसे मुद्दे नीति निर्माताओं और विशेषज्ञों के साथ दबाव बना रहे हैं कि ऑनलाइन प्रणाली को एक अल्पकालिक विकल्प के रूप में अपनाने के बजाय स्थायी समाधान के रूप में अपनाया जाए, लेकिन लॉकडाउन के दौरान ऑनलाइन शिक्षा की ओर रुख ने डिजिटल डिवाइस से उपजी पहुंच और समावेशिता की समस्याओं को सामने ला दिया है। जबकि ऑनलाइन शिक्षा ''टीना (TINA)–इसका कोई विकल्प नहीं है,'' की स्थिति के लिए चिहिन्त तथा प्रमाणित की गई है क्या सामान्य परिवारों और जिनके पास विशेष रूप से स्कूल, कॉलेज जाने वाले छात्र हैं, के पास आवश्यक डिजिटल बुनियादी ढांचे तक पहुंच है? क्या ऑनलाइन शिक्षा सभी छात्रों को इसमें भाग लेने और समान रूप से लाभ प्राप्त करने में सक्षम बनाएगी? या, क्या यह उन लोगों को पीछे छोड़ देगा जिनके पास डिजिटल बुनियादी ढांचे तक पहुंच नहीं है?

शिक्षा के सामाजिक उपभोग (2017–18) पर राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (एनएसएसओ) के आंकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि वर्तमान में किसी भी पाठ्यक्रम में नामांकित छात्रों में से केवल 9 के पास आवश्यक डिजिटल बुनियादी ढांचे तक पहुंच है, और इस तरह की मामूली पहुंच के साथ उलझा हुआ है। विशाल सामाजिक–आर्थिक और स्थानिक असमानताएँ हैं, इसलिए ऑनलाइन शिक्षा को कोविड–19 संकट से बाहर निकालने का प्रयास कई छात्रों, विशेष रूप से सामाजिक–आर्थिक रूप से वंचितों को और पीछे छोड़ने का एक गंभीर जोखिम है।

### 4. कोविड–19 महामारी के समय में स्कूल के छात्रों के लिए की गई पहल

मार्च 2020 से ज्यादातर विद्यालय कोविड महामारी के कारण लगाए गए प्रतिबंधों के चलते बंद पड़े हैं तथा बच्चों को घर पर उपलब्ध साधनों का उपयोग करके उनके घर में ही ऑनलाइन कक्षाओं के माध्यम से पढ़ाया जा रहा है। सरकार द्वारा उचित नीतिगत प्रतिक्रिया की कमी के कारण तालाबंदी के दौरान शिक्षा तक पहुंच में ये सभी

समस्याएं और बढ़ गई हैं। शिक्षा मंत्रालय और राज्य सरकारें कोविड–19 महामारी से उपजी स्कूली शिक्षा में संकट का एक समावेशी समाधान खोजने के लिए संघर्ष कर रही हैं–

**(1)** विभिन्न "वैकल्पिक कार्यक्रम," "मानक संचालन प्रक्रियाएं" और ऑनलाइन शिक्षण–आधारित समाधान प्रदान करती हैं। सरकारों द्वारा अपनाए गए ई–लर्निंग समाधानों की प्रवृत्ति अधिक केंद्रीकरण, संदर्भों में मानकीकरण और शिक्षकों के सूक्ष्म नियंत्रण की ओर रही है। कोविड महामारी के दौरान दूरस्थ–अधिगम एवं दूरस्थ स्थानों से कार्य के मद्देनजर डाटा नेटवर्क, इलेक्ट्रॉनिक–उपकरणों, कंप्यूटर, लैपटॉप, स्मार्टफोन आदि की उपलब्धता का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है।[17]

**(क) पी.एम.ई. विद्या–**इस पहल की घोषणा मई, 2020 में भारत सरकार ने आत्मनिर्भर भारत कार्यक्रम के अन्तर्गत स्कूली और उच्च शिक्षा के लिए की गई थी। यह छात्रों और शिक्षकों तक शिक्षा को बहु–पद्धति से और न्यायसंगत रूप से पहुंचाने को सुगम बनाने के लिए डिजिटल/ऑनलाइन/ऑन–एयर शिक्षा से संबंधित सभी प्रयासों को एकजुट करने की एक व्यापक पहल है। स्कूली शिक्षा के चार पी.एम.ई– विद्या घटक इस प्रकार हैं।[18]

(अ) एक राष्ट्र, एक डिजिटल शैक्षिक बुनियादी ढांचा

(ब) एक कक्षा, स्वयं प्रभा टी.वी. चैनलों के माध्यम से एक टी.वी. चैनल

(स) रेडियो, सामुदायिक रेडियो और पॉडकास्ट का व्यापक उपयोग

(द) दिव्यांग विद्यार्थियों के लिए व्यवस्था

**(ख)** मुक्त विद्यालयों एवं पूर्व–सेवा शिक्षा के लिए स्वयं एम.ओ.ओ.सी (मैसिव ओपन ऑन लाइन कोर्स) एन आई.ओ.एस (कक्षा 9 से 12 तक मुक्त विद्यालय शिक्षा के लिए) से जुड़े एम.ओ.ओ.सी स्वयं (SWAYAM) पोर्टल पर अपलोड किए गए हैं। लगभग 92 पाठ्यक्रम प्रारंभ कर दिए गए हैं तथा स्वयं एम.ओ.ओ..सी के तहत 1.5 करोड़ विद्यार्थियों को नामांकित किया गया है।

**(ग) डिजिटल पहल के लिए वित्तीय सहायता–** कोविड–19 महामारी के दुष्प्रभावों से निपटने के लिए राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों को डिजिटल पहलों के जरिए ऑनलाइन शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए 818.17 करोड़ रूपए तथा समग्र शिक्षा स्कीम के अंतर्गत शिक्षकों के निरंतर व्यवसायिक विकास को सुनिश्चित करने के लिए शिक्षकों को ऑन लाइन प्रशिक्षण देने के लिए 267.86 करोड़ रूपए आबंटित किए गए हैं।

**(घ)** मुक्त शैक्षिक संसाधनों का राष्ट्रीय भंडार, एन.आर.ओ.ई.आर ई–पाठ्य सामग्री का मुक्त ज्ञान भंडार है। यहां सभी कक्षाओं के लिए विभिन्न विषयों पर लगभग 17,500 खंडों में ई–पाठ्य सामग्री उपलब्ध है।

**(ङ)** डिजिटल शिक्षा संबंधी प्रज्ञता दिशानिर्देशः ये दिशानिर्देश ऑनलाइन/डिजिटल शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करते हुए उन विद्यार्थियों के लिए तैयार किए गए थे जो वर्तमान परिस्थितियों में स्कूल बंद होने के कारण घर पर ही रहकर पढ़ रहे हैं।

**(च)** मनोदर्पणः आत्मनिर्भर भारत अभियान में 'मनोदर्पण' पहल को मनोसामाजिक सहयोग देने के लिए शामिल किया गया है।

---

[17]आर्थिक सर्वे रिपोर्ट 2020–21 पृष्ठ 348

[18]प्रो0 सुदर्शन वर्मा, मानव अधिकारः नई दिशाएं, अंक 18 वर्ष 2021 पृष्ठ 181, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग भारत।

## (2) वर्ष 2021–22 के दौरान स्कूली शिक्षा के लिए प्रमुख योजनाएं[19]

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 का उद्देश्य देश में स्कूल तथा उच्च–शिक्षा प्रणालियों में परिवर्तनकारी सुधारों का मार्ग प्रशस्त करना है। इसका उद्देश्य सभी छात्रों को उनके निवास की परवाह किए बिना, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रणाली प्रदान करना है, जिसमें कमजोर, वंचित और कम प्रतिनिधित्व वाले समूहों पर विशेष ध्यान दिया गया है। सरकारी स्कूलों और संस्थानों में सस्ती तथा प्रतिस्पर्धा तरीके से गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए उठाए गए कदम इस प्रकार हैं:

**1.** भारत सरकार ने समग्र शिक्षा योजना को कुल वित्तीय परिव्यय 2,94,283.04 करोड़ के साथ वर्ष 2021–22 से 2025–26 तक पांच वर्षों की अवधि के लिए जारी रखा गया है। स्कूली शिक्षा के लिए एक एकीकृत योजना के रूप में, इसमें प्री–स्कूल से लेकर बारहवीं कक्षा तक के सभी पहलुओं को शामिल किया गया है। यह स्कूली शिक्षा को एक सातत्य के रूप में मानता है, और शिक्षा के लिए सतत विकास लक्ष्य के अनुसार है। यह योजना न केवल शिक्षा का अधिकार, जोकि शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के द्वारा प्रदत्त है के कार्यान्वयन के लिए सहायता प्रदान करती है, तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की सिफारिशों के साथ भी जुड़ी हुई है, यह सुनिश्चित करने के लिए कि सभी बच्चों को एक–समान और समावेशी कक्षा के माहौल के साथ गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुंच प्राप्त हो।

2. निपुण भारत मिशनः दिनांक 5 जुलाई 2021 को भारत सरकार ने मूलभूत साक्षरता तथा संख्यात्मकता पर एक राष्ट्रीय मिशन शुरू किया, जिसे ''समझ तथा संख्यात्मकता के साथ पढ़ने में प्रवीणता के लिए राष्ट्रीय पहल; निपुण भारत मिशन'' कहा जाता है। राष्ट्रीय मिशन राज्यों/केंद्र–शासित प्रदेशों के लिए प्राथमिक साक्षरता तथा वर्ग 3 तक प्रत्येक बच्चे के लिए संख्यात्मकता में दक्षता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वाद–योग्य कार्यसूची निर्धारित करता है। मिशन को समग्र शिक्षा की केंद्र प्रायोजित योजना के तत्वाधान में स्थापित किया गया है। निपुण भारत विभिन्न पहलुओं, अवधारणाओं तथा कौशल को शामिल करते हुए पढ़ाई के परिणामों एवं विकासात्मक लक्ष्यों के आधार पर बालवाटिका से शुरू होकर 9 वर्ष की आयु तक मूलभूत साक्षरता तथा संख्यात्मकता के लिए लक्ष्य निर्धरित करता है।

3. प्रधानमंत्री पोषण शक्ति निर्माणः इस पी0एम0पोषण योजना, जिसे पहले 'स्कूलों में मध्याह्न भोजन के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम' के रूप में जाना जाता था, में बालवाटिका (कक्षा एक से ठीक पहले) में पढ़ने वाले सभी स्कूली बच्चों और सरकारी तथा सरकारी सहायता प्राप्त स्कूल में कक्षा एक से आठ में पढ़ने वाले बच्चों को शामिल किया गया है। वर्ष 2020–21 के दौरान इस योजना के तहत 11.20 लाख संस्थानों में पढ़ने वाले लगभग 11.80 करोड़ बच्चे लाभान्वित हुए।

## 5. स्कूली–शिक्षा प्राप्त करने और अन्य संकट

वैश्विक स्तर पर कम से कम तीन में से एक बच्चा ऑनलाइन दूरस्थ शिक्षा प्राप्त करने में कोविड–19 के प्रभाव के परिणामस्वरूप किसी न किसी रूप में असमर्थ है। ऑनलाइन शिक्षा में सबसे मुख्य साधन इंटरनेट और इलेक्ट्रॉनिक साधन की उपलब्धता है, ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी क्षेत्रों के मुकाबले संसाधनों की उपलब्धता कम है और शहरी क्षेत्रों में भी केवल संपन्न परिवारों में बच्चो के लिए ऑनलाइन शिक्षा के लिए संसाधन उपलब्ध है ऐसे में अन्य छात्रों को शिक्षा से वंचित होना पड़ रहा है। विश्व के

[19] आर्थिक सर्वे रिपोर्ट 2021–22

लगभग सभी कोविड महामारी प्रभावित देशों में स्कूल बंद होने के बाद कई वैकल्पिक साधन उपयोग में लाए गए, उनमें से कई इंटरनेट, टीवी और रेडियो जैसी तकनीकों का उपयोग करके निरंतर शिक्षा प्रदान करने प्रयास किया गया। यद्यपि, इन तकनीकी साधनों तक पहुंच कई निम्न और मध्यम आय वाले देशों में सीमित है, मुख्यतः गरीब परिवारों के बीच। ऑनलाइन शिक्षा ने कुछ बेहतर सुविधाएं भी शिक्षा के क्षेत्र में उपलब्ध कराएं है यद्यपि की इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों की अनुपलब्धता से विद्यार्थियों को हानि हुई है, परंतु उनको अनुभवी शिक्षकों की उपलब्धता सुलभ हुई। कम समय में अनुभवी शिक्षकों से उचित ज्ञान की प्राप्ति, विभिन्न शिक्षा प्रणाली का ज्ञान, सस्ती, गुणवत्तापूर्ण और सुलभ शिक्षा आदि के रूप में प्रमुख रूप से शिक्षा की दिशा में सकारात्मता देखने को मिली।

- कुल 90 प्रतिशत से अधिक देशों ने डिजिटल प्रसारण के माध्यम से दूरस्थ शिक्षा नीतियों को अपनाया, और पूर्व–प्राथमिक शिक्षा के लिए मात्र 60 प्रतिशत देशों ने ऐसे कदम उठाए।
- विश्व के 31 प्रतिशत स्कूली बच्चों तक उनके घर पर आवश्यक तकनीकी साधनों की कमी के कारण प्रसारण और इंटरनेट–आधारित दूरस्थ शिक्षा नीतियों को नहीं पहुंचा जा सका या ऐसी नीतियों का प्रत्यक्ष रूप से इनपर लागू होना सुनिश्चित नहीं किया जा सका।
- विश्व में केवल 16 प्रतिशत स्कूली बच्चों तक रेडियो आधारित शिक्षा पहुंची हैं।
- विश्व स्तर पर, 4 में से 3 छात्र जो दूरस्थ शिक्षा नीतियों का लाभ नहीं ले सके, वे सामान्यतः ग्रामीण क्षेत्रों से आते हैं या गरीब घरों से संबंधित हैं।

**(क) कोविड–19 महामारी के प्रति बच्चों में अज्ञानता का प्रभाव**

बच्चों में कोविड–19 के प्रति अज्ञानता भी बच्चों के स्वास्थ्य और व्यवहार को गंभीर रूप से प्रभावित करती है। सामान्यतः बच्चे यह समझने में असमर्थ होते है की उनका भविष्य बेहतर हो इसके लिए तालाबंदी के नियमों का पालन किया जाना और शिक्षा, स्वास्थ्य और मनोरंजन के लिए वैकल्पिक साधन ढूढना और उनको अपने व्यवहार में लाना कितना आवश्यक तथा उसे व्यवहार में लाना कैसे संभव हो सकता है। इसलिए बच्चों को समय–समय पर उचित परामर्श सुनिश्चित किया जाना चाहिए जिससे उनपर पड़ने वाले ऐसे अप्रत्यक्ष प्रभाव को कम किया जा सके।

**(ख) बच्चों के प्रति अपराध और अन्य सामाजिक कुरीतियों का प्रभाव**

घरेलू हिंसा, बाल–मजदूरी, बाल–विवाह, बाल गर्भावस्था के मामले दुनियाभर के कई देशों में इस महामारी में देखने को मिले है। माता–पिता के बीच घरेलू हिंसा और अन्य मतभेदों के परिणामस्वरूप हुए विवाह–विच्छेद से बच्चे अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होते है, इसके अन्यथा जिन बच्चों के माता–पिता की मृत्यु इस महामारी के कारण हो गई है उनके प्रति शोषण को आशंका अत्यधिक है। लॉकडाउन में बच्चों की ऑनलाइन गतिविधियों में वृद्धि हुई है इसके कई दुष्परिणाम निकल के सामने आए है उनमें से मुख्यतः बाल यौन शोषण है। ऑनलाइन गतिविधियों में ऑनलाइन कपट और अन्य साइबर अपराध के रूप में बच्चों पर गंभीर प्रभाव पड़ता है। बच्चों के प्रति हो रहे साइबर अपराधों को रोकने के लिए इन्टरनेट सेवा प्रदाता कंपनियों को उचित लाइसेंसिग प्रणाली विकसित करना चाहिए। बच्चों को इंटरनेट के प्रयोग के संबंध में परिवार जनों और शिक्षकों द्वारा उचित मार्गदर्शन दिया जाना चाहिए। अंतराष्ट्रीय आपराधिक पुलिस संघठन की रिपोर्ट के अनुसार कोविड महामारी के दौरान पर्यावरणीय, सामाजिक और आर्थिक कारकों में परिवर्तन हुआ है जिसका परिणाम बच्चों

के यौन शोषण और दुर्व्यवहार के रूप में देखने को मिला है। ऐसे परिवर्तन निम्नलिखित प्रकार के है

- स्कूलों का बंद होना और आभासी शैक्षणिक वातावरण की ओर बढ़ना;
- बच्चों के मनोरंजन, सामाजिक और शैक्षिक उद्देश्यों के लिए ऑनलाइन समय में वृद्धि होना;
- अंतरराष्ट्रीय यात्रा पर प्रतिबंध लगना और विदेशी नागरिकों के स्वदेश आना;
- सामुदायिक सहायता सेवाओं, बाल देखभाल के लिए बनी संस्थाओं और शिक्षकों की बच्चों के प्रति सीमित पहुंच होना जो समन्यतः बाल यौन शोषण के मामलों का पता लगाने और रिपोर्ट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

**(ग) स्वास्थ्य पर प्रभाव**

भारत में कोविड–19 महामारी ने बच्चों को प्रत्यक्ष रूप से कम प्रभावित किया है। विश्व में कोविड से 8,700 से अधिक बच्चों और किशोरों की मृत्यु हुई, जो 78 देशों में हुए कुल 2.7 मिलियन कोविड–19 से हुई मौतों का 0.3 प्रतिशत है। कोविड–19 ने बच्चों को अप्रत्यक्ष रूप से अत्यधिक प्रभावित किया है, जबकि स्वास्थ्य के अधिकार में मानसिक स्वास्थ्य का अधिकार भी निहित है अतः हम देख सकते हैं कि बच्चे कई स्तर पर विभिन्न मानसिक समस्याओं का सामना भी कर रहे हैं। लॉकडाउन और ऑनलाइन अध्ययन में व्यवहारिक शिक्षा का अभाव होने के कारण बच्चों को अनेक मानसिक बीमारी का शिकार होना पड़ रहा है। अनिद्रा, माइग्रेन, एंग्जाइटी और डिप्रैशन आदि प्रमुख रूप से प्रभावित करती हैं, अत्यधिक ऑनलाइन अध्ययन भी इन बीमारी का कारण बन सकता है।

कोविड महामारी के फलस्वरूप स्कूलों पर भी तालाबन्दी हुई, स्कूल केवल शिक्षा का माध्यम नहीं रह गया है, बच्चों के स्वास्थ्य में भी स्कूलों की बहुत अहम भूमिका है, स्कूल में प्रदान की जाने वाले भोजन (MDM & ICDS) एवं अन्य संरक्षण बच्चों के स्वस्थ जीवन के लिए जरूरी है, कोविड महामारी काल में बच्चे इससे वंचित है। बच्चों में कुपोषण की संभावना इस महामारी में बढ़ गई है, विशेषतः उन बच्चों पर जो दैनिक पोषण के विश्वसनीय स्रोत के लिए स्कूली भोजन पर निर्भर हैं। ऐसे बच्चों की संख्या 143 देशों में 368.5 मिलियन है। बच्चे मुख्य रूप से अपने घर के बाहरी वातावरण से, अपने साथियों से बहुत से बातें सीखते है परंतु वे कोरोना काल में इन परिवेश से वंचित हो गए। प्रवासी मजदूरों के बच्चों पर स्वास्थ्य पहले से ही चुनौती थी अब वह गंभीर चुनौती बन गई है। शरणार्थी शिविरों में रहने वाले बच्चे भी इसी संकट से जूझ रहे हैं।

**(घ) कोविड टीकाकरण कार्यक्रम**

भारत विश्व के उन कुछ देशों में शामिल है, जो कोविड–19 टीके का उत्पादन कर रहा है, देश ने दो भारत–निर्मित कोविड टीकों के साथ शुरुआत किया। भारत का पहला घरेलू कोविड–19 टीका, कोरोना वायरस वैक्सीन (कोवैक्सीन) भारत बायोटेक इंटरनेशनल लिमिटेड द्वारा भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद, (आई0सी0एम0आर0) के नेशनल इंस्टीटड्डूट ऑफ वायरोलॉजी के सहयोग से विकसित एवं निर्मित किया गया। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद ने ऑक्सफोर्ड–एस्ट्राजेनेका के सहयोग से विकसित कोविशील्ड टीका का क्लिनिकल परीक्षणों को वित्त पोषित किया। कोविशील्ड तथा कोवैक्सीन भारत में व्यापक रूप से उपयोग किए जाने वाले टीके हैं। प्रत्येक माह कोविशील्ड की लगभग 250–275 मिलियन खुराक तथा कोवैक्सीन की 50–60 मिलियन खुराक का उत्पादन किया गया। कोविड–19 टीकों के निर्माण के अतिरिक्त अन्य टीके

जैसे, स्पुतनिक–वी, जीकोव–डी, रिकोम्बिनेंट मोडेरना को भी नियामक प्राधिकरण द्वारा आपातकालीन उपयोग का प्राधिकृत किया गया है।
वित्त वर्ष 2021–22 के केंद्रीय बजट में कोविड टीकाकरण कार्यक्रम के अन्तर्गत टीका खरीद के लिए 35,000 करोड़ रुपये आवंटित किए गए। कोविड–19 टीकों की कुल दी गई खुराक में से, 49 प्रतिशत महिलाओं को दिया गया है टीके की 70 प्रतिशत से अधिक खुराक ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित सीवीसी द्वारा दी गई है।दिनांक 16 जनवरी 2022, तक भारत में कोविड–19 टीकों की कुल 156.76 करोड़ खुराक भारतीयों को दिया जा चुका हैं, जिसमें पहली खुराक 90.75 करोड़ तथा 65.58 करोड़ दूसरी खुराक हैं।

## 6. सुझाव

बच्चे समाज का सबसे कमजोर वर्ग है, और उनको अपने अस्तित्व और सर्वांगीण विकास के लिए देखभाल, सुरक्षा और स्नेह की आवश्यकता होती है। बच्चों के सवालों का समय समय पर ईमानदारी से जवाब दिया जाना उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिए उचित है, जैसे वे घर से बाहर क्यों नहीं जा सकते, अपने मित्रों से क्यों नही मिल सकते, आदि। बच्चों की ऑनलाइन शिक्षा को रोचक और प्रभावशाली बनाने के लिए शिक्षकों को तकनीकी रूप से सुदृढ़ होने का प्रयत्न करना चहिए और तकनीकी का सार्वभौमिकरण किया जाना चाहिए ताकि बच्चों को कम समय में उचित मार्गदर्शन दिया जा सके। इस महामारी के परिणामस्वरूप अनाथ हुए बच्चों की देखभाल के लिए विशेष सरकारी नीति और प्रणाली की आवश्यकता है।

## निष्कर्ष

कोविड–19 महामारी ने बच्चों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से तथा नकारात्मक और सकारात्मक रूप मे प्रभावित किया है। प्रत्यक्ष रूप से बच्चे युवाओं और वृद्धों की तुलना में कोविड–19 से कम प्रभावित हुए यद्यपि उनपर लॉकडाउन के परिणामस्वरूप सामाजिक, मानसिक और शारीरिक विकास में बाधा के रूप में अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। नकारात्मक और सकारात्मक प्रभाव की बात करें तो एक तरफ ऑनलाइन शिक्षा ने बहुत से बच्चों को शिक्षा से वंचित किया तो दूसरी तरफ कम समय में अनुभवी शिक्षकों की उपलब्धता हुई। एक तरफ बच्चे मानसिक तनाव का शिकार हुए दूसरी तरफ उनको अपने परिवारजनों के साथ ज्यादा समय बिताने और उनसे सीखने का मौका मिला। ऑनलाइन शिक्षा पर जोर देने से समाज में पहले से मौजूद असमानताओं को बढ़ावा मिलेगा। बच्चों पर कोविड–19 के संक्रमण के कारणों का पता लगाने के लिये और अधिक शोध की आवश्यकता है। भविष्य में पड़ने वाले प्रभाव से बचाने के लिए बच्चों पर कोविड–19 के प्रभाव पर किए गए शोध के उपरांत प्राप्त आंकड़ों से कुछ अधिक तैयार करनी चाहिए।संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के खाद्य और औषधि प्रशासन ने फाइजर/बायोटेक की कोविड–19 वैक्सीन को 12 से 15 वर्ष के बच्चों पर आपातकालीन उपयोग तक विस्तारित किया है, और यह अब तक की एकमात्र वैक्सीन है जिसको संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने 18 वर्ष से कम आयु के बच्चों पर उपयोग की अनुमति दी है। तथा विश्व के अन्य देशों ने भी बच्चों के टीकाकरण का कार्य प्रारम्भ कर दिया है। जबकि भारत सरकार अभी इस टीकाकरण कार्य को प्रारंभ नहीं कर पाई है स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के अनुसार भारत में बच्चों का टीकाकरण संभवत अगस्त माह से प्रारंभ हो पाएगी यदि समय से टीकाकरण प्रारंभ हो जाता है तो बच्चों के शिक्षा एवं स्वास्थ्य के अधिकार को हम सफलतापूर्वक संरक्षित करने का प्रयास शुरू कर सकते हैं, जोकि भारत सरकार एवं राज्य सरकारों द्वारा संयुक्तः बच्चों के शिक्षा एवं स्वास्थ्य संरक्षण में एक बहूमूल्य कदम होगा।

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603**:**
www.kanpurhistorians.org

# प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था में प्रायश्चित विधान

**चंद्र प्रकाश शुक्ल**
असिस्टेंट प्रोफेसर विधि विभाग
महाराज बलवंत सिंह पी0जी0 कॉलेज
गंगापुर वाराणसी

विभिन्न प्रकार की हत्याओं के सन्दर्भ में पराशर मुनि के अनुसार गोहत्या का प्रायश्चित ''गो वध के अनुरूप ही प्राजापत्य व्रत शुद्धि के लिए निर्दिष्ट करना चाहिए। प्राजापत्य जो कृच्छ् होता है उसे चार प्रकार से विभाजित करना चाहिए। एक दिन एक ही बार खाने वाला रहे। एक दिन रात्रि में भोजन करे। एक दिन अयाचित भोजन करे।

1. मनु0, याज्ञवल्क्य एवं आग्ने0। 168/29–37। ने गो–वध को उपपातकों में सबसे पहले रखा है। कतिपय स्मृतियों ने गो–वध के लिए विविध प्रायश्चित्तों की व्यवस्था दी है। गौतम। 22/18। ने इसके लिए वही प्रायश्चित्त निर्धारित किया है जो वैश्य–हत्या पर किया जाता है। यथा – वन में तीन वर्षों तक निवास, भीख माँगकर खाना, ब्रह्मचय् पालन एवं बैल के साथ सौ गौओं का दान। वशिष्ठ। 121/181 ने कहा है कि गो–वध कर्त्ता को उस गाय की खाल से अपने को ढकना चाहिए और छः मासों तक कृच्छ् या अतिकृच्छ् करना चाहिए। विष्णु। 50/16–24।, संवर्त। 130–135। एवं पराशर। 8/31–41। ने गो–वध के लिए प्रायश्चित्त पालन की व्यवस्था की है। याज्ञवल्क्य। 3/263–264। ने पृथक्–पृथक् चार प्रायश्चित्तों की व्यवस्था की है। यथा – गो–घातक को एक मास तक अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना चाहिए। उसे पंचगव्य पर ही रहना चाहिए। गो–शाला में ही सोना चाहिए, दिन में गोशाला की ही गाय चरानी चाहिए और मास के अन्त में एक गाय का दान करना चाहिए।
2. उसे कृच्छ् प्रायश्चित्त करना चाहिए, गोशाला में सोकर उसकी गायों के पीछे–पीछे दिन में चलना चाहिए।
3. या इसी प्रकार अतिकृच्छ् करना चाहिए।
4. या तीन दिनों तक का उपवास कर अन्त में एक बैल के ताथ दो गौओं का दान करना चाहिए। शेख ने 25 दिन एवं रात्रि का उपवास बताया है और कहा है कि इन दिनों पर पंचगव्य पर ही रहना चाहिए। शिक्षा के साथ शिर मुड़ा लेना चाहिए शरीर के उपरी भाग पर गाय की खाल पहननी चाहिए, गाय को चराना चाहिए, उनके पीछे–पीछे चलना चाहिए, गोशाला में सोना चाहिए और अन्त में एक गाय दान करनी चाहिए। कुछ स्मृतियों में कहा गया है कि यदि गाय विद्वान ब्राम्हण की हो या

अविदान ब्राह्मण की हो या क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र की हो तो उसी के अनुसार भिन्न–भिन्न प्रायश्चित करना चाहिए।[20]

दो दिन में रात्रि में तथा दो दिन अयाचित भोजन करे और दो दिन वायु भक्षण करे, तीन दिन एक बार दिन में, तीन दिन केवल रात्रि में, तीन दिन अयाचित और तीन दिन मारुत का अशन करे। चार दिन एक बार, चार दिन रात्रि भोजन, चार दिन न मांगा हुआ और चार दिन वायु का आहार करे। इसके अनन्तर प्रायश्चित्त के जीर्ण हो जाने पर ब्राह्मण भोजन करावे और ब्राह्मण को दक्षिणा देवे तथा स्वयं पवित्र मन्त्रों का विप्र जप करे। ब्राह्मणों को भोजन कराकर गौ–को मारने वाला शुद्र हो जाता है। इसमें कुछ भी संशय नहीं है। यथा – ''ब्राह्मणान् भोजपित्वा तु गोहनः शुद्धस्तु न संशयः।''[21]

गायों के संरक्षा के लिए उनका रोध तथा बन्धन का दोष भी नहीं करना चाहिए। इच्छा ते इच्छाकृत वध को ही गाय का वध नहीं माना जाता है। अँगूठा के समान स्थूल और भुजा के बराबर प्रमाण वाला गीला और पत्तों से युक्त ही उनके ताड़न के लिए कहा जाता है। इस उक्त प्रकार के दण्ड ते अधिक अन्य किसी भी वस्तु से गाय पर कोई प्रहार करे या उसे गिरा देवे तो उसे बताया हुआ प्रायश्चित तथा दुगुना गो–व्रत करना चाहिए।

गायों का रोधु, बन्धन, योक्त्र और घातन चार प्रकार का होता है। रोध में एक पाद प्रायश्चित करे और बन्धन में दो पाद करे। योक्त्र में चतुर्थ भाग छोड़कर तथा (पूर्ण में) निपातन में पूर्ण प्रायश्चित करे।

गो चरण भूमि में, घर में, दग्ध देश में, दुर्गों में, समतल में, नदियों में, समुद्र में, गड्ढों में, पहाड़ की दरी में, स्थित गायों का स्तम्भन रखना ही रोध है।[22]

योक्त्र की डोरियों में तथा घण्टाभरण आदि भूषित करने की वस्तुओं से घर में या जंगल में बद्ध गौ यदि मृत हो जावे तो वही बन्धन समझना चाहिए, चाहे कामना से या बिना कामना के ही किया गया हो। मृल्लेस में, गाड़ी में, पंक्ति में, भार वहन कराने में मनुष्यों के द्वारा सताया हुआ बैल मर जाता है तो यह वध योक्त्र वध होता है। मत्त, प्रमत्त, उन्मत्त, चेतन या अचेतन भी चाहे कामना से या बिना ही इच्छा के किए हुए क्रोध वाला दण्डों से या पत्थरों से मारे। चाहे वह प्रहत हो या मृत हो उसके निपातन के हेतु होता है।[23]

मूर्च्छित अथवा पतित दण्डे से पीटा हुआ वह जब उठकर पाँच, सात और दस कदम चला जावे और ग्रास तथा जल ग्रहण करे या पीवे और पूर्व व्याधि ते उपसृष्ट हो जावे तो कोई भी उसका प्रायश्चित नहीं होता है। पिण्ड स्वरूप गर्भ के हनन पर एक पाद अर्थात् एक चौथाई भाग प्रायश्चित का करे, गर्भ सन्त्रित के हनन में आधा और अचेतन गर्भ के हनन में एक पाद कम प्रायश्चित करना चाहिए।[24]

एक पाद प्रायश्चित्त में अङ्ग के रोमों का वपन करावे, दो पाठ में 2 मश्रुओं का भी मुण्डन करावे, तीन पाद में शिखा के अतिरिक्त सबका वमन करावे और निपातन में शिखा के सहित वपन करना चाहिए। एक पाद में दो वस्त्र देवे, दो पाद में कॉस का पात्र, तीन पाद में गो, बृष और चार पाद में दो गौ का दान करे।[25]

---

[20] धर्मशास्त्रों के इतिहास से प्रायश्चिताध्याय के गो हत्या प्रकरण।

[21] पराशर स्मृति में संख्या 203 से 209

[22] पराशर स्मृति, श्लोक 213 से 215

[23] पराशर स्मृति, श्लोक 216 से 219

[24] पराशर स्मृति, श्लोक 220 से 222

[25] पराशर स्मृति, श्लोक 223 से 224

समस्त शरीर से निष्पन्न और सचेतन दिखलाई देता हो तथा अंगों और प्रत्यङ्गों से सम्पन्न होने पर दुगुना गो व्रत करना चाहिए। पाषाण से और दण्डे से जिसने अभिघातित किया हो और उसका सींग टूट जाये तो एक चौथाई प्रायश्चित करे, उसके गिरा हुआ होने पर दो पाद, पूँछ टूट जाने पर कृच्छ पाद, हड्डी का भंग होने पर दो पाद, कान टूट जाने पर तीन पाद और सबके निपातन होने पर पूरा प्रायश्चित करना चाहिए।[26] सींग, अस्थि और कमर के भंग हो जाने पर भी यदि वह छः मास तक जीवित रहे तो प्रायश्चित नहीं होता है।

शृङ्ग भङ्गेऽस्थिभङ्गे च कटिभंगे तथैव च। यदि जीवति षण्मासान् प्रायश्चित्तं न विद्यते।।[27]

व्रण के भंग हो जाने पर हाथ से तैलादि स्नेहपूर्ण वस्तु का उसमें अभ्यंग करना चाहिए। उसे यव खिलावे जब तक वह दृढ़ बल वाला होवे, जब तक वह अपने सम्पूण अंगों, गो से युक्त न हो, तब तक मनुष्य को उसका पोषण करना चाहिए। ब्राहमण के आगे गो रूप को नमस्कार करके विदा करे।[28]

यदि वह असम्पूर्ण अंग वाला और हीन देह वाला ही रहे तो इस समय गाय के घात करने वाले व्यक्ति को आधा प्रायश्चित करना चाहिए। काठ ढेला और पाषाणों से तथा शस्त्र से उद्धत व्यक्ति बलपूर्वक जो गौ को मार डालता है तो उसकी शुद्धि बतलायी जाती है। काष्ठ से मारने पर सान्तपन, ढेलों से मार देने पर प्राजापत्य, पत्थरों ये मार देने पर तप्त कृच्छ और शस्त्र से मार देने पर अतिकृच्छ व्रत करना चाहिए।[29] सान्तपन व्रत में पाँच गौ का दान करे, प्राजापत्य में तीन, तप्त कृच्छ् में आठ और अतिकृच्छ् में तरह प्राण धारियों के प्रमाण में उनका प्रति रूपक का दान करना चाहिए। या उसके अनुरूप मूल्य देकर दान की विधि को पूर्ण करे। ऐसा महर्षि भनु ने बतलाया है।[30] वाहन में तथा मोहन में अन्यत्र अंकन और चिन्हों से और शाम को संयमन के लिए रोध तथा बन्धन करने में कोईं दोष नहीं होता है। अत्यन्त दाह करने तथा अत्यधिक वाहन झरने में और नाव के छेदन करने में नहीं तथा पर्वत के संचार में प्रायश्चित करना चाहिए। अति दाह में प्रायश्चित्त का चौथा भाग करे, वाहन में आधा, नाथ डालने में तीन भाग निपातन में पूर्ण प्रायश्चित्त करे।[31] सहन करने से बंधा हआ हो अन्यथा यन्त्रित हो, पीड़ित हो अतः पराशर महर्षि ने यथा विधि एक पाद ही कहा है।[32] वध के रोध, बन्धन–गौवन–सार–प्रहरण–दुर्ग–प्रेता और योवत्रा ये छः निमित्त होते हैं। बन्ध पाश से यदि सुगुप्त अंग वाला पशु मर जाये तो भवन में उसके नाश का पाप होता है। उसकी शुद्धि के लिए कृच्छ् का आधा भाग करने के योग्य होता है। नारियल की जटाओं की रस्सी, शाणु वालों की डोरी, मूंज की रस्सी और बन्ध श्रृंखला से गायों को कदापि नहीं बाँधनी चाहिए। कुश–कॉस की डोरी से दक्षिण दिशा की ओर मुख कराकर गौ को बाँधना चाहिए। पाश लग्नादि से दुग्ध होने पर प्रायश्चित नहीं होता है।[33] यदि वहाँ पर काण्ड हो जावे तो किस प्रकार उसका प्रायश्चित कैसे होना चाहिए,

---

[26] पराशर स्मृति, 225 से 227
[27] पराशर स्मृति, 228
[28] पराशर स्मृति, 229 से 230
[29] पराशर स्मृति, 231 से 233
[30] पराशर स्मृति, श्लोक 234 से 235
[31] पराशर स्मृति, श्लोक 236 से 238
[32] पराशर स्मृति, श्लोक 239
[33] पराशर स्मृति, श्लोक 242 से 243

यह बतलाते हैं कि पावन देवी गायत्री का जप करके व्यक्ति पाप से मुक्त हो जाता है।[34]प्रेरयन् कूप वापीषु वृक्षच्छेदेषु पातयन्। गवाशनेषु बिक्रीणंस्ततः प्राप्नोति गोवधम्।।[35]

तात्पर्य यह है कि कुआ, बावड़ी में प्रेरित करते हुए वृक्ष छेदों में पातन करते हुए तथा गवाशन में विक्रय करते हुए व्याक्ति गो–वध को प्राप्त होता है।[36] कोई भी जब आराधित हो और भिन्न कक्ष ही जावे, श्रवण और हृदय भिन्न हो, कूट संकट में मग्न हो जावे, कुँए से उत्क्रमण में गरदन और पैरों से भिन्न हो जावे और वह वहाँ ही मर जावें तो मनुष्य को प्रायश्चित के तीन भाग करने चाहिए। कूप–खात–तटीबन्ध–नदी बन्ध प्रया (प्याऊ) और जल में मृत हो जाने वालों का कोई प्रायश्चित नहीं होता है। कुएं का गड्ढा तटी का गर्त दीर्घ खात तथा अन्य धर्म पातों में मृत हो जाने पर भी कोई प्रायश्चित नहीं होता है।[37] निवास स्थानों पर घर के द्वार पर जो कोई मनुष्य खात को चाहता है तो अपने कार्य के लिए घर के खातों का प्रायश्चित बतलाते हैं। निशा में बन्धन के लिए निरूद्ध होने वाले तथा सर्प व्याघ्र के द्वारा हत हो जाने वाले एवं आग और बिजली के पात से मरने वालों का कोई प्रायश्चित नहीं है।[38]

ग्राम के घात होने पर शरों के समूह से वेश्म बन्ध के निपात में तथा अति वृष्टि के कारण मृत हुओं का भी कोई प्रायश्चित नहीं होता। यथा –

ग्राम घाते शरौ छेद वेश्म बन्ध निपातने। अति वृष्टि हतानाश्च प्रायश्चित्त न विद्यते ।।[39]

संग्राम में मृत तथा घर में अग्नि लग जाने से जल जाने वाले एवं दावाग्नि तथा ग्राम के घात में मरने वाले का प्रायश्चित्त नहीं होता है।[40] चिकित्सा के लिए यन्त्रित तथा मूढ़ गर्भ के विमोचन में यत्न करते हुए भी यदि मृत को गौ प्राप्त हो जाय तो उसका कोई प्रायश्चित्त विधान नहीं है।[41]

यन्त्रिता गौचिकित्सायें मूढ़गब्भै विमोचने। यत्पे कृते विपधेत प्रायश्चित्तं न विद्यते।।[42]

बन्धन तथा रोधन में बहुतों के मृत हो जाने पर एवं भिषक के दारा मिथ्या प्रचार में प्रायश्चित्त बतलाते हैं। गाय तथा बैलों के मर जाने पर जो मनुष्य वहाँ देखने वाले हों और उनको नहीं रोकते हों तो उन सबको पातक लगता है।

गो बृषाणां विपत्तौ च यावन्तः प्रेक्षका जनाः ।नवारयन्ति तां तेाषां सर्वेषां पातकं भवेत् ।।[43]

एकत्रित बहुतों के द्वारा जब कोई एक हत हो जावे और किसके द्वारा यह हत हुआ यह नहीं जाना जावे तो दिव्य निर्णय के द्वारा उसका मारने वाला प्राप्त करे और नृप सन्नियुक्त व्यक्तियों के द्वारा निवर्तन करना चाहिए।[44] कोई भी एक गौ यदि बहुतों के द्वारा दैवात् मृत हो जावे तो उन सभी को पृथक्–पृथक् चौथाई भाग प्रायश्चित का

---

[34] पराशर स्मृति, श्लोक 244
[35] पराशर स्मृति, श्लोक 245
[36] पराशर स्मृति, श्लोक 246 से 247
[37] पराशर स्मृति, श्लोक 248 से 249
[38] पराशर स्मृति, श्लोक 250 से 251
[39] पराशर स्मृति, श्लोक 252
[40] पराशर स्मृति, 252
[41] पराशर स्मृति, 253
[42] पराशर स्मृति, 254
[43] पराशर स्मृति, 255
[44] पराशर स्मृति, 256–257

करना चाहिए। हत होने वालों में रूधिर दिखाईं देने, ब्याधि से ग्रस्त कृश होवे तो देखने पर अनेक हो जाता है। इस तरह अन्वेषण होता है।[45]

समस्त शास्त्रों को जानने वाले एक महर्षि मनु ने इस प्रकार प्रायश्चित बतलाया है कि गौ के विषय में चान्द्रायण करें–

मनुना चैवमेकेन सर्वशास्त्राणि जानता। प्रायश्चिन्तु तेनोक्तं गोषु चान्द्रायणे चरेत्।।

केशों की रक्षा करना अभीष्ट हो उसके लिए दुगुना गो व्रत करना चाहिए। जब व्रत दुगुना बताया गया है तो दक्षिणा भी दुगुनी होती है।[46] राजा या राजपुत्र, ब्राह्मण या बहुश्रुत यदि वपन न करे तो उसके स्थान में प्रायश्चित करना चाहिए। यदि दान दुगुना नहीं हुआ हो और केशों की रक्षा कर ली गई हो तो इसका पाप उसमें बना ही रहता है और जो ऐसा बोलता है वह भी नरक में जाता है। जो कुछ भी पाप किया जाता है वह जब केशों में जाकर रहा करता है। अतः समस्त केशों को लेकर दो अँगुलियों का छेदन करना चाहिए।[47] इसी प्रकार कुमारी नारियों के शिर का मुण्डन बताया गया है। स्त्री के केशों का वपन नहीं होता है और न दूर में शयनासन ही किया जाता है। स्त्रियाँ न तो रात्रि में गोष्ठ में वास करती हैं और न उन्हें गौओं के पीछे वन में ही जाना चाहिए। नदियों के संगम में और खास करके वनों में नहीं जाना चाहिए।[48]

स्त्रियों के प्रायश्चित में अजिन वस्त्र भी नहीं होता है। इत्री तरह का व्रत स्त्रियाँ करें। तीनों समय में स्नान और देवों का पूजन उन्हें करना चाहिए। इनका व्रत बन्धुओं के मध्य ही होता है चाहे कृच्छ् चान्द्रायण आदि कोई भी व्रत हो उन्हें नियत रूप से ठहरना और शुद्ध होकर नियमों का आचरण करना चाहिए।[49] इस लोक में जो कोई गाय का वध करके छिपाना चाहता है वह निश्चय ही कालसूत्र नामक घोर नरक में जाता है। उस नरक से विमुक्त होकर जब फिर इस लोक में पैदा होता है तो वह नपुंसक दुःखित, कुष्ट रोग वाला बराबर सात जन्म तक रहता है। इसलिए अपने किए हुए पाप को प्रकाशित कर देना चाहिए और सदा अपने धर्म का आचरण करते रहना चाहिए। स्त्री–बालक मृत्यु – गौ और ब्राह्मणों पर अत्यन्त कोप को वर्जित कर देना चाहिए।[50] जो दण्डे क ऊर्ध्व प्रहार से गाय को मार देते हैं उसका प्रायश्चित द्विगुण गो व्रत करना चाहिए।[51] अँगूठे के बराबर मोटा और भुजा के बराबर लम्बा, गीला और पलाश युक्त गाय का दण्ड कहा जाता है।[52] गायों के निपातन में यदि उसका गर्भ भी गिर जावे तो एक–एक के लिए कृच्छ् व्रत करे और जैसा पहिला करे वैसा ही दूसरा भी व्रत करना चाहिए।[53] गर्भ के उत्पन्न मात्र का हनन करने पर चौथा भाग तथा गर्भ के जब अंगों की रचना हो जावे तब दो चौथाई भाग और पूर्ण गर्भ के हनन में चौथाई भाग कम कृच्छ् व्रत करे।[54] अंग प्रत्यंग से पूर्ण रेतसंयुक्त के लिए एक–एक के लिए कृच्छ् व्रत करना चाहिए। यही गौ हनन करने वाले की निष्कृति होती है। यथा –

---

[45] पराशर स्मृति, श्लोक 258–259
[46] पराशर स्मृति, श्लोक 260–261
[47] पराशर स्मृति, श्लोक 262–264
[48] पराशर स्मृति, श्लोक 265–266
[49] पराशर स्मृति, श्लोक 267 से 269
[50] पराशर स्मृति, श्लोक 270 से 271
[51] यम स्मृति, श्लोक 40
[52] यम स्मृति, श्लोक 41
[53] यम स्मृति, श्लोक 42
[54] यम स्मृति, श्लोक 43

अंग गप्रत्यंगसंपूर्णे गर्भ रेतःसमन्विते। एकक्रशश्चरेत्कृच्छमेषा गोध्नस्य निष्कृतिः।।[55]

बाँधने में, रोकने में, अथवा पाषाण पर गायों की रोग से यदि मृत्यु हो जावे तो निमित्त वाले को कोई पाप नहीं होता है। यथा –

बँधने रोधन चैव पाषाणे वा गवाँ सजा।तपद्यते चेन्मरणं निमित्ती नैव लिप्यते।।[56]

दण्डे की चोट ते मूर्छित हो जावे अन्यथा शिर जावे और फिर उठकर छः कदम, सात कदम या दस पैर चलकर और कुछ खा लेवे या जल पी लेवे तो पहली किसी भी व्याधि से मृत होने वालों की कोई प्रायश्चित नहीं होता है। यथा –

मूर्छितः पतितो वाऽपि दण्डेनाभिहतस्तथा।उत्थाय षट्पदं गच्छेत्सप्त पंच दशापि वा।।
गासं वा यदि गृह्णीयात्तोयं वाऽपि पिबेद्यदि। पूर्वव्याधिप्रनष्टानां प्रायश्चित्तं न विद्यते।।[57]

लकड़ी, ढेला, पत्थर और शस्त्र द्वारा यदि गौ मर जावे तो उत्का शास्त्र में कि प्रकार प्रायश्चित कहा जाता है।

काष्ठलोष्टाश्मभिर्गावः शस्त्रैर्वा निहता यदि। प्रायश्चितं कर्थ तत्र शास्त्रे निगद्यते।।[58]

काष्ठ द्वारा गौ के मृत हो जाने पर मारने वाले को सान्तपन प्रायश्चित करना चाहिए। गौमूत्रादि पंचगव्य और कुशादक भक्षण करते हुए एक दिन उपवास करने को ''सान्तपन'' कहते हैं। ढेले से मृत होने पर प्राजापत्य नाम वाला प्रायश्चित करना चाहिए। पाषाण से तप्त कृच्छ् और शस्त्र से मृत्यु होने पर अतिकृच्छ् करना चाहिए।

काष्ठे सांतपनं कुर्यात्प्राजापत्यं तु लोष्टके। तप्तकृच्छ्तु पाषाणे शस्त्रे चाप्यतिकृच्छ्कम्।।[59]

गौ और ब्राह्मणों को औषध स्नेह (घृतादि) और आहार देते हुए यदि उनकी मृत्यु हो जावे तो उसका कोई भी प्रायश्चित नहीं होता है।

औषधं स्नेहमाहारं ददद्गोब्राह्मणेष तु। दीयमाने विपत्तिःस्यात्प्रायश्चित्तं न विद्यते।।[60]

तैल अथवा पीने योग्य दवा और अन्य औषध के खाने में तथा शूलादि के निकालने में मृत्यु होने पर या वेदना होने पर कोई भी प्रायश्चित नहीं होता।

तैलभैषज्यपाने च भेषजानां च भक्षणे। निःशल्यकरणे चैव प्रायश्चित्तं न विद्यते।।[61]

गोवत्सों को गले में बाँधकर रखने की क्रिया से अथवा औषध देने के समय बाँधने से और संरक्षण के लिए सन्ध्या समय बन्धन और रोकने का कोई भी दोष नहीं होता। इसके चौथे पाद में रोमों का, दो पाद में केवल दाढी–मूँछ का, तीन पाद में शिखा रहित और मूल में सब करे। यथा –

वत्सानां कण्ठवन्धेन क्रियया भेषजेन तु। सायं संगोपनाथ च न द्वोषो रोधबन्धयो।।
पादे चैवास्य रोमाणि द्विपादे श्मश्रु केवलम्। त्रिपादे तु शिखावर्ज मूले सर्व समाचरेत्।।[62]

समस्त केशों को उतरवा कर दो अंगुलियों का छेदन करे। इसी प्रकार स्त्रियों का मुण्डन का मुण्डापन कहा गया है।

सर्वोन्केशान्समुद्वृत्य च्छेदयेदंगुलक्ष्यम्। एवमेव हि नारीणां मुण्डमुण्डापनं स्मृतम्।।[63]

---

[55] यम स्मृति, श्लोक 44
[56] यम स्मृति, श्लोक 45
[57] यम स्मृति, श्लोक 46–47
[58] यम स्मृति, श्लोक 48
[59] यम स्मृति, श्लोक 49
[60] यम स्मृति, श्लोक 50
[61] यम स्मृति, श्लोक 51
[62] यम स्मृति, श्लोक 52–53
[63] यम स्मृति, श्लोक 54

मुण्डन स्त्रियों को नहीं कराना चाहिए और कभी वीरासन में बैठना भी नहीं चाहिए। गोष्ठ में कभी निवास नहीं करे और जाती हुई का अनुब्रजन नहीं करना चाहिए। यथा–

न स्त्रियावंपनं कार्य न च वीरासनं तथा। न च गोष्ठे निवासं च (सश्च) न गच्छन्तीमनुव्रजेत्।।[64]

राजा तथा राजपुत्र और ब्राह्मण तथा बहुश्रुत इनका बपन न करा कर प्रायश्चित ही करना चाहिए।

राजा वा राजपुत्रो वा ब्राम्हणों वा बहुश्रुतः। अकृत्वा वपनं तेषां प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेतं।।[65]

केशों की तो रक्षा करे और दुगुनी दक्षिणा नहीं देवे तो हनन करने वाले का पाप क्षीण नहीं होता है और दाता नरक में जाता है।

केशानां रक्षणार्थ च द्विगुणै व्रतमादिशेत्।द्विगुणे तु व्रते चीणें द्विगुगैव तु दक्षिणा।।[66]

केशों की तो रक्षा करे और दुगनी दक्षिणा नहीं देवे तो हनन करने वाले का पाप क्षीण नहीं होता है और दाता नरक में जाता है।

द्विगुणं चेन्न दत्तं च केशांश्च परिरक्षयेत्। पापं न क्षीयते हन्तुदांता च नरकं ब्रजेत्।।[67]

जो श्रोत तथा अत्मार्त प्रायश्चित्त करते हैं, ऐसे धर्म के कार्य में विघ्न करने वालों को राजा के द्वारा दण्ड देकर पीड़ित करना चाहिए। यदि काम से मोहित राजा उनको सजा न देवे तो वह पाप सौ गुना होकर राजा को ही लगता है।

[64] यम स्मृति, श्लोक 55
[65] यम स्मृति, श्लोक 56
[66] यम स्मृति, श्लोक 57
[67] यम स्मृति, श्लोक 58

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

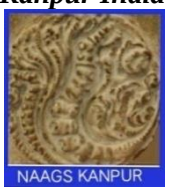


***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# समकालीन हिन्दी कथा साहित्यः उत्तर आधुनिकता व स्त्रीवाद

**प्रोफेसर मंजु मिश्रा**
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
महाराज बलवंत सिंह पी0जी0कालेज
गंगापुर, वाराणसी

उत्तर–आधुनिकता अनेक प्रवृत्तियों का पुंज है जिसमें एक ओर अतियथार्थवाद है तो दूसरी ओर यह चिन्तन कि जो समूह कल तक हाशिये पर थे वे आज केन्द्र में आ रहे हैं।[1] उत्तर–आधुनिकता के नाभिकेन्द्र में 'इच्छा' सक्रिय है। यह 'विवेक' को केन्द्र में रखने वाली आधुनिकता को नष्ट–भ्रष्ट कर चुकी है। यह ज्ञान को शक्ति मानती है। 'ज्ञदवूसमकहम वि च्वूमत' यह उत्पादन, श्रम और इतिहास के अंत की घोषणा कर चुकी है, साथ ही मूल्य–मीमांसा को खारिज भी। पर यह न्याय–व्यवस्था में विश्वास रखती है, यह मानती है कि न्याय लोगों के आत्मनिर्धारण में बसता है। यदि ल्योतार का विश्वास 'बहुईश्वरवाद' और 'मूर्तिपूजावाद' में है, तो बौद्रिआ अमेरिकी 'वाटरगेट स्कैंडल' और 'डिस्नीलैण्ड' दोनों को उत्तर आधुनिक अतियथार्थ मानता है। उत्तर आधुनिक संसार अतियथार्थ का छाया संसार है।[2]

उत्तर आधुनिकता एक बहुआयामी पद है। इसे बहुतेरे उद्देश्यों के लिए व्यवहृत किया गया और इतनी भिन्न–भिन्न, बहुतेरी चीजों के लिए प्रयुक्त किया गया है कि इन सबके बीच उत्तर आधुनिक पद अपने व्यवहार में कम से कम एक पूरी तरह आत्मप्रक्षेपी और गैर–निर्देशी पद के बतौर तथा साहित्य और कला में गैर राजनीतिक आंदोलन के रूप में उभरा हैं। उत्तर आधुनिकतावाद कोई तर्कसंगत विचाराधारा नहीं है। स्वयं उत्तर आधुनिकतावादी लोग जो इसे अपनाना अनिवार्य बतलाते हैं, इसकी असंगतियों को जानते हैं। उदाहरणार्थ, फ्रेडरिक जेमसन ने अपनी पुस्तक पोस्ट मार्डर्निज्म आर दि कल्चरल लॉजिक आफ लेट केपिटलिज्म (1919) में लिखा है कि 'उत्तर आधुनिकतावाद' कोई विधिवत विकसित शास्त्र नहीं है और इसे परिभाषित करना असंभव है। इसे बाहर से तो चुनौती दी ही जाती है इसके भीतर भी बड़े बड़े झगड़े और अन्तर्विरोध है। हिन्दी में इसके प्रमुख प्रचारक सुधीश पचौरी ने अपनी पुस्तक 'उत्तर आधुनिकता और उत्तर संरचनावाद' (1994) में 'उत्तर आधुनिकतावाद' के बारे में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये–'उत्तर–आधुनिकता, आधुनिकता का विस्तार भी है

और अंतिम बिन्दु भी है। आधुनिकता के दौर से काफी अलग वह एक उत्तर साम्राज्यवादी स्थिति है। वह एक भूमंडलीकरण अवस्था है जिसमें हम सब शामिल है। वह हमारे सांस्कृतिक व्यवसाय के बदल जाने का नाम है। उत्तर–आधुनिकता यह सब है और इसके अलावा भी बहुत कुछ है। लेकिन यह शायद बाकी हर चीज से ज्यादा एक मनोदशा भी है।[3]

सूचना और औद्योगिक क्रांति के जमाने में अनुभव की संरचनाओं एवं संवेदनशीलता द्वारा होने वाली घटनाओं को उत्तर–आधुनिकता की संज्ञा दे सकते हैं। उत्तर–आधुनिकता सांस्कृतिक और बौद्धिक तत्वों को उत्पादन की अपेक्षा उपभोग और प्रतीकात्मक मालों के वितरण के संदर्भ में निर्दिष्ट करती है। इसने ज्ञानोदय के विवेक, स्वभाव और प्रकृति के पूर्व निर्दिष्ट 'त्रिक्' के ऊपर विजय प्राप्त कर ली है। पर दैनिक जीवन में उत्तर–आधुनिकता ने ऊँची और नीची संस्कृति के सीमांतों को धुंधला कर दिया है। इसे ज्ञान, आस्वादन और अभिगत की ऊर्ध्वाधरता के विनाश के रूप में देखा गया है। कुछ लोगों द्वारा यहां तक निर्देश दिया गया है कि रूचियाँ वैश्विक की जगह स्थानिक की ओर झुकी है जो बहुत न्याय संगत नहीं है। यहाँ शब्द केन्द्रीयतावाद का ह्रास भी हमारे सामने उपस्थित होता है।[4]

उत्तर–आधुनिकता दूसरी ओर आधुनिकता की उस विशेषता के प्रति हमारा ध्यान केन्द्रित करती है, जो विनाश की ओर जा रहे अनुमानित सामाजिक परिवर्तन से जुड़ी है। यहाँ सामाजिक विश्लेषण और राजनीतिक व्यवहार की पूर्व विधियों पर प्रश्नचिन्ह जड़ दिये गये हैं, क्योंकि शक्ति–संतुलन अंतरित होता जाता है और गांठे खुलती और फिर से बँधती जाती हैं। ''सभ्यता के सोपानों पर आरूढ होता समाज परिवर्तनों को स्वीकार करता हुआ विकास की राह पर अग्रसर होते समय न जाने कितना कुछ छोड़ता व जोड़ता चलता है। इसी शाश्वत क्रम में बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विश्वपटल के पश्चात् विश्वपटल पर जो नया बौद्धिक वातावरण निर्मित होना प्रारम्भ हुआ उसकी सम्यक् अभिव्यक्ति आलथूसे, फूको, देरीदा, ल्योतार्द जैसे विचारकों को यहाँ मिलती है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में समाज–संस्कृति, अर्थव्यवस्था, राजनीति, कला, संगीत,वास्तुशास्त्र, साहित्य और चिन्तन में जो परिवर्तन आए हैं, उत्तर–आधुनिकतावाद उनको परिलक्षित करने वाला एक व्यापक लेकिन विवादास्पद शब्द है। अब प्रश्न उठता है कि उत्तर–आधुनिकता एक मनोदशा है या माहौल प्रवृत्ति है या परिदृश्य फैशन या विचार या विभ्रम विद्रोह है–दमितों– दलितों–नारियों की मुक्ति के संघर्ष का नवदर्शन आंदोलन है या महज एक अफवाह।[5]

उत्तर–आधुनिकता में साहित्य समाज का उत्पादन नहीं,वरन् एक आह्लादक लीलाभाव है। उत्तर–आधुनिकता समाज, विवाह, परिवार और शैक्षणिक संस्था सबकी जड़बद्धता का अतिक्रमण करती है। परम्परा की जो मूल निधि है, इसे ही क्षत–विक्षत कर देती है। परम्परा से अतिक्रमण समाज के साथ– साथ साहित्य में परिलक्षित होता है। यद्यपि परम्परा से अतिक्रमण साहित्य में पहले भी देखने को मिलते रहे, विभिन्न वादों ने पहले भी अपने–अपने ढंग से परम्परा को तोड़ने का प्रयास किया, पर जिस प्रकार समग्रता में मूलोच्छेद कर देने की नियत से उत्तर–आधुनिकता प्रहार पर प्रहार करती है, समग्रता में किया जाने वाला ऐसा प्रहार इससे पहले साहित्य में दृष्टिगत नहीं है। इस अतिक्रमण का एक उदाहरण 'स्त्रीवादी' आंदोलन का अतिआक्रामक स्वरूप भी दृष्टिगत है, जो पुरूष–प्रधान समाज में वर्चस्व की घोर प्रतिक्रिया में उभरा है। उत्तर–आधुनिक युग में जहाँ 'स्त्री के मुक्त यौनाचार' को बढ़ावा मिल रहा है वहीं स्त्री

और स्त्री के बीच यौन सम्बन्ध को भी वैध माना गया है जो एक स्वस्थ भारतीय संस्कृति की अनुशासन परकता से पलायन का प्रमाण प्रस्तुत करता है।

स्त्रीवादी सिद्धांत स्त्री के प्रति सामाजिक अन्याय से अपने आपको जोडता है, वह स्त्री की शिक्षा की अधोगति, अल्पगति तथा उसके श्रम की अल्प अदायगी से अपने आपको जोड़ता है। स्त्री शरीर के कारण उस पर होने वाले और किये जाने वाले शारीरिक अत्याचार से अपने आपको जोड़ता है। यही नहीं स्त्री का जो सांस्कृतिक दमन होता है जिसमें स्त्री एक सांस्कृतिक पदार्थ कें रूप में अवमूल्यित होती है, बजाए इसके कि उसे सही रूप में मूल्य प्रदान किया जाए और वह स्वयं अपने आपको सांस्कृतिक व्यक्ति के बतौर सही रूप में मूल्यित कर सके–यह भी प्रतिज्ञप्ति उससे जुड़ी है। स्त्रीवाद सदैव इस ज्ञानात्मक तथ्य के संपर्क में रहता है कि 'यथार्थ' 'आदर्श' नहीं है कि इसे बदलना चाहिए और इसे बदला जा सकता है यदि क्रांति को सक्रिय रखें। आज स्त्रीचेतना के लिए इसी की अपेक्षा है। और 'स्त्रीवादी' आंदोलन तभी सफल होगा जब हम भारतीय संस्कृति के मूल्यों एवं आदर्शों से बिना कटे, पश्चिमी यौन परक उच्छृंखलता और उसकी उपभोगात्मकता से स्वयं को बचा सके।

तो प्रश्न यह उठता है कि समकालीन हिन्दी कथा साहित्य में स्त्रियों द्वारा सृजित स्त्री चेतना के साहित्य का एक बड़ा हिस्सा स्त्री की 'यौन मुक्ति' का साहित्य कैसे बन गया। इसकी प्रथम बुनियाद पड़ी, कृष्णा सोवती के 'मित्रोमरजानी' और 'सूरजमुंखी अंधेरे के' उपन्यासों में। यदि गहराई से अध्ययन करें तो स्पष्ट होता है, एक जीवन मूल्य के रूप में परिवार समाज से उसका कोई लेना देना नहीं। देह और देह की भूख में वह इस कदर आक्रामक है कि उसे कहीं से कोई संशय द्वन्द्व और अभाव नहीं खटकता। न तो इसमें कहीं कोई  सामाजिक सरोकार दिखता है न मानवीय दृष्टि, महज भदेश के लिए भदेश का चित्रण। समूची कथा घोर दैहिकता पर टिकी होने के बावजूद एक अयथार्थ स्वप्निल दुनिया में विचरती है। जहाँ आर्थिक–सामाजिक विसंगतियाँ, जीवन की आपाधापी, ऊहापोह सिरे से खारिज है।

स्त्रीचेतना के संदर्भ में मृदुला गर्ग का 'चित्तकोबरा' भी काफी चर्चित है। इसमें 'मनु' को अपने दाम्पत्य जीवन के बिखरने की न कोई आशंका है न मलाल। यह सुनकर कि महेश उससे प्यार करने लगा है वह एक लम्हें के लिए विचलित जरूर होती है, लेकिन जल्दी ही अपने पर काबू पा लेती है और रिचर्ड के साथ चल रहे उसके सम्बन्ध पर कोई आंच नहीं आती। 'पति से प्यार न कर पाना एक बात है लेकिन दाम्पत्य की मर्यादा तोड़कर बिना किसी द्वन्द्व–प्रतिद्वन्द्व के इस तरह से विवाहेतर सम्बन्ध को लपक लेना और उसका उत्सव मनाना, दूसरी बात है। 'चितकोबरा' की नायिका की मुक्ति का यही मंजर है जिसे शरीरी और अशरीरी प्रेम के भ्रांत और झूठे भेद से युक्तिसंगत ठहराने के छद्म प्रयास पर उपन्यास का पूरा ढॉचा खड़ा है। [6]

समकालीन नारीवादी लेखिकाओं में जिसका स्वर सर्वाधिक ऊँचा है, वे हैं मैत्रेयीपुष्पा। ग्रामीण पृष्ठभूमि पर रचित उपन्यासों–चाक, इदन्नमम् अल्मा कबूतरी, कहे ईसरी फाग–से वह एक नवीन भाव–भूमि, आंचलिक मुहावरों युक्त एक नवभाषा और नए तेवर के साथ उभरी हुई है और अपेक्षाकृत अल्पसमय में स्वीकृति और प्रतिष्ठा प्राप्त कराने में सफल भी रही है। कथा अलग–थलग होते हुए भी उनके सभी उपन्यासों का प्रतिपाद्य एक ही लगता है–पुरूष वर्चस्व से लड़ती स्वतंत्र चेता स्त्री। लेकिन इस स्वतंत्र चेतना पर प्रायः उसकी निरंकुश यौन–चेतना ही हावी होती परिलक्षित होती है। 'सारंग को शायद ही कभी यह एहसास हुआ कि एक सामान्य आदर्शवादी युवक के

अधःपतन और अपराधीकरण का जिम्मा उसके ऊपर आता है वह तो मुक्त यौनवादके सुने सुनाए सतही और खोखले तर्कोसे इस कदर घिरी है कि वृहत्तर सामाजिक सचाई को देख पाने के लिए अपने को अक्षम बना चुकी है–.....एक पूर्वाग्रह युक्त, पुरुष–विरोधी प्रतिरोध का स्वर उपन्यास को वस्तुगत सत्य की उस ऊँचाई तक पहुँचने से रोक देता है, जिसका यह हकदार था। यही नहीं अपने विवाह–विरोधी, पुरुष –विरोधी आग्रह के चलते यह अनेक पात्रों को अन्तर्विरोधों और विसंगतियों का शिकार बना देता है।'

कहना असंगत न होगा कि वैश्वीकरण के इस युग में विकसित उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रसार के साथ सदियों पुराने 'स्त्रीमुक्ति' आंदोलन को जो नयी विषाक्त वैश्विक परिवेश मिला है वह स्त्री विमर्श का उत्तर आधुनिक विमर्श बाजारोन्मुख विज्ञापन विमर्श है जो गम्भीरता से विचार के प्रेरित करता है कि मन और मस्तिष्क की मुक्ति के बिना 'देह मुक्ति' का क्या अर्थ है, वर्तमान स्त्रीवादी कथा लेखन उत्तर–आधुनिकता की दौड़ में इस कदर रफ्तार पकड़ चुका है कि स्त्रीमुक्ति मात्र 'यौन–उन्मुक्तता' तक ही सीमित दिखाई दे रही है। एक प्रसंग में मनु जब रिचर्ड से पूछती है कि वह इतने देशों में घूमते हुए इतनी तरह की सुंदर औरतें देखता है तो उसका (मनु)चेहरा भूल नहीं जाता, रिचर्ड का वही पुराना जबाब है कि वह कुछ अलग है। फिर मनु के कैसे पूछने पर रिचर्ड का ध्यान देने योग्य जबाब है– एक खास बात तो यह है कि तुम कपड़े उतारकर भी वैसी ही लगती हो जैसे कपड़े पहन कर।' दोनों के आकर्षण का सबब एक मात्र दैहिक होने का इससे ज्यादा स्पष्ट सबूत और क्या होगा? यहाँ मैं एक बात स्पष्ट करना चाहूँगी कि 'यौनउन्मुक्तता' का प्रश्न सारहीन नहीं बल्कि अमर्यादित होना उचित नहीं है। इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि पुरुष–प्रधान समाज में पुरुष एवं स्त्री के लिए एक ही मुद्दे पर दोहरे मानदण्ड बनाए गए हैं। प्रथम, हम लेते हैं। 'विधुर–विवाह'। प्रायः यह देखा जाता है कि पुरुष की स्त्री यदि मर जाती है तो तेरही के दिन से ही संगी–साथी एवं समाज द्वारा उस 'विधुर साहब' पर विवाह हेतु दबाव बनाया जाता है और एक स्त्री यदि 'विधवा' हो जाती है तो पुनर्विवाह की सहर्ष अनुमति नही है। हालांकि हालात में परिवर्तन आए हैं। समकालीन लेखिकाएँ अपनी पात्राओं को पुनर्विवाह की अनुमति देती हैं और 'विधवा' को भी समाज में समान रूप से जीने की बात कहती है। ममता कालिया के उपन्यास 'बेघर की नायिका' संजीवनी को उसका प्रेमी अनटच्ड न होने के कारण छोड़ देता है जबकि संजीवनी निरपराध है। 'सूरजमुखी अँधेरे की' नायिका बचपन में ही एक लडके के रेप का शिकार होती है, जिससे वह आजीवन उबर नहीं पाती। यही स्थिति 'छिन्नमस्ता' की नायिका प्रिया की है जो बचपन में भाई द्वारा रेप का शिकार होती है। वह आजीवन अवसाद ग्रस्त रहती है और संकल्प लेती है कि ''औरत नहीं बनूँगी।'' कितनी बिडम्बना है कि? आखिर यह कैसा न्याय है? चूक पुरुष करता है और सजा स्त्री को भुगतनी पड़ती है। 'चाक' में रेशम, कलावती चाची और पहलवान कैलाशी सिंह, इस मिथक को तोड़ते हैं। कलावती चाची कहती हैं, ''पुरुष और औरत को छुए तो उसका उद्धार करता है और औरत पुरुष को छू दे तो उसे पाताल में डूबो दे, ऐसा क्यों?''

वास्तव में, समस्या तो बड़ी जटिल है। लेकिन बुजुर्गोंका मत है कि मुद्दा गम्भीर हो तो शांत भाव से धैर्य के साथ निर्णय लेना होगा। जग–जाहिर है–''मैले से मैला नहीं धोया जाता।'' यदि पुरुष (मनचले) उच्छृंखलता करें तो जिस अस्मिता को बचान के लिए हम निरन्तर प्रयासरत हों उसे यूँ ही प्रतिक्रिया में गँवा दें, कहाँ तक बुद्धिमानी है? यदि स्त्री के लिए 'अनटच्ड' होना अनिवार्य है तो पुरुष को सोचना होगा

कि कौन सा 'भूत' है जो उसे 'टच्' करता है। सीधी सी बात है कि स्त्री 'अनटच्ड' तभी रह सकेगी जब उसके साथ बलात्कार न हो। शर्त यह नहीं कि पुरुष चार औरतों से संपर्क स्थापित करे तो स्त्री को पाँच करने की स्वतंत्रता चाहिए। 'गलत तो गलत।' यदि मनचलों को यह समझ में आ जाये कि स्त्री के साथ बलात्कार करना अनैतिक है तो स्त्री चेतना की पहली चेतना लड़ाई पर विराम। विवाह की पवित्रता सिर्फ नारी के लिए नहीं बल्कि पुरुष के लिए आवश्यक है। स्त्री–पुरूष अलग–अलग प्रस्तर खण्ड की तरह नहीं है। प्रायः यह देखा जाता है कि 'अनटच्ड' स्त्री की चाहत एक अवारा लड़के को भी होता है। लेकिन दुःख है कि आज बाला हो या वृद्धा निरंतर असुरक्षा बोध से ग्रस्त है।ऐसा लगता है कि पाशविक प्रवृत्ति पर विराम लग पाना असंभव है। शायद लोगों के दिल में घर कर गया है कि वे कुछ भी कर लें, कुछ होने वाला है ही नहीं। इसीलिए मौका मिलते ही 'भारत की बेटी' की लाज लूटी जा रही है। कुल मिलाकर 'आत्मानुशासन एवं आत्मसंयम व्यक्ति के जीवन से हवा होता जा रहा है। असली संकट यहाँ है।' लेकिन बिडम्बना है कि समकालीन स्त्रीवादी कथालेखिकाएँ 'यौनमुक्ति' का नारा उछालकर बचे–खुचे संयम और अनुशासन को भी लुप्त करने पर उतारू हैं। यह उत्तर–आधुनिकता की आँधी की धूल की है जो उनकी आँखों में पड़ गयी है।

आज वैश्विक स्तर पर जो उत्तर–आधुनिक संस्कृति पल्लवित हो चुकी है उसकी ओर गमनागमन की प्रक्रिया में पलायन की स्पष्ट पहचान प्राप्त होती है। फिर भी उत्तर–आधुनिकता कोई ऐसी चीज नहीं है जिससे आतंकित हुआ जाए क्योंकि यह एक शाश्वत सत्य है कि कोई भी वर्ग या कोई गतिशील समाज स्थिर नहीं रह सकता, लेकिन उसके टुकड़े–टुकड़े भी उतने ही किए जा सकते हैं जितने की वह अनुमति देगा। सकारात्मक स्त्रीमुक्ति का एक व्यापक आर्थिक सामाजिक संदर्भ है, जिसे प्रभा खेतान चित्रा मुद्गल, सूर्य बाला, नासिरा शर्मा, मृदुला गर्ग, निरूपमा सेबती, गीतांजलिश्री, मन्नूभण्डारी, चन्द्रकांता तथा अन्य लेखिकाओं ने सामर्थ्यानुसार सृजनात्मक अभिव्यक्ति, देने का प्रयास किया है। इनके साहित्य का मुद्दा है– 'स्त्री की गरिमा, स्वतंत्रता, समानता और पाशविकता से मुक्ति।'

यद्यपि उत्तर–आधुनिकता युग में मानवीय संवेदनाएँ लुप्त हो रही हैं, समष्टिगत भावना व्यष्टिगत भावना में परिवर्तित हो रही है यथापि यह सोचना कि उत्तर–आधुनिकता हमारी संस्कृति को तोड़ देगी, 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' का नारा ही मिटा देगा। भ्रांति के अलावा कुछ और नहीं। वस्तुतः उत्तर–आधुनिकता ने समाज में ऐसे व्यामोह पैदा कर दिए हैं कि जनमानस 'कन्फ्यूजन' की स्थिति में है। जरूरत इस बात की है कि हम उत्तर–आधुनिकता के सकारात्मक सामाजिक संदर्भों को स्वीकार कर जीवन का नव पथ प्रशस्त करें।

जरा सोचें, आज गाँवों में भी 'स्त्री शिक्षा' को लेकर अभिभावक जागरूक हैं। गाँवों से गुजरती सड़कों पर स्कूल–कालेज खुलने–बंद होने के समय साइकिल पर लड़कों के साथ लड़कियों की संख्या कम नहीं है। शहरों में घरेलू नौकरानियाँ भी अपनी बच्चियों को येन–केन प्रकारेण शिक्षित करने पर तुली है। 'बाल–विवाह' गाँवों में भी लुप्त हो रहे हैं। केन्द्र और राज्य की नागरिक सेवाओं, निजी प्रबन्धन,शिक्षा, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, विमान, कम्प्यूटर, पत्रकारिता, राजनीति, साहित्य सब में गुणात्मक योगदान बढ रहा है।

कैरियर के प्रति निष्ठावान कामकाजी महिलाएँ सहकर्मी पुरूषों के साथ एक मर्यादित दूरी बनाते हुए काम करना सीख रही है। रह गयी ''यौन उन्मुक्तता'' की बात। मनचलों की यौन उच्छृंखलता से आजिज आकर हम यौन उन्मुक्तता की बात करें

तो भारतीय नारी का 'अस्तित्व–अस्मिता एवं गरिमा' कहाँ से कायम रहेगी। हाँ, हमें 'देह–शुचिता' के दोहरे मानदण्ड बदलने होंगे। मेरा विनम्र निवेदन है सुधी जनों से कि उत्तर–आधुनिकता का आवरण लेकर हम त्याज्य को त्यागना एवं ग्राह्य को ग्रहण करना न भूलें। मृतप्राय मानवता को संजीवनी मानव ही पिला सकता है–

'मानव तुम करो निर्माण
मानवता हुई मृत आज.....
तुम ही कवि, स्वयंभू, जगत् के शिल्पी
कलामय पुरुष/कर्त्ता स्वयं भर्त्ता स्वयं
कर निज सृष्टि का संहार/रचो फिर नया युग/
नयी मानवता, नया संसार।[7]

**संदर्भः**


1. प्रो0 अर्जुन चहव्वाण–उद्धृत, भारतीय वांगमय, वर्ष 11/अंक–6 पृ0 14
2. उत्तर–आधुनिकता बहुआयामी संदर्भ–पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु'– कवर पेज, प्रथम संस्करण 2010।
3. उद्धृत–डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव–उत्तर–आधुनिकता की पृष्ठभूमिः कुछ विचार, कुछ प्रश्न, पृष्ठ–आमुख
4. उत्तर–आधुनिकता बहुआयामी संदर्भ, पाण्डेय, शशिभूषण 'शीतांशु' पृष्ठ 54
5. 21वीं सदी में भारत दशा और दिशा, स0 डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव, ऊ0भा0 शोध सेमिनार, आयो0द0वै0पी0जी0कॉलेज, उरई 26–27 सितम्बर 2009, पृष्ठ–62
6. कमलाकांत त्रिपाठी–समाज में स्त्री का बदलता चेहरा और हिन्दी की स्त्री उपान्यासकारों मे मुक्त यौनवाद– दस्तावेज– 138/138 जनवरी –मार्च 2013 15
7. डा0शम्भू नाथ सिंह–मन्वंतर–पृष्ठ 20

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

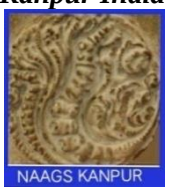


***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# भारतीय ज्ञान परम्परा एवं नई शिक्षा नीति में प्रासंगिकता

**डा0 उमेश चन्द्र तिवारी**
सहायक आचार्य बी0एड0 विभाग
अकबरपुर महाविद्यालय
अकबरपुर कानपुर देहात

भारतीय ज्ञान परम्परा अद्वितीय ज्ञान और प्रज्ञा का प्रतीक है जिसमें ज्ञान विज्ञान, लौकिक और पारलौकिक, कर्म–धर्म तथा भोग और त्याग का अद्भुत संगम है। ऋग्वेद के समय से ही शिक्षा प्रणाली जीवन के नैतिक, भौतिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक मूल्यों पर केन्द्रित होकर विनम्रता, सत्यता, अनुशासन, आत्मनिर्भरता और सभी के प्रति सम्मान जैसे मूल्यों पर जोर देती रही है। यह परम्परा दर्शन में समाहित है। डा0 राधाकृष्णन ने इसका उल्लेख भी किया है कि यह समस्त कार्यों का साधन एवं समस्त कर्तव्यों का मार्गदर्शक है। वेदों में विद्या को मनुष्यता की श्रेष्ठता का आधार स्वीकार किया गया है। छात्रों को मानव, प्राणियों एवं प्रकृति के मध्य संतुलन को बनाये रखना सिखाया जाता था। शिक्षण और सीखने की कला के लिए वेद एवं उपनिषद के सिद्धान्तों का अनुपालन जिससे व्यक्ति स्वयं, परिवार और समाज के प्रति कर्तव्यों को पूरा करने का दायित्व निर्वहन कर सकें। इस प्रकार जीवन के सभी पक्षों को उसमें सामिल किया गया था। भारतीय ज्ञान परम्परा में यह भी निर्देशित है कि चित्त या चेतना अवस्था तक यह उन्नति के पथ का समर्थक ही नहीं बल्कि जीवन के लिए दिशा देने का भी कार्य करता रहा है।

शिक्षा केवल उदर पूर्ति का साधन न होकर सीखने एवं शारीरिक विकास दोनों का केन्द्र बनी। कर्म वही जो बंधनों से मुक्त करे एवं शिक्षा वही जो मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करे। कहा भी गया है **''सा विद्या या विमुक्तये''** अर्थात जो मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करे। ज्ञान मात्र भौतिक जीवन को सुखी बनाने हेतु नहीं अपितु वह है जो शरीर में निबद्ध चेतना को बृम्हान्डीय चेतना के स्तर पर प्रतिस्थापित करे। भारतीय ज्ञान परम्परा के सार माने जाने वाले उपनिषदों में से एक मुन्डक उपनिषद में ज्ञान का स्पष्ट एवं उत्कृष्ट वर्गीकरण किया गया है। इसमें मनुष्य के समस्त ज्ञान को दो भागों में अर्थात अपराविद्या और पराविद्या में विभक्त करते हुये लोक तथा परलोक सम्बंधी भोगों की स्थिति एवं बृह्म ज्ञान की प्राप्ति को बताया गया है। आत्मिक शान्ति की

प्राप्ति हेतु आवश्यक है – व्यावहारिक जीवन को सुव्यवस्थित करते हुये आत्म ज्ञान के लिए निरन्तर प्रयास करना। इस आवश्यकता का प्रतिपादन उपनिषद साहित्य में भी एक प्रार्थना के माध्यम से किया गया है जिसमें कहा गया है हे परमात्मा हमें असत् से सत् की ओर ले चलो, अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो एवं मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलो।

इसके अतिरिक्त जो भी कर्म है वे सब कुशलता एवं निपुणता के लिए हैं। (विष्णु पुराण 1/9/41)। शिक्षा के इस संकल्प को भारतीय परम्परा में स्वीकार किया गया और तद्नुरूप विश्वविद्यालयों एवं गुरूकुलों में शिक्षा की व्यवस्था की गयी। घर, मन्दिर, पाठशाला या गुरूकुल में संस्कार युक्त मानवता को प्रेरित करने वाली समाजोपयोगी एवं राष्ट्र प्रेम की शिक्षा प्रदान की जाती थी। छात्रों को उच्च शिक्षा के लिए विहारों विश्वविद्यालयों की व्यवस्था थी जो उन्हें केवल मौखिक ज्ञान के द्वारा प्राप्त होती थी एवं चिन्तन, मनन तथा निदिध्यासन ही एक प्रेरक मन्त्र उनके लिए उचित एवं समकालीन प्रासंगिक था। इस प्रकार भारतीय ज्ञान परम्पराओं का सार ज्ञान प्राप्ति तथा नीतिगत नियमों को जानकर उनका पालन करते हुये सत् तथा तत्वबोध प्राप्ति का ही था।

उस समय की शिक्षा प्रणाली ज्ञान परम्परायें, प्रथायें मानव की मानवता के लिए प्रोत्साहित करती थीं। पुराणों में ज्ञान को अप्रतिम माना गया है। (ब्रम्हान्ड पुराण 1/4/15)। भारत के विभिन्न शिक्षा केन्द्र विश्वप्रसिद्ध एवं शोध के लिए अग्रणी केन्द्र थे उनमें भी प्रमुख तक्षशिला, नालन्दा, विक्रमशिला, वल्लभी, उज्जयनी काशी आदि प्रसिद्ध थे।

वैदिक काल स्त्रियों की शिक्षा के लिए प्रसिद्ध था जिसमें मैत्रेयी, ऋतम्भरा, अपाला, गार्गी और लोपमुद्रा जैसे नाम प्रमुख हैं। बोधायन, कात्यायन, आर्यभट्ट, चरक, कणाद, बाराहमिरि नागार्जुन अगत्स्य, भर्तृहरि, शंकराचार्य, स्वामी विवेकानन्द जैसे अनेक महापुरूषों ने भारत भूमि पर जन्म लेकर अपनी मेधा से विश्व में भारतीय ज्ञान परम्परा के समृद्धिता के लिए अपना अतुलनीय योगदान दिया है जो आज केवल भारत में ही नहीं पूरे विश्व में अपनी कीर्ति के लिए जाना जा रहा है।

गुरूकुल शिक्षा के लिए आधार स्तम्भ की तरह थे। शिक्षार्थी अट्ठारह विद्याओं–छैः वेदांग, 4 वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद एवं सामवेद) चार उपवेद (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्व वेद एवं शिल्प वेद), मीमांसा, न्याय, पुराण तथा धर्म शास्त्र का गुरू के सानिध्य में रह कर ज्ञान का अर्जन करते थे। यह ज्ञान का अर्जन बृम्हचर्य का पालन करते हुये करना होता था और वह अनुष्ठान की भांति अभ्यास कर सम्पादित करते थे और अपनी आजीविका का निर्वहन करते थे ओर उन्हें आजीविका सम्पादन में कोई समस्या नहीं रहती थी। सीखने से लेकर कुशलता तक की कोई निश्चित उम्र नहीं थी और जीवन पर्यन्त वे कुशलता प्राप्त करते थे और निपुणता उसमें जीवन की प्रौढ़ावस्था तक पूर्ण होती थी। आचार्य वह जो त्याग, वृत्ति सम्पन्न एवं तृष्णा से परे हो वही भारतीय शिक्षा पद्धति में शिक्षक माना जाता था। शिक्षा को कभी भी व्यवसाय और धनार्जन का साधन नहीं माना जाता था। वायु पुराण (17/128) में उल्लेख है कि गुरूरूपी तीर्थ से सिद्धि प्राप्त होती है और वह सभी तीर्थों से श्रेष्ठ है। प्राचीन भारतीय सनातन ज्ञान परम्परा अति समृद्ध थी तथा इसका उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम, क्रोध, मोक्ष (पुरूषार्थ चतुष्टय) को समाहित करते हुये व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को विकसित कर स्वत्व को प्राप्त करना था। अज्ञान रूपी विश्व के अंधकार में भटकने के समय केवल भारत की ही मनीषा उस अंधकार को समाप्त कर प्रकाशित करने का कार्य करती थी।

इतना ही नहीं यह सम्पूर्ण मानव जाति को विशिष्टता की ओर ले जाकर प्रखरता एवं स्पष्टता का कार्य करती थी।

वैज्ञानिक विकास के चरम की वर्तमान सदी भौतिकता की पराकाष्ठा पर है। वैज्ञानिक अविष्कारों के बावजूद मानव का जीवन भौतिक रूप से सरल किन्तु नैतिक तथा अध्यात्मिक रूप से निम्नतम अवस्था में जाने के कारण जटिल हो गया। मानव मानसिक एवं नैतिक समस्याओं के संसर्ग में आकंठ डूबा हुआ है जिससे वैश्विक परिदृश्य में आज अनेक सामाजिक समस्याऐं चिन्ता का विषय हैं। आज मानव समाज पर आतंकवाद, युद्ध, अशांति, असुरक्ष, शोषण, अनाचार तथा अत्याचार संकट बहुलता में हैं। इनके मूल में मानव की असीम भौतिक इच्छायें तथा चारित्रिक पतन है। आज उन मूल्यों के अनुगमन की आवश्यकता है जिनके द्वारा भारतीय ज्ञान परम्परा में विश्व कल्याण का पथ प्रशस्त किया गया है। आज पुनः सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया जैसी मंगलकामनाओं से युक्त भारतीय ज्ञान परम्परा को समझने एवं नैतिक मूल्यों को अपनाने से ही मानव जाति का सम्पूर्ण विकास एवं कल्याण सम्भव है।

वर्तमान की शिक्षा नीति का आधार भी प्राचीन एवं सनातन भारतीय ज्ञान परम्परा और विचार की सामूहिकता ही है। भारतीय विचार परम्परा एवं दर्शन का सर्वोच्च लक्ष्य ज्ञान, प्रज्ञा एवं सत्य की खोज है। प्राचीन भारत में शिक्षा का लक्ष्य वर्तमान की प्राप्ति न होकर पूर्ण आत्म ज्ञान और मुक्ति था। भारत द्वारा 2015 में अपनाये गये सतत् विकास एजेन्डा 2030 के लक्ष्य चार में परिलक्षित वैश्विक शिक्षा विकास योजना के अनुसार विश्व में 2030 तक सभी के लिए समावेशी और समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने और जीवन पर्यन्त शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा दिये

इस हेतु सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली को समर्थन एवं अधिगम को बढ़ावा देने के लिए फिर से नवीन ढॉचे को तैयार करने की आवश्यकता होगी। ताकि सतत् विकास करने के लिए 2030 एजेंडा के सभी महत्वपूर्ण लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। लेकिन यह सब तब सम्भव हो सकता है जब विद्यार्थियों को शैशव से ही अनुशासन और संस्कार को सिखाया जाये। जो देश–समाज अपनी पीढ़ी को संस्कार, अनुशासन नहीं दे पाते वह समय के बहाव में कट्टरता, बर्बरता और पतन के अंधतमस से घिर जाते हैं और देश को इससे बचने के लिए प्राचीन भारतीय विद्या परम्परा की ओर पुनः प्रस्थान करना चाहिए।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार 2040 तक भारत के लिए एक ऐसी शिक्षा प्रणाली का लक्ष्य रहेगा जिसके सहारे भारत की गिनती अग्रमी देशों मे की जायेगी यद्यपि वर्तमान में इसके शुरूआत में कुछ समस्यायें हैं जिनका निराकरण भी हो रहा है यह एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था होगी जहॉ किसी भी सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि से सम्बन्धित शिक्षार्थियों को समान रूप से सर्वोच्च गुणवत्ता की शिक्षा प्राप्त हो सकेगी। इस शदी की यह एक ऐसी शिक्षा योजना है जो हमारे सांस्कृतिक मूल्यों को संरक्षित रखते हुये लक्ष्य को पूर्ण करने में समर्थ होगी। इतना ही नहीं विभिन्न प्रकार की मांगों के अनुसार अनुसंधान एवं ज्ञान के परि में तेजी से बढ़ते हुये परिवर्तन के दौर में ही अर्थ–व्यवस्थाओं की प्राप्ति के साथ ही आत्म निर्भरता की ओर अग्रसर होने के लिए अचूक मन्त्र भी इसमें अन्निहित है।

वर्तमान की उपेक्षापूर्ण शिक्षा भी इस शिक्षा नीति के द्वारा बाल्यकाल की देखभाल से लेकर उच्चतर शिक्षा के माध्यम से शिक्षा में उच्चतम् गुणवत्ता प्राप्त करने का मंत्र है।

सबसे अधिक जिस पर जोर है वह है शिक्षक। शिक्षक किसी समाज और राष्ट्र की वह रीढ़ है जो एक आधारहीन ढ़ांचे को सही कर सुदृढ़ पीढ़ी का निर्माण करता है। भारतीय ज्ञान परम्परा के प्रारम्भिक स्रोत वेद हैं और इनके साथ ही शिक्षा व्याकरण, छंद ज्योतिष एवं निुरूक्त समाहित है। मानव सभ्यता के प्रारम्भिक काल में चिन्तन या मनन का स्वभाव प्रारम्भ हुआ यह चिन्तन अत्यंत उच्च कोटि का था और वर्तमान के शिक्षक का स्थान गुरू के रूप में था। गुरू को इस प्रकार से सम्मान प्राप्त होता था जैसे सर्वशक्तिमान सत्ता का केन्द्र वही हो। इस नयी शिक्षा नीति के द्वारा शिक्षकों को सक्षम बनाने के लिए ठोस कारगर योजना है जो उन्हें उनके लक्ष्य तक ले जाने के लिए सार्थक सिद्ध होगी। यह उसी रूप में करने की योजना है। सबसे खास बात यह है कि यह नीति इस प्रकार की पीढ़ी का निर्माण करेगी जो एक तरफ आधुनिकता से युक्त हो साथ ही साथ करूणा, सहानुभूति, साहस और लचीलापन, वैज्ञानिक चिंतन और रचनात्मकता नैतिक मूल्यों से सराबोर हो और बहुलतावादी समाज के निर्माण में अपना पूर्ण योगदान दे सकें। भारतीय भाषाओं को महत्व देते हुये उनका उपयोग विभिन्न क्षेत्रों में जैसे अभियांत्रिकी चिकित्सा एवं अन्य व्यवसायिक पाठ्यक्रम इत्यादि में विकल्प के तौर पर देखा जा रहा है। छात्रों को पूर्ण सफलता हासिल करने के लिए समता एवं समावेशन निर्णय की आधार शिला यह नीति साबित होगी।

जहॉ तक उच्च शिक्षा में बदलाव की बात है उसमें बहुसंकाय से लेकर बहुविषयक की बात है जो वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति करेगी। अलग–अलग शिक्षण संस्थान होंगे। विद्यार्थियों में अनुभववृद्धि के लिए पाठ्यचयन, राष्ट्रीय अनुसंधान फाउन्डेशन की स्थापना, शैक्षणिक एवं प्रशासनिक स्वादत्ता वाले उच्चतर शिक्षा के सभी एकल नियामक द्वारा लचीला लेकिन स्थायित्व प्रदान करने वाले सभी संभावनाओं पर जोर देने के साथ ही 2035 तक सकल नामांकन अनुपात 50ः करने का लक्ष्य है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति का मुख्य लक्ष्य भारतीय ज्ञान परम्परा के नैतिक आयामों द्वारा मानव की मानवता हेतु निर्देशित नैतिक मूल्यों का संवर्धन एवं अनुगमन करने के द्वारा ही लक्ष्य की वास्तविक प्राप्ति की जा सकती है। विद्यार्थी को ज्ञान केन्द्रित कर भारतीय मूल्यों से विकसित गुणवत्तायुक्त उच्चतर शिक्षा उपलब्ध कराना है। यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति उन विचारधाराओं को संपोषित करती है जिनका प्राचीन समय में उपयोग होकर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व विकास करने में समर्थ रहा है और इस प्रकार यह भारत को परम वैभव राष्ट्र तथा जगतगुरू बनाने में महती भूमिका का निर्वहन कर सकेगा।

**संदर्भ :–**


1. डा0 राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन भाग–1 राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली।
2. सिंह, जयदेव, पाश्चात्य दर्शन की अवधारणायें।
3. वृहदारण्यक उपनिषद्, 1/3:27 असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्यर्मामृतं गमय।।
4. ऋग्वेद संहिता टीका स्कंद स्वामी।
5. विष्णु पुराण 1/9/41, गीता प्रेस गोरखपुर।
6. बृह्माण्डपुराण 1/4/15, गीता प्रेस गोरखपुर।
7. वायुपुराण 7/128, गीता प्रेस गोरखपुर।
8. नई शिक्षा नीति का ड्राफ्ट।

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

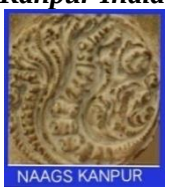


***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# छठी शताब्दी ई. से 1947 ई. तक कुमाँऊ के स्मारकों का ऐतिहासिक अध्ययन

**डॉ. फौजिया खान**
इतिहास विभाग
डी.एस.बी. परिसर
कुमाऊँ विश्वविद्यालय
नैनीताल

उत्तराखण्ड भारत का 27 वां राज्य हैं। प्राकृतिक दृष्टि से ये प्रदेश बहुत अनुपम सौन्र्द्रय से परिपूर्ण तथा ये एक पौराणिक तीर्थाटन भी हैं। साथ ही पर्यटन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। ये प्रदेश देवताओं की भूमि रहा हैं। इसी कारण से ये देव भूमि भी कहा जाता हैं। 2000 में दस प्रदेश को उत्तरप्रदेश से प्रथक कर भारत का 27 वां राज्य गठन किया। इसका नया नाम उत्तरांचल रखा। लेकिन 2007 में लोगो के मांग के कारण इस राज्य का नाम बदल कर उत्तराखण्ड कर दिया। पौराणिक ग्रन्थों में केदार खण्ड और मानस खण्ड के नाम से इस क्षेत्र का व्यापक उल्लेख हैं। उत्तराखण्ड दो भागों में विभाजित हैं। कुमाँऊ मण्डल और गढ़वाल मण्डल। कुमाँऊ मण्डल में निम्नलिखित जिले आते हैं। – अल्मोडा, बागेश्वर, चम्पावत, नैनीताल, पिथौरागढ, उधमसिंह नगर। कुमाँऊ को कुमचिल भी कहा जाता हैं। जिसका अर्थ हैं। (भगवान विष्णु का कहुआ अवतार) कुणिंद कुमाँऊ का पहला शासक वंश था जिसका राज इस क्षेत्र पर 500 ईसा पूर्व से 600 ईस्वी तक रहा। इसके बाद कत्युरी, चंद, पाल, गोरखा, ब्रिटिश ने शासन किया। सभी ने अपनी–अपनी कला की छाप छोडी। इसीलिए कुमाऊँ में विभिन्न प्रकार की वस्तुकला देखने को मिलती हैं। भोगोलिक, सांस्कृतिक और शासकों के शासन के अनुसार व प्रभाव से जो स्मारक व भवन, धार्मिक स्थल (मंदिर), सार्वजनिक ईमारते सभी स्मारक की श्रेणी में आते हैं। इन्हीं में से कुछ अधिकारी भवन जो ब्रिटिश शासन काल में बनाये गये थे। और आज भी अपनी वास्तुकला से उनकी अलग पहचान है। यहाँ पर उन्हीं कुछ कुमाऊँ के अधिकारी भवन की वास्तुकला का उल्लेख किया गया है।

**राज भवन – नैनीताल**

नैनीताल आजादी से पहले ब्रिटिश की ग्रीष्मकालीन राजधानी हुआ करता था। इस भवन को सरकारी अवास से जाना जाता था। आजादी मिलने के बाद इसका नाम बदलकर राजभवन कर दिया गया। राजभवन नैनीताल का शिलान्यास 27 अप्रैल 1897

को किया गया था। यह दो साल में बनकर कर तैयार हुआ था। यह इमारत स्कॉटलैण्ड के किले पर आधारित यूरोपिन शैली में निर्मित गौथिक भवन निर्माण शिल्प में बना है। इस राज भवन का निर्माण फेडरिक विलियम स्टीफन ने किया था। इस राज भवन में आजादी से पहले ब्रिटिश सरकार व उच्च पद आधिकारी यहाँ ग्रीष्म काल के समय आते थे। अब इसको एक अधिकारी ईमारत में परिवर्तित कर दिया गया है यह उत्तराखण्ड के गर्वनर का व राज्य अधिकारीया का अतिथि घर है।

**<u>वास्तुकला</u> –**

नैनिताल कि इस सुंदर व भव्य ईमारत के वास्तुकार स्टीवन और उस समय के कार्यकारी अभियंता एफ. औ. डब्लयु. ओरटेल थे। इस ईमारत की वास्तुकला गौथिक शैली में है। गौथिक शैली जो की एक यूरोपिन शैली है। जिसमें ईमारतें बहुत ही विशाल होती है। व तिकोने मेहराबों से बनी होती है इस ईमारत में सामने के पहलू पर छह जालीदार बुर्जों का प्रभुत्व है। इस ईमारत के निर्माण में स्थानीय सागौन के साथ वर्मा सागौन का भी उपयोग किया गया है। स्थानीय पत्थरों का इसमें प्रयोग किया गया है तथा चौकोर पत्थर का उपयोग करते इसका सुंदरता को बढ़ाया गया है। घर के पिछे का हिस्सा अग्रेजी देशों के घरों के पिछे के हिस्सा जैसा बनाया गया है इस इमारत बनाने में स्थानीय पत्थर, गहरा भूरा संगमरमर, लोकल चूना पत्थर आंतरिक दीवारों में मिश्रित करके लगाया गया है। आगरा से लाल वलुआ पत्थर का भी उपयोग किया गया है। प्रमुख द्वारा की सिढी के लिए सागौन लकडी का इस्तेमाल किया गया है। भोजन कक्ष की चौखट में और सारे दरवाजे, खिडकीयों में व कुछ प्रमुख मंजिलों पर सागौन का इस्तेमाल किया गया है जबकि शीशम, दाग की कुछ लकडी व सरू का इस्तेमाल बाहारी हिस्सों पर किया गया हैं। स्थानीय देवदार की लकडी ईमारतो के जोड़ो को जोडने के लिए और अत्यधिक महत्वपूर्ण मंजिल नहीं थी वहाँ किया गया है। कॉच, टाईल्स, पीतल को जमाना, लोहे के पाईप इंग्लैड से लाये गये थे। इस भव्य इमारत में ऐशलार्स पत्थर पर आगरा शहर के राज मिस्त्री ने काम किया और पंजाब के बढई ने लकडी का काम किया था। नैनिताल राज भवन में 48 एकड में फैला एक गोल्फ कोर्स भी है। 1923 में गोल्फ कोर्स बना संयुक्त प्रांतो के तत्कालीन गवर्नर लॉर्ड

मैल्कम हेली के प्रयासों से 1926 में गोल्फिन का आरंम्भ हुआ था। गोल्फ कोर्स की रचना और निर्माण ब्रिटिस सैना के अभियंता द्वारा किया गया।

**रामसे अस्पताल नैनीताल –** अस्पताल की आधार शिला अक्टूबर को ऑकलैंड कॉल्विन केसी. एम. एस. सी. ई. और उत्तर पश्चिम प्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा रखी गई थीं। 1890 में यह अस्पताल 1892 में जनरल सर हेनरी रामसे द्वारा खोला गया था। वह ब्रिटिश काल में कुमाऊ के साधिकार प्रतिनिधि थे। उन्हे रामजी सहाब भी कहा जाता था। रामसे अस्पताल मूल रूप से उस समय केवल एंग्लों – इंडियन व यूरोपीय रोगी के इलाज के लिये था। लेकिन 1935 में भारतीय रोगी जो अस्पताल के नियमों और यूरोपीय रिती–रिवाजों का पालन कर सकतें थे उनहें भी भरती किया गया।

**वस्तुकला :–**

रामसे अस्पताल नैनीताल में सबसे स्थापत्य सुंदर इमारतों में से एक है, यह इमारत वास्तुकला विशिष्ट नवशास्त्रीय शैली पर आधारित है जिसमें बाहरी और आंतरिक में सुंदर आभूषण लकडी के काम है। नैनीताल में रामसे अस्पताल की मुख्य इमारत 19वीं सदी की लकड़ी के फ्रेम की इमारत हैं। जिसकी मरम्मत और जीर्णोद्वार 1935 में किया गया था, परिसर में कई इमारतें भी थीं। अस्पताल में दो मंजिल वार्ड ब्लॉक है। जो मूल संरचना है। और दोनों छोर पर एक मंजिला संरचना है। एक ओटी ब्लॉक है। और दूसरा डायग्नोस्टिक ब्लॉक है शास्त्रीय भवन के दोनो किनारों पर विशेषताएं बहुत कलात्मक है और खंडीय मेहराब और गौथिक कला मेहराब के साथ असंतोषजनक है। इसकी खिडकी फ्रेंच स्थापत्थ कला से बनी है। इस इमारत का फर्श सुगान्धित लकडी से बनाया गया है इस भवन की छत नैनीताल की तिरछी छात पर आधारित है। पूरी इमारत पत्थर की चिनाई से बनी है। पहली मंज़िल के कुछ लकडी के जोड और तखते की है पहली मंजिल के कुछ फर्श लकडी के है। भूतल पर जी कमरा एक कार्यालय है। उनमें स्टील प्लेट जैक मेहराब है जो स्टील बीम पर समार्थित है। दोनों मांजिलो की छत लकडी की तखते की हैं। जिसमें विभिन्न तारे के अकार के रचना में बिडिंग का निष्पादन किया गया हैं। इमारत के अन्दर का इंटीरियर विक्टोरियन शैली में हैं। पहली मंजिल की और जाने के लिए बहुत ही सुन्दर सिढ़िया हैं जोकि भारी लकड़ी के ढांचे से बनाई गई हैं। गोष्ठी–कक्ष के प्रवेशद्वार में दोनों तरफ मूर्तियों को रखने के लिए बहुत बड़े खंडिय मेहराब हैं।

**उच्च न्यायलय नैनीताल**

उत्तराखण्ड के उच्च न्यायलय भवन को पहले पुराने सचिवालय के रूप में जाना जाता था। जब नैनीताल संयुक्त प्रावधान की ग्रीष्मकालीन राजधानी थी। जब उत्तराखण्ड की स्थापना हुई तो सचिवालय उच्च न्यायलय में बदल गया। उच्च न्यायलय की इमारत बहुत भव्य हैं। और 1900 ई0 में निमार्ण किया गया था। मुख्य भवन खण्ड, पानी, सज्जा की व्यवस्था वर्ष 1908 में की गई थी। इस इमारत में विभिन्न विभाग 1894 से नैनीताल में थे। और 1904 से प्रेस।

**वास्तुकला :**

उच्च न्यायलय की वास्तुकला आमतौर पर गोथिक शैली की वास्तुकला पर बना हैं इस इमारत की रचना भू–भाग को ध्यान में रखते हुऐ बहुत ही सुन्दर बनाया हैं। यह दो मंजिला इमारत हैं। जिसमें चार शिखर और मुख्य छत के साथ सुन्दर लैंसिट मेहराब हैं। इस इमारत में अर्ध गुम्बज के साथ एक गोल मेहराब भी हैं, जबकि छत लकड़ी से बनी हैं। जो ब्रिटिश अंग्रेजी वास्तुकला पर आधारित हैं। विभिन्न कमरे जो पहले विभाग के कार्यालय थे। ये कमरे चिनाई के पत्थर से चूना पत्थर में बने हैं। फर्श, बजरी, और शिला पट्ट द्वारा बनाया गया हैं। इसके बाद प्रेस भवन जो एक मंजिला इमारत हैं इस इमारत के खण्ड, फर्श, छत काले लोहे की चादर से बनायी गई हैं।

**जिला न्यायधीश कार्यालय नैनीताल**

जिला न्यायधीश कार्यालय एक ब्रिटिश इमारत हैं संम्पूर्ण इमारत औपनिवेशिक शैली में बनायी गई हैं जबकि इसका एक हिस्सा वास्तुकला रानी शैली में हैं। इमारत की चिनाई एक पत्थर से की गई हैं। और गौथिक मेहराबों को पुश्ता के साथ जोड़ा गया हैं इमारत की मूल रचना में मुख्य रूप से लकड़ी का कटघरा और एक घंटा घर भी हैं।

**कचहरी (शाखा कार्यालय) अल्मोडा**

यह इमारत सौ साल से भी अधिक पुरानी हैं। और ब्रिटिश काल के दौरान पुर्ननिर्मित की गई थी। यह वास्तुकला भारतीय और ब्रिटिश का मिश्रण हैं। कचहरी से पहले यह चंद राज वंश का एक किला था इस किले को 1835 में सरकारी कार्यालय में परिवर्तित कर दिया गया था। जब अल्मोडा को अंग्रेजों ने अपने अधिकार में कर लिया था।

वर्तमान में इसका उपयोग जिला न्यायधीश कार्यालय के रूप में किया जा रहा हैं। यह एक ब्रिटिश वास्तुकला के समान हैं। ये दो मंजिला इमारत हैं। इसकी विशेषताएँ– इसकी छत नैनीताल स्परूप पर आधारित हैं। व इसमें रौशनदान गुबंद खिड़कियाँ हैं इसका बरामदा ढ़का हुआ व ग्राम्य स्तंभ से बना हैं। इस इमारत का अंतरिक भाग बहुत ही सुन्दर हैं। इसका असबाब शीशम व साटिन की लकड़ी से बनाया गया हैं।

**डाकघर – अल्मोडा**

अल्मोडा प्रधान कार्यालय डाकघर की आधारशिला 1901 ई0 के अतं में थी और डाकघर का कार्य वर्ष 1985 में शुरू हुआ था। अल्मोडा प्रधान डाकघर सौ से अधिक वर्षों से अल्मोडा और आसपास के पहाडी क्षेत्रों के लोगों की सेवा कर रहा हैं। यह विशिष्ट फ्रासीसी औपनिवेशिक ब्रिटिश शैली की इमारत हैं। जिसमें सुन्दर लकड़ी के स्तंभों द्वारा समर्थित बरामदा हैं। भवन की चिनाई छोटे पत्थरों की मिश्रित मिटटी से किया गया हैं। यह दो मंजिला इमारत हैं। जिसमें बहारी सीढ़ियाँ हैं। सीढ़ियाँ समान्य रूप से विशिष्ट पूर्ण लम्बाई वाले बरामदा तक चढ़ती हैं। जिसमें लकड़ी का फर्श होता हैं। इमारत की छत एक खड़ी छत हैं। जिसमें डॉर्मर खिड़की हैं जो पिरामिड़ छत को अलग करती हैं। बरामदा जालीदार छत से ढका हुआ हैं। इमारत की प्रमुख विशेषता चिमनी भी हैं।

**कुमाऊँ सैन्य दल संग्रहालय और स्मारक – रानीखेत**

इस संग्रहालय की आधारशिला जनरल टी. एन. रेना ने 29 अक्टूबर 1974 में रखी थी। संग्रहालय की स्थानपा से पहले इसे हैदराबाद रेजीमेंट के नाम से जाना जाता था। यह दो मंजिला इमारत हैं। इसकी वास्तुकला विशिष्ट ब्रिटिश औपनिवेशिक शैली में हैं। ये दो सौ साल पुराना रेजीमेंट हैं यह संग्रहालय परिसर में कुमाऊँ रेजीमेंट की समृद्ध और शानदार विरासत और रिवाज को प्रदर्शित करने के उदेश्य से बनाया गया था।

**डाक घर – नैनीताल :–**

डाकघर नैनीताल की सबसे पुरानी इमारतों में से एक हैं। और इसकी रचना ठेठ ब्रिटिश कुटीर शैली की वास्तुकला में हैं। यह नैनीताल के प्रवेश बिन्दु पर स्थित हैं। जिसे तल्लीताल कहा जाता हैं। पूरी इमारत लकड़ी से बनी हैं। इस इमारत की वास्तुकला की प्रमुख विशेषता इसकी उतरती लकड़ी की छत हैं। जो स्थानीय टिन की चादरों से बनी हैं।

**अल्मोडा पुलिस स्टेशन –**

यह पुलिस 19 वी शताब्दी का हैं। इसकी स्थापना 1907 में हुई थी। यह एक ब्रिटिश द्वारा निर्मित वास्तुकला नव शास्त्रीय शैली पर आधारित हैं। यह एक मंजिला इमारत हैं। जिसमें चार स्तंभों के साथ ठका गया बरामदा हैं। इस इमारत की इस तरह से रचना किया गया हैं कि इसमें लबें स्तम्भों के साथ एक सममित आकार हैं। जो इमारत की ऊँचाई तक चलता हैं जबकि सामने नैनीताल रचना में तिरछी छत के साथ त्रिकोणीय लटकन हैं।

**निष्कर्ष :–**

वास्तुकला की दृष्टि से सारी इमारते अदभुत हैं। जो सौ साल से भी पुरानी हैं। उत्तराखण्ड एक तीर्थ स्थान व धार्मिक स्थल के रूप में जाना जाता हैं व पर्यटक यहाँ घूमने पहाडों पर आते हैं। समतल मैदानी की गर्मी से बचने के लिए। चुंकि ये इमारतें सौ साल से पूरानी व वास्तुकला से पूरिपूर्ण हैं। और स्वयं में स्मारक हैं अगर राज्य सरकार इनको स्मारक दृष्टि से देखतें हैं तो यह उत्तराखण्ड के पर्यटन में सहयोग देंगे लोग उत्तराखण्ड घूमने आते हैं। यहाँ का सौंदर्य उनको आकर्षित करता है तो सैलानियों को यहाँ का इतिहास व यहाँ के भवनों, इमारतों की वास्तुकला भी आकर्षित करेगी। यदि राज्य सरकार इनका प्रचार प्रसार करें तो पर्यटक इनके प्रति जागरूक होंगे व इससे राज्य की आर्थिक स्थिति में बढ़ोतरी व उत्तराखण्ड के इतिहास को बढावा मिलेगा व यह दरोहर सदैव रहेगी। लोग फिर यहाँ केवल पहाडों की सुन्दरता ही नहीं यहाँ के इतिहास व वास्तु की दृष्टि से पर्यटन करेगें।

**संदर्भ**


1. एटकिंसन ई.टीः हिमालयी गजटियर, खंड 1 और 2 : कॉस्मो प्रकाशन : नई दिल्ली : 1973
2. सेसिल स्टीवर्ट : गौथिक वास्तुशिल्प : प्रकाशन ब्रिटेन : नौर्विच, बोम्बे : 1963
3. कैनेडी डेन : जादू का पहाड : पहाडी इलाका और ब्रिटिश राज : कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय प्रेस : ब्रेकले, लॉस एंजेलिस : 1984
4. नौटियाल के. पी. : देहरादून सहित कुमाऊँ का पुरात्व : चौकम्बा प्रकाशन : वाराणसी : 1969
5. स्टेन निल्सन : भारत में यूरोपीय वास्तुकला 1750 – 1850 : फेबर और फेबर : लंदन : 1968
6. साक्षात्कार : मनोज कुमार पाण्डे : मार्गदर्शक कुमाऊँ मण्डल विकास निगम उत्तराखण्ड : दिनांक 20–01–2012
7. अस्पताल का रिकार्ड : रामसे अस्पताल – नैनीताल : दिनांक 24–05–2012
8. विशेष पोस्टकार्ड : प्रधान डाकघर अल्मोडा : दिनांक 30–09–2005

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# प्राचीन भारतीय चिन्तन में मानववाद

**डॉ0 अनु सिंह**
असिस्टेन्ट प्रोफेसर (एडहॉक)
राजनीति विज्ञान विभाग
बसन्त कन्या महाविद्यालय
कमच्छा,वाराणसी

भारत में वैदिक साहित्य ही प्राचीनतम ग्रन्थ है जिसमें मानवीय जीवन के प्रत्येक पक्ष पर सम्पूर्ण चिन्तन दृष्टिगत होता है। वैदिक ऋषियों ने अपने गहन चिन्तन में विश्व के समस्त जीवों की आन्तरिक एकता को अनुभूत किया था। उसी एक से समस्त जड़ चेतन जगत की उत्पत्ति की व्याख्या उन्होंने की सृष्टि प्रक्रिया को ऋषियों ने कोई यान्त्रिक प्रक्रिया के रूप में नहीं वरन् यज्ञ के रूप में देखा। वस्तुतः यह विश्व विराट पुरूष के शरीर के अन्तर्गत होने वाला यज्ञ ही है। समस्त आध्यात्मिक चिन्तन, सांसारिक चिन्तन ऋषियों की इसी मूल अवधारणा पर केन्द्रित है। वैदिक ऋषियों ने समस्त मनुष्य में जिस एकता की बात कहीं वस्तुतः यह कोई वाह्य अथवा यन्त्रिक एकता न होकर आन्तरिक या अनिवार्य एकता थी। यही नहीं ऋषियों की दृष्टि में समस्त जड़ एवं चेतन जगत उसी 'एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति'[1] की अभिव्यक्ति या परिणाम हैं। ''इस पुरुष को ही सृष्टि का सर्वस्व, वर्तमान, भूत और भविष्य बताया गया है। पुरुष एवेदं सर्वं भूतं यच्च भव्यम्। ऋषियों ने यज्ञ को विश्व का केन्द्र बताया 'अयं यज्ञों भुवनस्य नाभिः'।

यज्ञ के विचार के द्वारा मानव जीवन का लक्ष्य और जीवन विधि का निर्धारण किया गया। वस्तुतः जीवन में कर्तव्यों की व्यवस्था के द्वारा सम्पूर्ण समाज और संसार के पोषण की व्यवस्था की अवधारणा प्रस्तुत की गई। यज्ञ मानव का स्वयं के प्रति अन्य मानवों के प्रति, समाज के प्रति यहाँ तक कि समस्त जीवों, वनस्पतियों एवं पर्यावरण के प्रति कर्तव्यों की विशाल श्रृंखला है। मानवतावाद की इससे बड़ी एवं सम्पूर्ण अभिव्यक्ति किसी अन्य स्थल पर दृष्टिगत नहीं होती। यज्ञ की इसी विचार धारा से विश्व बन्धुत्व की अवधारणा का भी विकास हुआ। ऋग्वेद के संज्ञान सूक्त के चार मन्त्रों में सामाजिक सौहार्द, सामजंस्य, सहअस्तित्व, एकमत्य और संगठन का उपदेश किया गया है। यह सूक्त सामाजिक, राष्ट्रीय और आर्थिक चिन्तन में समवेत स्वर या समन्वय की भावना का प्रतिपादक है। हम मिलकर चले, मिलकर बोलें। हमारे हृदयों में एकता हो।

हमारे मन और चित्त समान हो, जिससे हम सह अस्तित्व का पालन कर सकें। स्मरणीय मंत्र है–

(क) सं गच्छध्वं सं वदध्वं, सं वो मनांसि जानताम् । (मंत्र 2)

(ख) समानों मन्त्रः समितिः समानी, समांन मनः सह चित्त मेषाम् । (मन्त्र 3)

(ग) समानी व आकूतिः समाना ह्रदयानि वः

वर्तमान में मानव के लिए उपभोगवादी संस्कृति से सर्वाधिक खतरा है जिसमें मानव मानव के लिए ही साधन बन जाता है। किंतु वैदिक संस्कृति में प्रत्येक मानव चाहे वह कितना ही दरिद्र क्यों न हो उसका वही महत्व है। जो एक सम्पन्न मानव का है। वैदिक संस्कृति में त्याग और दान इन दो गुणों को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। इन सूक्तों में कहा गया है कि दानी अमर हो जाता है। वह समाज और राष्ट्र मे सर्वत्र पूजा जाता है। उसे स्वर्ग में भी उच्च स्थान प्राप्त होता है। दानी को ही सन्त महात्मा, ऋषि और ब्रह्मा कहा जाता है। जो मित्र आदि की सहायता नहीं करता, उन्हें धन नहीं देता, वह महापापी होता है। जो भिक्षुक को अन्न नहीं देते हैं, उनकी श्री नष्ट हो जाती है। वह मित्र नहीं, जो मित्र को धन–दान न दे। अकेला खाने वाला अकेला ही पापी होता है। उसका धन उसके लिए ही विपत्ति है।

(क) न भोज़ा मम्रुर्न न्यर्थमीयुः ।।

(ख) उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुः।

(ग) न स सखा यो न ददाति सख्ये ।

(घ) मोघ मन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।
नार्यमणं पुष्पति नो सखायं, केवलाघो भवति केवलादि ।।

प्रायः समाज में कुरीतियाँ जन्म लेती है जो मानव के अस्तित्व को ही नष्ट कर देती हैं। ऋग्वेद में द्यूत, जुआ खेलने की निन्दा की गईं। जुआ खेलना स्वयं को और अपने परिवार को नष्ट करना है। जुआरी का तथा उसकी पत्नी का सर्वत्र अपमान होता है। इसलिए कहा गया कृषि करो।

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व
वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः ।।

बैदिक काल में स्त्री का पूर्ण सम्मान था। ऋग्वेद के विवाह सूक्त में स्त्री के कर्तव्यों को बहुत विस्तार से बताया गया है। स्त्री को उपदेश किया गया है कि वह सास–ससुर की सेवा करें परिवार का हित करना उसका कर्तव्य है। साथ ही स्त्री को गृहस्वामिनी और साम्राज्ञी कहा गया है। स्त्री को अत्यन्त आदरणीय स्थान देते हुए उसे सास–ससुर, देवर आदि की साम्राज्ञी (स्वामिनी) कहा गया है।

(क) अघोरचक्षुरपतिघ्नी–एधि,
शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।।

(ख) साम्राज्ञी श्वशुरे भव,
साम्राज्ञी श्वश्रवां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधि देवृषु

वैदिक काल में औपचारिक रूप से शासन की पद्वति राजतन्त्र थी किन्तु राजा के कर्तव्यों का जो वर्णन मिलता है उससे यह स्पष्ट है कि राजा निरकुंश नहीं था। राजा का कर्तव्य था कि वह प्रजा का पालन सन्तान की भाँति करें। यजुर्वेद के अध्याय 9 और 10 में राजा के अधिकार और कर्तव्यों का विस्तृत वर्णन है। राजा के कर्तव्यों में उल्लेख है कि वह 1–कृषि की उन्नति करे, 2. जन कल्याण करे, 3. राष्ट्र की श्रीवृद्धि करें, 4. राष्ट्र का सर्वागीण विकास करें। एक मंत्र में महान जन राज्य अर्थात् विशाल

प्रजातन्त्रीय राज्य की स्थापना लक्ष्य बताया गया है। राष्ट्र के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि (1) वह स्वराज अर्थात स्वतन्त्र राष्ट्र हो, (2) जनभृत् हो, अर्थात राष्ट्र की समस्त प्रजा का हित चिन्तन होना चाहिये, (3) विश्वभृत् हो अर्थात अपने राष्ट्र की उन्नति के साथ ही विश्व–कल्याण और विश्व बन्धुत्व की स्थापना करे।

(क) कृष्यै त्वा, क्षेमाय त्वा, रय्यै त्वा, पोषाय त्वा[11]

(ख) राष्ट्रदा राष्ट्रं में दन्त। [3]

(ग) महते जानराज्यांय।

(घ) स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम अमुष्मै दत्त।

जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम अमुष्मै दत्त।

विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम अमुष्मै दत्त।।

यजुर्वेद काल में जातिप्रथा सुदृढ़ हो गई थी किंतु यजुर्वेद में चारों वर्णों के सर्वागीण अभ्युदय के लिए प्रार्थना की गई है।

आ ब्रहमन् ब्राहमणों.....योगक्षेमों नः कल्पताम्।

चारो वर्णो को वेद पढ़ने का भी अधिकार यजुर्वेद के मन्त्र में मिलता है।

यथेमां ववाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः। ब्रहमराजन्या

भ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च ।।4

वैदिक ऋषियों ने विश्व बन्धुत्व की कल्पना भी प्रस्तुत की है। यजुर्वेद में कहा गया गया – मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षामहे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहें।

सम्पूर्ण समाज के सदस्यों के, यहॉ तक कि पशुओं के भी सुखी और निर्भय होने के लिए प्रार्थना की गई है।

यतो यतः समीहसे तो नो अभयं कुरू। शंनः कुरु प्रजाभ्यो– अभयं नः पशुभ्यः ।।

यजुर्वेद में एक स्थान पर कहा गया कि सारा संसार निरोग हो और सदभाव युक्त हो। मनुष्य और पशु सबका कल्याण प्रत्येक ग्राम में सभी हृष्ट–पुष्ट और नीरोग हों।

(क) यथा नः सर्वमिज्जगद् अयक्ष्मं सुमना असत् ।।

(ख) यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदें, विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन् अनातुरम्।।5

मानववादी चिन्तन की एक विशेषता यह है कि मानववादी 'मनुष्य को स्वयं अपने भाग्य का निर्माता'' मानते है। वैदिक दर्शन में भी इस बात की स्वीकारोक्ति स्पष्टतः दिखाई पड़ती है। ऐतरेय ब्राहमण की सबसे प्रमुख शिक्षा है चरैवेति, चरैवेति। सदा कर्म करते रहो, सदा उद्योगशील रहो, निरन्तर कर्मठ बने रहो। कर्मठ जीवन ही जीवन है। 'इन्द्र इच्चरतः सखा' परमात्मा भी कर्मठ का ही सहायक होता है। नाना श्रान्ताय श्रीरस्ति' अथक परिश्रम किये बिना श्री नहीं मिलती। कर्मठ का ही भाग्योदय होता है। सूर्य का उदाहरण देकर बताया गया है कि सूर्य निरन्तर चलता है, अतः उसकी कान्ति अक्षय है। चतुर्युग की एक सुन्दर व्याख्या की गई है कि सोया हुआ (अकर्मण्य) व्यक्ति ही वस्तुतः कालयुगी व्यक्ति है। सुप्तावस्था कलि है। अॅगड़ाई लेता हुआ (उठने के लिए तत्पर) व्यक्ति द्वापर युगी है। खड़ा होने वाला (किसी योजना के कार्यान्वयन के लिए कृत संकल्प) व्यक्ति त्रेता युगी है और चल पड़ने वाला (कार्य में दृढ़ संकल्प के साथ प्रवृत्त) व्यक्ति वस्तुतः सतयुगी है। चतुर्युग की यह सुन्दर व्याख्या प्रत्येक मनुष्य की प्रवृत्ति और प्रकृति का द्योतक है।

चरन् वै मधु विन्दति, चरन् स्वादुमुदुम्बरम् ।सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं, यो न तन्द्रयते चरन् ।

कंलि शयानो भवति, सजिहानस्तु द्वापरः।उत्तिष्ठन त्रेता भवति, कृत संपद्यते चरन् ।

विश्व बन्धुत्व और समदर्शिता का संदेश सर्वप्रथम ईश उपनिषद में प्राप्त होता है। मन्त्र में कहा गया है जो सब जीवों में अपनापन देखता है और अपने में सब जीवों को समझता है, वह किसी से घृणा नहीं करता है।

यस्तु सर्वाणि भूतानि– आत्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।

प्रो0 विन्टरनित्स ने लिखा है कि लुडविगस्टाइन ने एकात्मवाद को विश्व की समस्याओं के लिए महत्वपूर्ण माना है किन्तु यह दार्शनिक विचार भारतीय उपनिषदों में तीन हजार वर्ष पूर्व ही प्रतिपादित हो चुका था।

वर्णव्यवस्था का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है। यह गुण और कर्म आश्रित थी। इसका आधार वृत्ति या पेशा था, न कि जन्मना जन्म से। कोई भी शिक्षा क्षेत्र को चुनने वाला ब्राहमण हो सकता था और सैन्य सेवा से सम्बद्ध होने पर क्षत्रिय। वैदिक काल में चारों वर्णो में सामंजस्य, प्रेम और सद्भाव था। ऊँच–नीच, छोटे–बड़े, स्पृश्य–अस्पृश्य आदि के भाव सर्वथा नहीं थें चारों वर्णों को वेदाध्ययन का अधिकार था।

यथेमां वाचं कल्याणीमा वदानि जनेभ्यः । ब्रहमराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च।

यजुर्वेद और अथर्ववेद में चारों वर्णो की सुख समृद्धि और तेजस्विता की प्रार्थना की गई है–

रूचं नो धेहि ब्राहमणेषु, एचं राजसु न स्कृधि। रूचं विश्येषु शूद्रेषु, मयि धेहि रूचा रूचम् प्रियं मा कृषु देवेषु, प्रियं राजसु मा कृणु। प्रिंय सर्वस्य पश्यत् शूद्र उतायें।।

चारों वेदों में जाति व्यवस्था, जाति प्रथा या जन्मना जाति का उल्लेख नहीं है। वेदों में शूदों को समानता का अधिकार दिया गया है उन्हें कही भी हीन या निकृष्ट नहीं माना गया है। उन्हें वेद पढ़ने का अधिकार दिया गया है।

यथेमां वाचं कल्याणीम् .....शूद्राय चार्याय च।

यही नहीं शूद्रों को राजकृत अर्थात राजा के निर्वाचकों में स्थान दिया गया है। इनमें रथकार (बढ़ई), कर्मार (शिल्पी), सूत(सारथि) शूद्र वर्ग से है।

ये धीवानो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिण'ः। ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये।।

इसी प्रकार रत्नियों (राज्य–संचालकों) में भी तक्षा (बढ़ई), रथकार (बढ़ई, शिल्पी) और सूत को स्थान दिया गया है। ये सभी शूद्रवर्ग से सम्बद्ध है–

अराजानो राजकृतः सूतग्रामण्यः। तक्षरथकारयोर्गृहे।

वैदिक काल में स्त्री और पुरुष का भी भेद नहीं था। उपनयन संस्कार से प्रारम्भ होकर समावर्तन संस्कार के साथ समाप्त होता था। उपनयन संस्कार (जनेऊ धारण) शिक्षारम्भ का प्रतीक था। इस संस्कार के बाद शिष्य और शिष्याएं वेद और शास्त्रों का अध्ययन करते थे। बालकों के तुल्य ही बालिकाओं का भी यज्ञोपवीत होता था। वे भी मेखला पहनती थी।

पुराकल्पें तु नारीणां मौञ्जीबन्धन मिष्यते। पत्नै ब्रतोपनयन।

बालिकाओं को गृहकार्य और ललित कलाओं की शिक्षा देकर सुयोग्य गृहिणी बनाया जाता था। जिस प्रकार विवाह से पूर्व बालकों को ब्रहमचर्य का पालन करना पड़ता था, उसी प्रकार बालिकाएं भी ब्रहमचारिणी रहती थी।

ब्रहमचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।

बालक बालिकाएं स्नातक होने पर विवाह करते थे किंतु कुछ आजीवन ब्रहमचारी रहते थे। ऐसी बालिकाओं को ब्रहमवादिनी कहा गया है। ये तपोमय जीवन बिताते हुए शास्त्रचर्चा में मग्न रहती थीं ऐसी ब्रहमवादिनी नारियों में गार्गी, मैत्रेयी आदि उल्लेखनीय है। विवाह के उपरान्त गृहस्थ धर्म प्रारम्भ होता है। वेदों में गृहस्थ दम्पत्ति

के कार्यो का विस्तारपूर्वक वर्णन है। ऋग्वेद का कथन है कि 'जायेदस्तम' अर्थात जाया–पत्नी, इत्–ही, अस्तम–घर है। घर की पूरी व्यवस्था संभालना पत्नी का कर्तव्य है। वेदों में नारी को बहुत आदरणीय स्थान दिया गया है। स्त्री सहधर्मिणी होती हे। उसे अर्धांगिनी कहते है। इसलिए पत्नी के बिना यज्ञ अपूर्ण माना जाता है। अयज्ञो वा ह्येष योऽपत्नीकः। ऋग्वेद में स्त्री का गौरव बताते हुए उसे 'ब्रह्मा' कहा गया है। स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ। इसका अभिप्राय यह है कि वह ज्ञान में उत्कृष्ट होती है। वह बालकों के शिक्षण के अतिरिक्त यज्ञ में भी ब्रहमा का स्थान ग्रहण कर सकती है और विभिन्न संस्कार करा सकती है। वेदों में इन्द्राणी को आदर्श नारी के रूप में प्रस्तुत किया गया है।उसका कथन है कि मै समाज में मूर्धन्य हूँ। मैं अग्रगम्य हूँ और मै प्रखर वक्ता हूँ।
अहं केतुरहं मूर्धाऽहमुग्रा विवाचनी।[5]
इन्द्राणी का ही कथन है कि कोई मुझे अबला न समझे, मैं सबला हूँ और वीर पुत्रों की जननी हूँ। वेदों में नारियों के शौर्य की बहुत चर्चा है। तैत्तिरीय ब्राहमण में इन्द्राणी को सेना की देवता कहा गया है।
इन्द्राणी वे सेनायें देवता।
इन्द्राणी को सेनानी बताते हुए कहा गया है कि वह अजेय और अधृष्य है। ऋग्वेद में स्त्री सेना का भी उल्लेख है। असुरों ने स्त्री सेना को आगे किया। स्त्रियों हि दास आयुधानि चक्रे।''[6] ऋग्वेद में वर्णन है कि शत्रुओं से युद्ध करते हुए विश्पला का पैर कर गया था। अश्विनी कुमारों ने उसे नकली लोहे की टाँग लगा दी और वह फिर युद्ध में भाग ले सकी
''सद्यो जंघाम आयीसं विश्पलायै..... प्रत्यधत्तम।
इस प्रकार सामान्य जन जीवन में नारी पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर तो चलती ही थी लेकिन युद्ध क्षेत्र में भी नारियों का पुरुषों के साथ कुशलतापूर्वक सहभागी होना किसी आश्चर्य से कम नहीं है। यह नारी के प्रति वैदिक दृष्टिकोण को स्पष्टतः प्रतिबिम्बित करता है। अथवर्वेद में वर्णन है कि स्त्री पति के साथ सामूहिक यज्ञों और युद्धों में जाती थी।

''संहोत्रं स्म पुरा नारी समन वाद गच्छति। मन्त्र में समन शब्द का प्रयोग है। इसके दो अर्थ है– सभा या समारोह और युद्ध। दोनों अर्थ यहॉ संगत है। ऋग्वेद और यजुर्वेद में स्त्री के लिए ये विशेषण दिये गये है, इनसे उनके शौर्य और गौरव पर प्रकाश पड़ता है। इसमें नारी को अषाढा (अजेय), सहमाना (विजयिनी), सहस्रवीर्या (असंख्य पराक्रम वाली), असपत्ना (अशत्रु), सपत्नध्नी (शत्रुनाशक), जयन्ती (विजेता), अभिभूवरी (हरा देने वाली ) आदि कहा गया है।
अषाढासि सहमाना.....सहस्रवीर्यासि। असपत्ना सपत्नध्नी जयन्ती–अभिभूवरी।
विद्वता में भी वैदिक युगीन नारियों ने कीर्तिमान स्थापित किये। वेदों में मंत्रद्रष्टा ऋषि के रूप में भी उनका योगदान स्पृहणीय है। 422 मन्त्रों की दृष्टा ऋषिकाएं है। इनमें विशेष उल्लेखनीय ये है– इन्द्राणी, शची, अपाला, घोषा, काक्षीवती, लोपामुद्रा, श्रद्धा कामायनी, वाग् आम्भृणी, सूर्या सावित्री, विश्ववारा, आत्रेयी, उर्वशी, अदिति।
बाल विवाह नारी के अस्तित्व के प्रति चुनौती प्रदान करने वाला रहा है। वेदों में बाल–विवाह निषिद्ध है। विवाह वर और कन्या के पूर्ण यौवन प्राप्त करने पर ही होता था। विवाह माता पिता की स्वीकृति से होता था। सगोत्र विवाह निषिद्ध था। आज भी वैज्ञानिक रूप से सगोत्रीय विवाह हानिकारक माना जाता है। वैदिक विवाह अविच्छेद्य होता था अर्थात यह जीवन भर के लिए होता था। पत्नी के लिए पतिव्रता धर्म है तो पति के लिए पत्नीव्रतत्व। दोनों जीवन भर के लिए सहचर होते थे। एक विवाह का

प्रचलन था। यह सभी तथ्य इस बात के प्रमाण है कि नारी के प्रति वैदिक समाजपूर्णतः संवेदनशील था। वर्तमान सभ्य समाज में नारी को इतने अधिकार नहीं है और अगर है तो उसको प्राप्त करने के लिए नारियों को संघर्ष करना पड़ा है। वैदिक समाज में सीमित रूप में बहुविवाह की प्रथा थी। वेदों में विधवाओं को पुनर्विवाह की आज्ञा थी। इयं नारी पतिलोकं वृणाना.............तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि। कई बार स्त्री का उसके पति से स्वभाव मेल नहीं खाता है तो भी सम्बन्ध विच्छेद करके पुनर्विवाह करने की अनुमति थी। समानलोको भवति पुनभुर्वापरः पतिः ।

मानव जीवन को समृद्ध और सुखी बनाने के लिए सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली का स्वरूप वैदिक काल में दिखाई पड़ता है। प्राचीन शिक्षा पद्धति में संयम और चरित्र को बहुत महत्व दिया गया है। गुरु और शिष्य दोनों के लिए यह अनिवार्य गुण बताया गया है। शिक्षा के विषयों को देखने से ज्ञात होता है कि इसमें शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी शक्तियों के विकास का समावेश है। प्राणायाम, योग विद्या, शस्त्रास्त्र विद्या, मल्ल विद्या, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गणित, ज्योतिष आदि सभी शिक्षा के विषय थे। अथर्ववेद, गोपथ ब्राहमण और छान्दोग्य उपनिषद में इन विद्याओं का उल्लेख हुआ है। छान्दोग्य उपनिषद में कहा गया है।–

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदं आथर्वण
चतुर्थम् इतिहासपुराण पंचमं वेदानां वेदं पित्र्यं
राशिं दैवं निधि वाकोवाक्यम् एकायनं
देवविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पदेवजन विद्याम् एतद् भगवोऽध्येमि। अर्थात

1. ऋग्वेद 2. यजुर्वेद 3.सामवेद, 4. अथवर्वेद 5. इतिहास 6. पुराण (पुरातत्व, ।तबींबवसवहल), 7. वेदांग (शिक्षा, कल्प, निरूक्त, छन्द ज्योतिष, व्याकरण, 8. पितृविद्या (ंदजीतवचवसवहल) 9. राशिविद्या (डंजी) 10. दैव विद्या (डमजमवतवसवहल)
11. निधिविद्या (डपदमबंसवहल) 12. वाकोवाक्य (विधि एवं तर्कशास्त्र) 13. एकायन (म्जीपबे) 14. देवविद्या (डलजीवसवहल),15. ब्रहम विद्या (अध्यात्म), 16. भूत विद्या (ंवसवहल) 17. क्षत्रविद्या (डपसपजंतल ेबपमदबम) 18. नक्षत्र विद्या (ेजतवदवउल) 19. सर्पविद्या (ज्वगपबवसवहल) 20. देवजन विद्या (उनेपब) या गन्धर्व विद्या।

इस प्रकार उपर्युक्त शिक्षा पद्धति में मानव जीवन के सभी पक्षों को समाहित किया गया था। जीवन के आध्यात्मिक पक्ष के साथ–साथ लौकिक पक्ष को सुखमय बनाना वैदिक शिक्षा का उददेश्य था।

वैदिक समाज में विकसित वस्त्र उद्योग, आभूषणों का उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद और अथवर्वेद में बेल–बूटे कढ़े हुए परिधान का उल्लेख प्राप्त होता है। जिस पर सोने के तार का काम होता था।
उभाहिरण्यपेशसा।

अथर्ववेद का कथन है कि सोने और चॉदी के आभूषणों को धारण करने से मनुष्य दीर्घायु होता है और अकाल मृत्यु से बचकर वृद्धावस्था तक जीवित रहता है।

गृह निर्माण की वैज्ञानिक तकनीक भी वैदिक समाज में थी। अथवर्वेद के दो सूक्तों में (3.12 और 9.3) में गृह निर्माण की प्रक्रिया का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है। ऋग्वेद और अथवर्वेद में वरूण के स्वर्णनिर्मित महल का उल्लेख है। वातानुकूलित भवन के निर्माण का भी उल्लेख है।
हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परि व्ययामसि।
शीत हृदा हि नो भुवोऽग्निष्कृणोतु भेषजम । समितियों का उल्लेख मिलता है। ग्रामीण ग्राम का प्रधान होता था। वैदिक साहित्य में अनेक फर्नीचर और घरेलू सामानों का

उल्लेख मिलता है। इस प्रकार आर्यो ने अपने लौकिक जीवन को रूचिपूर्ण बनाने में कोई कसर नहीं रखा था।

वैदिक आर्यो के जीवन में पशुओं का अत्यधिक महत्व था वस्तुतः पशु–संपदा वैभव का प्रतीक था। पशुपालन के लिए उन्होंने वैज्ञानिक पद्धति का भी ध्यान रखा था। वेदों में गाय का बहुत महत्व बताया गया है। गाय को विराट ब्रह्म का रूप माना गया है उसमें सभी देवों का निवास है। एवद् वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम् । वैदिक सभ्यता में पशुओं के प्रति श्रद्धा एवं प्रेम की अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है। वेदों में पशुहत्या को दंडनीय अपराध माना गया है। यजुर्वेद में कहा ''अभयं नः पशुभ्यः'' पशु निर्भय रहे।। अथर्ववेद एवं यजुर्वेद में द्विपाद एवं चतुष्पाद पशुओं की हत्या को अपराध माना गया है। राष्ट्र के विषय में वैदिक आदर्श प्रस्तुत करते हुए यजुर्वेद में कहा गया है कि उसमें तीन गुण होने चाहियें 1.स्वराज स्थ, राष्ट्र स्वतन्त्र हो, 2. जनभृत स्थ, वह जनहितकारी हो, 3. विश्वभृतस्थ, वह विश्व के कल्याण के लिए प्रयत्नशील हो, ऐसा राष्ट्र हमें प्राप्त हों। प्राचीन राजनीतिक व्यवस्था की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी। ग्राम–प्रधान या ग्राम प्रमुख को 'ग्रामणी' कहा जाता था। इसका विधिवत निर्वाचन होता था। ग्राम–प्रशासन ग्रामणी देखता था। ग्रामों का समूह विश और विश के समूह को जन कहते थें जन का सर्वोच्च शासक राजा होता था। अनेक जनपदों को मिलाकर राष्ट्र बनता था। ''आ त्वा गन राष्ट्र.....विशापतिरेकराट त्वं वि राज।'' अथर्ववेद के एक मन्त्र से ज्ञात होता है। कि राजा का निर्वाचन सर्वसम्मति से होता था। इसका आधार होता था– गुणों और वीरता आदि में सर्वोत्कृष्टता ''विश्वाःपृतना अभिभूतरंनरं, सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे।'' यजुर्वेद में राजा के कर्तव्यों का वर्णन करते हुए कहा गया कि ''तुमकों यह राष्ट्र दिया जा रहा है, तुम इसके नियन्ता हो, तुम दृढ़ता पूर्वक इस उत्तरदायित्व को सॅभालों। यह राष्ट्र तुम्हें इन कार्यो के लिए दिया जा रहा है–

1.कृषि की उन्नति, 2. जनकल्याण, 3. आर्थिक समुन्नति, 4. राष्ट्र की सुदृढ़ता।

इमं ते राड, यन्ताऽसि यमनों धुवोऽसि धरुणः।

कृष्यैं त्वा, क्षेमाय त्वा, रय्यै त्वा, पोषाय त्वा।।[7]

अथर्ववेद का कथन है कि राष्ट्र को सृदृढ़ बनाओं और सौभाग्य की ओर ले जाओ। ''इदं राष्ट्र पिपृहि सौभगाय।[56] राजा और प्रजा अन्योन्य सम्बद्ध है, अतः राजा का कर्तव्य है कि वह प्रजा की सुरक्षा करें और प्रजा का कर्तव्य है कि वह राजा को अपना पूर्ण समर्थन दे। व्यापार और शिक्षा को संरक्षण दे। व्यापारियों और विद्वानों की रक्षा करे। इस प्रकार यह पूर्णतः स्पष्ट है कि तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था पूर्णतः लोकतांत्रिक एवं कल्याणकारी सिद्धान्त पर आधारित थी जिसमें प्रत्येक मानव को लिंग, जाति, वर्ग भेद से ऊपर उठकर सर्वोत्तम विकास का अवसर प्रदान किया गया था। राज्य संचालन हेतु सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया गया था। राजा के चयन में सभी वर्गो के लोग शामिल होते थे। शतपथ ब्राहमण में इसका उल्लेख है– 1. ब्रह्मन या पुरोहित 2. सेनानी (सेनापति) 3. ग्रामणी(वैश्य) 4. सूत 5. क्षत्ता (आय व्यय अधिकारी) 6. संग्रहीता (कोषाध्यक्ष) 7. भागदूध (राजस्व अधिकारी) 8. अक्षावाप (आय–व्यय–निरीक्षक), 9. गोविकर्त (अरण्यपाल), 10. पालागल (विशिष्ट सन्देशवाहक)

इनमें पुरोहित वर्ग ब्राहमण वर्ग का, राजन्य क्षत्रिय वर्ग का, महिषी स्त्री वर्ग का, ग्रामणी वैष्य वर्ग का, पालागल शूद्र वर्ग का, सेनानी सैनिकों का, संग्रहीता और भागदुध व्यापारियों का, अक्षावाप वित्तविभाग का, गोविकर्त्त भूसंरक्षकों का, तथा और रथकार शिल्पियों का प्रतिनिधित्व करते थे महाभारत के अनुसार मंत्रिपरिषद में चारों वर्णो का प्रतिनिधित्व अनिवार्य है। इनकी संख्या 37 होने पर इतने मन्त्री इस वर्ण से लिए जाए–

ब्राहमण 4, क्षत्रिय 8, वैश्य 21, शूद्र 3, सूत्र 1 (तत्कालीन इतिहास का लेखक)। राजकार्य में सहायता हेतु सभा एवं समिति भी होती थी। सभा के सदस्य अनुभवी और वृद्ध व्यक्ति होते थे सभा का मुख्य कार्य था– न्याय की ठीक व्यवस्था करना। विवादग्रस्त सभी विषयों को निबटाना और उन पर अपना अन्तिम निर्णय देना। समिति में राष्ट्र के सभी वर्गो का प्रतिनिधित्व होता था। इसका कार्यक्षेत्र न्याय विधान तक ही सीमित न होकर पूरे राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक आदि सभी व्यवस्थाओं से सम्बद्ध था।

आर्यों, की व्यवस्था में मानव जीवन के सभी पक्षों, समाज के सभी वर्गो और संसार के सभी जीव मात्र के प्रति एक समग्र चिन्तन दिखाई पड़ता है। आर्यो की चेतना यहीं तक नहीं रूकी वरन प्रकृति का भी सूक्ष्म चिन्तन जितनी कुशलता से किया है उसमें समस्त पर्यावरण भी समाहित हो जाता है। आर्यो ने प्रकृति की विभिन्न शक्तियों का दैवीकरण किया। देव या देवता का अभिप्राय है– कोई दिव्य शक्ति, वह शक्ति जो मानव जगत का कुछ उपकार करती है, उसे किसी रूप में कुछ देती है या जिसमें कुछ दिव्य या असाधारण क्षमता है, उसे देवता कहा जाता है। यास्क ने वैदिक देवों को तीन वर्गों में बॉटा है।

1 पृथ्वी–स्थानीय 2. अन्तरिक्ष स्थानीय 3. द्युस्थानीय।

1. पृथ्वी–स्थानीय देवता–अग्नि, सोम, बृहस्पति, त्वष्टा, प्रजापति, विश्वकर्मा, अदिति–दिति आदि देवियॉ, नदियॉ।

2 अन्तरिक्ष स्थानीय देवता– इन्द्र, मातारिश्वा, रुद्र, मरूत, पर्जन्य, आपः (जल), अपानपात, त्रित आप्त्य, अहिर्बुध्न्य आदि।

3 द्युस्थानीय देवता– आदित्य, सविता, सूर्य, पूषा, मित्र, वरुण, आश्वनौ आदि।

देवताओं की प्रार्थना वस्तुतः उनके द्वारा प्रकृति में कल्याणकारी कार्यो के प्रति कृतज्ञता मात्र है। मानव जीवन में नैतिकता एवं अनुशासन न केवल मानव की सुखी एवं सम्पन्न बनाने के लिए वरन मानव अस्तित्व के लिए भी परमावश्यक है।

चारों वेदों में यज्ञ का बहुत अधिक महत्व बताया गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि यज्ञ वह विधि है जिसके द्वारा प्राकृतिक संतुलन बनाये रखा जा सकता है। यज्ञ के द्वारा पर्यावरण की सुरक्षा, वायु मंडल की पवित्रता, विविध रोगों का नाश, शारीरिक और मानसिक उन्नति तथा दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है। यज्ञ के द्वारा भू–प्रदूषण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण और ध्वनि प्रदूषण को दूर किया जा सकता है। यज्ञ एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा वायुमंडल में आक्सीजन और कार्बन डाई आक्साइड का संतुलन बना रहता है। सन्त के बाद ग्रीष्म, ग्रीष्म के बाद वर्षा, वर्षा के बाद शरद और शरद के बाद बसन्त। इस प्रकार वर्ष चक्र पूरा होता है।

यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत् । बसन्तोऽस्या सीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद हवि।।

यह प्रक्रिया अणु, परमाणु से लेकर सूर्य, चन्द्र आदि तक सर्वत्र चल रही है, इसका ही नाम यज्ञ प्रक्रिया है। इसके द्वारा ही सृष्टि के प्रत्येक कण में प्रतिक्षण स्फोट रूपी यज्ञ हो रहा है, अतः नित्य परिवर्तन हो रहा है। इस प्रकार सृष्टि चक्र चल रहा है। यजुर्वेद में कहा गया है कि यह यज्ञ सृष्टिचक्र का नाभि है अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।

श्रीमद्भगवदगीता में भी यही भाव दिया गया है कि यज्ञ के द्वारा देवों को प्रसन्न करो और देवता वर्षा के द्वारा तुम्हें प्रसन्न करे। इस प्रकार आदान–प्रदान से तुम्हारी भी वृद्धि हो।

देवान् भावयतानेन, ते देवा भावयन्तु वः ।परस्परं भावयन्तः, श्रेयः परमवाप्स्यथ।।

वस्तुतः यज्ञ मानव के लिए कर्तव्यों की व्यवस्था है जिसके द्वारा वह स्वयं के साथ–साथ समाज और विराट विश्व के विकास में अपना योगदान प्रदान करता है। यज्ञ समस्त चर, अचर जीवों को एकसूत्र में बॉधने वाला है।

कालान्तर में धर्म का आधार मानव न होकर रहस्यवाद हो गया परिणामतः धर्म अमानवीय चिंतन एवं रूढ़िवादी परम्पराओं से ग्रस्त हो गया, इसकी गम्भीर प्रतिक्रिया बौद्ध एवं जैन दर्शनों में हुई। प्राचीन भारत में जब सामाजिक तथा आध्यात्मिक अशान्ति का वातावरण उत्पन्न हुआ तब महावीर स्वामी का आगमन हुआ। मानववाद के चिंतक महावीर ने मनुष्य के हित और सामंजस्य का विचार प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि अशुभ आचरण का परित्याग करने से आदमी स्वयं अपना कल्याण कर सकता है, मनुष्य स्वयं अपना मार्गदर्शक है, सच्चा मार्ग स्वयं आदमी को जानना है और उसे पूर्णत्व की प्राप्ति करनी है। यह कार्य तपस तथा शुभाचरण से ही सम्भव हो सकता है। महावीर के धार्मिक चिन्तन का लक्ष्य मानव कल्याण है। महावीर के अनुसार आत्म सहायता तथा आत्मज्ञान उत्तम सिद्धान्त है। मनुष्य अपना भाग्य विधाता है और अपने शुभ कर्मों से स्वयं मुक्ति लाभ पा सकता है।[8]

महावीर के समकालीन भगवान बुद्ध ने भी मानववादी दर्शन को नयी दिशा प्रदान की बुद्ध ने सामाजिक क्रान्ति के आन्दोलन का प्रादुर्भाव किया और मानव कल्याण के लिए सभी प्रकार के अति प्राकृतिक तत्वों का निषेध किया। बुद्ध ने मानवीय समस्याओं का गहन अध्ययन करते हुए जीवन के तथ्य को समझकर कहा कि जगत में दुख है और सभी मानव प्राणी किसी न किसी प्रकार के दुख से पीड़ित है। इस प्रकार दुःख की स्वीकृति तथा उसको समाप्त करने की प्रतिज्ञा बौद्ध मानववाद का मूलाधार है। भगवान बुद्ध ने उन समस्त निरर्थक परम्पराओं तथा ब्राहमणी धर्मान्धता के प्रति विद्रोह किया, जिन्होंने मानव अस्तित्व को विकृत कर रखा था। अतएव महान मानववादी के रूप में बुद्ध के जीवन का मूलभूत लक्ष्य अन्याय, आचार तथा दमन से ग्रसित मानव प्राणियों को युक्त करना था। बौद्ध मानववाद मनुष्य को देवताओं से बढ़कर प्रमुख स्थान देता है। लेकिन, मनुष्य को ईश्वर के स्थान पर पूजने की अधार्मिकता का कोई विचार उसमें नहीं मिलेगा। निर्लिप्तता की भावना उत्पन्न करने की गम्भीर समस्या का बौद्ध धर्म विवेचन करता हे। लेकिन मनुष्य की स्थिति को सुधारने की प्रेरणा को समाज में अथवा प्रकृति की शक्तियों के विरूद्ध संघर्ष में वह किसी भी प्रकार से निर्बल नहीं बनाता।[9] बुद्ध ने कहा 'आत्मदीपोभव' अर्थात स्वयं प्रकाशित होओ। इसी प्रकार महान यूनानी दार्शनिक सुकरात ने कहा ज्ञदवू जीलेमसि अर्थात अपने को जानो।

**सन्दर्भ**


1. ऋग0 (1.164.10)
2. ऋग0 10.85.46
3. यजु0 9.22
4. ऐतरेय अ033
5. ईश 06
6. विन्टर नित्ज हिस्ट्री आव इंडियन लिट्रेचर–पृ.267
7. गीता– 3.11
8. डी0आर जाटव :सामाजिक एवं मानववादी विचारक, दिल्ली 1997, पृष्ठ सं0 3
9. ए कमलानः द न्यू वर्ल्ड आव फिलासफी, लंदन, 1962 पृ0 265,268, एवं 283

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# बौद्ध दर्शन : भारतीय संविधान का दार्शनिक आधार

**जितेन्द्र कुमार विश्वकर्मा**
एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीतिशास्त्र
वर्धमान कॉलेज, बिजनौर

अरस्तू ने कहा था कि संविधान जीवन की एक शैली है जो राज्य के बाह्य संगठन को निर्धारित करती है।[1] इस प्रकार प्रत्येक संविधान का अपना दर्शन होता है। भारतीय संविधान की दार्शनिक मान्यताएं अनुपम है। भारत का संविधान किसी 'वाद' से जुड़ा विशिष्ट–सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक दर्शन का अनुयायी नहीं वरन् भारतीयों के मानस, आशाओं एवं आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति है।[2]

देखा जाए तो देश के अतीत की नींव पर ही संविधानों के प्रासाद खड़े होते हैं। भारत में सभ्यता और संस्कृति की एक पुरानी और अटूट परम्परा रही है। यह देश अनेक मुसीबतों से गुजरा है, गिर–गिर कर उठा है, बदला है, पर कुछ बात है कि कभी भी टूटा नहीं। इसके चरित्र में कुछ ऐसी आन्तरिक दृढ़ता, सहज लोच और प्राणवत्ता है, कुछ ऐसी शक्ति है जो बड़े से बड़े झटकों को सहकर भी कहानी का सिलसिला टूटने नहीं देती।[3] कहानी लगभग चार–पाँच हजार वर्ष पूर्व प्रारम्भ होती है। भारत में शासनतंत्र और संविधान के प्रथम सूत्र मिलते हैं, वेद, पुराण, स्मृति, महाभारत, रामायण और फिर बौद्ध और जैन साहित्य में, कौटिल्य के अर्थशास्त्र में तथा शुक्रनीति जैसे ग्रन्थों में। ऐसे समय में जब लोगों का नैतिक जीवन निष्प्राण हो रहा था। लोग जीवन के कर्तव्य को भूल रहे थे। वे संसार में रहकर भी संसार से कोसों दूर थे। जिस प्रकार विचार क्षेत्र में पूरी अराजकता थी, उसी प्रकार नैतिक क्षेत्र में भी अराजकता थी। उस समय एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो लोगों को नैतिक जीवन की

---

[1] जार्ज.एच. सेवाइन, राजनीति दर्शन का इतिहास एस.चन्द एण्ड कंपनी लि. रामनगर, नई दिल्ली पृष्ठ–100

[2] डा0 रूपा मंगलानी, भारतीय शासन एवं राजनीति, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ 111

[3] डा. सुभाष कश्यप, भारत का सांविधानिक विकास और संविधान, पृष्ठ 1

समस्याओं के प्रति जागरूक बनाने में सहायक हो। महात्मा बुद्ध इस माँग की पूर्ति करने में पूर्ण रूप से सफल हुए। वैशाख मास की पूर्णिमा बुद्ध के जीवन की तीन महत्वपूर्ण घटनाओं से संबद्ध है– जन्म, संबोधि–प्राप्ति, परिनिर्वाण।[4] बुद्ध का जन्म ईसा की छठी शताब्दी पूर्व हुआ था। इनका जन्म हिमालय की तराई में स्थित कपिलवस्तु नामक स्थान के राजवंश में हुआ था। इनके बचपन का नाम सिद्धार्थ था। राजवंश में जन्म लेने के फलस्वरूप इनके जीवन को सुखमय बनाने के लिए पिता ने भिन्न–भिन्न प्रकार के आमोद–प्रमोद का प्रबन्ध किया, ताकि सिद्धार्थ का मन, विश्व की क्षणभंगुरता तथा दुःख की ओर आकर्षित न हो। पिता के हजार प्रयत्नों के बावजूद सिद्धार्थ का मन संसार की दुःखमय अवस्था की ओर जाने से न बच सका। कहा जाता है कि एक दिन घूमने के समय सिद्धार्थ ने एक रोगग्रस्त व्यक्ति, एक वृद्ध और श्मशान की ओर ले जाये जाते एक मृतक शरीर को देखा। इन दृश्यों का सिद्धार्थ के भावुक हृदय पर अत्यन्त ही गहरा प्रभाव पड़ा। इन दृश्यों के बाद सिद्धार्थ को यह समझने में देर न लगी कि संसार दुःखों के आधीन है। संसार के दुःखों को किस प्रकार दूर किया जाय–यह चिन्ता निरन्तर सिद्धार्थ को सताने लगी। पत्नी का प्रेम, पुत्र की महत्ता, महल का वैभव एवं विलास का आकर्षण सिद्धार्थ को सांसारिकता की डोर में बाँधने में असमर्थ साबित हुआ। विभिन्न प्रकार की यातनाएं झेलने के बाद उन्हें ज्ञान मिला। उन्हें जीवन के सत्य के दर्शन हुए। तत्वज्ञान अर्थात् बोधि प्राप्त कर लेने के बाद वे बुद्ध की संज्ञा से विभूषित किए गए। इन नाम के अतिरिक्त उन्हें तथागत (जो वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप को जानता है) तथा अर्हता की संज्ञा दी गई।

सत्य का ज्ञान प्राप्त हो जाने के बाद बुद्ध ने लोक–कल्याण की भावना से प्रेरित होकर अपने संदेशों को जनता तक पहुँचाने का संकल्प किया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने घूम–घूमकर जनता को उपदेश देना आरम्भ किया। दुःख के कारणों और दुःख दूर करने के उपायों पर प्रकाश डालते हुए, उन्होंने दुःख से त्रस्त मानव को दुःख से छुटकारा पाने का आश्वासन दिया। बुद्ध के उपदेशों के फलस्वरूप बौद्ध धर्म एवं बौद्ध दर्शन का विकास हुआ। बौद्ध धर्म सर्वप्रथम भारत में फैला। धर्म के प्रति लोगों का असंतोष था। उस समय भारत में ब्राह्मण धर्म का बोलबाला था, जिसमें बलि प्रथा की प्रधानता थी। पशु यहाँ तक कि मनुष्यों को भी, बलि देने में किसी प्रकार का संकोच नहीं होता था। हिंसा के इस भयानक वातावरण में विकसित होने के कारण बौद्ध धर्म, जो अहिंसा पर आधारित था, भारत में लोकप्रिय होने का दावा कर सका। कुछ ही समय बाद यह धर्म भारत तक ही सीमित नहीं रहा, अपितु नृपो एवं भिक्षुओं की सहायता से दूसरे देशो में भी फैला। इस प्रकार यह धर्म विश्व–धर्म के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।[5]

बुद्ध ने कोई पुस्तक नहीं लिखी। उनके उपदेश मौखिक ही होते थें। बुद्ध की मृत्यु के बाद उनके शिष्यों ने बुद्ध के उपदेशों का संग्रह 'त्रिपिटक' में किया। इसे आरम्भिक बौद्ध दर्शन का मूल और प्रामाणिक आधार कहा जा सकता है। त्रिपिटक की रचना पाली साहित्य में की गई है। सुत्तपिटक, अभिधम्म पिटक और विनय पिटक–तीन पिटकों के नाम हैं।

---

[4] प्रो0 हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, बौद्ध दर्शन, मोती लाल, बनारसी दास, नई दिल्ली पृष्ठ 105

[5] डा. राधाकृष्णन, बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष, भूमिका, पृष्ठ 9

गौतम बुद्ध ने बोधि प्राप्ति के बाद अपनी शिक्षाओं के सारांश को 'चार आर्य सत्य' (Four Noble Truths) के रूप में व्यक्त किया। उनकी ये शिक्षाएं व्यवहारिक अधिक हैं, सैद्धान्तिक कम। उन्होंने दार्शनिक तत्वों (आत्मा, ईश्वर, जगत, मरणोत्तर जीवन) के विषय में उठाए गए प्रश्नों को ''अव्याकृत प्रश्नानि'' (Indeterminable Questions) कहा और दार्शनिक प्रश्न पूछे जाने पर ''मौन वृत्ति'' का सहारा लिया। उनके 'मौन' का यह अर्थ नहीं था कि वे इन प्रश्नों के उत्तर के विषय में अनभिज्ञ थे। उन्होंने दार्शनिक प्रश्नों के विषय में इसलिए मौन धारण किया कि उनसे दुःखों को दूर करने में कोई सहायता नहीं मिलती। उनका अन्तिम ध्येय यह स्पष्ट करना था कि संसार दुःखों से किस प्रकार आक्रान्त है और इन दुःखों को किस प्रकार दूर किया जा सकता है। यह तथ्य उनके इस कथन से स्पष्ट होता है कि ''मैं दुःख और दुःख निरोध पर ही अधिक जोर देता हूँ।

बौद्ध दर्शन के चार आर्य सत्य निम्नलिखित है–[6]

1. संसार में दुःख है। (There is suffering)
2- दुःखों का कारण है। (There is a cause of suffering)
3. दुःखों का निरोध संभव है। (There is the cessation of suffering) और
4- दुःखों के निरोध का मार्ग है। (There is a path of the cessation of suffering)

महात्मा बुद्ध के अनुसार हमारा काल के अधीन होना, संसार के बन्धन में रहना, अविद्या के कारण है, अचेतना के कारण है, जिससे तृष्णा, वंचना, आसव पैदा होते हैं। अज्ञान और आसक्ति इंद्रियानुभव के जीवन का सार है। अविद्या से हमें विद्या–बोधि और प्रकाश की ओर उठना है। जब हमें स्पष्ट दृष्टि प्राप्त होगी तब हमें समता या अखण्ड शांति मिलेगी।

अश्वघोष रचित ''सौन्दरनन्द' महाकाव्य की अधोलिखित पंक्तियाँ इसी दृष्टिकोण का पोषण करती हैं–

दीपो यथा निवृत्तिमभ्युपेति,नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशं न काञ्चिद् विदिशं न काञ्चिद्,स्नेहक्षयात, केवलमेति शान्तिम्।।
तथाकृती निवृत्तिभ्युपेति,ावावनि गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशं न काञ्चिदृ विदिशं न काञ्चिद् लेशक्षयात् केवलमेति शान्तिम्।।

अर्थात् जिस प्रकार दीपक में डाले गए तेल के समाप्त हो जाने पर दीपक बुझ जाता है या ठण्डा पड़ जाता है उसी प्रकार दुःखों के समाप्त हो जाने पर ज्ञानी पुरूष शान्त हो जाता है, बुझ जाता है या ठण्डा पड़ जाता है। इस प्रकार निर्वाण दुःखों का निरोध है, वह अवस्था है, जिसमें दुःखों का आत्यन्तिक अभाव होता है। मनुष्य के लिए यह स्वाभाविक है कि वह अपने आपको पार्थिव वस्तुओं से ऊपर उठाने का यत्न करें, इन्द्रिय–संवेदना के जगत से बाहर जाए कि जिससे जरा–मरण और स्थूल ऐहिकता के बंधनों से आत्मा की मुक्ति हो। बुद्ध ने कहा ''परन्तु मैं मानता हूँ कि मनुष्य का सबसे ऊँचा आदर्श वह स्थिति है, जिसमें न तो बुढ़ापा है, न भय, न रोग, न जन्म, न मृत्यु, न चिंताएं हैं और जिसमें कोई पुनः पुनः क्रिया न हो।''

बुद्ध ने अनुभव किया कि कई लोग यह विश्वास रखकर कि ईश्वर तो सब कुछ हमारे लिए करेगा ही, कर्म से बचते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि आध्यात्मिक उपलब्धि एक आन्तरिक विकास है। संसार को एक अनन्त प्रवाह मानना। कुछ भी स्थिर नहीं है,

[6] राममूर्ति पाठक, भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेख, अभिमन्यु प्रकाशन, इलाहाबाद पृष्ठ–19–20

देवी–देवता तक भी नहीं। मृत्यु भी स्थाई नहीं है, क्योंकि वह नए जीवन को कवलित करेगी। बुद्ध नियतिवाद को नहीं मानते। वह यह नहीं कहते कि मनुष्य का अपने भविष्य पर कोई अधिकार नहीं। वह अपना भविष्य निर्णीत कर सकता है– अर्हत् बन सकता है, निर्वाण प्राप्त कर सकता है। हमारा आदर्श है संसार सागर को पार करना और यह कार्य उस नैतिक मार्ग पर चलने से हो सकता है जिससे प्रकाश प्राप्त होता है। बुद्ध ने जब निर्वाण प्राप्त किया तो वह अनस्तित्व में विलीन नहीं हो गए। वह नष्ट नहीं हुए, उनकी वासनाएं और इच्छाएं नष्ट हुई।वह द्वन्द्वों की दुनिया से दूर हो गए।'' जो विचार वह चाहते हैं,वही विचार मन में लाएंगे, जो भी विचार वह नहीं चाहते हैं, वह मन में नहीं लाएंगे। बुद्ध ने हमें सिखाया कि कैसे प्रज्ञा का अनुसरण और करूणा का पालन किया जाए। हम जो मत मानते हैं, जो बिल्ले चिपका लेते हैं या जो नारे लगाते हैं, उनसे हमारा निर्णय नहीं होगा, परन्तु हमारे त्याग के कार्य से और भ्रातृ–भाव से हम जाने जाएंगे। मनुष्य निर्बल है, जरा, रोग और मृत्यु का शिकार है।अपने अज्ञान और अहंकार में वह रोगियों, वृद्धों और मृतकों से घृणा करता है। इस प्रकार वह अपने प्रति अन्याय करता है। यदि हम यह जान जाए कि दुःख का कारण क्या है, तो हम सब दुखियारों के भाई बन जाएंगे।

बुद्ध वैदिक कर्मकाण्ड को नहीं मानते थे। जब उनसे कहा गया कि वह कुछ आचार माने तो उन्होंने कहा '' और आप कहते हो कि धर्म के नाम पर मैं अपने परिवार में प्रचलित वे यज्ञ व्रतोत्सव करूँ जिनसे इच्छित फल प्राप्त होता है, तो मेरा कथन है कि मैं इन यज्ञों को नहीं मानता, क्योंकि मैं उस तरह के सुख की बिल्कुल परवाह नहीं करता जो दूसरों को दुःख देकर मिलता हो।''

महात्मा बुद्ध जातिवाद के कटटर विरोधी थे, उन्होंने कर्म को प्रमुख माना। महात्मा बुद्ध ने कहा–''मनुष्य न तो जन्म से चाण्डाल होता है और न ही ब्राह्मण, अंततोगत्वा मानव मात्र में समानता है, असमानता तो बाह्य और कृत्रिम है। उद्दालक जातक में ब्राह्मण के मुख से यह बात कहलाई गई है कि क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल सभी में सत्कर्मों द्वारा निर्वाण प्राप्त करने की क्षमता होती है।[7] पालि पिटक में चाण्डाल, निषाद, पुक्कुस, वेण तथा रथकार इन पाँच जातियों को हीन जाति परिगणित किया गया है।[8] हीन जातियों में चाण्डालों की अवस्था सर्वाधिक शोचनीय थी। ये नगर सीमा से हटकर अपने घर बनाते थे। मातंग जातक में एक श्रेष्ठि पुत्री की दृष्टि एक चाण्डाल पर पड़ गई तो उसने अपने नेत्रों को सुगंधित जल से धोकर पवित्र किया। श्रेष्ठि पुत्री के साथ चलने वाले लोगों ने मातंग की लात–जूतों से पिटाई कर उसे चेतना शून्य कर दिया। परन्तु बौद्ध समुदाय में ऐसा नहीं था। मातंग थे तो चाण्डाल पर वे तपोबल से पूजनीय बन गए, ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों ने भी उनकी सेवा की।

बौद्ध साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि छठीं शताब्दी ई.पू. वर्तमान गोरखपुर से दरभंगा तक के मध्य और उत्तर में हिमालय की तराई से लेकर दक्षिण में गंगा के मध्य तक के विस्तृत क्षेत्र में अनेक गणराज्य फैले हुए थे। इनमें वज्जि राज्य का स्वरूप संघ राज्य था[9]। समय–समय पर अपनी स्थिति दृढ़ करने के लिए वज्जि संघ अपने पड़ोसी गणराज्यों से मित्रता करके विशाल संघ राज्य बना लेते थे। इस संघ में गणराज्यों को

[7] मदन मोहन सिंह, बुद्धकालीन समाज और धर्म, पृष्ठ 19

[8] शैलेन्द्र श्रीवास्तव, लिच्छवियों का उत्थान एवं पतन (600 ई.पू.–781 ई.) पृष्ठ 112

[9] अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृष्ठ 77

समान प्रतिनिधित्व प्राप्त था, इस तरह यह आज के संघीय राज्य के सिद्धान्त के सादृश्य था।

देखा जाए तो लिच्छवि गणराज्य को उच्च्य स्तर पर पहुँचाने के लिए कुछ ऐसी विशिष्ट बातें थीं जो किसी भी गणतंत्र को दीर्घकालीन बनाने के लिए आवश्यक हैं। वे वही हैं जिन्हें महात्मा बुद्ध ने राजगृह पर निवास करते हुए मगधराज के मंत्री वस्सकार को बतलाई थी।[25] जो निम्नलिखित है :–

1. वज्जि लोग बहुधा पूर्ण सभाएं करते हैं।
2. वे एकमत होकर मिलते हैं, एक साथ मिलकर उन्नति करते हैं और वज्जियों का कार्य एक मत होकर करते हैं।
3. वे उचित विधि के बिना कोई नया नियम नहीं लागू करते, विधिपूर्वक बनाए नियम का उल्लंघन कर कोई कार्य नहीं करते हैं तथा प्राचीन समय में विधिपूर्वक बने नियम के अनुसार कार्य करते हैं।
4. वे वृद्धों की प्रतिष्ठा, आदर, भक्ति तथा सहायता करते हैं तथा उनकी बातों को सुनना अपना कर्तव्य समझते है।
5. वे अपने समाज की स्त्रियों तथा कुमारियों का सम्मान करते हैं और उनका अपहरण नहीं करते हैं।
6. वे वज्जि चैत्यों की प्रतिष्ठा, आदर, भक्ति और सहायता करते हैं।
7. वे अपने अर्हतों का उचित रक्षण और पालन–पोषण करते हैं।

वस्सकार के चले जाने पर बुद्ध ने भिक्षुओं को पुनः यह बताया कि जब तक भिक्षु लोग इन सात नियमों का पालन करते रहेंगे, बौद्ध संघ उन्नति करता रहेगा। वज्जि या लिच्छिवि गणराज्य की केन्द्रीय समिति या व्यवस्थापिका सभा में विभिन्न दलों का महत्व था, परन्तु वे आज की तरह किसी राजनीतिकदल या विचारधारा से प्रेरित नहीं थे, बल्कि ये दल किसी विशिष्ट प्रभावशाली व्यक्ति के प्रति निष्ठा रखते थे, जो राजनीतिक दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान रखते थे। बौद्ध संघ नियम तत्कालीन संघ राज्यों के नियम के आधार पर बनाए जाते थे। बौद्ध संघ की गणपूर्ति के लिए बीस सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक थी।[10] सर्वप्रथम किसी विषय पर विचार करने के लिए तत्संबंधित विज्ञप्ति या सूचना सबके सामने प्रस्तुत की जाती थी। उसके बाद प्रस्तावक औपचारिक रूप से प्रस्ताव प्रस्तुत करता था, फिर उस पर वाद–विवाद होता था।[29] आजकल की भाँति बौद्ध संघ में तीन बार लोगों के समक्ष प्रस्तुत और स्वीकृति किया जाता था। मतगणना के लिए बौद्ध संघों में शलाका पद्धति अपनाई जाती थी। समिति में वाद–विवाद के समय यदि कोई सदस्य अश्लील वचन अथवा भद्दा वचन बोल देता था तो उसके विरूद्ध निन्दा प्रस्ताव भी प्रस्तुत किया जाता था।

पालि में लिखित ग्रन्थों में इस विषय में दिलचस्प ब्यौरे मिलते है कि प्राचीन गणराज्यों में सभाओं में क्या–क्या प्रथाएं एवं प्रक्रियाएं अपनाई जाती थीं, जो कुछ विद्वानों के अनुसार 'आधुनिकतम स्वरूप के विधि एवं संवैधानिक सिद्धान्तों पर आधारित थीं। उदाहरण के तौर पर सभा का अपना अध्यक्ष हुआ करता था जिसे ''विनयधर'' कहा जाता था और सचेतक भी हुआ करता था जिसे ''गणपूरक'' कहा जाता था। ''विनयधर'' संकल्प, गणपूर्ति का अभाव, बहुमत द्वारा मतदान इत्यादि जैसे प्रक्रियागत उपायों एवं शब्दावली से परिचित होता था। सभा में चर्चाएं स्वतंत्र, स्वच्छ एवं निर्बाध हुआ करती थीं। मतदान शलाकाओं (टिकटों) द्वारा होता था जो विभिन्न मतों का

[10] जायसवाल, हिन्दू राज्यतंत्र, हिन्दी अनुवाद पृष्ठ 60–61

प्रतिनिधित्व करने वाली भिन्न–भिन्न रंगों की लकड़ी की पट्टियाँ होती थी। जटिल और गंभीर मामलें प्रायः सभा के सदस्यों में से चुनी गई विशेष समिति के पास भेजे जाते थे। निचले स्तर पर लोकतंत्र प्रादेशिक परिषदों (जनपद), नगर परिषदों (पौर सभा) और ग्राम सभाओं के रूप में विद्यमान था। ये निकाय स्थानीय कार्यों की देखरेख पूरी स्वाधीनता से करते थे जिसमें स्थानीय उपक्रम एवं स्वशासन का तत्व रहता था।[31]

बौद्ध भिक्षु–संघ भी बहुत कुछ संसद की तरह थे। 'माक्विस ऑफ जैटलैण्ड' के शब्दों में, ''यह जानकर आश्चर्य होता है कि भारत में, दो हजार या इससे भी अधिक वर्ष पहले बौद्धों की सभाओं के संसदीय प्रक्रिया संबंधी नियम कितने अधिक विकसित और परिपक्व थे। इन नियमों में बैठने के क्रम, संकल्प, प्रस्ताव, गणपूर्ति, सचेतक, मतगणना, मतपत्र द्वारा मतदान, अविश्वास प्रस्ताव आदि से संबंधित नियम थे।''[11] मौर्यकाल में पाटलिपुत्र में जनता द्वारा चुनी हुई नगर पालिका का विवरण मिलता है। नगर पालिका के 30 सदस्य होते थे और वे पाँच–पाँच सदस्यों की 6 समितियों में बँटे हुए थे। प्रत्येक समिति को कुछ विशेष विभाग सुपुर्द थे। नगरपालिका का कार्यक्षेत्र बहुत कुछ आज की नगरपालिकाओं से मिलता जुलता था। सफाई, पानी, सार्वजनिक इमारतें, बाग–बगीचों की देखभाल, जीवन–मरण का लेखा आदि काम नगरपालिका को सुपुर्द थे। लोकतांत्रिक संस्थाएं हमारे देश में, किसी न किसी रूप में, कम या ज्यादा, बराबर चलती ही रहीं। ग्राम पंचायतें तो हमारे जन–जीवन का अभिन्न अंग ही रही हैं।[12]

लिच्छवियों की न्याय व्यवस्था बहुत उन्नतिशील थी। अट्ठकथा में दी गई कथा के अनुसार यदि व्यक्ति अपराधी नहीं हैं तो उसे अपराधी सिद्ध करना बहुत कठिन था। क्योंकि सुनवाई क्रमशः सात न्यायालयों में होती थी। यदि एक न्यायालय में उसे दोषी सिद्ध कर दिया जाता था तो भी न्यायाधीश उसे दण्ड नहीं दे सकते थे। उस मुकदमें की सुनवाई उससे ऊपर के न्यायालय में होती थी। केवल अंतिम न्यायालय जिसका न्यायाधीश स्वयं गणप्रमुख राजा होता था, उसे अपराधी घोषित कर सकता था तथा दण्ड दे सकता था।[13] इस प्रकार लिच्छवि गणराज्य में एक व्यक्ति न्याय पाने के लिए अंतिम न्यायालय तक बिना किसी असुविधा के पहुँच सकता था।

इस प्रकार देखा जाए तो बुद्ध का प्रमुख उद्देश्य था धार्मिक आचारों में सुधार करना और मौलिक सिद्धान्तों की ओर लौटना। बुद्ध इस देश में, हमारी धार्मिक परम्परा के एक अलौकिक प्रतिनिधि हैं। उन्होंने भारतभूमि पर अपने अमिट पद चिहन छोड़े। इस देश की अपनी सारी आदतों और रूढ़ियों के बावजूद देश की आत्मा पर बुद्ध की छाप है। बुद्ध चाहते थे कि एक नए प्रकार का स्वतंत्र मनुष्य विकसित हो, जो सब पूर्व मान्यताओं से स्वतंत्र हो, जो अपना भविष्य स्वयं बनाए, जो अपना दीपक स्वयं बने।[34]

शासक बदलते रहे, सेनाओं के बीच युद्ध होते रहे, सेनाएं हारती–जीतती रहीं, किन्तु इस सबके बीच भी राष्ट्र का जीवन, आम लोगों का रहन सहन लगभग ज्यों का त्यों चलता रहा, देश के एक कोने से दूसरे कोने तक–सिंध और राजस्थान से असम तक, और काश्मीर से कन्याकुमारी तक इस देश की पुरानी सभ्यता और परम्परा का सिलसिला अटूट बना रहा, सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन की मूल धारा अवरूद्ध न हो

---

[11] सुभाष कश्यप, हमारी संसद, नैशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया पृष्ठ 2, 3

[12] सुभाष कश्यप, भारत का संविधानिक विकास और संविधान, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय पृष्ठ 2,3

[13] सुमंगल विलासिनी, भाग–2, पृष्ठ 519

सकी। और जब 1946 और 1949 के बीच, स्वाधीन भारत का संविधान बनाने के लिए, भारतवासी अपनी संविधान सभा में एकत्रित हुए तो उनके पीछे एक महान सभ्यता ओर गौरवमयी संस्कृति का तथा स्वाधीनता की लड़ाई का लम्बा इतिहास था, लम्बी कहानी थी और उनके सामने थी उससे भी अधिक महान और गौरवपूर्ण भविष्य का निर्माण करने की आकांक्षा।

डा0 राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था कि ''जो काम अब हमारे सामने है वह स्वाधीनता संघर्ष से भी अधिक कठिन है। उस समय हमारे सामने विभिन्न भागों में सामंजस्य स्थापित करने की समस्या नहीं थी, बांटने के लिए पद–स्थानों के प्रलोभन नहीं थे, साझे के लिए हमारे हाथों में कोई शक्ति और सत्ता नहीं थी। अब हमारे पास सब कुछ है और सचमुच प्रलोभन बहुत बड़े है। ईश्वर हमें इतनी बुद्धि और बल दे कि हम इन प्रलोभनों से ऊपर उठ सकें और उस देश की सेवा कर सकें जिसे स्वाधीन कराने में हम सफल हुए हैं।''

अतः यह स्वाभाविक था कि संविधान सभा ने भारत के संविधान के द्वारा गत हजारों वर्षों की संस्कृति में पनपे सामाजिक–सांस्कृतिक आदर्शों–आस्थाओं को तथा वर्तमान राजनीतिक आर्थिक जीवन की अनेक आशाओं–आकांक्षाओं को वाणी देने का प्रयास किया।

संविधान का आरंभ उद्देशिका से होता है। इसमें संविधान के मूल उद्देश्य दिए गए है। इसमें सारे संविधान का सार छिपा है। इसका पाठ इस प्रकार है :

''हम भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व–संपन्न समाजवादी, पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिको को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए, तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26नवम्बर 1949 ई0 (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत दो हजार छह विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।[14]

यह कोई मामूली बात नहीं थी कि संविधान सभा एक ऐसा संविधान बना सकी जो इस विशाल देश के एक छोर तक लागू हो तथा कितनी ही विविधताओं के बीच एकता पुष्ट करने में सफल हो। डा0 अंबेडकर ने 25 नवम्बर 1949 को संविधान सभा में बोलते हुए बड़े महत्वपूर्ण शब्दों में कहा था, ''मैं महसूस करता हूँ कि संविधान चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो, यदि वे लोग जिन्हें संविधान को चलाने का काम सौंपा जाएगा, खराब निकले तो निश्चित रूप से संविधान भी खराब सिद्ध होगा। दूसरी ओर, संविधान चाहे कितना भी खराब क्यों न हो, यदि उसे चलाने वाले अच्छे लोग हुए तो संविधान अच्छा सिद्ध होगा।

26 नवंबर 1949 को डा0 राजेन्द्र प्रसाद ने अपने समापन भाषण में स्मरणीय शब्दों में देशवासियों को चेतावनी देते हुए कहा था कि कुल मिलाकर संविधान सभा एक अच्छा संविधान बनाने में सफल हुई थी और उन्हें विश्वास था कि यह संविधान देश की आवश्यकताओं को पूरा कर सकेगा। किन्तु, ''यदि जो लोग चुनकर आएंगे

[14] एस0 सरकार, जे0जे0 माथुर, भारत का संविधान, 1950, आलिया ला एजेन्सी, इलाहाबाद, उद्देशिका।

चरित्रवान और ईमानदार हुए तो वे दोषपूर्ण संविधान को भी सर्वोत्तम बना देंगे। यदि उनमें इन गुणों का अभाव हुआ तो संविधान देश की कोई मदद नहीं कर सकता।''

किन्तु, इसके साथ संविधान की यात्रा समाप्त नहीं हुई। यह तो कहानी का आरंभ था। इसके बाद संविधान का कार्यकरण शुरू हुआ। अदालतों द्वारा इसकी व्याख्या हुई। विधान पालिका द्वारा इसके अन्तर्गत कानून बने। सांविधानिक संशोधन हुए। इन सबके द्वारा संविधान निर्माण की प्रक्रिया जारी रही। संविधान विकसित होता रहा, बदलता रहा। समय–समय पर जिस प्रकार और जैसे–जैसे लोगों ने संविधान को चलाया, वैसे ही वैसे नए–नए अर्थ इसे मिलते गए।

देखा जाए तो संविधान द्वारा भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाना एवं न्याय, स्वतंत्रता, समता, व्यक्ति की गरिमा, राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने की जो व्यवस्था दी गई है उस पर बौद्ध धर्म दर्शन की छाप महसूस की जा सकती है।

***Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301***
***International Journal of humanities, Law and Social Sciences***
***Published biannually by New Archaeological & Genological Society***
***Kanpur India***

NAAGS KANPUR

***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# बालगंगाधर तिलक एवं श्रीमती एनी बेसेंट का होम रूल आंदोलन

**संजेश कुमार मौर्य**
शोध छात्र इतिहास विभाग
विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज कानपुर
छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर
**प्रोफेसर पुरुषोत्तम सिंह**
शोध पर्यवेक्षक
प्रोफेसर एवं प्राचार्य
महाराज बलवंत सिंह पीजी कॉलेज
गंगापुर वाराणसी
एवं पूर्व प्रोफेसर इतिहास विभाग
विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज कानपुर

आरंभ से ही भारत की सांस्कृतिक नगरी के रूप में उपलब्धि और विशेष ख्याति प्राप्त वाराणसी जो संयुक्त प्रांत में स्थित है, ना केवल सांस्कृतिक दृष्टि से संपूर्ण भारतीय प्रवेश को नवीन धारा प्रदान की अपितु शताब्दी के आरंभिक दशकों से संपूर्ण राजनीतिक धारा को बदल दिया एक तरफ इलाहाबाद भारतीय राजनीतिक गतिविधियों का जहां उद्गम स्थल था,  वही लखनऊ गंगा जमुनी तहजीब हिंदू मुस्लिम एकता एवं भ्रातत्ववाद का अद्भुत केंद्र स्थल था ᑉ प्राचीन  म्रगदाव जहां तथागत भगवान गौतम बुद्ध के द्वारा पांच ब्राह्मणों को दीक्षा प्रदान की गयी उस  स्थल की पहचान आज के बनारस के निकट स्थित सारनाथ से की जाती है अस्तु संयुक्त प्रांत अपनी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, एवं धार्मिक उत्कृष्टता को अंग्रेजी हुकूमत  मैं भी बरकरार बनाए रखा , ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के द्वारा आगरा एवं अवध नामक दो प्रान्तों  को मिलाकर एक प्रान्त  का निर्माण किया, जिसे आगरा अवध संयुक्त प्रांत नाम दिया गया अंत में 1935 में इसे केवल संयुक्त प्रांत कर दिया गया भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के तत्पश्चात जनवरी 1950 में संयुक्त प्रांत का नाम में परिवर्तन कर के उत्तर प्रदेश रखा गया 1 अगस्त 2000 को उत्तराखंड राज्य के गठन से संबंधित विधेयक लोकसभा में पारित होने के पूर्व उत्तराखंड भी उत्तर प्रदेश का अभिन्न अंग था। प्राचीन काल से यह पावन भूमि देवभूमि नाम से विख्यात है।अपनी प्राकृतिक मनोरम सौंदर्य छटाओं के कारण इस भूमि को अंग्रेजी शासनकाल में महत्वपूर्ण गौरव प्राप्त था । 10 अगस्त को

राज्यसभा में पृथक उत्तराखंड राज्य की स्थापना संबंधी विधेयक को मंजूरी प्रदान की गयी । फल स्वरुप एक नवंबर 2000 से उत्तराखंड क्षेत्र राज्य के रूप में अस्तित्व में आया स्वतंत्रता मानव जीवन का परम उद्देश है इसे पाने अथवा इसकी सुरक्षा मनुष्य प्रतिकार करता है । प्रतिकार तथा प्रतिरोध किसी समाज के साथ किए जा रहे शोषक व्यवहार अन्याय तथा आर्थिक सांस्कृतिक घुसपैठ से स्वभाविक असहमति की अभिव्यक्ति है।विभिन्न समाजों की सहनशीलता में अंतर होता है स्थान समय तथा स्थिति के अनुसार इसका स्वरूप व्यक्ति में समूह तक फैलता है और इसी तरह इसकी उदारता और अकर्मण्यता का मिजाज बदलता रहा है । अस्तु प्राचीन काल से ही संयुक्त प्रान्त का अपना एक विशिष्ट स्थान रहा है अनेक महापुरुषों ऋषि–मुनियों की मातृभूमि एवं तपोभूमि होने का विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान संयुक्त प्रान्त को प्राप्त है ५ समय–समय पर इस प्रदेश के महान आत्माओं एवं वीर पुरुषों ने राष्ट्र का गौरव बढ़ाया है । अंग्रेजी शासन से सामना 1764 बक्सर के युद्ध के उपरांत ही हुआ।1775 ईस्वी में बनारस का समामेलन के बाद संयुक्त प्रांत के अवध क्षेत्र में अंग्रेज अपनी शक्ति संवर्धन और क्षेत्र विस्तार की प्रक्रिया में लिप्त हुए ।1798 ई0 में लार्ड वेलेजली को भारत का गवर्नर जनरल बनाकर भेजा गया ५ इलाहाबाद की संधि के द्वारा प्रथम बार अवध और अंग्रेजी हुकूमत के मध्य संबंधों को स्थापित किया गया ५ तत्पश्चात से अंग्रेजों की शक्ति अवध में विस्तारित होती चली गई ५ अवध के नवाब सादत अली को लार्ड वेलेजली ने भय द्वारा 10 नवंबर 1803 ई0 में सहायक संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया। इस संधि के द्वारा ब्रिटिश आर्मी का व्यय पूरा करने के लिए बिना किसी वार्षिक शुल्क के स्थान पर अवध राज्य का बहुत बड़ा भाग ब्रिटिश कंपनी को हस्तान्तर कर दिया गया 1803 ई0 में सिंधिया के साथ अंग्रेजों की संधि के पश्चात गंगा एवं यमुना के मध्य का क्षेत्र ब्रिटिश कंपनी को प्राप्त हो गया । उसी समय फर्रुखाबाद एक छोटा सा राज्य था जिसे लार्ड वेलेजली के द्वारा अंग्रेजी शासन के अधीन कर लिया गया। इस प्रकार भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का बहुत बड़े भूभाग पर शासन स्थापित हो चुका था ।1815 ई0 के आंग्ल नेपाल विवाद एवं युद्ध के उपरांत कुमाऊं (टिहरी गढ़वाल को छोड़कर ) को अंग्रेजी शासन में सम्मिलित कर लिया गया उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत (आधुनिक उत्तर प्रदेश) का प्रशासन कोलकाता से संचालन होता था लॉर्ड बेंटिक ने भारतीय जनता के कष्टों का अनुमान करते हुए इलाहाबाद में 1832 ई0 में सदर दीवानी न्यायालय एवं सदर निजामत न्यायालय को स्थापित किया । अट्ठारह सौ सत्तावन ई0 का वर्ष आधुनिक भारत के इतिहास में महान विभाजक वर्ष है। भारतीय जनमानस के द्वारा ब्रिटिश सत्ता को पूरी तौर पर समाप्त करने का व्यापक रूप से प्रयास किया गयाइ। यह स्वाधीनता संघर्ष अंग्रेजी सत्ता से उत्पन्न राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक रूप से भारतीय जनमानस के शोषण के उपरांत प्राप्त परिणाम था इस कार्य में डलहौजी का व्यपगत सिद्धांत बहुत कारगर सिद्ध हुआ उसने बहुत से राज्यों को हड़प लिया इस प्रकार अंग्रेजी शोषण दुर्व्यवहार की प्रक्रिया द्वारा भारतीय शासकों में क्रोध उत्पन्न होना महत्वपूर्ण कारक था । भारत के पहले स्वाधीनता संग्राम में संयुक्त प्रांत के आम जनों के द्वारा व्यापक स्तर पर सहयोग प्रदान किया गया संयुक्त प्रांत में मेरठ से प्रज्वलित हुई चिंगारी संपूर्ण संयुक्त प्रांत में फैल गई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना भारतीयों के अथक परिश्रम का परिणाम थी ५ इसकी स्थापना 1885 में हुई थी 1885 से अगस्त 1947 में भारत के स्वतंत्र होने के बीच लगभग 60 वर्षों का समय देश के इतिहास में शायद सबसे महत्वपूर्ण बदलाव का समय रहा । अस्तु यह बदलाव कई अर्थों में दुखरूद रूप से अपूर्ण रहा और हमें इसी

केंद्रीय अस्पष्टता से सर्वेक्षण आरंभ करना सबसे सुविधाजनक प्रतीत होता है। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की गणना आधुनिक समाज के सबसे महत्वपूर्ण आंदोलनों में की जाती है। विभिन्न विचारधारा और संप्रदाय के लोगों को इस आंदोलन में राजनीतिक रूप से सक्रिय होने के लिए प्रेरित किया और विश्व के सबसे शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य के लिए आत्मसमर्पण करने के लिए बाध्य किया इसलिए जो लोग मौजूदा सामाजिक और राजनीतिक आधार को बदलना चाहते हैं। उनके लिए ब्रिटिश, फ्रांसीसी, रूसी, चीनी, क्यूबाई और वियतनामी क्रांतियो की तरह इसकी भी प्रसंगिकता है कांग्रेस की स्थापना के पूर्व भी भारत के मध्यम वर्गीय शिक्षित, बुद्धिजीवी ,जागरूक लोगों द्वारा समस्त भारतीयों को आपस में जोड़ने के प्रयास से एक राजनैतिक मंच संगठित करने की अकुलाहट इस वर्ग को लगातार जोर दे रही थी परंतु अंग्रेजों के कट्टरवादी शासन एवं दमन चक्र को भोग चुका भारतीय जनमानस इस अकुलाहट को मन में दवाएं था । उनके इस अकुलाहट एवं बेचौनी को बाहर आने का श्रेय ए0 ओ0 हयूम की कविता की निम्नांकित पंक्तियों को जाता है ५ जिससे सकारात्मक रूप पाकर भारतीय जनमानस की दबी हुई आशाओं एवं को अकुलताओ को पंख प्रदान कर दिए नई चेतना पाकर ए0 ओ0 हयूंम के संरक्षण में दिसम्बर 1885 में कांग्रेस की स्थापना हुई ५ भारत का स्वाधीनता आंदोलन भारतीय जनमानस और अंग्रेजी उपनिवेशवाद के मध्य आधारभूत अंतर्विरोध हो का परिणाम था। शुरू से ही भारतीय राष्ट्रीय नेताओं ने इसको बहुत अच्छे से आत्मसात कर लिया था नेताओं में यह समझने की बेहद ही व्यापक क्षमता थी कि भारत अल्प विकास की प्रक्रिया से गुजर रहा है समय रहते उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के वैज्ञानिक विश्लेषण पद्धति का विकास किया औपनिवेशिक प्रजा के रूप में भारतीय जनता का अनुभव लेकर और उपनिवेशवाद के विरुद्ध भारतीय जनमानस के सामान्य हितों को पहचान कर भारतीय राष्ट्रीय नेताओं ने क्रमशः एक स्पष्ट उपनिवेशवाद विरोधी आलोचना की भूमिका तैयार की। राष्ट्रीय आंदोलन को व्यापक जनाधार प्रदान करने वाले चरण में उपनिवेशवाद विरोधी इस विचारधारा और उपनिवेशवाद की कटु आलोचना को प्रचारित किया गया भारत में राष्ट्रीय भावनाओं के विकास का एक प्रमुख परंतु महत्वपूर्ण कारण अंग्रेजी शासकों की जातीय श्रेष्ठता का वह दंभ था जो भारतीय जनता के प्रति अनेक अंग्रेजी शासको में पाया जाता था इसजातीय दंभ का एक कड़वा और प्रचलित रूप तक देखने को मिलता था, जब कोई अंग्रेज किसी भारतीय से किसी विवाद में उलझा होता था और न्याय व्यवस्था अंग्रेजों का पक्ष लेती थी जैसा कि जी0 ओ0 ट्रेवेलियन ने 1864 में लिखा था

"हमारे अपने देश की एक व्यक्ति का बयान भी अदालतों में अनेकों हिंदुओं से अधिक महत्व रखता है यह एक ऐसी परिस्थिति है जिसमें शक्ति का एक भयानक साधन एक बेईमान और चालाक अंग्रेज के हाथों में पहुंच जाता है" जातीय दंभ जाति, धर्म, प्रांत या वर्ग का भेदभाव किए बिना तमाम भारतीयों को एक समान हीन करार देता था। वे यूरोपीय लोगों के क्लबों में नहीं जा सकते थे और अक्सर उन्हें किसी गाड़ी के उस डिब्बे में यात्रा की अनुमति नहीं थी। जिसमें यूरोपीय यात्री यात्रा कर रहे हो इससे भारतीय जनता में राष्ट्रीय अपमान का बोध हुआ तथा अंग्रेजों के मुकाबले में वे अपने आप को एक जन गुण के रूप में देखने लगे। आरंभ के राष्ट्रवादी नेताओं का विश्वास था कि राजनीतिक मुक्ति के लिए सीधे लड़ना अभी व्यवहारिक नहीं था। जो कुछ व्यवहारिक था, वह यह था कि भारतीय जनमानस के अंदर राष्ट्रीय भावनाओं को जगाया जाए तथा मजबूत किया जाए और राजनीतिक तथा राष्ट्रीय आंदोलन के लिए शिक्षित किया जाए इस बारे में पहला महत्वपूर्ण कार्य राजनीतिक प्रश्नों में जनता की

रूचि विकसित करना तथा देश में जनमत का संगठन करना था। दूसरे राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय मांगों का निरूपण किया जाना था ताकि उभरते हुए जनमत को एक अखिल भारतीय स्वरूप मिल सके। सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह था कि पहले पहल राजनीतिक चेतना प्राप्त भारतीयों तथा राजनीतिक कार्यकर्ताओं और नेताओं में राष्ट्रीय एकता की भावना को जागृत किया जाए। आरंभिक भारतीय राष्ट्रीय नेताओं को इसका ध्यान था और भी अच्छी तरह समझते थे कि भारत अभी हाल ही में एक राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में पहुंचा है दूसरे शब्दों में भारत अभी नवोदित राष्ट्र था ⁷ भारत के राष्ट्रीय स्वरूप को बहुत सावधानी से निखारने की आवश्यकता थी भारतीयों को बहुत होशियारी से एक राष्ट्र के रूप में संगठित किया जाना था । राष्ट्रीय चेतना प्राप्त भारतीयों को क्षेत्र, जाति, धर्म के भेदों से ऊपर उठकर राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित और सशक्त करने के लिए लगातार बैठकर काम करना पड़ रहा था । प्रारंभ में भारतीय राष्ट्रीय नेताओं ने अपनी राजनीतिक तथा आर्थिक मांगो का निर्धारण इस तथ्य को दृ ष्टि में रखकर किया कि भारतीय जनता को एक साझे आर्थिक राजनीतिक कार्यक्रम के आधार पर संगठित करना है। भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना भी महज एक घटना नहीं थी, बल्कि यह भारतीय अर्थव्यवस्था और समाज के उपनिवेशीकरण और धीरे–धीरे उस को दबाए रहने की लंबी प्रक्रिया का परिणाम था। इस शोषण प्रक्रिया ने हर स्तर पर भारतीय समाज में असंतोष और क्षोभ को जन्म दिया, जिसके कारण अंग्रेजों का लगातार दिन प्रतिदिन भारतीयों के प्रतिरोध का शिकार होना पड़ा जनमानस के इस विरोध को हम मुख्यता नागरिक, किसान एवं आदिवासी विरोध में बांट सकते हैं।

आरंभिक 100 वर्षों तक नागरिक प्रतिरोधों का सिलसिला लगातार चलता रहा साम्राज्यवाद की अर्थशास्त्री आलोचना राष्ट्रवादियों का संभवत सबसे महत्वपूर्ण कार्य था । उन्होंने तत्कालीन औपनिवेशिक आर्थिक शोषण के सभी तीनों रूपों अर्थात व्यापार, उद्योग, वित्त के द्वारा शोषण पर ध्यान केंद्रित किया उदाहरण के लिए जीवन तथा संपत्ति की सुरक्षा के लाभों के प्रश्न पर दादाभाई नरोजी ने इस प्रकार की टिप्पणी की थी "मजे की बात यह है कि भारत में जीवन तथा संपत्ति की सुरक्षा प्राप्त है मगर यथार्थ में ऐसी कोई बात नहीं है केबल एक ही अर्थ या रूप में जीवन और संपत्ति की सुरक्षा प्राप्त है, अर्थात लोग एक दूसरे की याद ऐसी तानाशाहों की हिंसा से सुरक्षित हैं परंतु इंग्लैंड की अपनी जकड़ से संपत्ति को और परिणाम स्वरूप जीवन को बिल्कुल सुरक्षा प्राप्त नहीं । भारत की संपत्ति सुरक्षित नहीं जो कुछ सुरक्षित और अच्छी तरह सुरक्षित, वह यह है कि इंग्लैंड पूरी तरह सुरक्षित तथा निश्चित और इस तरह पूरी सुरक्षा पाकर वह इसमें तीन या चार करोड़ पौण्ड प्रतिवर्ष की दर से भारत की संपत्ति बाहर ले जा रहा है, या यही उसका भक्षण कर रहा है, इसलिए मैं यह कहने की जुर्रत करूंगा कि भारत की संपत्ति या उसके जीवन को सुरक्षा प्राप्त नहीं भारत लाखों लाख लोगों के लिए जीवन का अर्थ "आधा पेट भोजन" या भुखमरी या अकाल और महामारी है। कानून और व्यवस्था के बारे में दादा भाई ने लिखा – भारत में एक कहावत प्रचलित है रू "पीठ पर मार लो भैया मगर पेट पर मत मारो" देसी तानाशाह के अधीन जनता जो कुछ पैदा करती है उसे अपने पास रखती और उपयोग करती है हालांकि कभी–कभी उसने पीठ पर कुछ हिंसा झेलनी पड़ती है, ब्रिटिश भारत की तानाशाही में मनुष्य शांति के साथ रह रहा है और ऐसी कोई हिंसा यह नहीं है परंतु उसका सहारा उससे अनदेखे, शांतिपूर्ण तथा बहुत बारीक ढंग के साथ भूखा रहता है तथा शांति के साथ मर जाता है और यह सब पूरे कानून और व्यवस्था के साथ हो रहा है। भारत में

अंग्रेजी उपनिवेश स्थापित होने से पहले चरण में अंग्रेज शासकों के द्वारा भारतीयों के चारों ओर दीवारें स्थापित कर उसे दूसरे देशों के जनतांत्रिक और राष्ट्रीय आंदोलनों के प्रभाव से पूरी तरह अलग रखने की साजिश की गई इसके तदोपरांत भी बाहर के देशों में घटित होने वाले घटनाक्रमों ने भारतीय समाज को बहुत अधिक प्रभावित किया एवं एक युद्धोंमुखी राष्ट्रवादिता की भावना उत्पन्न करने में बहुत बड़ा योगदान प्रदान किया गया मुख्य रूप से 1864 के उपरांत जापान का उद्भव एक आधुनिक और शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में हुआजापान युद्ध में रूस की पराजय और जापान विजय उसके बाद रूसी क्रांति ने एशिया के अंग्रेजों के अधीन देशों के राष्ट्रीय और जनतांत्रिक आंदोलनों को बहुत प्रभावित किया । एशिया पर उपनिवेशवादी रूस की पराजय और रूस की क्रांति के बारे में लेनिन ने अपने विचार प्रस्तुत कर कहा था, "विश्व पूंजीवाद और रूस के 1905 के आंदोलन ने अंततः एशिया को नया जन्म दिया" आयरलैंड ,रूस, मिस्र, तुर्की और चीन की जनता के स्वतंत्रता के संघर्ष से भारतीयों को प्रेरणा मिली अपने सिद्धांतों के लिए कष्ट सहन करने को एक संगठित देश सर्वाधिक शक्तिशाली देश से संघर्ष कर सकता है । इसी समय उपनिवेशवादी शोषण और युद्ध के विरुद्ध दुनिया के महान बुद्धिजीवियों ने भी अपनी क्षमता को विकसित करना प्रारंभ किया इनकी रचनाओं के द्वारा पूंजीवादी समाज व्यवस्था का शोषणकारी रूप जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया उस समय के क्रांतिकारी महान बुद्धिजीवी लेखक थे आनातोले फ़रांस, रोमारोला, हाइनरिखमान, थामसमान और लंदन । स्थानीय भाषाओं भारतीय बुद्धिजीवियों के द्वारा देशी भाषाओं में पत्र पत्रिकाएं राष्ट्रीय भावनाओं को जागृत करने और उसे राष्ट्रीय आंदोलन का स्वरूप प्रदान करने में वरदान साबित हुआ स्वदेशी आंदोलन में के रूप में देश में व्यापक रूप से बह रही राजनीतिक धारा के प्रति राष्ट्रीय आंदोलन की भावनाओं को उत्तेजित करती हुई "सरस्वती" की निम्नलिखित पंक्तियां प्रस्तुत हैं "अपना वोया आप ही खोवे इन अपना कपड़ा आप बनावे" स्वदेशी कि जब शुरुआत हुई तब इस आंदोलन में संयुक्त प्रांत के इलाहाबाद की माहिती की भूमिका रही। बंगाल के विभाजन के उपरांत बाल गंगाधर तिलक के आह्वान पर इलाहाबाद के नौजवानों ने तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की थी । उक्त समय इलाहाबाद विश्वविद्यालय के विद्यार्थी सुंदरलाल और मंजर अली सोख्ता, के द्वारा क्रांतिकारी घटनाओं में व्यापक समर्थन किया गया था इनके अलावा पुरुषोत्तम दास टंडन, गोविंद बल्लभ पंत, और कैलाश नाथ काटजू, बाबू शिवप्रसाद गुप्त और वेंकटेश नारायण तिवारी भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की अलख जगाने के लिय प्रयत्नशील थे । अंग्रेजी हुकूमत के द्वारा इन प्रचारकों को समाप्त करने का प्रयास अंग्रेजी हुक्मरानों के द्वारा किया गया बालगंगाधर तिलक एवं श्रीमती एनी बेसेंट के होम रूल आंदोलन से संपूर्ण देश में एक नई उमंग का प्रादुर्भाव हुआ श्रीमती एनी बेसेंट के द्वारा इलाहाबाद में पंडित मोतीलाल नेहरु की अध्यक्षता में विशाल जनसभा को अपने विचारों से परिचित कराया। बाल गंगाधर तिलक की प्रेरणा से होमरूल लीग का कार्यालय इलाहाबाद में स्थापित किया गया जिसके सचिव पंडित सुंदर लाल , मंजर अली सोख्ता , और पंडित जवाहर लाल नेहरु थे। होम रूल लीग की स्थापना आयरलैंड में आयरिश नेता के तत्वाधान में होमरूल लीग स्थापित की गई थी । जिसका उद्देश्य वैधानिक तथा अहिंसक उपायों से आयरलैंड के लिए स्वशासन प्राप्त करना चाहती थी । श्रीमती एनी बेसेंट मूलरूप से आयरलैंड की निवासी थी एवं भारत में थियोसोफिकल की संचालिका थी। बे भारतीय सभ्यता संस्कृति भारतीय परिवेश से बहुत अधिक प्रभावित थी भारतीय संस्कृति से विशेष लगाव के कारण आयरलैंड छोड़कर सदैव के लिए भारत में बस गई, तथा 1913

में जब श्रीमती एनी बेसेंट इंग्लैंड गई तो आयरलैंड की होम रूल लीग ने उनको सुझाव दिया कि भारत को स्वतंत्र कराने के लिए होम रूल आंदोलन प्रारंभ करें। श्रीमती एनी बेसेंट भारतीयों को उसी तरह का स्वराज दिलाना चाहती थी जैसा कि अंग्रेजो के द्वारा दूसरे उपनिवेश में था अर्थात भारत को अधिराज स्थिति दिलाने की इच्छुक थी। इस उद्देश्य से भारत वापसी पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में सम्मिलित हुई, और उदारवादियों एवं उग्रवादियों को एकता के सूत्र में पिरोकर होमरूल आंदोलन को जन्म दिया त हो रहीपने पुत्रों का रक्त और पुत्रियों के आंसुओं से सौदेबाजी नहीं कर रहा है । भारत राष्ट्र में न्याय अधिकार ब्रिटिश साम्राज्य से मांगता है भारत को युद्ध से पूर्व मांगता था, युद्ध के बीच मांग रहा है और युद्ध के बाद मांगेगा परंतु इस न्याय को एक पुरस्कार के रूप में नहीं बल्कि अधिकार के रूप में मांगता है इसके बारे में कोई गलत धारणा नहीं होनी चाहिए" होमरूल आंदोलन एक वैधानिक आंदोलन था इसका सर्व प्रमुख उद्देश्य भारत के लिए स्वशासन प्राप्त करना था। उस संबंध में श्रीमती एनी बेसेंट ने अपने पत्र "कॉमनव्हील" में लिखा था "राजनीतिक सुधारों से हमारा उद्देश्य ग्राम पंचायतों से लेकर जिला नगर पालिकाओं तथा विधानसभाओं तक राष्ट्रीय संसद के रूप में स्वशासन की स्थापना करना है। राष्ट्रीय संसद के अधिकार स्वशासित उपनिवेशों की धारा सभाओं के समान ही होंगे तो भारत का प्रतिनिधि भी उस संसद में पहुंचे" श्रीमती एनी बेसेंट ब्रिटिश साम्राज्य की विरोधी नहीं थी और ना ही आंदोलन का उद्देश्य अंग्रेजों को भारत से निकालना या उनके युद्ध प्रयत्नों में बाधा डालना था इसके विपरीत यह आंदोलन तो इस विचार पर आधारित था कि स्वशासित भारत साम्राज्य के लिए युद्ध में अधिक सहायक हो सकेगा इस प्रकार इसका उद्देश्य युद्ध में परोक्ष रूप से ब्रिटेन को सहायता देना था आंदोलन को उग्रधारा की ओर जाने से रोकना था भारतीय राजनीति पर क्रांतिकारियों और आतंकवादियों का अधिपत्य हो जाएगा इसलिए उन्होंने शांतिपूर्ण और वैधानिक आंदोलन चलाना श्रेयकर समझा युद्ध काल में भारतीय राजनीति शिथल पड़ गई थी और सक्रिय कार्यक्रम तथा प्रभावशाली नेतृत्व के आभाव में राष्ट्रीय आंदोलन की प्रगति अवरूध हो गयी थी। भारतीय जनता को सुप्तावस्था से जगाने के लिय इस प्रकार का आन्दोलन प्रारंभ किया गया "श्रीमती एनी बेसेंट का कहना था कि मैं तो एक भारतीय टम – टम हूँ जिसका कार्य सोते होते हुए भारतीयों को जगाना है ताकि वे उठे और अपनी मातृभूमि के लिए कुछ करें।"

होमरूल आंदोलन भारत के लिए स्वशासन की याचना नहीं वरन अधिकार पूर्ण मांग की अभिव्यक्ति था श्रीमती एनी बेसेंट का कथन था, कि होमरूल भारत का अधिकार है और राज भक्ति के पुरस्कार रूप में उसे प्राप्त करने की बात कहना मूर्खतापूर्ण है। भारत इसको युद्ध से पूर्व मांगता था, भारत से युद्ध के बीच मांग रहा है युद्ध के बाद मांगेगा परंतु इस न्याय को एक पुरस्कार के रूप में नहीं वरन अधिकार के रूप में मांगता है इस बारे में किसी की कोई गलत धारणा नहीं होनी चाहिए।

**सन्दर्भ**


1. सिंह डॉ रणविजय उदारवादी युग का आन्दोलन एवं जनपद जालोंन की भूमिका पेज .22
2. चन्द्र विपिन आधुनिक भारत का इतिहास पेज 198
3. मिश्रा जया रूभारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन और आनन्द पेज 68
4. डॉ मजुमदार आर. सी. हिस्ट्री ऑफ़ फ्रीडम मूवेमेंट इन इंडिया पेज 353
5. जैन डॉ पुखराज भारत में स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास (2004) पेज 68

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# औपनिवेशिक बांदा में सविनय अवज्ञा आंदोलन की आर्थिक पृष्ठभूमि

**दुर्गेश कुमार शुक्ला**
असिस्टेंट प्रोफेसर इतिहास विभाग
राजकीय डिग्री कॉलेज मुंस्यारी पिथौरागढ़
एवं शोध छात्र इतिहास विभाग
विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज कानपुर
छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर
**प्रोफेसर पुरुषोत्तम सिंह**
शोध पर्यवेक्षक
पूर्व प्रोफेसर इतिहास विभाग
विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज कानपुर
प्रोफेसर एवं प्राचार्य
महाराज बलवंत सिंह पीजी कॉलेज
गंगापुर वाराणसी

ऐतिहासिक तथा भौगोलिक रूप से बाँदा बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक इकाई का सदैव एक हिस्सा रहा है। बाँदा जनपद भौगोलिक रूप से यमुना नदी द्वारा निक्षेपित मैदान में विस्तारित है। जनपद के दक्षिणी भाग में विन्धायंचल श्रणी की पहाड़ियाँ पायी जाती हैं भूगर्भ शास्त्र की दृष्टिकोण से बाँदा में प्राचीनतम संरचनायें पायी जाती है जो ग्रेनाइट एवं नीस की चट्टानों से पहचानी जाती है। जनद की संरचना के निर्माण में नदियों के निपेक्ष का प्रमुख महत्व है यमुना तट पर स्थित बाँदा जनपद के राजापुर तथा बाँदा जनपद के दक्षिण में स्थित चित्रकूट क्रमशः 102.6 मी0 तथा 129.9 मीटर सागर तल से ऊँचाई पर सिथत है यह अन्तर नदी निक्षेपों के कारण उत्पन्न होता है। यमुना, केन, बागै, पयसनी, इत्यादि नदियाँ बाँदा जनपद में बरसाती नालों के साथ कटाव करती है, तथा इनका निक्षेप बाँदा के धरातल को विशिष्ट स्वरूप प्रदान करते है केन यमुना के बाद बाँदा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण नदी है जो मध्य प्रदेश के रायसीन जपद में बरखेड़ा नामक स्थान से उत्पन्न हुयी है। यह नदी सागर, छतरपुर आदि जिलों से प्रवाहित होती हुयी चिल्ला घाट पर यमुना से मिलती है। उरमिल तथा चन्द्रावल इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ है। केन नदी ने बाँदा जनपद के अधिवास को सर्वाधिक प्रवाहित किया है इस नदी के व्यापक प्रभाव के कारण नदी तट पर अनेक नगरों का जन्म ऐतिहासिक कालक्रम में हुआ बाँदा जनपद में रनगढ़, सिहुड़ा, भूरागढ़, जसपुरा, के दुर्ग एवं गढ़ियाँ

का निर्माण केन नदी तट पर हुआ। बाँदा नगर के विकास में केन नदी के जल प्रवाह में सतत् योगदान दिया। हिन्दू जनसंख्या में ब्राम्हण 15.5% या 92397 थे। ब्राम्हणों का वर्चस्व चित्रकूट के पवित्र तीर्थ के आस पास था। बांदा पैलानी तथा बदौसा में इनकी जनसंख्या अधिक थी तथा ये विभिन्न स्थानों पर भूमि स्वामी थे। ब्राम्हणों में जुझौतियों तथा कान्यकुब्ज ब्राम्हणों की संख्या लगभग बराबर थी। राजपूत या ठाकुर जनसंख्या में लगभग 8.3 % का योगदान करते थे। भूमि अधिकारों के संदर्भ में राजपूत सशक्त थे। बाँदा में संख्या के हिसाब से बैस राजपूत सर्वाधिक थे बैस राजपूत रायबरैली की त्रिलोकचन्दी शाखा से सम्बन्धित थे। संख्या की दृष्टि से दिखित राजपूत दूसरे स्थान पर थे जो कि परम्परानुसार बैस राजपूतों से उच्च स्थान पर आते थे। दिखित राजपूतों की अधिकांश जनसंख्या पैलानी, सिमौनी, बेंदा, जौहरपुर तथा जसपुरा क्षेत्र में निवास करती थी। दिखित राजपूतों का मूलस्थान अवध में 'कोट झलोखर' था। औरंगजेब के शासनकाल में दिखित राजपूतों के नेता राव रामकिशन ने मनसबदारी में स्थान प्राप्त किया था। दिखित राजपूतों ने 1857 के विद्रोह में सक्रिय भूमिका निभाई थी। वैश्य तथा दिखित राजपूतों ने दिखित राजपूतों के अतिरिक्त पवॉर, जनवार, रघुवंशी, मौहर, बागड़ी, गौर, गौतम, बाँदा के प्रमुख राजपूत जातियां थी इनके अतिरिक्त बहुत कम संख्या में चन्देल, बुन्देला, चौहान, बिसेन तथा कछवाह भी बाँदा जनपद में थे। बाँदा जनपद में अहीर कुल हिन्दू जनसंख्या का 9.9 % थे। कैडेल के सेटेलमेन्ट के अनुसार बाँदा में 5 %भूमि इस जाति के पास थी। कोरी जनसंख्या में अहीरों के पश्चात थे कुर्मी यद्यपि कुल जनसंख्या का 4% थे तथापि 10% जमीनों पर इस जाति का अधिकार था। व्यापारी वर्ग बाँदा नगर में केन्द्रित था। बाँदा के नगर सेठ के रूप में उदयकर्ण का नाम प्राप्त होता है। व्यापारियों में अग्रवाल, अग्रहरि, केसरवानी, प्रमुख थे। बबेरू के व्यापारिक क्षेत्र में रस्तोगी व्यापारी प्रमुख थे। बाँदा नगर में कायस्थ पर्याप्त संख्या में थे। जिसमें जदोराम कायस्थ का परिवार कानूनगो परिवार के नाम से जाना जाता था। कायस्थ प्रायः तहसील के कर्मचारियों के रूप में कार्य करते थे। अन्य हिन्दू जातियों में कहार, कुम्हार, भरभूंजा, बढ़ई, लोहार, नाई, इत्यादि शामिल थे। उपरोक्त के अतिरिक्त कलार, खटिक, कोल, गोंड़ भी पर्याप्त संख्या में थे। मुस्लिम जनसंख्या बाँदा में पर्याप्त मात्रा में थी यद्यपि मुस्लिम जनसंख्या का केन्द्रीकरण बाँदा नगर में अधिक था तथापि धर्मान्तरित मुस्लिम गोरवां, गौरीखाड़पुर, अदरी, सादीमदनपुर, हरदौली इत्यादि प्रमुख गांव में निवास करते थे। बाँदा में कुल मुस्लिम जनसंख्या का 98. 5%सुन्नी मुसलमान थे तथा 1.5%शिया थे।12 मुस्लिमों में शेख, सैयद, राजपूत, पठान, तथा मुगल सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे। शेख कुल मुस्लिम जनसंख्या का 46.4%थे। शेख जनसंख्या का अधिकांश हिस्सा बाँदा तहसील में केन्द्रित था। शेख कुरैशी तथा सिद्दीकी उपशाखाओं में विभक्त थी। पठान शेख जनसंख्या के बाद दूसरे स्थान पर थे तथा इनका भी केन्द्रीयकरण बाँदा तहसील में था। सैयद कुल मुस्लिम जनसंख्या का 7. 4 %थे। यमुना किनारे औगासी में केन्द्रित थे। अन्य मुस्लिमों में बेहना, जुलाहा, कस्साब, नाई, दर्जी, छीपी, चुरिहार, धोबी इत्यादि प्रमुख थे तथा इन जातियों के अतिरिक्त राजपूत मुस्लिम जो कि धर्मान्तरित मुस्लिम थे, पर्याप्त संख्या में मौजूद थे।बाँदा जनपद में व्यापारी वर्ग भी महत्वपूर्ण था। बाँदा में नवाबों ने सामाजिक समरसता की ऐसी गंगा बहायी जो आज भी अहर्निश रूप में विद्यमान है। बाँदा में वर्तमान पीड़ी नवाब शासन से स्वाभिमान तथा स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ती रहेगी। नौरोजी प्रथम आर्थिक विचारक थे जिन्होने आधुनिक भारत के लिए आर्थिक विचार का ढाँचा

प्रदान किया चूँकि उन्होने धन की भौतिकवादी धारणा और राष्ट्रीय आय के चलन पर बल दिया इसलिए हम कह सकते हैं कि प्रमुखतः प्रकृतिवादी सम्प्रदाय द्वारा प्रभावित थे। वह प्रथम भारतीय थे जिन्होने प्रति व्यक्ति आय और राष्ट्रीय आय गणना की। उनका विश्वास था कि आर्थिक धारणाएं नैतिक सामाजिक और राजनैतिक कारकों से संबंधित है उनके मुख्य योगदान आगमन विधि प्रमुखतया है। उनका मुख्य योगदान निष्कासन सिद्धांत था। उन्होने वास्तविक अर्थ में भारतीय अर्थव्यवस्था की तस्वीर प्रदान की। दादा भाई नौरोजी के विचारों एवं पत्रों का संकलन भारत सरकार के सूचना विभाग में 1970 में प्रकाशित किया, परन्तु उनके उदाहरण प्रमुखता बंगाल से लिये गये तथा बाँदा जनपद का कोई ऑकडा इनकी पुस्तक में नहीं मिलता है। आर.सी. दत्त को आधुनिक भारत के निर्माताओं में से एक माना जा सकता है। उन्होने भारत में ब्रिटिश शासन के प्रभाव और भारत की गरीबी के कारणों को प्रदर्शित करने के लिए इतिहास, राजनीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र को एक साथ लिया। वह केवल कारणों के विश्लेषण तक ही सीमित नही रहे वरन् उपाय भी सुझाए। वह प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होने आर्थिक इतिहास के अत्यधिक महत्व को लिखा। उनके सफल प्रशासक के रूप में अनुभव ने व्यावहारिक आर्थिक महत्व के प्रश्नों पर उचित निर्णय देने में सहायता की। दत्त भारत के आर्थिक और राजनीतिक इतिहास में अपने विचारों के लिए प्रमुख स्थान रखता है। इनकी दो महत्वपूर्ण पुस्तको में प्रमुख इकोनॉनिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया में भारतीय उपनिवेशवाद का वर्णन है जब दूसरी पुस्त में भारत की निर्धनता जनसंख्या एवं अकालों का कारण एवं उपायों का वर्णन किया है जिसमें अधिकांश उदाहरण बंगाल से लिये गये है बुन्देखण्ड का ऑकडा इनकी पुस्तकों में नहीं मिलता है। गोखले ने राजकोषीय प्रशासन के अध्ययन में अद्भुत योगदान दिया। उनके बजट, राजकोषीय नीति, प्रान्तीय स्वायत्तत और सैनिक व्यय पर विचार महत्वपूर्ण है। उन्होने सरकारी नीतियों के सुपरिचित लोक विचार के महत्व को स्वीकार किया। गोखले का महत्व क्रमबद्ध लोक व्यय की आवश्यकता पर बल में निहित है। उनकी आलोचनाओं ने देश की भावी वित्तीय और आर्थिक नीतियों को आकार देने में सहायता की। गोखले के अनुसार सरकारी नीतियों में लोक व्यय में ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता है जिसमें अधिकांश उदाहरण मराठवाडा से लिये गये है बुन्देखण्ड का ऑकडा इनकी पुस्तकों में नहीं मिलता है। भारतीय विचारकों पर गाँधीवादी आर्थिक विचारों का प्रभाव मूलभूत नही है। गाँधी जी को सार्वलौकिक रूप से महान राजनीतिक नेता और राष्ट्र के पिता के रूप में स्वीकार किया जाता है। किन्तु उनके अनेक तात्कालिक अनुयायी उनके आर्थिक विचारों को उसी रूप में नही देखते। सम्भवतः गाँधीवादी विचारों को व्यवहार में लाने का संगठित प्रयास अनेक संगठनों के कारण हुआ जो स्वयं गाँधी जी द्वारा आरम्भ किए गएः All India Charkha Sangh, The Go-Seva Sangh, The all-India Spinners Association and All-India Village Industries Association। हाल के वर्षो में विनोबा भावे और अनेक समाजवादी नेताओं जैसे जयप्रकाश नारायण ने भूदान–यज्ञ आन्दोलन में सक्रिय रूप से रूचि ली, जिसका उद्देश्य गाँधीवादी मार्ग पर भूमि का पुनर्वितरण था। सरकारी नीति पर गाँधी जी के आर्थिक विचारों का प्रभाव बहुत ही कम है। योजना आयोग नैतिक मूल्यों, अहिंसा और विकेन्द्रीकरण को भारत की राष्ट्रीय आर्थिक नीति की वांछनीय विशेषताओं के रूप में बताता है। किन्तु पंचवर्षीय योजनाओं में गाँधीवादी दृष्टिकोण मुश्किल से मिलता है। वास्तव में, विश्वासपात्र गाँधीवादी जैसे कुमारप्पा और सुन्दरलाल, समुदाय विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत विदेशी सहायता से गाँवों के पुनर्निमाण की सरकारी नीति के घोर आलोचक है। सरकार द्वारा

हाथकरघा और खादी उद्योग का पुनर्जीवन का हाल का प्रयास भी आर्थिक नीति में गाँधीवादी सिद्धान्त के प्रयोग की प्रकृति का नही है। वे वास्तव में बेरोजगारी से लडने के लिए राजनीतिक आवश्यकता से निर्देशित थे जो भारतीय परिदृश्य पर अस्पष्ट रूप से हावी है। जहाँ तक परम्परावादी अर्थशास्त्रियों का सम्बन्ध है, वे गाँधी जी के दों विचारों को स्वीकार करते है : (1) हमारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कुटीर उद्योगों का महत्व, और (2) आर्थिक संरचना के विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता। अधिकांश अर्थशास्त्री गाँधी जी के विचार से सहमत है कि ग्रामीण सुधार और कृषि की पुनःस्थापना इस देश में किसी भी आर्थिक सुधार के लिए अवश्य ही प्रथम कदम है। 1860 में बैंक आफ कलकत्ता को ही ''सेन्ट्रल बैंक आफ इण्डिया'' मानने की बात कही गई परन्तु बम्बई व मद्रास के बैंकों द्वारा इसका बहुत विरोध किया गया। 1870 ई. में मैं एक नवीन योजना के अनुसार यह कहा गया कि तीनों प्रेसीडेन्सी बैकों को मिलाकर एक सेन्ट्रल बैंक बने। अभी बात चल ही रही थी कि 1876 के चार्टर के द्वारा इन बैंकों की व्यक्तियाँ कम कर दी गई। पहली बार सरकार के रिकार्ड व गजट में 1900 ई. में सेन्ट्रल बैंक का नाम दिखता है। इसके बाद 1929 में एक जॉच बैठाई गई, 1934 में संसद में बहस शुरू हुई और 1 अप्रैल 1935 को एक्ट पारित करके रिजर्व बैंक आफ इण्डिया की स्थापना की गई। औपनिवेशिक बाँदा मे इलाहाबाद बैंक ने प्रथम शाखा सन् 1865 में खोला था इसके बाद सेन्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया ने अपनी पहली शाखा सन् 1911 में खोला था तथा इसके बाद सहकारिता की बैंक बाँदा डिस्ट्रिक्ट को–आपरेटिव बैंक लिमिटेड की स्थापना की गई। जिसकी प्रथम शाखा सन् 1912 में खुली औपनिवेशिक काल में बाँदा की बैंकिंग प्रणाली सराफा द्वारा नियंत्रित होती थी। सन् 1857 में बाँदा नगर में सेठ उदयकर्ण मेहता प्रमुख सर्राफ एवं बैकर्स थे सेठ उदयकर्ण मेहता हुण्डी (बैंकर्स चेक) का भी कार्य करता था। जिसकी बड़े शहरो में भी शाखाएं थी यह मुद्रा की शुद्धता की जाँच करना एवं गिरवी रखना या गाँठ रखने का भी कार्य करते थे। औपनिवेशिक काल में बाँदा में ज्याद व्यापार भूतल परिवहन से होता रहा है। कुछ व्यापार प्रमुख उसे यमुना व केन और बेतना नदी से होता रहा है। उस समय भी नदी के माध्यम से उद्योग मछली पालन तथा नदियों से निकली बालू आदि थे। नदी परिवहन के रूप में प्रयोग किया जाता था इनमें प्रमुख स्थान डाक यार्ड थे जो निम्न चिल्ला, बेंदा, औगासी, मरका, किसनपुर घाट, राजापुर, मऊ प्रमुख घाट थे। इन स्थानों से इलाहाबाद, बनारस, पटना, कलकत्ता तक नावों के माध्यम से व्यापार होता था। ब्रिटिश शासन काल में बाँदा से ज्यादा तर नदी के किनारे ही कोठी या मुख्यालय बनाया जाता था तथा इन स्थानों पर डाक बंगले भी होते थे। अंग्रेज अधिकारी नदी के रास्ते को ज्यादा सुरक्षित मानते थे। अधिकारी वर्ग के आने जाने का मार्ग एवं खजाना को एक स्थान से दूसरे स्थानों तक लाने ले जाने के लिये नदी के रास्तों का प्रयोग किया जाता था। भारतीय हस्तशिल्प कला की विनाश गतिविधियों को रोकने हेतु तथा इन उद्योगों को पुनः स्थापित करने के लिये कई प्रयास किये गये थे। सर्वप्रथम गाँधी जी और ''आल इंडिया स्पिनर्स एसोसिएशन'' जैसे संगठन ने इस ओर सबसे महत्वपूर्ण कदम उठाया, जिसके फलस्वरूप हस्तकला उद्योग के विनाश को काफी हद तक रोका जा सकता था। गाँधी जी का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण हथकरघा उद्योग को फिर से स्थापित करना था जिसके लिए उन्होंने ''आल इंडिया विलेज इन्डस्ट्रीज एसोसिएशन'' की भी स्थापना की और पूरे देश में खादी उद्योग को बढ़ावा देने पर जोर दिया।''[1] किन्तु गाँधी जी के इस खादी प्रचार का ब्रिटिश उद्योगपतियों ने पूरा लाभ उठाया

और जब उनके मशीन से निर्मित खादी कपड़े मण्डियों में आये तो असली खादी कपड़ों को बहुत ही नुकसान पहुँचा। अतः गाँधी जी हथकरघे उद्योग के प्रचार का ब्रिटिश उद्योग पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा था। क्योंकि ''भारतीय खादी कपड़ा, विदेशी खादी कपड़े की अपेक्षा न तो छूने में ही मुलायम था जितना कि विदेशी कपड़ा और न ही सस्ता जितना कि विदेशी कपड़ा था।[2] अतः भारत में पूँजीवाद और मशीनीकरण के कारण भारतीय कपड़ा उद्योग उनके साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सके। किन्तु फिर भी ''भारत में कताई व बुनाई के देशी उद्योग के कारण जो लोग बेरोजगार थे, उन्हें हाथ से सूत बटने तथा हथकरघे पर कपड़ा बुन लेने से कुछ राहत अवश्य मिली थी, चाहे वह कुछ समय के लिये ही थी।''[3] भारत में मशीन से बनी वस्तुओं के कारण भारत के हस्तशिल्पियों का पतन बहुत तेजी से आरम्भ हो गया था। ''भारतीय हस्तशिल्पियों का विनाश वैसे ही हुआ था जैसे यूरोप में कथकरघा उद्योगों को क्षति पहुची थी। यद्यपि इंग्लैण्ड के हस्तशिल्पियों को, जोकि इंग्लैण्ड से 6 हजार मील की दूरी पर रह रहे थे, उनको इस औद्योगीकरण को सहना पड़ रहा था। क्योंकि 1850–60 के मध्य भारत में कारखानों का नामोनिशान ही नहीं था।''[4] अतः ब्रिटिश शासन के राजनैतिक दुष्प्रभाव एवं मशीन के द्वारा निर्मित सस्ते सामानों के कारण भारतीय हस्तशिल्प कला का पतन हो गया। कुछ योग्य कारीगर नये उद्योगों में मजदूर का कार्य करने लगे। लेकिन अधिक संख्या में लोग खेती करने पर मजबूर हो गये। ''भारत में सूती कपड़ों के अतिरिक्त रेश्मी, ऊनी, लोहे, काच तथा बर्तनों की स्थिति भी कुछ इसी तरह की थी। भारत में जैसे–जैसे मशीनी प्रयोग में वृद्धि होती गयी, वैसे–वैसे गाँवों के बढ़ाई, लोहार व कुम्हार की स्थिति भी दयनीय होती गयी।''[5] मशीनों के अधिकाधिक उपयोग के कारण कुछ बेरोजगार बढ़ई फर्नीचर का काम छोड़कर ब्रिटिश उद्योगों में कार्य करने लगे, लेकिन फिर भी अधिक संख्या में लोग बेरोजगार थे। लोहारों को भी भारत में नये यंत्रों के आ जाने के कारण काफी नुकसान सहना पड़ा था, उनके लोहे के हल व गन्ने

---

[1]. देसाई, ए0आर0 : भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ सं0 – 75
[2]. गांधी, एम0के0 : हरिजन, 19 नवम्बर, 1938
[3]. देसाई, ए0आर0 : भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ सं0 – 78
[4]. सरकार, सुमित : आधुनिक भारत (1885–1947) पृष्ठ सं0 – 48
[5]. दत्त, आर0पी0 : आज का भारत, पृष्ठ सं0 – 143

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

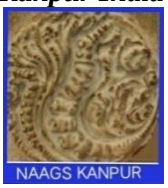


***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# कौशाम्बी में उत्खनन साक्ष्य

**संजू सिंह**
शोध छात्रा इतिहास विभाग
विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज कानपुर
छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर
**प्रोफेसर पुरुषोत्तम सिंह**
शोध पर्यवेक्षक
प्रोफेसर एवं प्राचार्य
महाराज बलवंत सिंह पीजी कॉलेज गंगापुर वाराणसी
एवं पूर्व प्रोफेसर इतिहास विभाग
विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज कानपुर

हड़प्पा संस्कृति जो अपने मूल केंद्रों में स्थिर हो गई थी, का कायाकल्प हो गया बाद के चरण में बर्तनों पर कुछ छितरी हुई डिजाइनों की शुरूआत अधिक महत्वपूर्ण है रूपर से पांच मील दक्षिण में बारा में सबसे प्रारंभिक काल है सिंधु गोबलेट और टेराकोटा केक की पूरी कमी की विशेषता है और पर्चियों और चित्रों में संगत विविधता निम्न स्तर तक अज्ञात है रूपर, साथ ही क्षैतिज या लहरदार होने वाले नए मिट्टी के बर्तनों की उपस्थिति से भी छितरी हुई रेखाएँ। हालांकि हड़प्पा और में अलिखित मोहनजोदड़ो, बीकानेर में हड़प्पा स्थलों पर इसका बहुतायत से प्रतिनिधित्व किया जाता है जो हड़प्पा संस्कृति की पूर्वी किस्म का प्रतिनिधित्व कर सकता है और हो सकता है सच्चे हड़प्पा की तुलना में बाद की अवधि में फला–फूला। जैसा कि घोषो टिप्पणी करते हैं, सारस–वटी घाटी वास्तव में भौगोलिक दृष्टि से ही नहीं, अनेक नदियों का संगम थी। लेकिन सांस्कृतिक रूप से भी। यह उस दिशा का लक्षण है जिस दिशा में हड़प्पा संस्कृति को संशोधित किया जा रहा था। काठियावाड़ और पश्चिमी भारत में, पुरातत्व ने और भी अधिक खुलासा किया है

कौशांबी की प्रारंभिक सुरक्षा हड़प्पा के गढ़ की याद दिलाती है मिट्टी से लदी प्राचीर तथाकथित में पकी हुई ईंटों के साथ बाहरी रूप से पुनरीक्षित की गई हेडर और स्ट्रेचर के वैकल्पिक पाठ्यक्रमों में अंग्रेजी बांड, वापस में पस्त $20^0$ से $40^\circ$ के कोण, अंतराल पर बुर्ज, आयताकार मीनारें और भूमिगत घुमावदार मेहराब पर निर्मित मार्ग, कौशाम्बिक में वास्तुकला की महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं गंगा की घाटी में शहरी जीवन अब तक अज्ञात

था। बचाव से पता चलता है कि पहली सहस्राब्दी ईसा पूर्व की पहली शताब्दियों में कौशाम्बी एक शहर के रूप में विकसित हुआ हड़प्पा पर निर्मित शानदार गढ़ों द्वारा इसकी सुरक्षा के लिए पूरी तरह से सुसज्जित नमूना है । जाहिर है, यह पीजी वेयर कल्चर की उपलब्धि नहीं थी, जो पहले की बस्तियों में शहरी जीवन की अवधारणा के प्रति एक अलग घृणा को दर्शाता है लाल गेरू–धुले हुए बर्तन से जुड़ा हुआ है। यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि पी. जी. मूल निर्माण के बाद दो संरचनात्मक काल कौशांबी में वेयर होता है। आलमगीरपुरा में जिला मेरठ, उत्तर प्रदेश में हड़प्पा संस्कृति के प्रवेश के निश्चित प्रमाण स्थापित किए है। प्रारंभिक रक्षा से जुड़े मिट्टी के बर्तनों में कई लिंक मिलते हैं नवदाटोली और रंगपुर और काठियावाड़ के अन्य स्थलों के साथ कौशाम्बी में, नवदाटोली के समान लगभग 30 प्रकार की घटना, लगभग 10 से रंगपुर के और सोमनाथ, मेहगाँव और के समान संख्या में अन्य पश्चिमी भारतीय स्थल, सांस्कृतिक संपर्कों का एक प्रभावशाली रिकॉर्ड है। नवदाटोली मिट्टी के बर्तन ताम्रपाषाणकालीन हैं और इन्हें किसके साथ खोजा गया है? कुछ प्रकार के चित्रित मिट्टी के बर्तन स्पष्ट रूप से एक ईरानी संबंध की ओर इशारा करते हैं। 'रंगपुर और अन्य पश्चिमी भारतीय स्थलों पर मिट्टी के बर्तनों के प्रकार, उनके समान कौशाम्बी, हड़प्पा के अंत में या हड़प्पा के तुरंत बाद के संदर्भ में होते हैं और इन स्थलों में उनके हड़प्पा मूल के निस्संदेह हैं। अत निम्नलिखित निष्कर्षों पर के प्रकाश में पहुंचा जा सकता है

(1) कौशाम्बी का नवदाटोली से घनिष्ठ संबंध था [1] जिसके लिए रेडियो कार्बन डेटिंग लगभग 1500 से 1100 BC तक की तारीख प्रस्तुत करती है। इस अवधि में यह साइट ईरान के साथ निकट संपर्क दिखाती है, एक ईरानी की ओर इशारा करती है

(2) रक्षा के अलावा, जो हड़प्पा मॉडल पर बनाए गए थे, कौशांबी के कई प्रकार के मृदभांड मिट्टी के बर्तनों के समान हैं

(3) कौशाम्बी में पी.जी. वेयर क्रो– में एक देर के चरण को दर्शाता है गढ़ पहले दो संरचनात्मक अवधियों का निर्माण किया गया था

भाषाशास्त्र के आधार पर होर्नले इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि भारत के दो इंडो–आर्यन आक्रमण, एक दूसरे से पहले हुये उनका विचार था कि इतिहास का सुदूर काल उत्तर भारत भाषा के दो रूपों में विभाजित था उनके द्वारा क्रमशः सौरसेनी और अलगाधि भाषा के रूप में नामित किया गया। बाद में, ये दोनों चार प्रमुख समूहों में विभाजित हो गए, उत्तरी, पश्चिमी,दक्षिणी और पूर्वी, प्रत्येक मूल रूप से एक ही भाषा का गठन करते हैं। दो प्रमुख भाषाओं ने देश को उनके बीच तिरछे विभाजित कर दिया, जो एक है– उत्तर–पश्चिमी, दूसरा दक्षिण–पूर्वी आधा। मगधी भाषा विकास से पहले था मगधी की पृथक विशेषताएँ थीं पश्चिम में भी मौजूद है, सौरी का क्षेत्र असेनी, में इसके अस्तित्व की ओर इशारा करते हुए होर्नले ने भी विचार व्यक्त किया कि मगधी, पश्तू और काफिरी कभी घनिष्ठ संबंध में थे।[2] दूसरी ओर, सौरसेनी का मुख्यालय पश्चिमी में था राजपुताना जहां से यह उत्तर–पूर्व और पूर्व में फैला था, मगधी को पीछे हटने के लिए धक्का दे रहा था दक्षिण और पूर्व की ओर अधिक से अधिक इसकी पूर्व उपस्थिति के निशान हैं। भारत में आर्य जाति के लोगों का प्रवास अलग–अलग स्थानों पर हुआ

[1] सांकलिया, सुब्बा राव और देव– महेश्वर और नवदाटोली में उत्खनन, पीपी 241, 247।

[2] ग्रियर्सन, एल.एस.आई., वॉल्यूम। आई., पं. आई।, पी। 116 एफएफ;

ग्रियर्सन ने इस सिद्धांत को पूरी तरह से स्वीकार नहीं किया था इंडो–आर्यन आव्रजन एक क्रमिक प्रक्रिया थी जो एक से अधिक तक फैली हुई थी

अधिवास पुरातत्व को सही अर्थों में सर्वप्रथम जी0आर0 विली ने प्रस्तुत किया। अध्ययन के एक नये क्षेत्र जिसका मुख्य बिन्दु अधिवास प्रक्रिया का पुरातात्विक अध्ययन है जिसे अधिवास पुरातत्व के नाम से पुकारा जा सकता हे। विली ने अधिवास पुरातत्व और अधिवास प्रक्रिया की विचारधारा[3] को पुरातात्विक आंकड़ों के विश्लेषण के लिए प्रयुक्त किया, लेकिन उन्होने यह भी कहा कि पुरातत्व के लिए ''अधिवास प्रक्रिया कोई पहुँच मार्ग नहीं है''। अधिवासीय आंकड़े पुरातात्विक अध्ययन के आयाम को विस्तृत करते है ं ओर इस प्रकार मकानों के समूहों का विश्लेषण महत्वपूर्ण है, पुरातात्वविदों का प्राचीन मत, पुरातात्विक आंकड़ों के विश्लेषण के संरचनात्मक और सामाजिक संस्कृति के प्रारुप के प्रयोग का पक्षधर नहीं है, जबकि नया सम्प्रदाय स्थिति, आकार, स्थापन, क्रिया–कलाप और अधिवास के भोतिक संस्कृति जैसे अवशेषो पर अधिक बल देता है तथा उनके परिवेश, आर्थिक तथा तकनीकी निर्धारकों के अन्तर्गत अंतःक्रिया पर बल देता है। प्राचीन और नवीन मतों का सामंजस्य चॉइल्ड द्वारा प्रस्तुत किया गया, जब उन्होंने प्रागैतिहासिक अवशेषों का सामाजिक सीमाओं मे ं विश्लेषण किया। इस प्रकार उन्होंने अधिवास, गाँव इत्यादि के विश्लेषण में समूह को एक मानदण्ड के रूप में प्रस्तुत किया। लेकिन भोगोलिक आधार को सामाजिक अधिरचना से पूरी तरह अलग नहीं किया जा सकता। पुरास्थल अथवा अधिवास की इकाइयों और सामजिक इकाई तथा समुदाय के अन्तर्समूहों के बीच अन्तर्सम्बन्ध महत्वपूर्ण तथ्य हैं। पुरातात्विक अध्ययन ने इन अंतःक्रियाशील तथ्यों के परम्पराओं का प्रक्षेपण।[4] पुरातात्विक निष्कर्षों का एक महत्वपूर्ण स्रोत अधिवास प्रक्रिया है। इस प्रकार किसी प्राचीन सभ्यता के सन्दर्भ में यदि यह पता है कि कैसे प्राचीन लोगों ने अपनी जमीन का बँटवारा किया और कैसे यह बंटवारा मनुष्य और प्रकृति तथा मनुष्य और मनुष्य के सम्बन्ध को प्रतिबिम्बित करता है, तो ऐसे सन्दर्भ बिन्दु पर पहुँचा जा सकता है, जिससे प्राचीन समाज की वर्ग संरचना और सामाजिक आर्थिक अवयवों का विश्लेषण किया जा सकता है। पुरातात्विक अध्ययन के विभिन्न पक्षों के अर्न्तसम्बन्धों पर यहाँ विशेष ध्यान देना अधिक उपयुक्त हा ेगा। उदाहरणाथ एक तरह के व्यक्तिगत भवनो का सामुदायिक भवनों से सम्बन्ध का अध्ययन हमें ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि हम शिविर पुरवा, गाँव, नगर इत्यादि का अलगाव कर सकते हे और दूसरी तरफ उपकरण, मिट्टी के बर्तन, शवाधान प्रक्रियायें आदि के अध्ययन से किसी आबादी में ओर विभिन्न आबादियों के मध्य, जो एक ही समय सीमा में स्थित हैं या विभिन्न समयों से सम्बन्धित है ं उनके सामाजिक सम्बन्धो का निर्धारण करती है। मानव जीवन की प्रक्रिया में मानव अधिवास एक आवश्यक तत्व था? अब तक किये गये अध्ययनों से स ंकेत मिलता है कि सभी मानवीय क्रिया–कलाप एक निश्चित बिन्दु पर किसी क्षेत्र में एक निश्चित व्यवस्था के अनुरूप सम्पन्न होते है ं। हावले ने जीवन के तीन मूल तथ्यों को इसके कारण के रूप में स्वीकार किया है– व्यक्तियों के बीच आपसी निर्भरता, भूमि की विभिन्न विशेषताओं पर क्रियाकलापों की निर्भरता और क्षेत्र के खण्ड। गंगा के दोआब में स्थित कानपुर जनपद के आद्यैतिहासिक और प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग के अधिवास प्रक्रिया पर डॉ0 मक्खन लाल का कार्य विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि उन्होंने ट्रिगर द्वारा प्रतिपादित जोनल प्रक्रिया का

[3] होई नेल, गौडियन भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण, पी187

[4] आई.ए., 1954–55, पी। 1

अनुपालन किया है। भारत के कुछ स्थलों का उत्खनन अधिवास प्रक्रियाओं को ही ध्यान में रखकर किया गया और वहाँ से प्राप्त पुरासामग्रियों का अंकन और विश्लेषण समग्र रुप से अधिवास प्रक्रिया को समझने के लिए किया गया, जैसे इनामगाँव का अध्ययन। पुरातात्विक प्रक्रिया के आधार पर अधिवास–प्रक्रिया का अध्ययन नवीन पुरातत्व का एक अभिन्न अंग है, लेकिन भारतीय सन्दर्भ में यह विकास की श शवास्था में है। इसलिए विभिन्न संस्कृतियों मे ं अधिवास प्रकार के क्रमिक विकास को व्यवस्थित ने का प्रयास किया गया है। अधिवास पुरातत्व एक विषय के रुप में सिर्फ नवीन पुरातत्व में ही नहीं आया है, अपितु भूगोल, समाजशास्त्र ओर नृ–विज्ञान में भी इस विषय के महत्व को स्वीकार किया गया

वत्स महाजनपद की राजधानी कौशाम्बी प्राचीनकाल से ही अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह प्राचीन भारत के महत्वपूर्ण नगरों में से एक थी। वर्तमान में इलाहाबाद से 51 किमी0 दक्षिण–पश्चिम में यमुना नदी के बाये तट पर स्थित है। इसके ध्वंसावशेष एक पहाड़ीनुमा मनोरम दृश्य प्रस्तुत करते हैं। यह तीन ओर पश्चिम, उत्तर तथा पूर्व की ओर से ऊँचे टीलों से घिरा हुआ है। सर्वप्रथम अलेक्जेण्डर कनिंघम ने इन ध्वंसावशेषो की पहचान प्राचीन कौशाम्बी नगरी से किया था।[5] अनेक साहित्यिक संदर्भों में वर्णित कौशाम्बी की महत्ता एक प्रसिद्धनगर की बरबस याद दिलाती है। विदेशी यात्रियों ने इस नगरी की अपने यात्रा वृतांत में बहुत प्रशंसा की है। कौशाम्बी के सा ंस्कृतिक महत्व को देखते हुए भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग ने सर्वप्रथम 1937–38 ई0 में यहाँ पर उत्खन्न कार्य कराया था। इसके बाद इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने प्रो0 जी0 आर0 शर्मा के निर्देशन में 1949–64 ई0 तक उत्खनन कार्य किया। यहाँ के निम्नलिखित उत्खनन कार्य किया गया– 1. अशोक स्तम्भ क्षेत्र 2. घोषिताराम विहार क्षेत्र 3. रक्षा प्राचीर क्षेत्र 4. राजप्रासाद क्षेत्र, इन उत्खननों के परिणाम स्वरूप महत्वपूर्ण साक्ष्य प्रकाश में आये हैं, जिनमें कौशाम्बी के महानता का स्पष्ट संकेत मिलते हे। अशोक स्तम्भ क्षेत्र प्राचीन टीले के मध्य में स्थित है यहाँ पर अशोक द्वारा निर्मित एकाश्मक पाषाण स्तभ है। इसी के आधार पर इस क्षेत्र का नामकरण अशोक स्तम्भ क्षेत्र किया गया है। इस पर शंखलिपि का अंकन प्राप्त होता है। स्तम्भ के समीपवर्ती क्षेत्र में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के उत्खनन के परिणाम स्वरूप आवासीय भवनों की रूपरेखा, सफाई व्यवस्था, जल निकास इत्यादि के महत्व पर प्रकाश पड़ता है। यहाँ पर आवासों का निर्माण सड़कों के अनुरूप हुआ था। घर की योजना आ ंगन पर आधारित थी, जिसके चारों ओर कमरे व बरामदे होते थे। जल निकास की व्यवस्था उन्नत अवस्था में मिलती है। यह वलयकूप के माध्यम से होता था। स्त्री–पुरुष तथा पशुओं की अधिक मात्रा में मृणमूर्तियाँ मिली हैं। आवासीय साक्ष्य के रूप में चूल्हों एवं झोपडियों का प्रमाण मिला है। झोपडियों के निर्माण हेतु नरकुल एवं मिट्टी का प्रयोग किया गया था। चूल्हों से जानवरों की अस्थियाँ, जल एवं अर्धजली अस्थि–अवशेष मिले हैं, जिससे संकेत मिलता है कि मांस उनके भोज्य पदार्थ का एक महत्वपूर्ण अंग था। अगियाबीर से जले हुए फर्श, चूल्हों एवं अन्न संग्रहण हेतु गर्त एवं स्तम्भगर्तों का साक्ष्य मिला है। फर्श का निर्माण मिट्टी को कूट कर किया गया था। ं जिस पर नरकुल की छाप है, जो झोपडि यो के निर्माण का संकेत करता है। यहाँ से कुछ गर्त चूल्हों एवं मिट्टी के चूल्हों के टुकडों का साक्ष्य मिला है। मल्हर के द्वितीय काल से एक अण्डाकार संरचना के साथ लौह धातुमल एवं लौह उपकरण मिला है। यह अण्डाकार आकृति लौह भट्टी के रूप

[5] आई.ए., पी. 31; संकलिया, सुब्बा राव और देव, सेशन सीट पी 249

में दिखायी पड़ती है, जिसकी दिशा पूर्व पश्चिम या उत्तर–दक्षिण है। इसके चारों ओर कुछ स्तम्भगर्त हैं, जो एक असंयमित प्रकार की संरचना का निर्माण करते हैं। यहाँ से कुछ जले हुए नरकुल छाप युक्त मिट्टी के ठीकरे मिले है[6] सरंचना झोपड़ी के अन्दर थी तथ उसकी दीवालों को बांस, नरकुल एवं मृदा द्वारा पलस्तर कर निर्मित किया गया था। इस अण्डाकार संरचना के आन्तरिक भाग से मृदभांड के ठीकरों, पत्थर के टूटे हुए टुकड़ों, जले हुए मृदभाण्डों के टुकडों के साथ कुछ लौह धातुमल मिले है ं। इसके अतिरिक्त मल्हर के द्वितीय काल के खन्ती से एक ओर बड़े गर्त का साक्ष्य मिला है, जो राख एवं अन्य अपशिष्ट पदार्थों से भरा हुआ था। खन्ती से एक 7 से0मी0 मोटा दृढ एवं मृदभांड के टुकड़ों को कूटकर निर्मित फर्श का साक्ष्य मिला है। इस फर्श के ऊपर एक जला हुआ वृत्ताकार अंश है, जो मृदभांड के टुकड़ों, लौह उपकरणों, कुछ स्तम्भगर्तों एवं जले हुए मिट्टी के टुकडों से युक्त था। खन्ती कुछ अन्य भट्ठियों का पमाण मिला है।

[6] आई.ए., 1957–58, पी। 18

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# चन्देल शिलालेखों एवं भूमिदान पत्रों में सामाजिक स्तर

**अनिल कुमार वर्मा**
शोध छात्र इतिहास विभाग
विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज कानपुर
छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर
**प्रोफेसर पुरुषोत्तम सिंह**
शोध पर्यवेक्षक
प्रोफेसर एवं प्राचार्य
महाराज बलवंत सिंह पीजी कॉलेज गंगापुर वाराणसी
एवं पूर्व प्रोफेसर इतिहास विभाग
विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज कानपुर

चन्देल राजाओं ने अपने आपको क्षत्रिय जाति का वास्तविक प्रतिनिधि दर्शाया है। चन्देल शिलालेखों के आधार पर इस वंश का उद्भव महर्षि अत्रि से माना जाता है। अनेक खजुराहो शिलालेखों में महर्षि अत्रि के पुत्र चन्द्र अथवा चन्द्रातेय को इस वंश का आदि पुरुष माना गया है। महर्षि अत्रि तथा उनके पुत्र चन्द्रातेय वैदिक युगीन थे : अतः चन्देलों से उनका सीधा संबंध असंभव सा प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त कुछ चन्देल लेखों में इस वंश के आदि पुरुष चन्द्र का वर्णन रजनीपति के रुप में किया गया है, महर्षि अत्रि के पुत्र के रुप में नहीं। धंगदेव के खजुराहो शिलालेखों में वर्णित चन्द्र की प्रशंसा रासो तथा जनश्रुतियों के चन्द्र के तुल्य ही है, किन्तु ये दोनों चन्द्र एक ही हैं; यह बात ऐतिहासिकता से परे है। यद्यपि परमाल रासो में उन्हें उच्च कुल का क्षत्रिय माना गया है। क्षत्रिय शासक सामाजिक मान्यता के लिए ब्राह्मणों पर निर्भर थे और उनका समर्थन तथा विश्वास जीतने के लिए धर्म–संबंधी कार्यों पर बल देते थे– जैसे धर्म के प्रति आस्था व्यक्त करना और किसी भी प्रकार से धर्म का उल्लंघन न करना (भीरुर धर्मापराधे)।[1] शास्त्रों के आदेशानुसार उन्होंने जातिगत सामाजिक संरचना को बनाये रखा। प्रशासन के मामलों में चन्देल शासक ब्राह्मण मंत्रियों तथा सलाहकारों की सहायता लेते रहे। ये राज्य के कार्यों तथा उपायों पर अपना व्यक्तिगत प्रभाव दर्शाते रहे। इन्होंने न केवल

[1] इपी0 इण्डि0 भाग 9,पृ0 126, श्लोक 20।

राज्य की सीमा का विस्तार करने तथा सुदृढ़ीकरण में भाग लिया अपितु समाज पर अपनी श्रेष्ठता को बनाये रखा।

चन्देलकालीन ग्रन्थ परमालरासो में क्षत्रियों के कुछ महत्वपूर्ण कर्तव्यों का उल्लेख मिलता है– स्वामी का हित करना (कल्याण करना) क्षत्रियों का सर्वोच्च गुण था। यदि आवश्यक हो तो एक क्षत्रिय योद्धा को स्वामी के हित में अपना जीवन बलिदान कर देना चाहिए। यह धारणा प्रचलित थी कि यदि कोई योद्धा राजा के लिए प्राणोत्सर्ग करता था तो उसे स्वर्ग में जगह मिलती थी और यदि कोई राजा के साथ विश्वासघात करता था या उसके पराजित होने का कारण बनता था तो वह नरकगामी होता था।[1] मरा सैनिक, घायल सैनिक या जिसने शरण ले रखी हो उसे अपात्र मान लिया जाता था, परमाल रासो में इसे निन्दनीय बताया गया है।[2] परमाल रासो के अतिरिक्त अन्य साक्ष्यों से भी उनके गुणों और कर्तव्यों के विषय में जानकारी मिलती है–चन्देल काल में क्षत्रिय, समाज और देश की रक्षा के लिए जाने जाते थे। ये युद्ध–प्रिय तथा देशभक्त होते थे। देश के लिए प्राणों का मोह न करना, युद्ध में लड़ते–लड़ते मर जाना इनकी जातिगत विशेषता थी। देश की रक्षा की जिम्मेदारी इनकी रहती थी इसलिए अन्य जातियाँ देश की रक्षा की ओर से उदासीन रहती थीं। क्षत्रिय धर्मयुद्ध करते थेः– जिसके अनुसार युद्ध से भागते हुए शत्रु का पीछा न करना, शरण में आये हुए को अभयदान देना, घायल शत्रु पर वार न करना, निहत्थे योद्धा पर हथियार न चलाना, शत्रु को धोखे से न मारना अपितु उसे युद्ध के लिए ललकारना आदि। ये युद्ध को शौर्य प्रदर्शन का मंच मानते थे, उसे किसी तरीके से जीतना इनके उद्देश्य में नहीं था। क्षत्रिय सेना जब किसी राज्य पर आक्रमण के लिए कूच करती थी, तब सामने वाले राज्य को युद्ध या समर्पण की चेतावनी दी जाती थी। एक दूत को उस राज्य में भेजा जाता था, रासो के अनुसार उससे शान्तिपूर्ण समर्पण की पेशकश की जाती थी। यदि शत्रु सहमत नहीं होता था तब आक्रमण करना ही एक विकल्प बनता था। यदि शत्रु हमले से पहले युद्ध की तैयारी के लिए समय मांगता था तब शत्रु से उतने दिन का युद्ध विराम हो जाता था। उदाहरणार्थ जब पृथ्वीराज की सेना महोबा तक आ गयी तब परमर्दिदेव ने उनसे आल्हा ऊदल को बुलाने के लिए दो महीने का समय मांगा जिस पर पृथ्वीराज ने आसानी से सहमति दे दी।[3] परमाल रासो में क्षत्राणियों की घोर निष्ठा का वर्णन मिलता है, जौहर कर लेती थीं। यज्ञ करना, दान देना क्षत्रियों का स्वाभाविक गुण होता था तथा धर्मशास्त्रों से भी इसकी पुष्टि होती है। चन्देल अभिलेखों में इसके द्वारा दिए गए दानों का विवरण उपलब्ध है। जैसे धंगदेव तथा परमर्दिदेव की काशी यात्रा में ब्राह्मणों के दान देने का उल्लेख है।[5]

इसके अलावा क्षत्रियों में अनेक दुर्गुण भी व्याप्त थे–जैसे मदिरापान, द्यूत क्रीड़ा, बहुविवाह, दूरदर्शिता का अभाव आदि। क्षत्रियों का आपद्धर्म वैश्यवृत्ति, कृषि एवं व्यापार था। मनुस्मृति में कहा गया है कि यदि वह व्यापार करे तो उसे तिल, नमक, पशु, मनुष्य, विष, मधु, मांस आदि का क्रय–विक्रय तथा व्यापार नहीं करना चाहिए। उसे

[2] परमाल रासो, पृ0 96, इपी0 इण्डि0 पृ0 79।

[3] श्रीवास्तव, के0सी0ः प्रा0 भा0 का इ0 तथा सं0, पृ0 152।

[5] मित्र, एस0 के0ः अर्ली रुलर्स आफ खजुराहो, पृ0 170।

सूदखोरी से भी विरत रहने की सलाह दी गई है। रांगा, सीसा, हड्डी, चमड़ा, लोहा आदि के व्यापार का भी वह अधिकारी नहीं था।[6]

अलबरुनी के यात्रा वृतान्त से पता चलता है कि शासक क्षत्रिय वर्ग ब्राह्मणों के समान तथा कृषक क्षत्रिय वैश्यों के समान समझे जाते थे। कृषक क्षत्रिय के धार्मिक कृत्य पुराणोवत मंत्रों द्वारा होते थे, वैदिक मंत्रों द्वारा नहीं। अलबरुनी का कथन है कि चोरी के अपराध में क्षत्रिय का दाहिना हाथ और बायाँ पैर बेकार कर दिया जाता था, परन्तु ब्राह्मणों की भाँति उसे अंधा नहीं किया जाता था। इसका कारण वैज्ञानिक था, ब्राण शिक्षा देने वाला, अध्ययन करने वाला होता था। अतः उसकी आँख का महत्व अधिक था जब क्षत्रिय युद्ध करने वाला होता था। अतः उसकी भुजा और पैर महत्वपूर्ण होता था।[7] इस काल में गोत्र से अधिक कुल का महत्व था। उत्तरी भारत में प्रतिहार राज्य का पतन होने के पश्चात् वहाँ चन्देल सहित कई राज्यों का स्वतंत्र अस्तित्व सामने आया। इन राज्यों में सामरिक श्रेष्ठता के अलावा कुल श्रेष्ठता की भी जंग थी। विभिन्न शिलालेखों में विभिन्न राजकुलों का उल्लेख मिलता है, यथा–चन्देलवंश कुमुदेन्दु विशाल कीतिः चन्द्रेलान्वयेन, चाह्मान नृपति प्रख्याति वंशश्चिरा, श्री राष्ट्रकूट वंशों, प्रतिहार वंशों, चौलिकिंकरंन्वियो, आदि के उल्लेख से इस तथ्य की पुष्टि होती है। इस काल के क्षत्रिय जो शस्त्रों द्वारा जीविकोपार्जन न कर सके, वैश्यों के समान व्यापार और खेती करना आरंभ कर दिए। प्राचीन काल की भाँति इस युग में भी सेना में केवल क्षत्रियों का एकाधिकार न रहा, उसमें अन्य जाति के लोग भी शामिल थे। क्षत्रियों को वेदाध्ययन तथा पौराणिक यज्ञों के अनुष्ठान की भी स्वतंत्रता थी। अलबरुनी ने लिखा है कि वे वेद पढ़ सकते थे परन्तु पढ़ा नहीं सकते थे। वे देश पर शासन करते थे और उसकी रक्षा करते थे। वे यज्ञोपवीत धारण करते थे और यज्ञ करते थे। वे वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करते थे, ब्राह्मणों के परामर्श से यथाशक्ति वर्णसंकर का रोकने का प्रयत्न भी करते थे। कुछ क्षत्रिय राजकुमारों से भूमि आदि उपहार में लेते थे।

खेती तथा व्यवसाय करना इसका प्रमुख धर्म था। ये धन एवं संपत्ति के स्वामी होते थे। महाभारत में इनका प्रधान कर्म अध्ययन, दान देना, यज्ञ करना तथा सही ढंग से धन अर्जित करना बताया गया है। गीता में उनका स्वाभाविक कर्म 'कृषि, गोरक्षा तथा वाणिज्य' बताया है (कृषि गौरक्ष्य वाणिज्य वैश्य कर्म स्वभावजम्)। वार्ता उनका प्रधान विषय था जिसमें कृषि, पशुपालन एवं वाणिज्य आते थे। अपने कर्म में व्यस्त रहने के कारण बाद के दिनों में वैश्यों ने अध्ययन करना छोड़ दिया। विद्याध्ययन से विरत हो जाने के कारण कुछ वैश्यों की गणना शूद्रों में होने लगी। ह्वेनसांग ने वैश्यों का मुख्य व्यवसाय व्यापार लिखा है। पूर्वमध्य काल के यात्री अलबरुनी (जो महमूद गजनवी की सेना के साथ भारत आया था) ने वैश्यों की गणना शूद्रों में की है। उसने लिखा है कि समाज में वैश्यों तथा शूद्रों की स्थिति प्रायः एक जैसी थी। कुछ वैश्यों ने अपने पास अतुल संपत्ति संचित कर लिया था इसलिए समाज में उन्हें अत्यंत प्रतिष्ठित स्थान दिया जाने लगा। कुछ वैश्य करोड़पति थे, उन्हें गहपति कहा जाता था। पराशर ने 'कुसीद वृत्ति' (शूद्र पर रुपये उधार देना) वैश्य का व्यवसाय बताया है। भविष्यत्कथा में एक वैश्य के संबंध में कहा गया है कि उसने नावों को खरीदने के लिए अपने पशु भी

[6] 'कुवलयमाला', पृ0 65, उद्वत शर्मा, दशरथ; राजस्थान, थ्रू दि एजेज, पृ0 435।
[7] उपमितिभवप्रपंचकथा, पृ0 554–59

बेच दिए। इसी ग्रंथ में लिखा है कि वैश्य दूर–दूर तक व्यापार करने जाते थे। माघ ने लिखा है कि राजा की सेना के साथ–साथ वैश्य आवश्यक वस्तुओं की बिक्री के लिए यात्रा करते थे। 'उपमितिभवप्रपंचकथा' में उन्हें देश में व्यापार करने के लिए जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था, उसका उल्लेख है। इस काल में कृषि कार्य शूद्रों के हाथों में चला गया क्योंकि चन्देल शासन क्षेत्र में अधिकतर वैश्यों ने जैन धर्म अंगीकार कर लिया था। अतः वे कृषि कार्य करके जीव हिंसा नहीं करना चाहते थे। अब इनका मुख्य कार्य व्यापार ही था। यद्यपि कुछ वैश्य खेती भी करते थे।

चन्देल शासन काल के समकालीन कुछ राज्यों से उपलब्ध अभिलेखों से पता चलता है कि बंगाल, बिहार, गुजरात और मालवा में वैश्य वर्ग के लोग अपनी समृद्धि के कारण समाज में प्रभावशाली हो गए थे और राजनीति में हस्तक्षेप करने लगे थे। बिहार प्रदेश से प्राप्त आठवीं सदी के दूधपाणि अभिलेख से ज्ञात होता है कि उदयमान नामक एक समृद्ध व्यापारी ने तीन गाँव के लोगों की तरफ से राजकीय कर दिया। इस गाँव के लोगों ने उदयमान को अपना राजा स्वीकार कर लिया। चालुक्य नरेशों के समय में भी व्यापारियों ने धन का प्रभाव दिखाया एवं चालुक्य राजा से संघर्ष किया। इस समय उदयमान, तेजपाल नामक धनी व्यापारी मंत्रिपद पर नियुक्त थे। जयसिंह सिद्धराज के राज्यकाल में कई धनी व्यापारियों को सामंत की पद्वी दी गई थी। इसी प्रकार बंगाल में राजा लक्ष्मणसेन के समय स्वर्ण के व्यापारी इतने समृद्ध थे कि वे अपने धन और वैभव के कारण राजा का विरोध करने लगे और राजा से युद्ध करने पर उतारु हो गये : दण्ड स्वरुप राजा ने उन्हें जाति से बहिष्कृत कर दिया। वास्तुशास्त्र के ग्रंथों में वैश्यों की समाज में स्थिति शूद्रों से अच्छी बतलाई गई है। लक्ष्मीधर (बारहवीं शताब्दी) के 'कृत्यकल्पतरु' में वैश्यों को वेद पढ़ने का अधिकार दिया है। वैश्यों को नमक, दूध, लाख, चमड़ा, मांस, नील, विष, अस्त्र–शस्त्र और मूर्तियां बेचने का अधिकार न था। इससे भी उनकी स्थिति शूद्रों से अच्छी प्रतीत होती है। किन्तु ब्राह्मणों ने इस काल में वैश्यों का भी भोजन करना छोड़ दिया क्योंकि वे शूद्रों के संपर्क में अधिक रहते थे। यद्यपि पूर्वमध्य काल में वैश्य निर्धन हो गया था किन्तु मध्य काल के करीब अर्थात् चन्देल काल में यह फिर से संपन्न हो गया। स्कन्दपुराण में उल्लेख मिलता है कि कलियुग में व्यापारियों का पतन होगा। इनमें कुछ तेली तथा अनाज फटकने वाले होंगे तथा अन्य राजपूतों पर आश्रित होकर वैश्य के लिए आपातकाल में क्षत्रिय तथा शूद्र की वृत्ति अपनाने का विधान मिलता है। बौद्धायन धर्मसूत्र में तो यहाँ तक उल्लेख है कि वैश्यों की लगभग वही स्थिति थी जोकि शूद्रों की बौद्धायन ने उसे 'गो, ब्राह्मण तथा वर्ण' की रक्षा के लिए शस्त्र ग्रहण करने का अधिकार दिया है। गौतम तथा मनु आपातकाल में वैश्य के लिए शूद्रवृत्ति अपनाने का विधान बताते हैं। इस स्थिति में उसे समाज के उच्च वर्णों की सेवा द्वारा अपनी जीविका चलानी होती थी किन्तु संकटकाल समाप्त होते ही वह शूद्रवृत्ति को छोड़कर अपनी स्वाभाविक वृत्ति में चला जाता था। सामाजिक व्यवस्था में वैश्यों को महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिला। खान–पान तथा अन्य सामाजिक व्यवहार में वैश्य शूद्रों के अधिक निकट दिखायी पड़ते हैं। यहाँ तक कि दोनों में परस्पर वैवाहिक संबंध भी होते थे और दोनों ही व्यक्तिगत

सेवा वृत्ति तथा कृषि का व्यवसाय करते थे। अलबरुनी के वृतान्त से भी इसकी पुष्टि होती है। वैश्यों के लिए वैदिक संस्कार सैद्धान्तिक रूप से अनुमन्य था, किन्तु अलबरुनी ने लिखा है कि वैश्यों और शूद्रों को वेदों के अध्ययन या श्रवण की अनुमति नहीं थी। अलबरुनी आगे लिखता है यदि यह सिद्ध हो जाए कि वैश्य और शूद्रों ने वेद–पाठ सुना है तो रुढ़िवादी ब्राह्मण उन्हें न्यायाधीश के पास ले जाते हैं और उनकी जीभ काट दी जाती है। इस बात की पुष्टि ''वेदान्त सूत्र के प्रथम अध्याय के तीसरे पद के 38वें सूत्र पर शंकराचार्य की टीका'' से भी होती है– भवति च वेदोच्चारणे जिह्वाच्छेदो धारणे भेद इति अर्थात् वेद मंत्रोच्चारण के अपराध में वैश्य अथवा शूद्र का जिह्वाच्छेद कर दिया जाता था। आर्थिक दृष्टि से उनकी स्थिति अच्छी थी। अलबरुनी ने वैश्यों और शूद्रों के सामाजिक स्तर में कोई भेद नहीं देखा था। उसके अनुसार नगर और गाँव में साथ–साथ रहते थे और कभी–कभी एक ही आवास मे रहते थे। इसका कारण यह भी हो सकता है कि कृषि कार्य करने से शूद्रों की आर्थिक स्थिति अच्छी हो गई हो। शूद्रों को कई वस्तुओं का व्यापार करने की अनुमति मिल गई थी।

इस युग में वैश्य वर्ण वैष्णव धर्म तथा जैन धर्म का अनुयायी था। पुराणों में अनेक धनी वैश्यों की कथाएं हैं जिन्होंने प्रभूत धनराशि दान देकर पुण्य लाभ कमाया। कृषि के अतिरिक्त वे व्यापार भी करते थे और अनेक व्यवसायिक संघ बना रखे थे। जिस प्रकार प्राचीन काल में वैश्यों ने बौद्ध धर्म के प्रचार में महत्वपूर्ण योगदान दिया उसी प्रकार चन्देल काल या पूर्व मध्य काल में वैष्णव तथा जैन धर्म में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। जेजाक्भुक्ति स्थित खजुराहो में बने जैन एवं वैष्णव मंदिर से इस बात की पुष्टि भी होती है। इसी प्रकार राजस्थान, कर्नाटक तथा गुजरात में जैन धर्म के प्रसार में वैश्यों की समृद्धि प्रमुख कारण है। यह हिन्दू वर्ण–व्यवस्था का चौथा एवं निम्न वर्ण था। इस काल में कृषि कार्य करने से शूद्रों की आर्थिक स्थिति में पर्याप्त उन्नति हो गई थी किन्तु उनकी सामाजिक स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं दिखाई देता। प्राचीन धर्म शास्त्रों (ऋग्वेद, विष्णु पुराण, गीता) के अनुसार ब्रह्म अथवा विराट् पुरुष के पैरों से उत्पन्न होने के कारण उसे समाज के सभी वर्णों का भार ढोना पड़ता था। उसका मुख्य कार्य अन्य तीनों वर्णों की सेवा करना था। उसे समाज में सबसे घृणित दृष्टि से देखा जाता था और उसके अधिकारों तथा संस्कारों का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। वह पूर्णतया अपने स्वामी की दया पर निर्भर था। रामशरण शर्मा ने शूद्रों की स्थिति का विस्तारपूर्वक विश्लेषण किया है। पूर्व तथा उत्तर वैदिक काल में शूद्र को अपवित्र नहीं माना जाता था। जब समाज कृषि प्रधान हो गया तथा वर्णों में विभाजित हो गया इस समय उच्च वर्ण के लोग अपने लिए विशेष अधिकार तथा सुविधाओं की मांग करने लगे और तभी शूद्र को अपवित्र घोषित कर दिया गया। उस समय कोई भी कार्य अपवित्र नहीं समझा जाता था। उत्तर वैदिक काल के पश्चात् उनको समाज में हीन भावना से देखा जाने लगा। उपनिषदों में कहीं–कहीं शूद्रों की हीनता का विरोध किया गया है। शायद यह कुछ उदारता का समय था। वृहदारण्यक तथा छान्दोग्य उपनिषदों में बताया गया है कि ''ब्रह्म लोक में सभी समान माने जाते हैं तथा चाण्डाल को भी यज्ञ का अवशेष पाने का अधिकार है।'' (ई0 पू0 600–300) अर्थात सूत्रकाल में इनके विरुद्ध

सर्वाधिक कठिन कानून बने तथा इनकी स्थिति दयनीय हो गई यद्यपि इसी समय जैन तथा बौद्ध धर्म का उदय हुआ, जिससे इनको कुछ राहत मिली। क्योंकि इन दोनों धर्मों ने छुआछूत का विरोध किया।

शर्मा ने शूद्र वर्ण की उत्पत्ति के लिए आर्थिक कारणों को ही उत्तरदायी ठहराया है। इनके अनुसार लोहे के आविष्कार होने से छोटे–छोटे साम्राज्य बड़े साम्राज्यों में तब्दील हो गये। कृषि हेतु जमीनों का क्षेत्रफल बढ़ा, किन्तु जमीनों का मालिकाना हक या तो सामंत या दान प्राप्तकर्ता कर्मचारी वर्ग और ब्राह्मण वर्ग का था। कृषि कार्य हेतु मजदूरों की आवश्यकता थी, अतः एक बड़ी जनसंख्या को मजदूर बना दिया गया। इनको अधिकारों से वंचित कर दिया गया। यद्यपि मौर्य काल में शूद्रों की स्थिति में कुछ सुधार हुआ। उस समय के ग्रंथ अर्थशास्त्र से पता चलता है कि शूद्र को संपत्ति रखने, कृषि करने, पशुपालन तथा व्यापार के लिए स्वतंत्र अधिकार मिले हुए थे। कृषि योग्य भूमि खरीदने का अधिकार था। गुप्त काल तक आते–आते शूद्रों ने वैश्यों का स्थान ग्रहण कर लिया। वे पूर्णतया कृषि तथा व्यापार में संलग्न हो गए। वृहस्पति स्मृति में शूद्रों को सभी प्रकार की वस्तुओं की बिक्री का अधिकार प्रदान किया गया है। पूर्व–मध्यकाल या चन्देल काल में वैश्यों ने कृषि कार्य त्याग दिया तथा इस पर पूर्णतया शूद्र वर्ण का एकाधिकार हो गया। यद्यपि यह प्रवृत्ति बदलने में सामंती प्रवृत्तियों का और वैश्यों के जैन धर्म ग्रहण करने का योगदान रहा है।

कृषि पर शूद्रों का एकाधिकार हो जाने से उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो गयी। बी0 एन0 एस0 यादव का विचार है कि बारहवीं सदी (चन्देल काल) तक समाज में जाति प्रथा के विरोध की जो भावना प्रबल हुई उसके लिए निम्न वर्णों की आर्थिक स्थिति में सुधार होना भी एक प्रमुख कारण था। इस काल में शूद्रों की संख्या में वृद्धि हुई। शूद्रों का एक वर्ग पवित्र आचरण युक्त था तथा शास्त्रों के आदेशानुसार आर्थिक क्रियाओं का संपादन करता था। यह वर्ग सभी उच्च वर्गों के साथ रहता था तथा समाज में आदर प्राप्त था। पूर्व मध्यकाल के टीकाकार मेधातिथि एवं विश्वरुप ने उन्हें व्याकरण आदि विषय के ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार देते हुए यह व्यवस्था दी की वे स्मृति विहित सभी धार्मिक कार्यों को कर सकते हैं। मेधातिथि के अनुसार शूद्र के लिए आवश्यक नहीं है कि वह द्विजों की सेवा से आजीविका चलाये। लक्ष्मीधर के अनुसार विशुद्ध मन तथा मस्तिश्ष्क वाला शूद्र व्यक्ति, पतित ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य वर्ण के व्यक्ति की अपेक्षा श्रेष्ठतर होता है।

चन्देल काल में कृषि कार्य आमतौर पर शूद्रों का व्यवसाय हो गया था। वे पशुपालन भी करते थे। कुछ सार्थवाह शूद्र थे। शिल्प के कार्य पर शूद्रों का एकाधिकार था। ह्वेनसांग तथा इब्नखुर्दाद्ब ने कृषि शूद्रों का सामान्य व्यवसाय बताया है : वे कृषि का संबंध वैश्यों से नहीं बताते। व्यास, पाराशर और वैजयन्ती में एक कृषक वर्ग का उल्लेख है जिन्हें 'कुटुम्बी' कहा गया है। कुछ शूद्र इस काल में उच्च पदों पर भी नियुक्त किए जाते थे। चालुक्य कुमार पाल के समय में सज्जन नाम का कुम्हार चित्तौड़ का राज्यपाल नियुक्त किया गया था।

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# दक्षिण एशिया में चीन का राष्ट्रीय हित

**हरेन्द्र विश्वकर्मा**
असिस्टेंट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान विभाग
राजकीय महाविद्यालय पचवस बस्ती

इस शोध पत्र में दक्षिण एशिया क्षेत्र में जहां भारत एक प्रमुख महाशक्ति है, में चीन के निहित भू–राजनीतिक एवं भू–आर्थिक हितों का विश्लेषण किया गया है। दक्षिण एशिया क्षेत्र में पाकिस्तान, श्रीलंका, नेपाल, भूटान, अफगानिस्तान, मालदीव, बांग्लादेश के साथ बीजिग के निहित हितों का एक यथार्थवादी दृष्टिकोण के अन्तर्गत समीक्षा करने का प्रयास किया गया है। चीन तमाम हार्ड एवं साफ्ट पावर की मदद से भारतीय उपमहाद्वीप में अपने हितों के संचालन हेतु नीतियों एवं योजनाओं को अंजाम दे रहा है। चीन अपने सदाबहार मित्र पाकिस्तान के साथ 'सीपेक' परियोजना पर काम कर रहा है जिससे मलक्का जल मार्ग से उसकी निर्भरता को कम किया जा सके इसके अतरिक्त अपने 'वन बेल्ट वर रोड' परियोजना के संचालन तथा इस क्षेत्र के अन्य देशों के साथ अपने आर्थिक एवं व्यापारिक सम्बन्धों को गति दे रहा है जिससे वह बीजिंग को एक महाशक्ति के रूप में स्थापित कर सके। इस शोध पत्र में इन सभी पक्षों का गहराई से विश्लेषण का प्रयास किया गया है।

**की वर्डः** दक्षिण एशिया, सीपेक' ओ0बी0ओ0आर0, राष्ट्रीय हित, डब्लू0डी0एस0।

**प्रस्तावनाः**–अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में कोई भी देश शून्य में अपनी नीतियों का निर्धारण नहीं करता बल्कि उसके लिए पर्याप्त हितों का होना आवश्यक है। यदि राजनीतिक यथार्थवाद की मान्यताओं को देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि 'राष्ट्रीय हित' हमेशा से ही केन्द्र में रहे हैं, हाँ उनकी प्रकृति में परिवर्तन होता रहा है। यह सिद्धान्त चीन के लिए भी अपवाद नहीं है। यह हो सकता है कि शीतयुद्धोत्तर काल में चीन के 'आर्थिक

उदय' ने चीन की प्राथमिकताओं को बदल दिया हो लेकिन प्राथमिकताएं हमेशा बनी रहेंगी। ''दक्षिण एशिया क्षेत्र चीन की प्राथमिकता में महत्व के आधार पर उत्तर–पूर्व एवं दक्षिण–पूर्व एशिया के बाद तीसरे स्थान पर आता है'', जैसा कि मलिक ने कहा है।[1] हालांकि यह ध्यान देने वाला तथ्य है कि चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका की तुलना में दक्षिण एशिया में बाद में प्रवेश करता है लेकिन बहुत तेजी से इसे अपने प्रभाव में समेट लेता है। यह क्षेत्र तेजी से चीन की विदेशनीति योजना में महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि यह तमाम तरीकों से चीन के स्थायित्व एवं विकास के साथ जुड़ा है।

आज दक्षिण एशिया चीन के इर्द–गिर्द सबसे ज्यादा परिवर्तनशील क्षेत्रों में है। हालाँकि चीन के उदय के लिए अति महत्वपूर्ण क्षेत्रों में से है। चीन की सीमाएँ दक्षिण एशिया के भूटान, भारत, नेपाल, पाकिस्तान एवं अफगानिस्तान देशों के साथ साझा होती है। अफगानिस्तान–पाकिस्तान सीमा क्षेत्र एवं कुछ दक्षिण एशिया के देशों में राजनीतिक अस्थिरता चीन के लिए बड़ा खतरा उत्पन्न कर सकती है।

शेषंग (Sheshang) के शब्दों में ''कुछ दक्षिण एशिया के देशों में राजनीतिक अशांति और नाजुक सुरक्षा ने कुछ हद तक इन देशों के साथ, राजनीतिक, सुरक्षा एवं आर्थिक सम्बन्ध बनाने में चीन के प्रयासों में बाधा डाली है, विशेष रूप से जनता–जनता के मध्य द्विपक्षीय आदान–प्रदान करने में तथा इन देशों में चीनी निजी निवेश को हतोत्साहित किया है।''[2]

इस प्रकार हम चीन के हितों को यथा दक्षिण एशिया, हिन्द महासागर के आलोक में भू–राजनीतिक एवं भू–आर्थिक सन्दर्भों के अन्तर्गत विश्लेषण करेंगे।

**दक्षिण एशिया में चीन का हित** :

दक्षिण एशिया में चीन के नजरिए से अपने पश्चिमी क्षेत्र विकास रणनीति (WDS), सुरक्षा एवं स्थायित्व महत्वपूर्ण हितों में से एक है। दक्षिण एशिया चीन के दक्षिण पश्चिमी सीमांत क्षेत्र, तिब्बत एवं सिनजियांग के स्थायित्व के लिए अति महत्वपूर्ण है। इसी संदर्भ में चीन का अफगानिस्तान एवं पाकिस्तान जैसे देशों के साथ हित निर्माण में सुरक्षा एवं स्थायित्व प्रमुख बिन्दु उभर कर सामने आते हैं। भौगोलिक तौर पर तिब्बत और चीन के 'सिनजियांग स्वायत्त प्रान्त' की सीमायें दक्षिण एशिया से मिलती हैं। यही कारण है कि चीन अफगानिस्तान में शांति और स्थिरता को बढ़ावा देता है। दूसरी तरफ यह क्षेत्र यूरोप एवं मध्य एशिया के प्रवेश द्वारा के रूप में भी जाना जाता है। चीन अपने पश्चिमी भाग में सिनजियांग प्रान्त के स्वायत्त क्षेत्र के अफगानिस्तान के तालिबान से तथाकथित सम्बन्ध एवं पूर्वी तुर्कीस्तान स्वाधीनता आन्दोलन(ETIM), के मध्य के सम्बन्ध को तोड़ना चाहता है। यह विच्छेद सिनजियांग प्रान्त के उइगुर अलगावादी आन्दोलन को कमजोर करेगा जिसकी सीमा अफगानिस्तान से मिलती है।इसी संदर्भ के धार्मिक अल्पसंख्यकों का मामला अति संवेदनशील है। नस्लवादी भेदभाव पर बनी संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट ने यह कहते हुए चीन की आलोचना की थी कि उसने करीब 10 लाख उइगरों, (मुसलमानों) को 'चरमपंथ–विरोधी केन्द्रों' और लगभग 20 लाख जनसंख्या को विभिन्न 'शिक्षा केन्द्रों' में 'सामूहिक बंदी' बनाकर रखा है। हालांकि चीन ने इसे सिरे से खारिज कर दिया। चीन का सिनजियांग प्रदेश आतंकवादी घटनाओं के कारण चीन के लिए सुरक्षा अस्थायित्व प्रदान करता है। इस पर श्रीकांत कहते हैं कि ''बारूद के ढेर पर बैठा है सिनजियांग।''[3] तिब्बत और सिनजियांग दोनों ही में हानचीनी जनसंख्या को बसाया जाना एक चिन्ता का विषय बना हुआ है। चीन हानचीनियों को इन क्षेत्रों में लाकर बसाने का कार्य करता रहा है,

जो कि बहुसंख्या में हैं, जिस कारण वह यहाँ की जनसंख्या मुख्यतः सिनजियांग में उद्गुर मुसलमाना अल्पसंख्यक स्थिति में आ गए हैं। तिब्बत के रहने वाले तिब्बती लोग शरणार्थी के रूप में नेपाल एवं भारत में पलायित हो रहे हैं। इसी संदर्भ में बीजिंग ने काठमाण्डू से तिब्बत की अपनी सीमाओं पर निगरानी बढ़ाने के लिए दबाव डालने का कार्य किया है जिससे हाल के वर्षों में नेपाल में तिब्बतियों की संख्या में काफी कमी आयी है।[4] इसके अतिरिक्त नशीली दवा का व्यापार चीन के लिए बड़ा खतरा है। सिनजियांग नशीली दवा विरोधी कार्यालय (Anti Drug Office) के आंकड़ों के अनुसार उरुम्की शहर में वार्षिक हेरोइन का उपयोग एवं वितरण सन् 2000 के 1 टन के स्तर से सन् 2007 में अगस्त के अंत तक 7 टन के स्तर तक पहुँच गया था।[5] चीन की व्यापक रुचि अफगानिस्तान में अस्थिरता को कम करने, राजनैतिक शक्तियों के मध्य सत्ता का स्थिर संतुलन स्थापित करने एवं यह सुनिश्चित करने में है कि यहाँ उग्रवादियों के विजय के लिए कोई स्थान नहीं है। चीन इस तथ्य से अवगत है कि अफगानिस्तान की स्थिरता का सिनजियांग प्रान्त पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। आर्थिक ताकत के जरीय चीन अफगानिस्तान में साफ्ट पावर का निर्धारण कर रहा है लेकिन उसके सिनजियांग प्रान्त को अफगानिस्तान और पाकिस्तान से आये आतंकवाद के कारण अनेक वर्षों से अशांति झेलनी पड़ रही है। इससे चीन को दो चार होना पड़ा है। लगभग आधी सदी पूर्व चीन अपने राज्य इतिहास के इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक विपत्तियों से जूझ रहा था। वर्तमान समय में चीन ने सकल घरेलू उत्पाद में 6. 8 प्रतिशत की संवृद्धि हासिल की है जिससे चीन, अमेरिका के बाद दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन गया है। चीन ने लगभग 600 मिलियन से अधिक लोगों को गरीबी रेखा के बाहर निकालने में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की है एवं बीजिंग, संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोपीय संघ, भारत एवं जापान के सबसे बड़े व्यापारिक भागीदार के रूप में उभरा है। वास्तव में ऐसा ही चलता रहा तो अगले कुछ वर्षों में चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका से आगे निकल जायेगा। इस डर का ही प्रतिफल है कि अमेरिका ने चीन के साथ व्यापार युद्ध (Trade War) शुरु कर दिया है।''[6]

मानव इतिहास के सबसे उल्लेखनीय आर्थिक परिवर्तन ने 'चीन के उदय' की एक महत्वपूर्ण घटना को अंजाम दिया है। चीन की अर्थव्यवस्था में आये उछाल ने बीजिंग के हितों में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया है। वास्तव में चीन एक ऐसी अर्थव्यवस्था शक्ति है जो ऊर्जा पर अत्यधिक आश्रित है। इसके अतिरिक्त चीन को अपने विकास हेतु प्राकृतिक संसाधनों पर आश्रित कर दिया है। अब ये संसाधन जो कि चीनी अर्थव्यवस्था की उत्पादकता के लिए आवश्यक है, पर विरोधी राज्यों या नान स्टेट एक्टर द्वारा इनकी आपूर्ति या यातायात में बाधा पहुँचायी जा सकती है, यह डर चीन को परेशान करता है। इसीलिए चीन तमाम नई रणनीतियों पर कार्य कर रहा है। उदाहरणस्वरूप, चीन हिन्द महासागर में अपनी मजबूत उपस्थिति की तलाश कर रहा है। बीजिंग का प्रमुख उद्देश्य, संचार की समुद्री रेखाओं (Sea Lines of Communication) की रक्षा करना[7] जिस पर उसकी अर्थव्यवस्था निर्भर करती है तथा इसके साथ ही इसके प्रभाव में भी वृद्धि की जा सके। दक्षिण एशिया क्षेत्र, जहाँ विश्व की जनसंख्या का एक चौथाई हिस्सा रहता है, विश्व के सबसे कम आर्थिक एकीकृत क्षेत्रों में से एक है।[8] विश्व बैंक के अनुसार ''ऐतिहासिक–राजनीतिक तनाव, अविश्वास, सीमा–पार संघर्ष और सुरक्षा चिंताओं के कारण इस क्षेत्र का अंतर्क्षेत्रीय व्यापार अपनी क्षमता से काफी कम है।''[9] अधिकांश दक्षिण एशियाई देश निर्यात गंतव्य

के रूप में विकसित देशों पर निर्भर है एवं चीन से इनका आयात बहुत तेजी से बढ़ रहा है। पिछले दशक में चीन निर्यात आधारित विकास कार्यनीति के साथ दक्षिण एशियाई बाजारों में वस्तुओं के शीर्ष निर्यातक के रूप में उभरा है। चूँकि दक्षिण एशिया के बाजार चीन के सस्ते माल के लिए अतिमहत्वपूर्ण हैं। बांग्लादेश इस प्रवृत्ति का सबसे शुरुआती उदाहरण है। चीन 2015 में बांग्लादेश का शीर्ष व्यापारिक भागीदार बन गया था, बांग्लादेश के कुल आयात का 27 प्रतिशत चीन (हांगकांग सहित) से प्राप्त था। चीन बीजा, परिवहन और सीमा शुल्क की चुनौतियों के बिना सस्ता चीनी उत्पाद (विशेषकर बांग्लादेश के परिधान उद्योग हेतु कपास एवं अन्य कपड़े) उपलब्ध कराता है। इसके अलावा, बांग्लादेश और चीन नियमित सैन्य आदान–प्रदान कर रहे है। चीन ने ढाका को 5 समुद्री निगरानी बेसेल, 2 छोटे युद्धपोतों, 44 टैंक, 16 लड़ाकू विमान और साथ ही स्थल से हवा में मार करने वाले एंटी शिप मिसाइल भी उपलब्ध कराया है। बांग्लादेश ने चीनी निवेशकों के लिए, चटगाँव जो कि प्रमुख बंदरगाह है एवं राजधानी ढाका में दो विशेष आर्थिक क्षेत्रों को आवंटित किया है।[10] इसके बदले चीन ने बांग्लादेश के बंदरगाह के विकास और आधुनिकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

चीनी ड्रैगन श्रीलंका में भी अपना पाँव पसार रहा है जो कि हिन्द महासागर के प्रमुख व्यापार मार्ग में उपस्थित है। चीन का श्रीलंका में निर्यात तेजी से बढ़ रहा है। पाकिस्तान के अलावा श्रीलंका, दक्षिण एशिया में चीनी आधारभूत संरचना निवेश का अग्रणी लाभार्थी रहा है। उदाहरण के लिए सन् 2009 से 2014 के बीच लगभग 15 बिलियन अमेरिकी डालर की परियोजनाएँ सम्मिलित हैं। यह द्विपक्षीय व्यापार से भी अधिक हैं।

श्रीलंका में चीनी निवेश के तहत पुत्तलाम कोल पावर प्लांट, सुप्रीम कोर्ट काम्प्लेक्स, गिंगैंग (Gingang) फ्लड प्रोटेक्सन स्कीम का निर्माण एवं 1.4 बिलियन अमेरिकी डालर का कोलम्बो में एक कृत्रिम द्वीप बनाने की योजना जो मॉल, होटल एवं मरीन से युक्त होगा, महत्वपूर्ण है। दूसरी ओर चीनी निवेश को सुविधा प्रदान करने के लिए श्रीलंकाई निवेश बोर्ड ने मिरिगामा (Mirigama) में एक अलग क्षेत्र की सीमा निर्धारित करने जैसे कई कदम उठाये हैं, (चीन वह पहला देश है जिसका श्रीलंका में एक एक्सक्लुजिव इकोनोमिक जोन–EEZ बना है) शंघाई में निवेश संवर्द्धन कार्यालय की स्थापना की है, निवेशकों के लिए 5 वर्षीय विशेष वीजा का निर्धारण किया गया है।[11] श्रीलंका ने चीन की पनडुब्बियों को 2014 के अंत में कोलम्बों बंदरगाह में दो बार डॉक करने की अनुमति प्रदान कर दी थी। इसके अतिरिक्त 'हंबनटोटा पोर्ट' की स्थिति जगजाहिर है कि चीन ने उसे कैसे बनाया और उसका किस काम में प्रयोग हो रहा है।

नेपाल दक्षिण एशिया में चीन के बढ़ते प्रभाव का एक और पहलू दर्शाता है। श्रीलंका और बांग्लादेश के विपरीत, जो चीन को सामरिक दृष्टि से स्थित पत्तनों तक पहुँच प्रदान करता है, नेपाल एक छोटा भू–आबद्ध देश है। तिब्बत और भारत के मध्य स्थित यह देश चीन के लिए एक महत्वपूर्ण 'बफर स्टेट' है। चीन की नेपाल में रुचि, यहाँ पर तिब्बत के व्यापक शरणार्थी समुदाय भी हैं। बीजिंग ने काठमाण्डू से तिब्बत की अपनी सीमाओं पर निगरानी बढ़ाने के लिए दबाव डाला जिससे हाल के वर्षों में तिब्बतियों की संख्या में काफी कमी आयी है। चीन ने नेपाल के साथ अपने व्यापार को मजबूत किया है। बीजिंग ने यहाँ पर सड़क निर्माण एवं जलशक्ति परियोजना में निवेश किया है तथा अप्रैल 2015 में विनाशकारी भूकम्प के पश्चात् त्वरित सहायता प्रदान की है। नेपाल ने चीन के साथ कई समझौतों पर भी हस्ताक्षर किये हैं, जिसमें ऊर्जा आपूर्ति के लिए स्थायी व्यवस्था तथा चीन के पत्तनों तक नेपाल को पहुँच देने वाली पारगमन

संधि शामिल थी।[12]

दक्षिण एशिया के महत्वपूर्ण देश पाकिस्तान को चीन का 'सदाबाहार मित्र' कहा जाता है। चीन के लिए पाकिस्तान भू–राजनीतिक एवं सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के साथ ही साथ आर्थिक दृष्टि से भी अति महत्वपूर्ण है। शीतयुद्धोत्तर काल में चीन ने अपनी आर्थिक गतिविधियों का प्रभावशाली विस्तार किया है। पाकिस्तान में आधारभूत ढाँचे में निवेश के रूप में चीन ने पाकिस्तान में बड़ा निवेश किया है। शीतयुद्ध के पूर्व में चीन और पाकिस्तान द्वारा कराकोरम हाइवे का निर्माण किया गया था। यह दुनिया के उच्चतम अंतर्राष्ट्रीय राजमार्गों में से एक है जो खुर्जरेव दर्रे से होकर कराकोरम पर्वत के आर–पार चीन के सिक्यांग उइगुर (Sinkiang Uighur) को गिलगिट बल्टिस्तान से जोड़ता है।[13] कराकोरम हाइवे को चीन में 'मित्रता राजमार्ग' के नाम से भी जाना जाता है। यह 1959 में बनना प्रारम्भ हुआ और 1979 में पूरा होने के बाद जनता के लिए खोल दिया गया। यह राजमार्ग प्राचीन सिल्क रोड की निशानी में से एक है। जिस प्रकार इसे बनाया गया है इसकी ऊँचाई को देखते हुए इसे दुनिया का आठवाँ अजूबा कहा जा सकता है।

**निष्कर्ष–**निष्कर्षतः इस पूरे शोध के अन्तर्गत हम यह पाते हैं कि चीन दक्षिण एशिया में अपने भू–राजनीतिक हितों को आकार देने के लिए तमाम आधारभूत संरचना सम्बन्धी परियोजनाओं को साकार करने के प्रयास में लगा है जिससे उसके उर्जा आपूर्ति के मार्ग में बाधा न उत्पन्न होने पाये। बीजिंग इस क्षेत्र को तमाम आर्थिक प्रलोभनो द्वारा अपने से जोड़ने के प्रयास में संलग्न है। इस प्रकार बीजिंग भारत को दक्षिण एशिया में एक कड़ी प्रतिस्पर्धा देने में सफल हो सका है।

**संदर्भ –**


1. कोंडापल्ली श्रीकांत, *'बारूद के ढेर पर बैठा सिनजियांग,''* हिन्दुस्तान मुरादाबाद संस्करण,शुक्रवार 17 अगस्त 2018, पेज सं014।
2. Mishra, N.B. (2015), "*China's South Asia Policy*", Pub. Sumit Enterprises, New Delhi, 2015, p.183.
3. Mishra, N.B. (2015), "*China's South Asia Policy*", Pub. Sumit Enterprises, New Delhi, 2015, p.183.
4. Behera, Ajay Darshan, "*China's Policy And Relations With Pakistan" edited by M. Rasgotra,* 'china And South Asia' . ORF China Studies Serv ices 04, pp. 41-44.

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

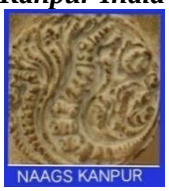


***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# संविधान का दर्शन एवं प्रस्तावना

**प्रोफेसर इन्द्रमणि**
प्रोफेसर राजनीति विज्ञान विभाग
विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज कानपुर

प्रस्तावना संविधान के दर्शन का प्रमुख स्रोत हैं। इसमें कुछ ऐसे तत्व निहित है जिनका सार्वभौमिक मूल्य है। ये भारत की जनता के मूल ढाँचे का निर्देशक है। यह प्रशासनिक नैतिकता व राष्ट्र की प्राशासनिक मूल्य व्यवस्था का मूल आधार भी है। प्रत्येक प्रशासनिक व्यक्ति से यह आकांक्षा रखी जाती है कि वह अपने प्रशासनिक कार्यों को इन्हीं मूल्य व्यवस्था पर आधारित करेगें।

प्रस्तावना संविधान की कुंजी है। जो कुछ भी संविधान में व्यापक रूप से व्याख्यित किया जाता है वह प्रस्तावना में सूक्ष्म रूप से व्यक्त होता है। ''प्रस्तावना में संविधान के आदर्श, लक्ष्य व मूल सिद्धान्त सम्मिलित है। संविधान के प्रमुख लक्षण प्रस्तावना में उल्लेखित इन्हीं उद्देश्यों से प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से विकसित हुए हैं।'' इसी भावना से एक विद्वान व्यक्ति ने कहा है कि यह मूल्य व्यवस्था व भारतीयता की भावना का स्रोत है। ''पण्डित ठाकुर दास ने इसे संविधान का श्रेष्ठतम वैभवपूर्ण भाग, संविधान की आत्मा, संविधान की कुंजी एक श्रेष्ठ गद्य कविता के रूप में व्याख्यित किया हैं।'' संविधान का प्रत्येक शब्द प्रशासक के लिए महत्वपूर्ण है। वह व्यक्ति विशेष को राष्ट्र की आत्मा व भावना का सर्वाधिक अखण्ड भाग बना देता है जिसका वह न केवल अखण्ड भाग है बल्कि विकास, वृद्धि सुधार एवं विकास और प्रशासन विकास आधारित सामाजिक जनकल्याण व्यवस्था को लागू करवाने वाला मुख्य चालक है। प्रस्तावना के तत्व पं0 नेहरू द्वारा 22 जनवरी 1947 को संविधान सभा में प्रस्तुत उद्देश्य प्रर्वतिका पर निर्भर करते हैं। ये तत्व अपने में सम्पूर्ण है परन्तु अन्य क्षेत्र जिससे प्रशासक प्रशासनिक नैतिकता के मुख्य तत्वों को प्राप्त कर सकता हैं।

एक प्रशासक के मूल्य तत्वों को संविधान के अन्य दार्शनिक आधारों से प्राप्त कर सकता है, संविधान में बहुल और विभिन्न हैं। इनमें मूल अधिकार, राज्य के नीति–निर्देशक तत्व व मूल कर्तव्यों को सम्मिलित किया जाता है। मूलभूत अधिकार इस तथ्य का व्यक्तिकरण है कि भारतीय संविधान निर्माताओं ने व्यक्तिवाद को विशेष महत्व प्रदान किया हैं। उन्होंने विचार किया कि व्यक्ति के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य

व्यक्तित्व विकास होना चाहिए जिससे गुणवत्ता पूर्ण जीवन का निर्माण हो सके। व्यक्तित्व का पूर्ण व्यक्तीकरण तभी सम्भव हो सकता हैं जब व्यक्ति को स्वतंत्रता और समान समानता राज्य द्वारा प्रदान की जाती हैं। जब व्यक्ति को समाज में समानता प्रदान की जा सके। इसलिए मूलभूत अधिकार राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को यह सुनिश्चित करते हैं कि वह पूर्ण स्वतंत्रता का प्रयोग करते हुए कार्य कर सके, इसका अपवाद संविधान में उल्लेखित युक्तियुक्त निर्बन्धन है जो कि संविधान द्वारा प्रत्येक व्यक्ति पर आरोपित किए जाते है। इन युक्ति युक्त निर्बधनों ने राष्ट्र व संविधान को अवांछनीय क्रियाओं से पूरी तरह से उन्मुक्ति प्रदान की है। इसने राष्ट्र को अंखण्डित एवं एकता व अखण्डता बनाए रखने में सहायता प्रदान की है। कोई भी प्रशासक इन सीमाओं के परे नहीं है। प्रत्येक को इन अधिकारों व युक्ति युक्त निर्बधन सीमा के अन्तर्गत रहते हुए कार्य करना है क्योंकि प्रशासक राष्ट्र में कानून लागू करने वाला है, अतएव यह आवश्यक हैं कि प्रशासक भी इन अधिकारों को सम्मान प्रदान करेगा व सभी नीतियों को संविधानिक सीमाओं के अन्तर्गत ही लागू करेगा। प्रशासक नागरिकों के मूलभूत अधिकारों का भी सम्मान करेगा। ये अधिकार प्रशासक के लिए राष्ट्र के शासन हेतु मूलभूत है। कोई शासन संरचना इसका अपवाद नहीं है। ये अधिकार ऐसी मूल संरचना का निर्माण करते है जिसके ऊपर भारतीय समाज का उदार वातावरण निर्मित होता है।

व्यक्ति की मूल्य व्यवस्था का दूसरा स्रोत राज्य के नीति–निर्देशक तत्व से उत्पन्न होता है। यह सत्तारूढ़ सरकार हेतु नीति निर्देशन है कि उसे नीति निर्माण राज्य के नीति निर्देश के निर्देशन में करना चाहिए। ये महत्वपूर्ण हैं क्योंकि यह उसे व्याख्यित करते हैं जिन्हें प्राप्त करना है। इसमें हमारे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन के वे लक्ष्य सम्मिलित है जो कि अभी दूर स्थित स्वप्न हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में एक प्रशासक के लिए यह एक कर्त्तव्य हो जाता है कि उसे अपनी प्रशासनिक क्षमता का प्रयोग इस तरह से करना चाहिए कि इन आदर्शों को प्राप्त किया जा सके। प्रशासक के लिए यह सम्भव नहीं हैं कि राज्य के नीति–निर्देशक तत्व लागू करने हेतु नए कानून निर्मित करे क्योंकि यह कार्य विधायिका का है। इन सीमाओ के बावजूद प्रशासन राज्य के नीति–निर्देशक तत्व से मूलतत्व व मूल को प्राप्त करता है। इसने प्रशासक इन प्रावधानों पर निर्भर होने के बाद बेहतर तरह से यह ज्ञात कर लेता हैं कि प्रशासन के वास्तविक क्षेत्र क्या हैं जहाँ प्रशासन को कार्य करना हैं। प्रशासक की मूल्य व्यवस्था का एक अन्य स्रोत यह भी है जो कि मूलभूत कर्त्तव्य रूप में उपलब्ध है जिन्हें 42वें संविधान संशोधन के बाद जोड़ा गया हैं। यह संशोधन श्रीमती इंदिरा गाँधी सरकार द्वारा 51(क) के रूप में संविधान में सम्मिलित किया गया था। जिसे नए प्रावधान ने संविधान में मूल कर्त्तवयों को जोड़ राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक द्वारा अपने जीवन में किया जाना है।

एक प्रशासक राष्ट्र का कोई विशिष्ट व्यक्ति नहीं है। वह नागरिक पहले है। इसी के साथ वह एक प्रशासक भी है जिसे जनता व सरकार द्वारा एक महत्वपूर्ण कार्य दिया गया है कि वह अपने कार्यों व कर्तव्यों का उत्तरदायित्व निर्वहन कर सके। इस पृष्ठभूमि में प्रशासक की भूमिका महत्वपूर्ण है। प्रशासक न केवल इसे संरक्षित करता है, इनका निर्वहन करता है बल्कि इन मूलभूत कर्त्तव्यों से कई नवीन तत्वों को ग्रहण भी करता है। पूर्ण अध्ययन पर यह कहा जा सकता है यह संविधान है जिसने नागरिक व प्रशासक को मूल्य प्रदान किए है। कोई भी प्रशासनिक व्यवस्था इनके बिना कार्य नहीं कर सकती है। प्रशासन का संवैधानिक आधार लोकतंत्र और स्वतंत्र राष्ट्र में अन्तिम

सत्य हैं।राष्ट्र का शासन चलाने हेतु मूल्य प्रमुख है। विभिन्न प्रशासनिक परिस्थितियों में यह निश्चित विभिन्न रूप ग्रहण कर लेते है। वास्तविकता में यह संविधानिक पृष्ठभूमि से ही जीवन प्राप्त करते है।

एक प्रशासन न केवल सरकारी नीति को लागू करता है बल्कि यह सतत् रूप से नई योजनाओं व कार्यक्रमों को विकसित भी करता है जो जनता हेतु होती है। इस सन्दर्भ में वह एक रचनाकार हैं। विभिन्न विचारको ने उसे इस दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। चार्ल्स गुड सेल ने ''प्रशासक को एक कलाकार के आधार पर निर्मित किया है जो कि एक दृष्टिकोण का आधार प्रदान करता है जो कि सरकार के कार्यों को 'सूक्ष्म स्तर' पर ध्यान केन्द्रित करती हैं। सौंदर्यशास्त्र के क्षेत्र व कला के सिद्धान्त से उधार लेते हुए प्रशासक की कार्यशैली, स्वरूप और रचनात्मकता इत्यादि को व्यक्त किया है। गुडसेल इस दृष्टि को एक मानत्मक सिद्धान्त रूप में व्यक्त करते है जो दक्षता, मितव्यता व जवाबदेही जैसी संदर्भों को सहयोग प्रदान करते है।'' इस परिप्रेक्ष्य में प्रशासक को एक कलाकार की तरह योजना बनानी है जैसे कलाकार कृति की रचना करता है। प्रशासक ऐसा तब कर सकता है जब वह मूल्यों को महत्व देता है। बिना नैतिक आधार पर प्रशासक ऐसा नहीं कर सकता।

लोक प्रशासन की कला इन मूल्यों का अपने में समाहित करना आवश्यक मानती है। ''इन मूल्यों का समाहन एक सम्पूर्ण दक्षता विकसित करने में सहायता प्रदान करता है जो सुशासन व स्वशासन में उत्पन्न समस्याओं के लिए एकमात्र सुझाव रूप में प्राप्त होता है।''

सुशासन विकासशील देश भारत के लिए त्वरित आवश्यकता है। ये मांग करती है कि नौकरशाही मूल्य व्यवस्था की इस पृष्ठभूमि में काम करे। मूल्य स्थानीय और सार्वभौमिक हो सकते हैं लेकिन सार्वभौमिक मूल्य वे मूल्य हैं जो कि हमारे संविधान में समाहित किए गए हैं एवं वह उचित प्राशासनिक व्यवस्था की कार्य संस्कृति में निहित है। प्रत्येक सामाजिक ढाँचे व सांस्कृतिक ढाँचे, में एक बहुल समाज में जैसा हम अपने राष्ट्र में अनुभव करते है यह सार्वभौमिक मूल्य एकीकरण को निर्धारित करते है। राष्ट्र की इन विभिन्नताओं का सम्मान किया जाता है व सार्वभौतिक मूल्य ढाँचे के द्वारा ही इन्हें नियमित किया जाता है जिसे प्राशासनिक व राज कार्यकर्ता अपने कार्यों द्वारा व्यक्त करते है।

इसलिए यह स्वीकार किया जाता है ''यद्यपि सभी मूल्य व्यवस्थाओं के मूल में कुछ विशिष्ट सार्वभौमिक मूल्य है जो सार्वभौमिक स्वीकार की जाती है। ये पूर्ण मानवता को बेहतर स्थित की तरफ ले जाते है। एक उपलब्ध संस्कृति में मूल्य व्यवस्था में कुछ विचलन यद्यपि परिस्थितियोंवश घटित हो सकता है।'' यह विभिन्नता एक बहुल समाज जैसे भारत में घटित हो सकता है लेकिन राष्ट्र में प्रशासन सार्वभौमिक मूल्य ढाँचे पर आधारित हैं, संविधान जिसका प्रमुख व्यक्तिकरण है अतएव ये विभिन्नताएँ कभी भी संविधानिक मूल्यों को पार नहीं कर सकती हैं क्योंकि ये महान दार्शनिको के मस्तिष्कों के प्रतिबिम्ब हैं।

यह मूल्य इसलिए प्रशासक के लिए आवश्यक है कि ये संविधान द्वारा स्थापित किए जाते हैं लेकिन निश्चित उदाहरणों में यह नया स्वरूप और दृष्टिकोण को ग्रहण कर सकते है उदाहरणस्वरूप प्रशासक विकेन्द्रीकृत शासन को प्राप्त करना चाहता हैं। उस स्थिति में नए मूल्यों की उत्पत्ति होती हैं जो कि यद्यपि निश्चित संविधानिक स्थिति से सम्बन्धित होंगे। प्राशासनिक मूल्य राजनीतिक मूल्यों के उपभाग है। एक विकेन्द्रीकृत लोकतांत्रिक व्यवस्था जो कि भारत में पाई जाती है उसमें 73वें एवं 74वें

संविधान संशोधन के बाद गांव और नगर स्तर पर स्थानीय सरकार की स्थापना की गई है। यहाँ प्रशासनिक मूल्यों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है। राजनीतिक मूल्य जो संविधान व महान राष्ट्र परम्परा से प्राप्त होते हैं एक महत्वपूर्ण भूमिका इस परिप्रेक्ष्य में निर्वाहित करते हैं। जैसे राजनीतिक मूल्य और विकेन्द्रीकृत राजनीतिक व्यवस्था के प्रयोग लोकतांत्रिक मूल्यों से व्यापक स्तर पर जुड़ जाते है व इन व्यवस्थाओं को इस योग्य बनाते है कि वे इनमें योगदान कर सके। ''विकेन्द्रीकृत शासन व्यवस्था के सबसे प्रमुख राजनीतिक मूल्य में शक्ति का विकेन्द्रीकरण, नीति–निर्माण में प्रत्यक्ष भागीदारी व मतभेदो को कम करते हुए उनका सुलझाव करना, मतविचार विभेद को सम्मान देना, अल्पसंख्यक मत को संरक्षित करना व निर्णय लेने में आम सहमति को प्रोत्साहित करना सम्मिलित किया जा सकता है।'' प्रशासनिक मूल्य व्यवस्था राजनीतिक मूल्य व्यवस्था से अलग नहीं रह सकती क्योंकि यह इसका महत्वपूर्ण अवयव है। प्रशासनिक मूल्य व्यवस्था की भूमिका इस सन्दर्भ में और अधिक तीव्र हो जाती हैं एवं विकेन्द्रीकृत शासन को लागू करने में योगदान देती है। भारत एक ग्रामीण देश हैं जहाँ शक्ति का विकेन्द्रीकरण घटित हुआ है।

इस व्यवस्था में प्रशासनिक व्यवस्था की भूमिका पर्याप्त महत्वपूर्ण है जिसे केवल संवैधानिक मूल्य, सार्वभौमिक मूल्य और राजनीतिक–प्रशासनिक मूल्यों को आपस में जोड़कर पूर्ण किया जा सकता हैं और यदि आवश्यकता उत्पन्न होती हैं तब नए मूल्यों का अविष्कार करना, जो कि यद्यपि अपना स्रोत देश की विधि में रखती हैं।

**संदर्भ –**


1. Rumki Basu, Public Administration: Concepts and Theories, Sterling Publishers, New Delhi, 1994.
2. S. Dwivedy and G.S. Bhargava, Political Corruption in India, Popular, Delhi, 1967.
3. S.K. Chopra (Ed.), Towards Good Governance, Konark, Delhi, 1997.
4. T.N. Chaturvedi (Ed.), Secrecy in Government, Indian Institute of Public Administration, New Delhi, 1980.
5. Thomas A. Bryer, Toward a Relevant Agenda for a Responsiveness Public Administration, Journal of Public Administration Research and Theory, Vol. 17, No. 3, 2007

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# 21वीं शताब्दी में लोहिया के समाजवादी विचार

**डॉ सुरेश कुमार**
एसोसिएट प्रोफेसर इतिहास विभाग
पंडित नेकीराम शर्मा राजकीय कॉलेज र
ोहतक हरियाणा

लोहिया ने सामाजिक न्याय को आवश्यक माना और सिर्फ आर्थिक रूप से बराबरी को उद्देश्य न मानकर उन्होने सामाजिक रूप से भी समानता लाने के विचार दिये।पिछड़े लोगो को विशेष अवसर देकर मुख्य धारा में शामिल करके देश का समुचित विकास हो सकता है और इसी से वर्ग संघर्ष को समाप्त किया जा सकता है। लोहिया जी के सप्त क्रांति का सिद्धांत आज भी प्रासंगिक है।सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के कुचक्र से बचने के लिये हमें लोहिया के विचारों को आत्मसात करना होगा। अपनी भाषा , संस्कृति और पहचान को महत्व देना होगा और इसी के माध्यम से देश शक्तिशाली बनेगा।लोहिया के लोकतांत्रिक समाजवाद का विश्लेषण भी प्रस्तुत शोध–पत्र में किया गया है।और आज भी धर्म को आधार बनाकर देश में अराजकता फैलाने का प्रयास किया जाता है इसलिये लोहिया जी के हिंदू–मुस्लिम एकता के विचारों का विवेचन भी अनिवार्य हो जाता है जो कि प्रस्तुत शोध–पत्र में किया गया है। सम्पूर्ण विश्व को अपना परिवार मानकर और सम्पूर्ण विश्व के कल्याण की कल्पना करना और उसमें अपना योगदान देना आज की आवश्यकता है। क्योंकि कोई भी देश पूर्ण नही है और कोई भी देश शून्य भी नही है। आज के समय में भी लोहिया के विचारों को विश्लेषित करने की आवश्यकता है और यह विषय शोध का विषय है कि कैसे आज की बदलती परिस्थिति में भी लोहिया जी के विचार प्रासांगिक है।

स्वतंत्रता आन्दोलन के लम्बे संघर्ष के बाद भारत में आजादी मिली । उस समय सबसे बड़ा प्रश्न यही था कि परम्परागत भारतीय समाज जो कि जाति, वर्ग, धर्म, क्षेत्र, संस्कृ ति, मूलवंश और भाषा आदि के आधार पर विभाजित थी ऐसे समाज को संगठित, एकीकृत और व्यवस्थित रखने के लिए एक ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता थी जो कि सर्वमान्य हो । इन्हीं परिस्थितियों में भारत का संविधान निर्मित किया गया। जिसकी मूल धारणा भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने की थी। भारतीय संविधान में इसके साथ पंथनिरपेक्ष के भाव निहित थे इसलिए 42वें संविधान संशोधन द्वारा भारतीय संविधान की प्रस्तावना में समाजवादी व पंथनिरपेक्ष शब्द भी जोड़ दिया गया । इसके साथ ही संविधान में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय,

पद एवं अवसर की समता, विचार अभिव्यक्ति , उपासना की स्वतंत्रता, बंधुत्व की धारणा और एकता एवं अखण्डता के प्रावधान भी शामिल किये गए। इन सब प्रावधानों का उद्देश्य परम्परागत समाज की कमियों को दूर करते हुए एक आधुनिक, एकीकृत, समतामूलक समाज का निर्माण किया जाना था। इसलिए भारतीय संविधान के कई भागों में भेदमूलक समता के प्रावधान भी किए गए। ये सारे प्रावधान सही दिशा में बढ़ रहे थे परन्तु सन 1989 में भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में मण्डल और कमण्डल की अवधारणा आने के बाद से पुनः भारत में राजनीति का जातीयकरण और जाति का राजनीतिकरण हो गया । जिसके परिणाम स्वरूप भारतीय समाज में पुनः वर्गगत तथा जातिगत खाईयाँ बढ़ गई। इसके साथ ही 90 के दशक से ही पूरी दुनिया में अर्थव्यवस्थाओं का उदारीकरण प्रारम्भ हो गया। जिसके परिणाम स्वरूप समाजवादी लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा पुनः नव उदारीकरण में तेजी से बदलने लगी। पूरा भारतीय समाज उपभोक्तावादी संस्कृति के चंगुल में फँसता जा रहा है। ऐसी स्थिति में लोहिया जी के समाजवादी विचार पुनः प्रासांगिक हो उठते हैं।

आज हम 21वीं शताब्दी के तीसरे दशक में प्रवेश कर चुके हैं। दुनिया भूमण्डलीकरण, निजीकरण, उदारीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति के चंगुल में फँसती चली जा रही है। राजनीतिक चिन्तन में आज समाजवाद, मार्क्सवाद की तुलना में नव उदारवाद जो कि कल्याणकारी राज्य की बजाय पुलिस राज्य पर बल देता है, उसके प्रभुत्व की स्थापना हो रही है। अतः आज के समय में डॉ० राम मनोहर लोहिया के समाजवाद की उपादेयता पर विचार करना आवश्यक हो जाता है।

डॉ. राम मनोहर लोहिया का जन्म 23 मार्च सन 1910 में उत्तरप्रदेश के अकबरपुर फैजाबाद में हुआ था। वह एक स्वतंत्रता सेनानी, प्रखर समाजवादी व सम्मानित राजनीतिज्ञ थे। अपनी युवावस्था में ही वे गाँधी जी से प्रभावित होकर स्वतंत्रता आन्दोलन में शामिल हो गए। लोहिया जी ने बर्लिन यूनिवर्सिटी, जर्मनी से शोध की उपाधि प्राप्त की। उन्होंने हमेशा अधिकारिक भाषा के रूप में अंग्रेजी से अधिक हिन्दी को प्राथमिकता दी। बर्लिन से लौटने के बाद लोहिया जी ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अन्दर सन 1933 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का गठन किया। इस पार्टी ने समाजवाद को अपना लक्ष्य घोषित करते हुये कहा कि– "मार्क्सवाद ही साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों का प्रदर्शन कर सकता और अपनी मंजिल तक पहुँचा सकता है।" उन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि कांग्रेस के भीतर भी लोकतंत्रीकरण किया जाए। लोहिया जी के दार्शनिक चिन्तन और सामाजिक विश्लेषण की पद्धति में मार्क्सवाद, भारतीय परम्परा, गाँधी जी के विचार तथा उनके शोध निर्देशक बर्नर सुधाई का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्विरोध, असमानता, शोषण व अमानवीयकरण को तो स्वीकार करते हैं किन्तु इस बात को स्वीकार नहीं करते की मार्क्स का चिन्तन यूरोपीय समाज के अनुभवों की देन है। वह भारत के शोषित जनसमुदाय से अत्यन्त आत्मीयता रखते थे। उनकी चिन्तन धारा देशकाल की सीमाओं तक सीमित नहीं रही। राजनीति के साथ–साथ संस्कृति, इतिहास तथा साहित्य के विषयों में भी उनकी प्रबल पकड़ थी।

वह समाजवाद और लोकतंत्र को एक–दूसरे का पूरक मानते थे। अन्याय के विरुद्ध लड़ना, उनके सिद्धान्तों और कर्म की आधार शिला रही। लोहिया जी कहते थे– "लोग मेरी बात सुनेंगे जरूर लेकिन शायद मेरे मरने के बाद।"

उन्होंने कहा मेरा नाम लेने का अर्थ होगा – अंग्रेजी हटाओ, दाम बाँधों, जाति तोड़ो और पिछड़ो को विशेष अवसर दो, खर्च की सीमा बाँधों, पब्लिक स्कूल की समाप्ति, हिमालय बचाओं, सम्पूर्ण और सम्भव बराबरी तथा तटस्थ विदेश नीति डॉ. लोहिया ने समाजवाद को भारतीय चिंतन के मूल धारा से जोड़ने का प्रयास ही नहीं बल्कि उसको मूर्त रूप देने का सफल प्रयास की किया। डॉ. लोहिया ने अपने समाजवादी विचारों का विवेचन विभिन्न समस्याओं को ध्यान में रखकर किया था। उन्होंने अपनी पुस्तक "मार्क्स, गाँधी तथा समाजवाद" में अपने विचार व्यक्त किये। तथा गाँधीवाद तथा मार्क्सवाद दो परस्पर विचार धाराओं के मध्य डॉ लेहिया ने एक सूत्र का कार्य किया है। उन्होंने मार्क्स की पूँजीवाद में व्यक्तिगत सम्पत्ति की उपेक्षा की अवधारणा का स्वागत किया और द्वन्दात्मक भौतिकतावादी को अपनाया लेकिन मार्क्स के वर्ग संघर्ष को स्वीकार नहीं किया। वे वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त को अनावश्यक व असंगत मानते थे क्योंकि उनके अनुसार मानवता दो विकल्पों जाति और वर्ग के मध्य जूझती रहती है। जाति और वर्ग में सतत् संघर्ष चलता रहता है यदि जाति दक्षिण पंथी और स्थायी शक्तियो का प्रतिनिधित्व करती है तो वर्ग के द्वारा सामाजिक गतिशीलता का प्रतिनिधित्व होता है। मानव इतिहास जाति और वर्ग के अन्तरद्वन्द की कहानी है। डॉ. लोहिया ने सामाजिक न्याय और समानता सुनिश्चित करने के लिए समाजवाद का समर्थन किया । भारत में जाति व्यवस्था का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि– "जो लोग यह सोचते हैं कि आधुनिक अर्थव्यवस्था के जरिये गरीबी मिट जाने पर जातियाँ स्वयं ही समाप्त हो जायेंगी वे बड़ी भूल करते हैं।" उन्होने कहा कि– "सामाजिक आर्थिक न्याय दिलाने के लिए प्रभावी संस्था होनी चाहिए। और इस संस्था में संविधान, कानून, नियमों तथा आंकड़ों का प्रयोग गरीब तथा कमजोर वर्ग के लोगों की सहायता करने के लिए किया जाना चाहिए ना कि अन्याय की स्थिति बनाये रखने के लिए।" लोहिया सामाजिक न्याय को बनाये रखने के लिए आज के आगे की सोच रखते थे।

लोहिया दलितों, पीडितों तथा शोषितों के मसीहा तथा किसानों, मजदूरों, महिलाओं के शुभचिन्तक के रूप में सदैव प्रसिद्ध रहे । इसलिए उन्होंने समाजसेवा को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय हर प्रकार की गैर बराबरी या गरीबी, बेरोजगारी तथा अन्याय के विरुद्ध संघर्ष किया। अदम्य साहस और आत्मविश्वास के साथ राष्ट्र को एक नई दिशा देते हुए देशवासियों में एक नई स्फूर्ति एवं चेतना जाग्रह की। पीडित मानवता के समग्र कल्याण के लिए कृत संकल्प होकर कार्य किया और अपने समाजवाद के एक मात्र लक्ष्य से कभी विचलित नहीं हुए। समाजवाद के प्रश्न पर कई राष्ट्रीय नेताओं से मतविभिन्नता के कारण उन्होंने जय प्रकाश नारायण, आचार्य नरेन्द्र देव, अशोक मेहता, अरुणा आशिफ अली तथा अच्युत परिवर्धन जैसे समाजवादियों से मिलकर सोशलिस्ट पार्टी का गठन किया, जिसका उद्देश्य समाज के पूरे ढाँचे में बुनियादी परिवर्तन लाना था। सोशलिस्ट पार्टी का मूल उद्देश्य था कि जैसे भी हो हिंसा अथवा रक्तपात के बिना भारत में समाजवाद लाया जाये। लोहिया जी ने इसका गठन जनतांत्रिक तरीके से किया और स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान क्रान्तिकारी समाजवादी विचार दिये। उन्होंने वर्ग संघर्ष तथा वर्ग व्यवस्था को समाप्त करने के प्रश्न पर कहा कि "यदि हम वर्ग संघर्ष करने के साथ–साथ जाति व्यवस्था का उन्मूलन करने के लिए संघर्ष नहीं करेंगे तो हमारी क्रान्ति अधूरी रह जायेगी ?" वह वर्ग संघर्ष और वर्गविहीन समाज की धारणा को इस सीमा तक विकसित करना चाहते थे जिसमें पिछड़ी जनता को बढ़ने का पूरा अवसर प्राप्त हो ।

लोहिया जी समानता के जबरदस्त समर्थक थे। उनका मत था कि जाति व्यवस्था तथा वर्गवाद ही भारत के पतन का प्रमुख कारण रहा है। इसी बात को ध्यान में रखकर उन्होंने जाति उन्मूलन आन्दोलन प्रारम्भ किया था। उन्होंने कहा कि "परम्परागत असमानता पर आधारित समाज में सभी लोगों को केवल समान अवसर प्रदान कर समानता नहीं लाई जा सकती।" उन्होंने जोर देकर कहा कि पिछड़े वर्ग के लोगो , महिलाओं, हरिजनों, आदिवासियों और अविकसित अल्पसंख्यकों को जब विशेष अवसर प्रदान किये जायेंगे तभी वह तरक्की पर पहुँच पायेंगे।

लोहिया यद्यपि आधुनिक सभ्यता के आलोचक थे किन्तु समानता लाने के अभियान के अतिरिक्त प्रशंसक रहे। समाज में व्याप्त आर्थिक असमानता तथा सामाजिक अन्याय को देखकर उनके मन में अपने समाज के ढाँचे में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने की प्रबल इच्छा जाग्रत हुयी। अतः उन्होने "सप्त क्रान्ति का सिद्धान्त" प्रतिपादित किया।

i) पुरुष व स्त्री समानता के लिए क्रान्ति
ii) रंगभेद पर आधारित राजनीतिक, आर्थिक और आध्यात्मिक असमानता के विरुद्ध क्रान्ति
iii) पिछड़े एवं उच्च वर्गों अथवा जातियों के बीच परम्परा से चली आ रही असमानता के विरुद्ध क्रान्ति तथा पिछड़े लोगे को विशेष अवसर प्रदान करने के लिए क्रान्ति
iv) विदेशी दासता के विरुद्ध तथा स्वतंत्रता एवं विश्व के लोकतंत्रात्मक शासन के लिए क्रान्ति
v) आर्थिक समानता तथा योजनाबद्ध उत्पादन के लिए और गैर सरकारी पूँजी के अस्तित्व एवं उनके मोह के विरुद्ध क्रान्ति
vi) निजी जीवन में अनुचित हस्तक्षेप के विरुद्ध तथा लोकतांत्रिक तरीकों के लिए क्रान्ति
vii) हथियारों के विरुद्ध एवं सत्याग्रह को अपनाने के लिए क्रान्ति

इन संघर्षों अथवा क्रान्तियों में लोहिया के दर्शन एवं कार्ययोजना की झलक मिलती है । जय प्रकाश नारायण का 'सम्पूर्ण क्रान्ति' का आवाहन लोहिया के सप्त क्रान्ति का ही आवाहन था ।लोहिया ने समाजवाद की व्याख्या एक नई सभ्यता के रूप में की जिसे मार्क्स के शब्दों में "समाजवादी मानववाद" कहा जाता था।

लोहिया समाजवाद और लोकतंत्र में कोई अन्तर नही करते थे। उनकी दृष्टि में दोनों एक दूसरे के पूरक है उन्का मत था कि समाजवाद समाजवाद ही रहेगा उसे चाहे हम किसी नाम से क्यूं ना पुकारे लोकतांत्रिक क्रान्तिकारी, वैज्ञानिक और चाहे किसी अन्य नाम से या सभी नामों से यूरोप के समाजवाद में एक दयनीय अवस्था को लाने का प्रयास किया है। सामाजिक प्रजातंत्र समाजवाद की तरह युद्ध ही था। भारतीय समाजवाद ने भी उसका अनुसरण किया और विश्लेषणों का प्रयोग किया। समाजवाद अपने आप को केवल विश्लेषण लगाकर अन्य प्रथाओं से अलग नहीं कर सकता ये केवल अपने कार्यक्रमों एवं व्यवहारों से ही उसे साबित कर सकता है। समाजवाद के लिए अच्छा होगा कि वह अपने आप को समाजवाद ही माने और किसी व्याकरण सम्बंधी विवाद में ना पड़े। अपने विचारों की अभिव्यक्ति करना ही इसका ध्येय होना चाहिए। डॉ० लोहिया सामाजिक व्यवस्था में 5 लक्ष्यों समता, प्रजातंत्र,अहिंसा, विकेन्द्रीकरण एवं समाजवाद पर आधारित सिद्धान्त को केवल भारत के लिए ही नहीं

पूरे विश्व के लिए महत्वपूर्ण और सर्वोपरि समझते थे। समाजवाद क्या है इसे लोहिया जी ने बड़े दिल्चस्प ढंग से लोकसभा में परिभाषित करते हुए कहा था कि दृ" समाजवाद से एक सीढ़ी नीचे उतरो उस सीढ़ी का नाम है बराबरी, उस बराबरी से एक सीढ़ी और नीचे उतरो तो आती है आर्थिक बराबरी, सामाजिक बराबरी, राजनीतिक बराबरी और धार्मिक बराबरी उससे एक सीढ़ी और नीचे उतरो तो आती है आर्थिक बराबरी फिर आयेगी समता, सम्पूर्ण समता और सम्भव समता।"

लोहिया जी हिन्दू–मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक थे उन्होंने हैदराबाद में आयोजित एक सभा को सम्बोधित करते हुए कहा था कि "कोई भी देश तब तक सुखी नहीं हो सकता जब तक उसके सभी अल्पसंख्यक सुखी नहीं हो जाते।" उन्होंने कहा कि मेरा मतलब सिर्फ मुसलमानों से नहीं, अगर सच पूछो तो मै मुसलमानों को अलग से अहमियत देता हूँ पढाई लिखाई में उसी तरह से और लोग भी है, हरिजन आदिवासी आदि सभी जन जब तक सुखी नहीं होते हिन्दुस्तान सुखी नहीं होगा, यह पहला उसूल है। लोहिया जी हिन्दू–मुस्लिम एकता के साथ ही पड़ोसी देश पाकिस्तान व भारत की एकता के समर्थक थे। उन्हें इस बात का पूरा विश्वास था कि यदि इस किसी तरह हिन्दू–मुस्लिम के मन को जोड़ पाये तो हम हिन्दुस्तान व पाकिस्तान को जोड़ने का सिलसिला भी शुरू कर सकेंगे। मैं ये नहीं मानता कि हिन्दुस्तान – पाकिस्तान का बंटवारा एक बार हो चुका है तो वह हमेशा के लिए है। और किसी भी भले आदमी को यह बात नहीं माननी चाहिए।

लोहिया जी वशुधैव कुटुम्बकम् के आदर्श को मानने वाले थे तभी उन्होंने देश के बँटवारे को अच्छा नहीं समझा और दुख प्रकट करते हुए कहा कि " इस बात का बड़ा अफसोस है कि जब इस देश का बँटवारा हुआ तब मुझ जैसे लोगों ने इसके खिलाफ कोई काम नहीं किया। शायद हम इसको रोक नहीं सकते थे, कम से कम उस वक्त जेल में बैठते तो मन में एक तसल्ली होती कि हमने इसका कोई मुकाबला तो किया । उस वक्त हम चूक गए ।"उन्होंने कहा कि जिन लोगों ने सोचा था कि बँटवारे के बाद प्रेम–शान्ति रहेगी वह तो हो नहीं पाया प्रेम तो हुआ नहीं द्वेष बढ़ गया। सिर्फ फर्क इतना हे कि जो द्वेष – मनमुटाव अन्दर रहता था वो अब दो देशों के रूप में आ गया। हिन्दुस्तान–पाकिस्तान दोनों सरकारों का एक बहुत बड़ा हिस्सा पैसा, प्रचार, विदेश नीति का आज एक दूसरे को बदनाम करने में खर्च हो रहा है।उन्होने दोनो देशों के आरोप लगाने की प्रवृत्ति का बखूबी विश्लेषण किया है।

वर्तमान समय में जाति और धर्म के आधार पर समाज मे एक बिखराव नजर आ रहा है । चुनाव के समय इन्ही को आधार बनाकर हिंसा फैलायी जाती है और इससे सार्वजनिक सम्पत्ति की हानि होती है। सरकारी सम्पत्तियों को सरकार निजी हाथों में सौंप रही है और सरकार का यह कदम कही उसके समाजवाद से पूँजीवाद की ओर बढ़ने के कदम तो नही है। क्योंकि समाजवाद ही वह व्यवस्था है जो समाजिक , आर्थिक और राजनीतिक न्याय और समानता की बात करता है । इसलिये वर्तमान की समस्याओं के समाधान के लिये लोहिया जी के विचार बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो रहे है। समाज में एकता व समरसता लाने का प्रयास आज की आवश्यकता है। क्योंकि विखरे हुये और द्वेष भावना रखने वाले समाज का विकास नही हो सकता है। जहाँ व्यक्ति दूसरे की सफलता को देखकर दुखी हो और उन्हे असफल करने का प्रयास करे वह समाज बिकसित कैसे हो सकता है। और लोहिया ने सम्भव समानता की बात की है उनके अनुसार जितना सम्भव हो लोगो को उतनी समानता मिलनी ही चाहिये ।

पिछड़े लोगो को विशेष अवसर प्रदान करके उन्हे मुख्य धारा में शामिल किया जाना चाहिये जिससे वह भी आगे बढ़े।

**संदर्भ**


1– अरूमुगंन एम, सोशल थौट इन इण्डिया, नई दिल्ली स्टर्लिंग पब्लिशर्स1978

2– कपूर मस्तराम, स्मरण–लोहिया, अनामिका पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स 2016

3– कुमार मुकुल, डॉ० लोहिया और उनका जीवन प्रभात डिस्ट्रीब्यूटर्स दर्शन, 2017

4– लोहिया राममनोहर, इतिहास चक्र, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2014

5– भट्टाचार्य बी.के., मुख्य विचार लोहिया, अनामिका पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीशर्स प्रकाशन, इलाहाबाद 2012

6–विष्णु भगवान, डण्डिया पोलिटिक्स थिंकर्स, आत्मराम एण्ड सन्ज, नई दिल्ली 1976

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# पं0 मदनमोहन मालवीय और पत्रकारिता

**प्रोफेसर अतुल कुमार शुक्ला**
प्रोफेसर बी0एड0 विभाग
पं0 जवाहर लाल नेहरू पीजी कॉलेज
बाँदा

पं0 मदनमोहन मालवीय उच्चकोटि के विद्वान थे। अतः सम्पादन कला भी उच्च कोटि की थी। उन्होंने उच्चदर्शो को ध्यान में रखते हुए अपना सम्पादन कार्य करते थें अशुद्धियों के प्रति सतर्क रहते थे, विषय की उच्चता और न्यूवता के साथ–साथ उसका तत्कालीन समाज पर पड़ने वाले प्रभाव को भी ध्यान में रखकर उसका प्रकाशन करते थे। हिन्दी के उत्थान के लिए हिन्दुस्तान के सम्पादकीय विभाग में उस समय के प्रमुख साहित्य सेवी काम करने के लिए जुटाये गयें लेखों और कवियों का जमघट सा लगा रहता था। सर्वश्री अमृतलाल चक्रवर्ती, शशिभूषण चटर्जी, प्रजापनारायण मिश्र, बाल मुकुन्दी गुप्त, लाल बहादुर लाल, गोपाल राम गहमरी, गुलाब चन्द्र चौबे, रामलाला मिश्र और स्वयं राजाराम पाल सिंह हिन्दुस्तान के सहसम्पादक बने और इन सबके सिरमौर पं0 मदन मोहन मालवीय थे। पं0 मदन मोहन मालवीय की शैली और भाषा में प्रवाह होता था।[1] घटना के वर्णन करने का ढंग आकर्षक था। सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक मामलों पर जो कुछ भी बुराईयाँ होती थी उस पर गहरी चोट करने का ढंग कुछ ऐसा होता था कि चोट खाने वाला भी उसकी प्रशंसा करता था। मालवीय जी जो कुछ भी लिखते उसकी भाषा सीधी सादी बोलचाल की हिन्दी भाषा होती थी। सम्पादकीय लेखों में विशेषकर बोलचाल की भाषा का अधिक से अधिक प्रयोग करते थें लेखों में तत्सम शब्दों का पंडिताऊ अभाव और तद्भाव शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ करता था। किन्तु फिर भी उतनी मात्रा में तत्सम शब्दों का प्रयोग नहीं करते थे जितना की आजकल के हिन्दी लिखने वाले करते है। सूर और बिहारी के अन्यन्य भक्त मालवीय जी ने उन्हीं की सी भाषा का प्रयोग करना सीखा था। जन्म के स्थान पर जन्म तथा आश्चर्य के स्थान अचरज का प्रयोग उन्हीं के समान है। मालवीय जी व्यंग, और आपसी छेड़छाड़

[1] सिंह, अमर बहादुर, ''हिन्दी पत्रकारिता और मदन मोहन मालवीय'' अमर पब्लिकेशन, वाराणसी, 2003, पेज–61

से कोसों दूर रहते थे। तथा सफल पत्रकारिता के लिए प्रूफ संशोधन को अधिक महत्व देते थें लेख के प्रूफ को बार–बार देखते और भाषा को ठीक करते थे।

उनकी एक और विशेषता स्मरणीय है, हिन्दी संसार में मालवीय जी की हिन्दी का सदा एक अलग स्थान रहा है। संस्कृत के परम विद्वान होते हुये भी उन्होंने बहुत से देशज शब्दों का प्रयोग अपने लेखों में किया है। वह बड़ी सहज ओर सरल हिन्दी लिखते और बोलते थे इसलिए जब–साधारण में भी उनकी हिन्दी बड़ी प्रिय बन गई। उसी सरलता से उसका विकास और विस्तार हो सका। पत्रकारिता से जुड़े होने के कारण इसी के द्वारा इन्होंने हिन्दी के प्रचार का कार्य किया। भारतीय इतिहास का वर्तमान का फलक इतना लम्बा–चौड़ा हो गया था कि किसी बात को जन–जन तक पहुँचाते हुए अब उतनी कठिनाई नहीं रह गयी, और माध्यम बन गये थे समाचार पत्र। लेकिन यह कार्य उन्हीं के द्वारा सम्पादित समाचार पत्र जो ठीक तरह से इस कला से परिचित हो सकते थे। भारतेनदु से लेकर आज तक देश में जो पत्र और पत्रिकाएं निकली उनकी अद्‌भुत श्रंखला का एक लम्बा इतिहास है। महामना पं0 मदन मोहन मालवीय ने विभिन्न दिशाओं सम्पूर्ण आजश्विता के साथ कार्य किया।[2]

सम्पादन के क्षेत्र में उनके कार्यो को उष्मा उनके शब्दों के माध्यम से उनके लेखन के माध्यम से और उनके कार्यो के माध्यम से सामने आयी। जो कुछ कहना स्पष्ट, छल रहित और सप्रमाण जिसका निश्चित प्रभाव पड़ता है। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उन्होंने बहुत कुछ नयें दिशा निर्देश दिये जिनकी अभी–अभी चर्चा हुई है। अर्थात परिस्थिति उद्‌देश्य नीति का निर्वाह किस सीमा तक तत्कालीन समाज और उसकी आवश्यकताओं का विवरण पत्र के माध्यम कोटि का रूचि तत्कालीन पत्रकारों सहित्यकारों विद्वानों का पत्र सहयोग देश और समाज भर तत्कालीन और स्थायी प्रभाव। महामना पं0 मदन मोहन की सम्पादन कला यहाँ चर्चा का मुख्य विषय नहीं उस पर बड़े–बड़े विद्वानों और पत्रकारों ने लेखनी चलायी है। हिन्दी के क्षेत्र में पत्रकारिता ने कितना जौहर दिखाया। पं0 मदनमोहन मालवीय, तिल अरविन्द, गाँधी जी, राजगोपालाचारी जैसे महान देशभक्तों ने हिन्दी के प्रति अपने कोइ स रूप समर्पित न किया होता तो आधुनिक युग के भारतीय राष्ट्र की छल प्रबंधनमयी मानसिकता उसे किस वार्ता में डाल देती है। हिन्दी को आज भी सम्पूर्ण अस्तित्व के साथ संजीवनी प्रदान करने में महामना मालवीय जैसे महान पुरूषों का त्याग बलिदान, समर्थन और सर्वस्व ही मूल आधार है। जिसके कारण कोई भी षडयन्त्र न सफल हुआ और न सफल होने की सम्भावना है।[3]

इन महापुरूषों की शक्ति ही वह सम्बल है कि हिन्दी निरन्तर आगे जा रही है और सारे कुत्सित प्रयासों का एक समग्र उत्तर देती हुयी वह भाषी भारत के सम्पूर्ण ज्ञान–विज्ञान का गुरू दायित्व सम्भालने में समर्थ है। महामना का इस दिशा में प्रयास कुछ शब्दों या कुछ पंक्तियों में रेखांकित करना सरल नहीं हैं हिन्दी प्रेमी समाज महामना की इस महान सेवा के लिए चिर कृतज्ञ रहेगा। सम्पादक के रूप में मालवीय जी की ख्याति भारत प्रसिद्ध है। ''दैनिक हिन्दुस्तान'' के माध्यम से मालवीय जी भाषा और भारत की जो सेवा की है। वह चिरस्मरणीय है। उनके सम्पादकीय नीति का लक्ष्य था भारत की जो सेवा की है। वह चिरस्मरणीय है। उनके सम्पादकीय नीति का लक्ष्य

[2] गुप्त, केदारनाथ, ''राष्ट्र के कर्णधार'', अग्रवाल प्रकाशन, प्रयाग, 1962, पेज 39–40

[3] ओझा, कमलापति, ''देश–विदेश के महान शिक्षक'', नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स प्रकाशन, वाराणसी, 1965, पेज 87–89

था भारत के लिए स्वराज्य प्राप्ति। पं0 मदनमोहन मालवीय स्वयं भी कहते थें कि– ''भाषा की उन्नति करने में हमारा सर्वप्रथम कर्तव्य यह है कि हम स्वरूछ भाषा में हिनदी लिखें। पुस्तके भी ऐसी भाषा में लिखी जाये, जब भाषा में शब्द न मिले तब संस्कृत से लिीजिए या पुस्तकों में ऐसी भाषा चलाई जाने पर उसकी राह खुलेगी।'' ''हिन्दुस्तान'' का प्रथम प्रकाशन इग्लैण्ड में हुआ था। राजाराम पाल सिंह ने सन् 1883 में एक मासिक पत्र के रूप में नींव रखी आरमी में यह हिन्दी और अंग्रेजी इन दोनों भाषाओं में आरम्भ हुआ।

राजा साहब के स्वदेश लौट आने के पश्चात सन् 1885ई0 से यह कालाकांकर से ''दैनिक हिन्दोस्तान'' के नाम से प्रकाशित हुआ था और उसी समय कांग्रेस का पहला अधिवेशन पुनः सन् 1885 में होने वाला था। परन्तु प्राकृतिक आपदाओं के कारण यह बम्बई में हुआ था।[4] दूसरा अधिवेश में पं0 मदनमोहन मालवीय के साथ उनके गुरू अदित्यराम भट्टाचार्य थे और अपने गुरू के कहने पर मालवीय जी ने भाषण दिया उस भाषण से वे अखिल भारतीय नेता बन गये। उस अधिवेशन में कालाकांकर के शासक राजा रामपाल सिंह भी सम्मिलित थे। वह मालवीय जी से बहुत प्रभावित हुये। वह एक साप्ताहिक पत्र का संचालन करते थे और इस पत्र के माध्यम से वह स्वतंत्रता की लौ को बढ़ाते थे। उन्होंने ''हिन्दुस्तान'' को साप्ताहिक से दैनिक पत्र करने की योजना बनायी इसके लिए उन्हें कुशल सम्पादक की खोज थी। मालवीय जी उन्हें कुशल ही नहीं, बल्कि निर्भीक सम्पादक प्रतीत हुये और राजा रामपाल सिंह ने मालवीय जी से कहा– ''आपके विचारो को सुनकर मुझे अतयाधिक प्रसन्नता है आप वास्तव में स्वतंत्रता के उपासक है।''[5]

अतः आपसे मेरी विनती है कि आप मेरे पत्र ''हिन्दुस्तान'' का सम्पादन कीजिए। देश में जागृति का अलख जगाईये। मालवीय जी ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और उन्होंने राजा रामपाल सिंह से कहा ''राजा साहब! मैं ब्राम्हण हूँ मेरे कुछ नियम है, परम्परायें है आपका प्रस्ताव मै इस शर्त पर स्वीकार कर सकता हूँ कि जब आप मदिरा का सेवन किये हो तो मुझे बातचीत के लिए न बुलाये। यदि बुलायेंगे तो मै पद त्याग कर दूँगा। राजा साहब ने शर्त मान ली। मालवीय जी ने 1887 में अध्यापक पद से त्याग दे दिया और वह कालांकार पहुँचकर ''हिन्दुस्तान'' का सम्पादन करने लगे। उस समय उनकी उम्र मात्र 26 वर्ष की थी। मालवीय जी के सम्पादन में पत्र ने बड़ी ख्याति अर्जित की थी। उनके प्रभावी लेख तथा सम्पादकीय को जनमानस बड़े ढंग से पढ़ता था। तत्कालीन समस्या और राजनैतिक बिन्दुओं पर उनके लेख स्पष्ट और सटीक होते थे।''

''दैनिक हिन्दुस्तान'' में मालवीय जी को सहयोगियों के रूप में श्री शशि भूषण चटर्जी, पं0 प्रताप नारायण मिश्र, श्री बालकुकुन्द गुप्ता, श्री गोपाल राम गहमरी, श्री लालबहादुर, श्री चन्द्र चौबे, श्री शीतल प्रसाद उपाध्याय, श्री राम प्रसाद सिंह तथा श्री शिवनारायण सिंह मालवीय जी के सम्पादकीय विभाग के नवरत्न प्रसिद्ध थे। व्यवस्थित और वैज्ञानिक रूप से हिन्दी के प्रथम दैनिक समाचार पत्र के कार्यालय में ऐसे विद्वानों का समागम और सहयोग ऐतिहासिक ही कहा जायेगा। हिन्दुस्तान दैनिक का आकार

---

[4] शर्मा, श्रीराम, ''महामना पं0 मदनमोहन मालवीय जी'', युग निम्रण योजना प्रेस मथुरा

[5] कमल, मोहन ''भारतीय पुर्नजागरण तथा प्रमुख शिक्षाशास्त्री'', प्रतीक्षा प्रकाशन केन्द्र, फैजाबाद, 1981, पेज 87–89

प्रकार रायल शीट के दो पृष्ठों का था। इसका वार्षिक मूल्य दस रूपये था। दैनिक हिन्दोस्तान में मालवीय जी राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत जैसी सरल एवं सौम्य विचारधारा की कतितायें प्रकाशित करते थे। हमारे ग्राम शीर्षक में छपी हुई एक कठिन कविता इसी प्रकार की है।

कहां गए वे गांव मनोहर परम सुहाने। सबके प्यारे परम शांति दामक मजमाने।।
कपट और क्रूरता पाप और मद से निर्मल। सीधे–सादे लोग बसे जिनमें नही हलचल।।
एक भाव से जाति छत्तीसों मिलकर रहती। एक दूसरे के सुख–दुख मिल जुलकर सहती।
जहाँ न झूठा काम न झूठी मान बढ़ाई। रहती जिनकी एक मात्र आधार सच्चाई।।
कहाँ गये गांव के जहाँ थी प्रीति सवाई। एक चिन्ह भी देता उसको नहीं दिखायी।।

इस कतिा के साथ–साथ मालवीय जी ने निर्भीकतापूर्वक एक टिप्पणी भी दी थी। जिसमें उन्होंने भारतीय ग्रामों की दुर्दशा का मूल कारण विदेशी शासन को बताया था। और हिन्दी को स्थापित करके उसे निष्पक्ष और निर्भीकता से चलाने के लिए सदैव प्रतिबद्ध रहे। उन्होंने ही अखिल भारतीय सम्पादक सम्मेलन का सूत्रपात किया था।

मालवीय जी से ढाई वर्ष ''हिन्दोस्तान'' पत्र का सम्पादन किया। इस अल्पावधि में उन्होंने पत्र को व्यापक ख्याति अर्जित करायी फिर उन्होंने आकस्मिक ढंग से त्यागपत्र दे दिया। इस सम्बन्ध में जब मालवीय जी से पूँछा जाता तो वे मुस्कुरा देते थे। उनके गम्भीर व्यक्तित्व की यह खास पहचान थी। जिस बात की मालवीय जी को अशंका वह घट गयी। हुआ यह कि राजा साहब ने एक सायं को मदिरापान के पश्चात् किसी आवश्यक विषय पर विचार विमर्श के लिए मालवीय जी को बुलाया। मालवीय जी ने उनके पास आते ही शराब की बदबू संघ ली और शर्त के अनुसार हिन्दुस्तान पत्र से त्याग पत्र दे दिया।[6] ''दैनिक हिन्दुस्तान'' से त्याग पत्र देने के बाद मालवीय जी ने कलाकांकर छोड़ दिया। वे प्रयाग लौट आये। और वहाँ उनहें पुनः सम्पादन कार्य मिल गया। यह भी ''हिनदुस्तान'' के समकक्ष था। यह अंग्रेजी पत्र ''इण्डियन यूनियन'' था।[32] मालवीय जी कई वर्षो तक वह सम्पादन से जुड़े रहे। तथा सन् 1907 में बसंत पंचमी के दिन साप्ताहिक ''अभ्युदय'' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। दो वर्ष उन्होंने स्वयं पत्र का सम्पादन किया। इस पत्र के माध्यम से उन्होंने जनमानस विश्वविद्यालय की आवश्यकता से अवगत कराया। साथ ही तत्कालीन प्रमुख समस्याओं पर भी लेख लिखे। कार्यभार अधिक होने के कारण मालवीय जी इस पत्र का सम्पादन कार्य पुरूषोत्तमदास टण्डन के कंधों पर डाल दिया।

श्री टण्डन भी अपने समय के प्रसिद्ध सम्पादक थें बाद में मालवीय जी के भतीजे पण्डित कृषणकान्त इसके सम्पादक बने। आठ वर्षो की अथक मेहनत के पश्चात् में साप्ताहिक पत्र दैनिक कर दिया गया। ब्रिटिश सरकार के लिए ''अभ्युदय'' के ओजस्वी स्तर बड़ी सिरदर्दी बन गये थे। अंग्रेज अधिकारियों ने कई बार अीयुदय पर अर्थ दण्ड लगाया था। कई–कई महीने इस पत्र को प्रकाशित नहीं होने दिया गया। परन्तु मालवीय जी के दृढता में कमी नहीं आई। वह जानते थे की जीतता का मूल्य चुकाना ही पड़ता है वैसे भी उनकी दृष्टि में अखबार ही जन चेतना का सर्वोच्च माध्यम था। इस पत्र के माध्यम से वे भारतीय संस्कृति एवं समाज में सुधार लाना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने अभ्युदय की नीतियों को दृढता पूर्वक पहले से ही निश्चय कर लिया था। श्री पुरूषोत्तमदास टण्डन, पण्डित कृष्णकांत मालवीय, पण्डित वेंकटेश नारायण

[6] गुप्त, रामबाबू ''महान पाश्चात्य भारतीय शिक्षा शास्त्री'', सामाजिक विज्ञान प्रकाशन, 1988, पेज–89

तिवारी, श्री भगवानदास हालना ''अभ्युदय'' के शुभचिन्तकों में प्रमुख थे। इनके साथ ही तत्कालीन विद्वानों का भी पूर्ण सहयोग रहता था। पं0 मदनमोहन मालवीय भाषा मर्मज्ञों की इज्जत किया करते थे, उन्हें अपने सहयोग के लिए सदा बुलाते रहते थे। ''अभ्युदय'' पत्रिका के लिए उन्होंने महावीर प्रसाद द्विवेदी को सम्बोधित करते हुए लिखा था कि ''मैं आशा करता हूँ कि ''अभ्युदय'' की दोनों संख्या आपके पास पहुँच गयी और यह कि आपने उसको पसन्द किया है मेरी प्रार्थना है कि आप उसको अपने प्रोढ लेखों से सहमत कीजिए और मैं आशा करता हूँ कि आपने उनको पसन्द किया। अभ्युदय के माध्यम से महामना ने सम्पादकीय स्वतंत्रता की लडाई भी लड़ी थी। सन् 1907 में पंजाब के प्रसिद्ध दैनिक के सम्पादक–संचालक पर सरकार ने मुकदमा चलाया था। इस मामले पर महामना ने ''अभ्युदय'' में सम्पादकीय लेख लिखा और सरकारी दमन चक्र की निदा की।[7] सम्पादक के कर्तव्य पालन की प्रसंशा करते हुये। आपने यह भी लिखा कि ऐसी सरकारी नीति से समाचार पत्रों की स्वतंत्रता पर आथात होता है। इसी उद्देश्य के लिये आपने सन् 1908ई0 में प्रयाग में अखिल भारतीय सम्पादक मण्डल का आयोजन किया। जिसकी अध्यक्षता राजा रामपाल सिंह ने की और मालवीय जी इसके स्वगताध्यक्ष का अपने भाषण में आपने विदेशी सरकार की दमन नीति तथा पत्रों पर अंकुश लगाने वाले कानून का घोर विरोध किया। मालवीय जी हिन्दी के लिए ही नहीं वरन् हिन्दी के हित में सिद्ध होने वाले अन्य भाषाओं के भी पत्रों को महत्व दिया और उनका भी सम्पादन और प्रकाशन किया।

लार्ड कर्जन ने बंगाल को दो भागों में बांट दिया था। जिसका बंगाल की जनता ने बहुत विरोध किया था। लार्ड कर्जन अपने इस दुष्कर्म से सदैव भारतीय जनमानस में खलनायक के रूप में देखा जायेगा। बंगाल विभाजन की इस पीड़ा में रौद्र रूप धारण कर लिया। समूचे देश में क्रांति की ऐसी ज्वाला भड़की कि सारा स्वतंत्रता के लिए मचल उठा हर तरफ से ब्रिटिश साम्राजय विरोधी आवजें आने लगी। ऐसे वातावरण में मालवीय जी को आभास हुआ कि एक अंग्रेजी समाचार पत्र की आवश्यकता है। फलतः 24 अक्टूबर सन् 1909ई0 को ''लीडर'' पत्र का प्ररम्भ ाविजय दशमी के दिन बड़ी धू–धाम से किया गया। मालवीय जी ने स्वयं कहा था– ''इण्डियन हेराल्ड'' पत्र तीन वर्ष के प्रकाशन के पश्चात् आर्थिक संकट से घिर गया और बन्द हो गया। बहुत से मित्र ''लीडर'' के भविष्य को सन्देह की दृष्टि से देखते थे। ''पायनियर'' पत्र ने ही अपनी टिप्पणी में लीडर के विपरीत परिस्थितियों का सामना करके सिद्ध कर दिया। कि निष्पक्षता और निर्भीकता के शस्त्रों से सफलता कदम चूमती है। ''लीडर'' सम्मान पूर्वक जनता की सेवा करता रहा। वास्तव में ''लीडर'' मालवीय जी की अद्भुम कर्मशीलता का ही प्रमाण था। डेढ़ वर्ष तक पत्र चलता रहा। फिर इस पर आर्थिक संकट गहराने लगा। संचालक को इस बन्द कर देने का निर्णय लिया। उस समय मालवीय की काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना हेतु धन एकत्रित करने में व्यस्त थे। संचालकों ने उनहें पत्र की स्थिति से अवगत कराया। तब मदन मोहन मालवीय की धर्म पत्नी ने अपने सारे गहने उतार कर पत्र के उत्थान हेतु सौंप दिया। कुल गहनों को बेचने पर 37 सौ रूपये का इंतजाम हो गया। इससे पत्र को तत्कालिक सामायिक आर्थिक

[7] वर्मा, ईश्वरी प्रसादर, ''मालवीय जी के सपनों का भारत'', आर्म प्रकाशन, मन्दिर, गाँधी नगर, 2001, पेज 22–23

सहायता मिली तब से ''लीडर'' पुनः अपने पैरों पर खड़ा हो गया और निरंतर प्रगति के पथ पर बढ़ता गया तथा सन् 1925 में इस पत्र का स्वयं भवन निर्मित हो गया।
''सनातन धर्म'' नाम से ही उद्देश्य का बोध हो जाता है। मालवीय जी का उद्देश्य था कि भारतीय समाज और संस्कृति का यर्थात में विकास स्थापना हो। तथा धर्म की मूलभूत अवधारणों की स्पष्ट स्थापना हो। इसी उद्देश्य को लेकर 20 जुलाई सन् 1933ई0 को ''सनातन धर्म'' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया गया, यह पत्र हिन्दी का आदर्शत्मक पहचान थी। ज्ञान–विज्ञान आधुनिकतम स्तम्भों से सुसज्जित इस पत्र का प्रकाशन समयानुसार होता था। इसका श्रेय उन विद्वानों को था। इसका अपने गुरू से गम्भीर व्याख्यान निबन्धों को समयानुसार पत्र के सम्पादक के पास प्रस्तुत कर देते थे। स्वयं मालवीय जी इस पत्र के संरक्षक एवं संचालक एवं होते हुए निबन्ध भी लिखते थे। जिससे पत्र का महत्व और भी बढ़ जाता था। सनातन धर्म के प्रथम अंक का अग्रलख मालवीय जी का खिचा हुआ है। और उसका विषय है। सनातन धर्म का स्वरूप इस लेखकी कुछ पंक्तियों इस प्रकार है। संसार में जितने धर्म प्रचलित है। उनमें से सबसे प्राचीन वह धर्म है जो सनातन धर्म के नाम से प्रसिद्ध है। भगवान मनु कहत है। वैसे खिलो धर्ममूलम। इस पत्र का सिद्धान्त वाक्य था। ''जो हठि राखें धर्म को तेहि राखे करतार'' ''सनातन धर्म'' के दृष्टि को व्यापक एवं सारगर्भित थे। शुरू में सम्पादकीय तत्पश्चात् सामायिक महत्व के प्रश्नों पर विचार ऋतुचर्या, गोरक्षा, धर्मोरक्षित रक्षित इस्लाम दुनियाँ, सनातन धर्म और साम्रप्रदायिकता सप्ताह के समाचार आदि।[8]

स्तम्भों में प्रायः सभी अपेक्षित विषयों पर अधिकारी लेखकों के तर्क एवं वैज्ञानिक पद्धति पर लेख हुआ करते थें कवि सम्राज हरिऔध, आचार्य पं0 रामचन्द्र शुक्ल, डा0 अल्टेकर, पं0 चन्द्रबली पाण्डेय, आचार्य ध्रुव आदि तत्कालीन समस्त उच्चकोटि के विद्वान एवं लेख के इस पत्र में नियमित रूप से लिखा करते थें सनातन धर्म का बसन्त, अंक, कृष्ण अंक, रामनवमी पर प्रकाशित विशेषंक, होली विशेषांक सभी ने हिन्दी पत्रकारिता में एक मानदण्ड स्थापित किया है। पत्र सम्पादन सम्बन्धी कार्य कारिणीयों के निवारण से मालवीय जी ने कृतित्व का सहज ही अनुमान हो जाता है। अनेक पत्र और पत्रिकाओं के माध्यम से भी मालवीय जी ने हिन्दी को नई दिशा दी। इन्हीं संस्थापकों एवं पत्रों के माध्यम से मालवीय जी ने हिन्दी को नई दिशा दी। इन्हीं संस्थाओं एवं पत्रों के माध्यम से मालवीय जी ने हिन्दी के उत्थान के लिए मुकदमा भी लड़ा और विजय प्राप्त की। निःसंदेह हिन्दी साहित्य के इतिहास में मालवीय जी का योगदान चिरस्मरणीय रहेगा।

[8] तिवारी, एम0एल0, ''देशभक्त मालवीय'', हिन्दी साहित्य मन्दिर, वाराणसी, 1962

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

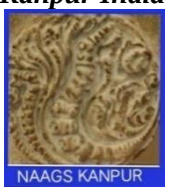


***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# भारत में दिव्यांग व्यक्ति– स्थिति, चुनौतियाँ और समाधान

**डॉ राशिदा अतहर**
सहायक प्रोफेसर मानवाधिकार विभाग
विधि अध्ययन, विद्यापीठ
बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर यूनिवर्सिटी, लखनऊ
**जया चौधरी**
शोधार्थी मानवाधिकार विभाग
बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर यूनिवर्सिटी, लखनऊ

मनुष्य को जन्म से ही प्राप्त होने वाले अधिकारों को मानवाधिकार कहा जाता है। यह अधिकार उसे मनुष्य होने के नाते प्राप्त होते है जो ना तो किसी राज्य की दया पर निर्भर करते हैं और ना ही किसी शासक की कृपा पर कुछ मानव अधिकार यथा जीवन का अधिकार, स्वास्थ्य का अधिकार , शिक्षा तथा भोजन का अधिकार संपूर्ण मानव जाति को बिना किसी भेदभाव के समान रूप से प्रदान किए जाते है। इस दर्शन का मुख्य बिंदु समानता की भावना स्थापित करना है। परंतु प्रत्येक समाज में कुछ ऐसे हाशिए पर जीने वाले समूह पाए जाते हैं जिनका विकास केवल समानता के दर्शन के आधार पर नहीं किया जा सकता है। इसीलिए उन्हें कुछ विशेष प्रावधानों , योजनाओं और नीतियों की आवश्यकता होती है। दिव्यांग व्यक्ति भी ऐसे ही एक प्रताड़ित समाज के समूह से संबंध रखते है। दिव्यांगता एक ऐसी छति है जो संज्ञानात्मक विकास, बौद्धिकगतिविधि एवं व्यक्ति के जीवन की गतिविधियों को बहुत हद तक प्रभावित करती है। अतः समय समय पर दिव्यांग व्यक्तियों की सुरक्षा , आत्मनिर्भरता तथा उनके सामाजिक और आर्थिक स्थिति में बढ़ोतरी के लिए विभिन्न सरकारों द्वारा विशेष अधिकारों की घोषणा एवं प्रमुख प्रावधानों का निर्माण किया जाता है परंतु वर्तमान परिस्थिति को देखा जाए तो दिव्यांग व्यक्तियों की आर्थिक , सामाजिक एवं शैक्षिक स्थिति लगातार पिछड़ी बनी हुई है। इस स्थिति ने करोना काल में और भी भयावह रूप ले लिया है। करोना के कारण दिव्यांग व्यक्तियों के नाना प्रकार के अधिकारों का उल्लंघन हुआ जो की ना केवल समाज , सरकार अपितु शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा उनके प्रति व्याप्त असमानता एवं भेदभाव में बढ़ोतरी आसानी से देखी जा सकती है। अतः प्रस्तुत शोध पत्र में भारत के

दिव्यांग व्यक्तियों की स्थिति से संबंधित कानून एवं चुनौतियों के विश्लेषण का प्रयास करते हुए कुछ महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत करता है।

**मुख्य बिंदु :** मानव अधिकार , दिव्यांगता ,कोरोना , सुरक्षा , कानून

**प्रस्तावना**

भारत एक लोकतांत्रिक देश है एवं इसमें सभी व्यक्तियों को एक समान अधिकार दिए गए है। समाज के वंचित वर्गों के लिए अलग से सकारात्मक एवं कानूनी अधिकार बनाए गए है। भारत में दिव्यांगजनों के लिए भी कानूनों एवं अधिकारों का प्रावधान किया गया है।संक्षेप में दो प्रकार के अधिकार होते है। पहला संवैधानिक जिनका जिक्र संविधान में है एवं समय की मांग के अनुसार संसद एवं संविधान लागू करता है और दूसरा वैधानिक अधिकार अर्थात वह अधिकार जो मौजूदा अधिकारों का संशोधित रूप होता है यह अधिकार निर्मित मौजूदा अधिकारों का संशोधित रूप होता है। [1] भारत में दिव्यांगजनों के लिए बने कानून एवं नीतियों की बात करें तो यह भारत में चल रहे बहुत बड़े आंदोलनों के जरिए प्राप्त हुए है।भारत में निःशक्त व्यक्ति (समान अवसर, अधिकार संरक्षण और पूर्ण भेागीदारी) अधिनियम, 1995 में लागू किया गया। यह अधिनियम 1995 संविधान के अनुच्छेद (253द सह पठित संघ सूची की पद क्रम संख्या 13 के अंतर्गत अधिनियमित किया गया है। निःशक्त व्यक्तियों की एशियाई और प्रशांत क्षेत्र दशाब्दी 1993–2002 को प्रारंभ करने के लिए 1 दिसम्बर से 5 दिसम्बर, 1992 को पेइचिंग में बुलाए गए अधिवेशन में एशियाई और प्रशांत क्षेत्र में निःशक्त व्यक्तियों की पूर्ण भागीदारी और समानता संबंधी उदघोषणा को अंगीकार किया गया और भारत उदुषण का एक हस्ताक्षरकर्ता है। इसके अतिरिक्त समान भागीदारी अधिकार अधिनियम के तहत दिव्यांगजनों को 7 श्रेणियों में रखा गया तथा यह कानून बनने के बावजूद भी 20 वर्ष तक अमल में नहीं लाया गया जिसके बाद नए कानून को लाने की पहल की गई जिसके तहत दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम 2016 को लाया गया जिसमें दिव्यांगजनों की श्रेणी को बढ़ाकर 7 से 21 कर दिया गया है तथा रोजगार के स्तर को बढ़ाकर 4 प्रतिशत तथा शिक्षा के आरक्षण को बढ़ाकर 5 प्रतिशत कर दिया गया है। इस अधिनियम के तहत 21 प्रकार की विकलांगता को इस प्रकार चिन्हित किया है।

1. अंधापन,
2. कम–दृष्टि,
3. सुनवाई हानि (बहरा और सुनने में कठिन).
4. कुष्ठ रोग से पीड़ित व्यक्ति,
5. लोकोमोटर विकलांगता,
6. बौनापन,
7. बौद्धिक विकलांगता
8. मानसिक बीमारी
9. ऑटिज्म स्पेक्ट्रम विकार
10. सेरेब्रल पल्सी
11. मस्कुलर डिस्टॉकी
12. जीर्ण तंत्रिका संबंधी स्थितियाँ
13. विशिष्ट सीखने की अक्षमता

[1] रोहिणी प्रसाद और सुकांता सरकार, *डिसेबिलिटी एंड ह्यूमन राइट* (ग्लोबल विजन पब्लिकेशन हाउस 2015) ,पेज नंबर 10

14. मल्टीपल स्केलेरोसिस
15. भाषण और भाषा विकलांगता
16. थैलेसीमिया
17. हीमोफिलिया
18. सिकल सेल रोग
19. बहरापन सहित कई विकलांगता.
20. एसिड अटैक पीड़ित
21. पर्किंसंस रोग[2]

2007 में भारत द्वारा यूएनसी आरपीडी पर हस्ताक्षर ओर अनुसमर्थन के बाद, निःशक्त व्यक्ति (समान अवसर, अधिकार संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 (पीडब्ल्यूडी अधिनियम, 1995) के स्थान पर एक नया कानून बनाने की प्रक्रिया 2010 में शुरू हुई ताकि इसे यूएनसी आरपीडी के अनुरूप बनाया जा सके। परामर्श बैठकों और प्रारूपण प्रक्रिया की श्रृंखला के बाद, पीडब्ल्यूडी अधिनियम, 2016 (आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम, 2016) के अधिकार संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित किए गए। इसे राष्ट्रपति की सहमति मिलने के बाद 28 दिसंबर, 2016 को अधिसूचित किया गया था।[3]

यूएनसीआरपीडी आठ प्रधानाचार्यों पर आधारित है

1. विकलांग व्यक्तियों के साथ भेदभाव रहित व्यवहार
2. समाज में विकलांग व्यक्तियों की पूर्ण भागीदारी और भागीदारी
3. विकलाग व्यक्तियों और विकलांग व्यक्तियों को उनकी अंतर्निहित गरिमा और व्यक्तिगत स्वायतता के प्रति स्वतंत्रता
4. मानवता और विविधता के हिस्से के रूप में विकलांग व्यक्तियों के अंतर और स्वीकृति के लिए सम्मान
5. अवसर की समानता
6. सरल उपयोग
7. स्त्री और पुरुष के बीच समानता
8. विकलांग बच्चों के विकास और पहचान के लिए विशेष बच्चों के अधिकारों का सम्मान।[4]

यह किसी भी प्रकार की अक्षमता वाले लोगों की स्वीकृति के बारे में बोलता है और ऐसे व्यक्तियों और समाज में उनकी पूर्ण भागीदारी सुनिश्चित करता है। चूंकि भारत संयुक्त राष्ट्र महासभा के विकलांग लोगों के अधिकारों पर सम्मेलन का हस्ताक्षरकर्ता है, इसलिए भारत के लिए ऐसा घरेलू कानून वास्तव में अनिवार्य था। 2011 में भारत की जनगणना में यह पाया गया कि भारत में 26.8 प्रतिशत लोग विभिन्न प्रकार की विकलांगता से पीड़ित है और यह जनसंख्या का 2.1 प्रतिशत है। देश में कुल विकलांगता में से 14.9 मिलियन पुरुष और 11.8 मिलियन महिलाएं है। ग्रामीण क्षेत्रों में 18.6 मिलियन विकलांग है, जबकि शहरी क्षेत्रों में 8.2 मिलियन विकलांग है।

---

[2] नंदनी घोष और सुपर्णा बनर्जी , *इंडिया सोशल डेवलपमेंट रिपोर्ट 2016* (डिसेबिलिटी राइट्स पर्सपेक्टिव ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस 2017) , पेज नंबर 6

[3] डॉ रूमी अहमद , *राइट्स आफ प्रसेंस विद डिसेबिलिटी इन इंडिया* (वाइट सिलिकॉन वाइट वेल्कन पब्लिशिंग 2015), पेज नंबर 3

[4] अवधेश कुमार सिंह , *राइट्स ऑफ डिसेबल्ड :पर्सपेक्टिव ,लीगल प्रोटक्शन एंड इश्यूज* (सीरियल पब्लिकेशन 2008) , पेज नंबर 18

## भारत में दिव्यांगता अधिनियम

### निःशक्त व्यक्ति (समान अवसर, अधिकार संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995

पीडब्ल्यूडी (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण, और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 एशियाई और प्रशांत क्षेत्र में विकलांग लोगों की पूर्ण भागीदारी और समानता पर उद्घोषणा को प्रभावी बनाने के लिए अधिनियमित किया गया था दिसंबर 1992 में बीजिंग में एशिया और प्रशांत क्षेत्र के लिए आर्थिक और सामाजिक आयोग की बैठक में विकलांग व्यक्तियों के एशियाई और प्रशांत दशक 1993–2002 को लॉन्च करने के लिए उद्घोषणा जारी की गई थी। इस अधिनियम में विकलांगों की सात शर्तों को सूचीबद्ध किया गया था, जो अंधापन, कम दृष्टि, कुष्ठ रोग का इलाज, सुनने की दुर्बलता, चलन अक्षमता, मानसिक मंदता और मानसिक बीमारी है। अधिनियम ने पीडब्ल्यूडी के संबंध में सामाजिक कल्याण के दृष्टिकोण को अपनाया और मुख्य फोकस पीडब्ल्यूडी की विकलांगता, शिक्षा और रोजगार की रोकथाम और शीघ्र पता लगाने पर था। अधिनियम ने सरकारी नौकरियों और शैक्षणिक संस्थानों में 3 प्रतिशत आरक्षण भी प्रदान किया। इसने बाधा मुक्त स्थितियों को भेदभाव रहित बनाने के उपाय के रूप में बनाने पर जोर दिया।[5]

### दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम, 2016

- विकलांग व्यक्तियों का वर्गीकरण–

विकलांग व्यक्ति बेंचमार्क विकलांगता वाले व्यक्ति उच्च समर्थन की आवश्यकता वाले विकलांग व्यक्ति

- अधिनियम 1995 द्वारा प्रदत्त निःशक्त व्यक्ति की परिभाषा के विपरीत, इस अधिनियम के अंतर्गत 21 प्रकार की विशिष्ट निःशक्तता सहित एक पूर्ण परिभाषा प्रदान की गई है।
- इस अधिनियम के तहत अधिकांश दायित्व उपर्युक्त सरकार और स्थानीय अधिकारियों पर डाल दिया गया है। इसके साथ (कुछ निजी क्षेत्र के) प्रतिष्ठानों पर कुछ बाध्यताएं भी लगाई गई हैं।
- अधिनियम 2016 विकलांग व्यक्तियों के खिलाफ भेदभाव को प्रतिबंधित करता है जब तक कि यह नहीं दिखाया जा सकता कि भेदभाव का कार्य वैध उद्देश्यों को प्राप्त करने का एक आनुपातिक साधन था।
- निशुल्क शिक्षा के अधिकार (6 से 18 वर्ष की आयु के बीच), शिक्षा में आरक्षण, सरकारी नौकरियों, भूमि आवंटन, गरीबी उन्मूलन योजनाओं आदि जैसे अतिरिक्त लाभ बेंचमार्क विकलांग लोगों को उपलब्ध कराए गए हैं।[6]
- सरकारी रिक्तियों में आरक्षण विकलांग व्यक्तियों के लिए 3 प्रतिशत से बढ़ाकर 4 प्रतिशत कर दिया गया है[7]।

त्वरित सुनवाई सुनिश्चित करने के लिए प्रत्येक जिले में विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों के उल्लंघन से संबंधित मामलों को देखनेके लिए विशेष अदालतों का प्रावधान किया गया है।[8]

---

[5] निःशक्त व्यक्ति (समान अवसर, अधिकार संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995

[6] दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम 2016, धारा 31

[7] उपरोक्त, धारा 32

**भारत में दिव्यांगता : जनसंख्या , डेटा और तथ्य**

**कुल विकलांग जनसंख्या**

कुल मिलाकर, 2.21 प्रतिशत भारतीय आबादी किसी न किसी तरह की विकलांगता से ग्रस्त है। इसका मतलब है कि भारत में 2.68 करोड़ (26.8 मिलियन) लोग विकलांग हैं।

**विकलांग पुरुष जनसंख्या**

कुल 62.32 करोड़ पुरुष भारतीय नागरिकों में से, भारत में 1.5 करोड़ (15 मिलियन) विकलांग पुरुष हैं।

**विकलांग महिला जनसंख्या**

कुल 58.76 करोड़ महिला भारतीय नागरिकों में से, भारत में 1.18 करोड़ (11.8 मिलियन) विकलांग महिलाएं हैं।

**ग्रामीण शहरी क्षेत्रों में रहने वाली विकलांग जनसंख्या**

कुल विकलांग भारतीय आबादी का लगभग 69 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में रहता है। यह बताता है कि 1.86 करोड़ (18.6 मिलियन) विकलांग लोग ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं। शहरी क्षेत्रों में केवल लगभग 0.81 करोड़ (8.1 मिलियन) विकलांग लोग रहते हैं।[9]

**दिव्यांगता के प्रकार द्वारा दिव्यांग जनसंख्या**

निःशक्त भारतीय जनसंख्या का निःशक्तता के प्रकार के आधार पर विभाजन निम्नलिखित है। अधिनियम 2016 से पहले , केवल सात प्रकार की अक्षमताओं को मान्यता दी गई थी। विकलांग अधिनियम 2016 के तहत कुल 21 प्रकार की अक्षमताओं को मान्यता दी गई है।

19 प्रतिशत लोगों को दृष्टि संबंधी दिव्यांगता है
अन्य 19 प्रतिशत लोगों को सुनने से संबंधित दिव्यांगता है
7 प्रतिशत लोगों को बोलने में दिक्कत होती है
20 प्रतिशत लोग गतिमान अक्षमताओं से ग्रसित हैं
6 प्रतिशत लोग मानसिक मंदता से प्रभावित हैं
3 प्रतिशत लोग मानसिक बीमारी से पीड़ित हैं
18 प्रतिशत लोग अन्य प्रकार की अक्षमताओं से ग्रसित हैं
8 प्रतिशत लोग बहु–विकलांगता से ग्रस्त हैं

भारतीय दिव्यांग जनसंख्या की शैक्षिक स्थिति

भारत में विकलांग (दिव्यांगजन) व्यक्तियों की रिपोर्ट के अनुसार

| भारतीय दिव्यांग जनसंख्या की शैक्षिक स्थिति | पुरुष दिव्यांगता प्रतिशत | महिला दिव्यांगता |
|---|---|---|
| निरक्षर | 38 प्रतिशत | 55 प्रतिशत |
| साक्षर | 62 प्रतिशत | 45 प्रतिशत |
| साक्षर लेकिन प्राथमिक से नीचे | 11 प्रतिशत | 10 प्रतिशत |
| प्राथमिक लेकिन मध्य से नीचे | 15 प्रतिशत | 11 प्रतिशत |
| माध्यमिक विद्यालय | 11 प्रतिशत | 7 प्रतिशत |
| मैट्रिक लेकिन स्नातक से नीचे | 25 प्रतिशत | 9 प्रतिशत |
| स्नातक और ऊपर | 11 प्रतिशत | 7 प्रतिशत |

[8]उपरोक्त , धारा 34

[9]पर्सन विद डिसेबिलिटी दिव्यांगजन इन इंडिया स्टैटिसटिकल प्रोफाइल 2021

## भारत में दिव्यांगजनो से जुड़ी हुई चुनौतियां और मुद्दे

विकलांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम, 2016 की धारा 8 इन स्थितियों में विकलांग व्यक्तियों के लिए समान सुरक्षा और सुरक्षा की गारंटी देती है। लेकिन कोरोना के कारण अलग–अलग तरीकों से विकलांगों के अधिकारों का उल्लंघन हुआ है। महामारी हमारी पीढ़ी के सबसे बड़े सामाजिक और आर्थिक संकटों में से एक है, जिसने व्यवस्थित रूप से हाशिए पर रहने वाले समुदायों के बहिष्कार को उजागर और बढ़ा दिया है। अभूतपूर्व सार्वजनिक स्वास्थ्य आपातकाल और उसके बाद के लॉकडाउन और रिकवरी उपायों ने विकलांग लोगों को असमान रूप से प्रभावित किया है , जो अशांति और संकट के समय में उपेक्षा और बहिष्कार के लिए सबसे कमजोर समूहों में से एक हैं। आधिकारिक अनुमानों के अनुसार, भारत की लगभग 2.2 प्रतिशत आबादी विकलांग है। विकलांग लोग (पीडब्ल्यूडी) दूसरों की तुलना में कोविड –19 जैसे वायरस के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। हम एक सामान्य एहतियात के तौर पर हाथ धोना लेते हैं, लेकिन पीडब्ल्यूडी को इस अभ्यास का बार–बार पालन करने के लिए गंभीर सीमाओं का सामना करना पड़ा। साथ ही उनके लिए सार्वजनिक शौचालय का भी अभाव रहा। अगला सोशल–डिस्टेंसिंग है, लेकिन अधिकांश पीडब्ल्यूडी शारीरिक बाधाओं के कारण दूसरों पर निर्भर है। कई विकलांगों को अक्सर अस्पतालों और पुनर्वास केंद्रों का दौरा करना पड़ा। इसके अलावा, अधिकांश पीडब्ल्यूडी काफी हद तक देखभाल करने वालों (परिवार, रिश्तेदार या पेशेवर) पर निर्भर हैं। कई देखभाल करने वाले अपनी सेवाएं प्रदान करने के लिए अनिच्छुक हो सकते हैं क्योंकि कोरोनावायरस अत्यधिक संक्रामक है। बौद्धिक अक्षमता वाले व्यक्तियों से अभ्यास करने या आत्म–अलगाव का सामना करने की अपेक्षा नहीं की जा सकती है।

## दिव्यांगजनो पर कोविड–19 का प्रभाव

कुल मिलाकर, हर पांच में से 2 लोगों (42.5 प्रतिशत ) ने बताया कि लॉकडाउन ने उनके लिए नियमित चिकित्सा देखभाल तक पहुंचना मुश्किल बना दिया था। पहले से मौजूद चिकित्सा स्थिति वाले लोगों में (जो कि 12.7 प्रतिशत थी), 58 प्रतिशत ने कहा कि उन्हें नियमित चिकित्सा देखभाल प्राप्त करने में कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। इसलिए, पूर्वगामी चिकित्सा समस्याओं वाले विकलांग व्यक्तियों को उन लोगों की तुलना में काफी अधिक नुकसान उठाना पड़ा जिनके पास कोई पूर्ववर्ती स्वास्थ्य स्थिति नहीं थी। लगभग एक चौथाई ने अपनी दवाएं प्राप्त करने में कठिनाई की सूचना दी, जबकि 28 प्रतिशत ने लॉकडाउन के कारण अपनी निर्धारित चिकित्सा नियुक्तियों को स्थगित करने की सूचना दी। आधे से अधिक विकलांग व्यक्तियों ने माना कि निरंतर लॉकडाउन का उनके स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव पड़ा है।

## पुनर्वास सेवाएं

पुनर्वास सेवाओं की आवश्यकता वाले 17 प्रतिशत में से 59.4 प्रतिशत इसे प्राप्त करने में विफल रहे। विकलांगता के विभिन्न समूहों में पहुंच में रिपोर्ट की गई कठिनाइयां समान थीं, जिससे यह उजागर हुआ कि विकलांग व्यक्तियों की चिंताएं सभी विकलांगों में समान हैं। पुनर्वास सेवाओं की आवश्यकता वाले अधिकांश लोगों ने कहा कि यह फिजियोथेरेपी के लिए था जिसमें तालाबंदी के दौरान समझौता किया गया था।

## मानसिक स्वास्थ्य

कोविड 19 महामारी के लिए महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएं भय और चिंता, घबराहट, निराशा की भावनाओं से लेकर अवसाद तक भिन्न होती हैं। नोवल कोरोनावायरस से संक्रमित होने का डर और आय का नुकसान विकलांग व्यक्तियों को

सबसे अधिक प्रभावित कर रहा था। 81.6 प्रतिशत ने मध्यम से उच्च स्तर के तनाव का अनुभव करने की सूचना दी। इससे पता चलता है कि विकलांग व्यक्तियों के लिए मानसिक स्वास्थ्य सहायता सेवाओं को बढ़ाने की तत्काल आवश्यकता है।

**भेदभाव के बाद कलंक और पारिवारिक संबंधों पर प्रभाव**

विकलांग व्यक्तियों द्वारा रिपोर्ट की गई मनोवैज्ञानिक–सामाजिक समस्याओं का प्रमुख कारण थे। अलगाव, परित्याग और हिंसा अन्य चिंताजनक मनो–सामाजिक समस्याएं थीं, जो कठिन समय के दौरान सहानुभूति की कमी को दर्शाती हैं। 34.5ः लोगों ने कहा कि उन्हें मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दों पर जानकारी की आवश्यकता है, केवल 25.9ः के पास ऐसी सेवाओं तक पहुंच है। कोविड –19 के प्रकोप और लॉकडाउन के दौरान केवल 20ः नियमित मानसिक स्वास्थ्य परामर्श या चिकित्सा संबंधी सेवाएं प्राप्त करने में सक्षम थे, और 11.4 प्रतिशत को अपनी नियमित मनोरोग दवाएं प्राप्त करने में समस्या का सामना करना पड़ा। विकलांग व्यक्तियों की देखभाल करने वालों की मानसिक स्वास्थ्य संबंधी चिंताओं का भी पता लगाया गया और महत्वपूर्ण सुराग देखे गए। उनमें से आधे ने विकलांग बच्चों या परिवार के अन्य सदस्य की देखभाल करने पर मामूली तनाव महसूस किया। 58.2 प्रतिशत इस बात से नाखुश थे कि उनके विकलांग बच्चे के लिए चिकित्सा सत्र लॉकडाउन के दौरान बंद हो गया है।

हर पांच में से चार (81.6 प्रतिशत ) विकलांग लोगों ने कहा कि उन्हें दैनिक जीवन के लिए सहायता की आवश्यकता है और परिवार की देखभाल करने वालों ने सबसे अधिक सहायता की। परिवार के समर्थन के कारण, 55.8 प्रतिशत ने महसूस किया कि अगर फिर से लॉकडाउन की ऐसी स्थिति पैदा होती है तो वे प्रबंधन कर सकते हैं।

**आजीविका**

जैसा कि अपेक्षित था, तालाबंदी के कारण आजीविका पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। 84.2 प्रतिशत ने कहा कि उनका दैनिक जीवन प्रभावित हुआ है। ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में गतिशीलता की कमी ने संकट को जन्म दिया। एक तिहाई (34.3 प्रतिशत ) के लिए, यहां तक कि पीने के पानी की आपूर्ति भी प्रभावित हुई। एक तिहाई (33.1 प्रतिशत ) भी कहा कि उनकी पेंशन प्रभावित हुई है। लगभग 45.7ः विकलांग व्यक्तियों को मुख्य रूप से आजीविका के लिए तालाबंदी के दौरान पैसे उधार लेने के लिए मजबूर किया गया था। 84.7 प्रतिशत को वित्तीय संकट से निपटने के लिए उधार लेना पड़ा या भोजन के लिए समर्थन के लिए अनुरोध करना पड़ा। 18.2 प्रतिशत ने बताया कि समावेशी सहकारी समितियों द्वारा ऋण दिए गए थे।

**शिक्षा**

एक भारी अनुपात (73.3 प्रतिशत ) ने कहा कि बच्चे स्कूल बंद होने से व्यथित थे और इसने सीखने (स्कूल स्तर की शिक्षा) को प्रभावित किया। यह याद रखना चाहिए कि स्कूल बंद होने से न केवल शिक्षाविदों पर असर पड़ता है बल्कि स्कूल के भोजन कार्यक्रमों, विशेष शिक्षा, चिकित्सा, परामर्श और साथियों के समर्थन और रिश्तेदारी पर भी गहरा असर पड़ता है।

**निष्कर्ष**

मानवाधिकार कानून द्वारा समर्थित मूल्य (गरिमा, समानता, स्वायत्तता और स्वतंत्रता) व्यक्ति की मूल स्वतंत्रता का आधार बनते हैं, जो शक्ति के दुरुपयोग से सुरक्षा प्रदान करते हैं और मानवीय भावनाओं के विकास के लिए जगह बनाते हैं। यह कहना गलत नहीं होगा कि मानवाधिकार वह शक्ति है जो व्यक्ति को समाज के सम्मान में खड़े होने की शक्ति देती है। मानवाधिकार किसी भी व्यक्ति के लिए सिर्फ अधिकार नहीं बल्कि

स्वाभिमान है। इसलिए विकलांग व्यक्ति एक विशेष व्यक्ति होता है जिस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है, इसलिए उसे विशेष मानवाधिकार दिए जाने चाहिए। पीडब्ल्यूडी अधिनियम, 2016 के अधिनियम में विकलांग लोगों के अधिकारों की रक्षा करना है, अवसर की समानता प्रदान करना, विशेष रूप से रोजगार के संबंध में। पीडब्ल्यूडी अधिनियम 2016 ने इन कानूनों को समेटने की कोशिश की है और अवसर की समानता प्रदान की गई है। परंतु यह देखा गया कि करोना काल में दिव्यांगजनों के अधिकारों का उल्लंघन भयावह रूप से हुआ इसलिए यह अति आवश्यक है कि 2016 के अधिनियम में उनके दिए गए अधिकारों को कड़ाई से लागू किया जाए ताकि आने वाले समय में उनके साथ किसी भी प्रकार के अधिकारों का उल्लंघन ना हो सके।

**सुझाव**

1. लोगों को विकलांगता और विकलांगता कानूनों के बारे में पता होना चाहिए। उन्हें अपनी मानसिकता बदलनी होगी। उन्हें यह समझाना होगा कि विकलांगता कोई बोझ नहीं है पीडब्ल्यूडी भी हमारी तरह इंसान है। उनमें संवेदनाएं भी होती हैं और यदि उन पर उचित ध्यान दिया जाए तो उनके कौशल को समाज के सामने लाया जा सकता है। इनके साथ मेहनत करके इन्हें अपने पैरों पर खड़ा भी किया जा सकता है, इन्हें स्वतंत्र बनाया जा सकता है।
2. विकलांग परिवारों को सरकार द्वारा प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, ताकि परिवार विकलांगों की सहायता के लिए आगे आ सके। इतना ही नहीं ऐसे परिवार के सदस्यों को विशेष रूप से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए, उन्हें आवश्यक सहायक उपकरण उपलब्ध कराए जाने चाहिए। सामान्य हो या विकलांग, परिवार ही इसकी प्रथम पाठशाला है। परिवार पहली सीढ़ी है जहां से वह चढ़ना सीखता है। परिवार का सहयोग किसी भी व्यक्ति के लिए सबसे बड़ा सहारा होता है, इसलिए यह जरूरी है कि उनके परिवार विकलांग बच्चों की हर तरह से मदद करें।
3. जहां शैक्षणिक संस्थानों में विकलांग व्यक्तियों के लिए आरक्षण का लाभ दिया गया है, उनके अनुसार पाठ्यक्रम बनाया जाना चाहिए। साथ ही आसान शिक्षा पद्धति और शिक्षा की भाषा पर जोर दिया जाना चाहिए।
4. गांव से गांव और शहर से शहर में जागरूकता फैलाने के लिए जरूरी है कि स्कूल कॉलेज के छात्र इस संबंध में नुक्कड़ शो करें। इस संबंध में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, प्रिंट मीडिया, कोचिंग सेंटरों को सक्रिय रूप से भाग लेना चाहिए।
5. विकलांग व्यक्तियों, उनकी देखभाल करने वालों और स्वास्थ्य और विकासात्मक प्रणालियों की चिंताओं को उजागर किया है। भविष्य में ऐसी आपात स्थितियों से निपटने के लिए प्रोटोकॉल और दिशानिर्देश तैयार करने के लिए इन अवलोकनों का उपयोग किया जाना चाहिए। सरकारों के साथ हिमायत करना महत्वपूर्ण है ताकि भविष्य में इस तरह के स्वास्थ्य या गैर–स्वास्थ्य आपातकाल की प्रतिक्रिया को जल्दी से शुरू और संचालित किया जा सके। प्रतिक्रिया चक्र में बहुत समय गंवाने के बजाय प्रतिकूल प्रभाव को कम करने के लिए एक समावेशी योजना जल्दी से लागू की जानी चाहिए और तुरंत लागू की जानी चाहिए।
6. विशेष सहायता और विकलांगों के अनुकूल कोविड –19 प्रोटोकॉल उनके लिए उपलब्ध और सुलभ होने चाहिए।

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# संविधान के दार्शनिक आधार एवं प्रशासक के मूल्य तत्व

**प्रेमनाथ त्रिवेदी**
असिस्टेंट प्रोफेसर, विधि विभाग
विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज कानपुर

प्रस्तावना संविधान के दर्शन का प्रमुख स्रोत हैं। इसमें कुछ ऐसे तत्व निहित है जिनका सार्वभौमिक मूल्य है। ये भारत की जनता के मूल ढाँचे का निर्देशक है। यह प्रशासनिक नैतिकता व राष्ट्र की प्रशासनिक मूल्य व्यवस्था का मूल आधार भी है। प्रत्येक प्रशासनिक व्यक्ति से यह आकांक्षा रखी जाती है कि वह अपने प्रशासनिक कार्यों को इन्हीं मूल्य व्यवस्था पर आधारित करेगें। प्रस्तावना संविधान की कुंजी है। जो कुछ भी संविधान में व्यापक रूप से व्याख्यित किया जाता है वह प्रस्तावना में सूक्ष्म रूप से व्यक्त होता है। ''प्रस्तावना में संविधान के आदर्श, लक्ष्य व मूल सिद्धान्त सम्मिलित है। संविधान के प्रमुख लक्षण प्रस्तावना में उल्लेखित इन्हीं उद्देश्यों से प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से विकसित हुए हैं।'' इसी भावना से एक विद्वान व्यक्ति ने कहा है कि यह मूल्य व्यवस्था व भारतीयता की भावना का स्रोत है। ''पण्डित ठाकुर दास ने इसे संविधान का श्रेष्ठतम वैभवपूर्ण भाग, संविधान की आत्मा, संविधान की कुंजी एक श्रेष्ठ गद्य कविता के रूप में व्याख्यित किया हैं।'' संविधान का प्रत्येक शब्द प्रशासक के लिए महत्वपूर्ण है। वह व्यक्ति विशेष को राष्ट्र की आत्मा व भावना का सर्वाधिक अखण्ड भाग बना देता है जिसका वह न केवल अखण्ड भाग है बल्कि विकास, वृद्धि सुधार एवं विकास और प्रशासन विकास आधारित सामाजिक जनकल्याण व्यवस्था को लागू करवाने वाला मुख्य चालक है।

प्रस्तावना के तत्व पं0 नेहरू द्वारा 22 जनवरी 1947 को संविधान सभा में प्रस्तुत उद्देश्य प्रर्वतिका पर निर्भर करते हैं। ये तत्व अपने में सम्पूर्ण है परन्तु अन्य क्षेत्र जिससे प्रशासक प्रशासनिक नैतिकता के मुख्य तत्वों को प्राप्त कर सकता हैं। एक प्रशासक के मूल्य तत्वों को संविधान के अन्य दार्शनिक आधारों से प्राप्त कर सकता है, संविधान में बहुल और विभिन्न हैं। इनमें मूल अधिकार, राज्य के नीति–निर्देशक तत्व व मूल कर्तव्यों को सम्मिलित किया जाता है। मूलभूत अधिकार इस तथ्य का व्यक्तिकरण है कि भारतीय संविधान निर्माताओं ने व्यक्तिवाद को विशेष महत्व प्रदान किया हैं। उन्होंने विचार किया कि व्यक्ति के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य व्यक्तित्व विकास

होना चाहिए जिससे गुणवत्ता पूर्ण जीवन का निर्माण हो सके। व्यक्तित्व का पूर्ण व्यक्तीकरण तभी सम्भव हो सकता हैं जब व्यक्ति को स्वतंत्रता और समान समानता राज्य द्वारा प्रदान की जाती हैं। जब व्यक्ति को समाज में समानता प्रदान की जा सके। इसलिए मूलभूत अधिकार राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को यह सुनिश्चित करते हैं कि वह पूर्ण स्वतंत्रता का प्रयोग करते हुए कार्य कर सके, इसका अपवाद संविधान में उल्लेखित युक्तियुक्त निर्बन्धन है जो कि संविधान द्वारा प्रत्येक व्यक्ति पर आरोपित किए जाते है। इन युक्ति युक्त निर्बधनों ने राष्ट्र व संविधान को अवांछनीय क्रियाओं से पूरी तरह से उन्मुक्ति प्रदान की है। इसने राष्ट्र को अंखण्डित एवं एकता व अखण्डता बनाए रखने में सहायता प्रदान की है। कोई भी प्रशासक इन सीमाओं के परे नहीं है। प्रत्येक को इन अधिकारों व युक्ति युक्त निर्बधन सीमा के अन्तर्गत रहते हुए कार्य करना है क्योंकि प्रशासक राष्ट्र में कानून लागू करने वाला है, अतएव यह आवश्यक हैं कि प्रशासक भी इन अधिकारों को सम्मान प्रदान करेगा व सभी नीतियों को संविधानिक सीमाओं के अन्तर्गत ही लागू करेगा। प्रशासक नागरिकों के मूलभूत अधिकारों का भी सम्मान करेगा। ये अधिकार प्रशासक के लिए राष्ट्र के शासन हेतु मूलभूत है। कोई शासन संरचना इसका अपवाद नहीं है। ये अधिकार ऐसी मूल संरचना का निर्माण करते है जिसके ऊपर भारतीय समाज का उदार वातावरण निर्मित होता है।

व्यक्ति की मूल्य व्यवस्था का दूसरा स्रोत राज्य के नीति–निर्देशक तत्व से उत्पन्न होता है। यह सत्तारूढ़ सरकार हेतु नीति निर्देशन है कि उसे नीति निर्माण राज्य के नीति निर्देश के निर्देशन में करना चाहिए। ये महत्वपूर्ण हैं क्योंकि यह उसे व्याख्यित करते हैं जिन्हें प्राप्त करना है। इसमें हमारे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन के वे लक्ष्य सम्मिलित है जो कि अभी दूर स्थित स्वप्न हैं।[1]

इस परिप्रेक्ष्य में एक प्रशासक के लिए यह एक कर्त्तव्य हो जाता है कि उसे अपनी प्रशासनिक क्षमता का प्रयोग इस तरह से करना चाहिए कि इन आदर्शों को प्राप्त किया जा सके। प्रशासक के लिए यह सम्भव नहीं हैं कि राज्य के नीति–निर्देशक तत्व लागू करने हेतु नए कानून निर्मित करे क्योंकि यह कार्य विधायिका का है। इन सीमाओ के बावजूद प्रशासन राज्य के नीति–निर्देशक तत्व से मूलतत्व व मूल को प्राप्त करता है। इसने प्रशासक इन प्रावधानों पर निर्भर होने के बाद बेहतर तरह से यह ज्ञात कर लेता हैं कि प्रशासन के वास्तविक क्षेत्र क्या हैं जहाँ प्रशासन को कार्य करना हैं। प्रशासक की मूल्य व्यवस्था का एक अन्य स्रोत यह भी है जो कि मूलभूत कर्त्तव्य रूप में उपलब्ध है जिन्हें 42वें संविधान संशोधन के बाद जोड़ा गया हैं। यह संशोधन श्रीमती इंदिरा गाँधी सरकार द्वारा 51(क) के रूप में संविधान में सम्मिलित किया गया था। जिसे नए प्रावधान ने संविधान में मूल कर्त्तवयों को जोड़ राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक द्वारा अपने जीवन में किया जाना है।

एक प्रशासक राष्ट्र का कोई विशिष्ट व्यक्ति नहीं है। वह नागरिक पहले है। इसी के साथ वह एक प्रशासक भी है जिसे जनता व सरकार द्वारा एक महत्वपूर्ण कार्य दिया गया है कि वह अपने कार्यों व कर्तव्यों का उत्तरदायित्व निर्वहन कर सके।

इस पृष्ठभूमि में प्रशासक की भूमिका महत्वपूर्ण है। प्रशासक न केवल इसे संरक्षित करता है, इनका निर्वहन करता है बल्कि इन मूलभूत कर्त्तव्यों से कई नवीन तत्वों को ग्रहण भी करता है। पूर्ण अध्ययन पर यह कहा जा सकता है यह संविधान है

[1] ए0आई0आर0 2002 एस0सी0 1895 : (2002) 5 एस0सी0सी0 203

जिसने नागरिक व प्रशासक को मूल्य प्रदान किए है। कोई भी प्रशासनिक व्यवस्था इनके बिना कार्य नहीं कर सकती है।[2] प्रशासन का संवैधानिक आधार लोकतंत्र और स्वतंत्र राष्ट्र में अन्तिम सत्य हैं।

राष्ट्र का शासन चलाने हेतु मूल्य प्रमुख है। विभिन्न प्रशासनिक परिस्थितियों में यह निश्चित विभिन्न रूप ग्रहण कर लेते है। वास्तविकता में यह संविधानिक पृष्ठभूमि से ही जीवन प्राप्त करते है।

एक प्रशासन न केवल सरकारी नीति को लागू करता है बल्कि यह सतत् रूप से नई योजनाओं व कार्यक्रमों को विकसित भी करता है जो जनता हेतु होती है। इस सन्दर्भ में वह एक रचनाकार हैं। विभिन्न विचारको ने उसे इस दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। चार्ल्स गुड सेल ने ''प्रशासक को एक कलाकार के आधार पर निर्मित किया है जो कि एक दृष्टिकोण का आधार प्रदान करता है जो कि सरकार के कार्यों को 'सूक्ष्म स्तर' पर ध्यान केन्द्रित करती हैं। सौंदर्यशास्त्र के क्षेत्र व कला के सिद्धान्त से उधार लेते हुए प्रशासक की कार्यशैली, स्वरूप और रचनात्मकता इत्यादि को व्यक्त किया है। गुडसेल इस दृष्टि को एक मानत्मक सिद्धान्त रूप में व्यक्त करते है जो दक्षता, मितव्यता व जवाबदेही जैसी संदर्भों को सहयोग प्रदान करते है।''

इस परिप्रेक्ष्य में प्रशासक को एक कलाकार की तरह योजना बनानी है जैसे कलाकार कृति की रचना करता है। प्रशासक ऐसा तब कर सकता है जब वह मूल्यों को महत्व देता है। बिना नैतिक आधार पर प्रशासक ऐसा नहीं कर सकता। प्रशासन की कला इन मूल्यों का अपने में समाहित करना आवश्यक मानती है। ''इन मूल्यों का समाहन एक सम्पूर्ण दक्षता विकसित करने में सहायता प्रदान करता है जो सुशासन व स्वशासन में उत्पन्न समस्याओं के लिए एकमात्र सुझाव रूप में प्राप्त होता है।''सुशासन विकासशील देश भारत के लिए त्वरित आवश्यकता है। ये मांग करती है कि नौकरशाही मूल्य व्यवस्था की इस पृष्ठभूमि में काम करे। मूल्य स्थानीय और सार्वभौमिक हो सकते हैं लेकिन सार्वभौमिक मूल्य वे मूल्य हैं जो कि हमारे संविधान में समाहित किए गए हैं एवं वह उचित प्राशासनिक व्यवस्था की कार्य संस्कृति में निहित है। प्रत्येक सामाजिक ढाँचे व सांस्कृतिक ढाँचे, में एक बहुल समाज में जैसा हम अपने राष्ट्र में अनुभव करते है यह सार्वभौमिक मूल्य एकीकरण को निर्धारित करते है। राष्ट्र की इन विभिन्नताओं का सम्मान किया जाता है व सार्वभौतिक मूल्य ढाँचे के द्वारा ही इन्हें नियमित किया जाता है जिसे प्राशासनिक व राज कार्यकर्ता अपने कार्यों द्वारा व्यक्त करते है।

इसलिए यह स्वीकार किया जाता है ''यद्यपि सभी मूल्य व्यवस्थाओं के मूल में कुछ विशिष्ट सार्वभौमिक मूल्य है जो सार्वभौमिक स्वीकार की जाती है। ये पूर्ण मानवता को बेहतर स्थित की तरफ ले जाते है। एक उपलब्ध संस्कृति में मूल्य व्यवस्था में कुछ विचलन यद्यपि परिस्थितियोंवश घटित हो सकता है।'' यह विभिन्नता एक बहुल समाज जैसे भारत में घटित हो सकता है लेकिन राष्ट्र में प्रशासन सार्वभौमिक मूल्य ढाँचे पर आधारित हैं, संविधान जिसका प्रमुख व्यक्तिकरण है अतएव ये विभिन्नताएँ कभी भी संविधानिक मूल्यों को पार नहीं कर सकती हैं क्योंकि ये महान दार्शनिको के मस्तिष्कों के प्रतिबिम्ब हैं। यह मूल्य इसलिए प्रशासक के लिए आवश्यक है कि ये संविधान द्वारा स्थापित किए जाते हैं लेकिन निश्चित उदाहरणों में यह नया स्वरूप और दृष्टिकोण को ग्रहण कर सकते है उदाहरणस्वरूप प्रशासक विकेन्द्रीकृत शासन को प्राप्त करना चाहता

[2] ए0आई0आर0 1957 एस0सी0 699 : 1957 एस0सी0आर0 874– गिरिधर मालवीय (पूर्व न्यायाधिश उच्च न्यायालय, इलाहाबाद) द्वितीय संस्करण मॉडर्न ला पब्लिकेशन

हैं। उस स्थिति में नए मूल्यों की उत्पत्ति होती हैं जो कि यद्यपि निश्चित संविधानिक स्थिति से सम्बन्धित होंगे। प्राशासनिक मूल्य राजनीतिक मूल्यों के उपभाग है। एक विकेन्द्रीकृत लोकतांत्रिक व्यवस्था जो कि भारत में पाई जाती है उसमें 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन के बाद गांव और नगर स्तर पर स्थानीय सरकार की स्थापना की गई है। यहाँ प्रशासनिक मूल्यों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है। राजनीतिक मूल्य जो संविधान व महान राष्ट्र परम्परा से प्राप्त होते हैं एक महत्वपूर्ण भूमिका इस परिप्रेक्ष्य में निर्वाहित करते हैं।[3] जैसे राजनीतिक मूल्य और विकेन्द्रीकृत राजनीतिक व्यवस्था के प्रयोग लोकतांत्रिक मूल्यों से व्यापक स्तर पर जुड़ जाते है व इन व्यवस्थाओं को इस योग्य बनाते है कि वे इनमें योगदान कर सके। ''विकेन्द्रीकृत शासन व्यवस्था के सबसे प्रमुख राजनीतिक मूल्य में शक्ति का विकेन्द्रीकरण, नीति–निर्माण में प्रत्यक्ष भागीदारी व मतभेदो को कम करते हुए उनका सुलझाव करना, मतविचार विभेद को सम्मान देना, अल्पसंख्यक मत को संरक्षित करना व निर्णय लेने में आम सहमति को प्रोत्साहित करना सम्मिलित किया जा सकता है।'' प्रशासनिक मूल्य व्यवस्था राजनीतिक मूल्य व्यवस्था से अलग नहीं रह सकती क्योंकि यह इसका महत्वपूर्ण अवयव है। प्रशासनिक मूल्य व्यवस्था की भूमिका इस सन्दर्भ में और अधिक तीव्र हो जाती हैं एवं विकेन्द्रीकृत शासन को लागू करने में योगदान देती है। भारत एक ग्रामीण देश हैं जहाँ शक्ति का विकेन्द्रीकरण घटित हुआ है। इस व्यवस्था में प्रशासनिक व्यवस्था की भूमिका पर्याप्त महत्वपूर्ण है जिसे केवल संवैधानिक मूल्य, सार्वभौमिक मूल्य और राजनीतिक–प्रशासनिक मूल्यों को आपस में जोड़कर पूर्ण किया जा सकता हैं और यदि आवश्यकता उत्पन्न होती हैं तब नए मूल्यों का अविष्कार करना, जो कि यद्यपि अपना स्रोत देश की विधि में रखती हैं। भारतीय प्रशासक पूरे देश का मुख्य आधार हैं उसे लोक नीतियों को लागू करना हैं और जनता के उत्थान हेतु सरकारी कार्यक्रमों और योजनाओं को अधीक्षित करना हैं, यदि उसकी मूल्य व्यवस्था उचित नहीं हैं, यह बहुत अधिक सम्भव हैं कि इन नीतियों को उचित तरह से लागू नहीं किया जा सके और अन्तिम लक्ष्य खो जाए। अतएव मूल्य व्यवस्था को प्रशासनिक व्यवहार में समझना आवश्यक हो जाता हैं। यह दुःखद हैं कि वर्तमान् समय में प्रशासक की मूल्य व्यवस्था में बड़ा अपरदन हुआ हैं। विकासशील देशों में यह एक गम्भीर समस्या है कि इनमें से कई अपने संविधान में निहित मूल्य व्यवस्था को पालित नहीं करते हैं। वे अधिकतर अवसरों पर सामाजिक और भ्रष्ट बुराईयों के सम्मुख झुक गए हैं। वे राष्ट्रहितों की तुलना में अपने व्यक्तिगत हितों की तरफ केन्द्रित हैं। परिणामस्वरूप राष्ट्र के वृहद् उद्देश्य लगभग पराजित हो चुके हैं। इसने इन राष्ट्रों में राष्ट्र निर्माण प्रक्रिया पर भी प्रभाव डाला हैं। इस पृष्ठभूमि में यह आवश्यक हो जाता हैं कि उन प्रमुख कारकों को ज्ञात किया जाए जिन्होंने इन मूल्यों को भारतीय प्रशासन में क्षरित किया हैं।

प्रशासनिक व्यवस्था में मूल्यों के पतन के कई पक्ष हैं। प्राथमिक स्तर पर इसकी कमी मनोवैज्ञानिक कारकों से सम्बन्धित हैं जबकि इसका व्यक्तीकरण भ्रष्टाचार रूप में व्यक्त होता हैं, विशेष रूप से धन की गड़बढ़ी के रूप में। मनोवैज्ञानिक रूप में प्रत्येक प्रशासक एक मानव है जिसे उपलब्ध वातावरण में जीवित रहना है जो कि भौतिक पदार्थ युक्त है। विकासशील देशों में धन का आकर्षण अधिक हैं तुलनात्मक रूप से विकसित देशों में जहाँ न्यूनतम जीवन स्तर प्राप्त किया जा चुका हैं जबकि विकासशील देशों के लोग गरीबी के दुष्चक्र में फंसे हुए हैं, वे इस स्थिति में नहीं हैं कि

[3] प्रदुम्न कुमार त्रिपाठी, भारतीय संविधान।

वे अपनी समस्याओं को सुलझा सके। विशेष रूप से वित्तीय समस्याओं को, इसलिए यह बहुत अधिक सम्भव हैं कि प्रशासक आसानी से लालच की तरफ आकर्षित हो जाए। मनोवैज्ञानिक स्तर पर व्यक्ति हॉब्स मानव या मैकियावली मानव के रूप में है। दोनों दार्शनिक निष्कर्ष देते हैं कि मनुष्य आत्महित से नियंत्रित होता है। मैकियावली इतना अधिक जोर देकर कहता है कि व्यक्ति अपनी पिता की मृत्यु पर उतना दुखी नहीं होगा जितना पैतृक सम्पत्ति की हानि पर होगा। हॉब्स का व्यक्ति भी बहुत अधिक आत्मकेन्द्रित है। नौकरशाह भी मनुष्य जाति का है इसलिए भ्रष्टाचार में फंसना व मूल क्षरण की सम्भावना आसानी से घटित हो सकती है। मूल्य व्यवस्था का पतन कई रूप में व्यक्त होता है जैसे कार्य का सही निर्वाह न करना, भाई–भतीजावाद, घमण्ड, आत्मकेन्द्रित व्यवहार, भौतिक भ्रष्टाचार, परन्तु इसका स्पष्ट व्यक्तिकरण धन भ्रष्टाचार रूप में सामने आता है। इसमें घूसखोरी, गलत लोगों को अनैतिक रूप में ठेका देना, प्रशासनिक संरचनाओं में अनैतिक कार्य में समर्थन देना जैसे कि अधिकारिक स्थल पर बड़े औद्योगिक घरानो, उद्योगपतियों से अनुचित लाभ प्राप्त करना भी सम्मिलित किया जाता है।

प्राशासनिक भ्रष्टाचार के इस पक्ष पर एक अद्यतन कार्य हुआ है जिससे ज्ञात हुआ ''निम्न अधिकारी व राजनीतिज्ञ राज्य से चोरी करते है व साथ के लोगों को धोखा देते है क्योंकि ऐसा वातावरण लोगों के मध्य उपलब्ध होकर ऐसी अनुमति इस भावना से युक्त हैं कि यदि उनके तुरन्त ऊपर के अधिकारी चोरी करते व धोखा देते है, निम्न सरकारी अधिकारी व सुरक्षाकर्मी विश्वास करेंगे की उनके पास भी इस बात की अनुमति हैं कि वह भी गलत तरह से अपने आपको धनवान बना सकते है। इस प्रकार से जब यह ज्ञात हो जाता कि ऐसे भ्रष्ट व्यवहार स्वीकृत है तो स्वहित पर आधारित अधिकतम लाभ बनाने वाले लोग ऐसे अच्छे अवसर को मुश्किल से छोड़ेगें जिसके द्वारा वह अपनी अधिकारिक स्थित का व्यक्तिगत लाभ बनाने में प्रयोग कर सकते है। चाहें किसी का मानव प्रकृति और मानव पतन के बारे में जो भी विचार हो यदि वर्तमान समय में पाई जाने वाली राजनैतिक संस्कृति भ्रष्टाचार को सहन करती है, उस स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति भ्रष्ट होने का अवसर प्राप्त करने का प्रयास करेगा।''[4]

भारतीय प्रशासन को मिश्रित प्रशासन कहा जा सकता हैं इसने संविधानिक मूल्य अवशोषित किए हैं फिर भी इसमें ब्रिटेन की औपनिवेशिक शासन की मूल्य व भावनाएं निहित है जिसमें उच्चता पर विश्वास, राष्ट्र के सामान्य व्यक्तियों से सम्बन्ध न बनाना व भ्रष्ट क्रिया में सम्मलित होना इस विश्वास के साथ कि यह एक असामान्य क्रिया नहीं हैं। यद्यपि लोकतांत्रिक संविधान आधारित समाज में भ्रष्ट आचरण किसी बिन्दु में स्वीकृत नहीं हैं क्योंकि जनता की सम्प्रभुता सर्वोच्च हैं व नौकरशाह जनता के सेवक हैं। न कि जनता से ऊपर। इन संकल्पनाओं और दार्शनिक स्वीकृतियों के बावजूद भारतीय नौकरशाह जनसेवक रूप में परिवर्तित करने में सफल नहीं हुई हैं। यह अभी भी नौकरशाही व जन–मालिक के नियंत्रण रूप में व्यक्त होती है। यह एक औपनिवेशिक परम्परा थी जो अभी तक भारतीय नौकरशाही में जीवित रूप में पाई जाती है। परिणामस्वरूप नौकरशाही भ्रष्ट क्रियाओं में सम्मिलित हो जाती है। ''नौकरशाही अनियंत्रित है। नौकरशाहों की औपनिवेशिक परम्पराएं कि वो शासक हैं व जनता शासित, अभी तक जारी है। भ्रष्टाचार यहाँ तक कि प्रशासन के स्थानीय स्तर तक बढ़ चुका है कि संसद व राज्य विधायिका से जो धन आवंटित किया जाता हैं

[4] ए0आई0आर0 1947 प्रिवी कौंसिल 60।

उसका 1/4 भाग भी वह प्राप्त नहीं कर पाते हैं। राजीव गांधी का कथन था कि बजट आवंटित धन का 16% ही जनता प्राप्त कर पाती थी जो उनके लिए बजट में आवंटित हैं। जनता इसे रोकने में असफल हुई है। गांव पंचायत स्तर तक यह पहुँच गया हैं पुलिस और अधिक दमनकारी हुई हैं। पुलिस द्वारा लाठीचार्ज व गोली चलाना सामान्य घटना हो गई हैं। यहाँ तक कि पश्चिम बंगाल में वामपंथी सरकार भी अब इसका अपवाद नहीं नंदीग्राम घटना घटित होने के बाद। केवल 2005 में ही पुलिस गोली द्वारा 44 लोग मारे गए। 1990–1999 के बीच 5994 बार गोली चलाई गई जिसमें 1753 लोग मर गए व 683 लोग घायल हुए थे। यही पुलिस अपराधियों को नियंत्रित करने में असफल रही जो नगरो में शासन करते है। बच्चों का अपहरण हो जाता हैं फिरौती न देने पर मार दिया जाता है। संघ की राजधानी दिल्ली में महिलाए सुरक्षित नहीं हैं। पत्ताम् थानु पिल्लेयी, जब उन्हें गोली चलाने के आरोप में इस्तीफा देने पर विवश किया गया था, के दिन अब चले गए हैं। राजनेता इसके साझेदार है। एक सामान्य भावना यह हैं कि कुछ को छोड़कर सभी राजनेता धन बना रहे है। राजनेताओं के प्रति पुराना सम्मान समाप्त हो गया हैं। इस तरह कि भावना राजनीतिक दल के प्रति हो गई है कि जनता की समस्या को सुलझाने हेतु उनके पास नहीं जाते है। ये सर्वाधिक खतरनाक लक्षण हैं क्योंकि राजनेता और राजनीतिक दल लोकतंत्र की सुदृढ़ता हेतु आवश्यक है। विधायिका सदस्य दल व्यक्तिगत् लाभ हेतु बदल लेते है। राजनेता इस तरह से व्यवहार करते हैं कि जैसे वह सिद्ध करना चाहते हों कि उनके पास कोई विचारधारा नहीं हैं।''उपर्युक्त वक्तव्य पुलिस व सामान्य प्रशासन की असंवेदनशीलता प्रतिबिम्बत करता है। राजनैतिक दलों का निम्न स्तर व राजनेता व प्रशासन के मध्य विकसित होने वाली दुरभि संधि का यह एक दुखद प्रतिबिम्ब है। तथ्य ये है कि प्रशासनिक व्यवस्था के मूल्यों में व्यापक अपरदन हुआ है। ये व्यवस्था कई बिन्दुओं पर औपनिवेशिक प्रशासनिक प्रशासन की भावना को प्रतिबिम्ब करता है जो कि राष्ट्र के विकास को अत्यन्त समस्यामूलक बनाता है।

इस परिप्रेक्ष्य में आवश्यक है कि उन प्रमुख कारक तत्वों को समझा और ज्ञात किया जो कि प्रशासन की मूल्य व्यवस्था अपरदन को प्रोत्साहित करते हैं। सत्य यह है कि मूल्य पतन, धन का भ्रष्टाचार वैयक्तीकरण रूप में जो कि मानव प्रजाति में निहित है, कमी के कारण प्रेरित हुआ हैं परन्तु ये मूल्य व्यवस्था के पतन का पर्याप्त कारण नहीं हैं। इस बिन्दु पर स्वीकृति है कि भारतीय प्रशासन ने अपने कई मूल्यों को औपनिवेशिक प्रशासनिक व्यवस्था से ग्रहण किया है लेकिन संविधान स्वीकार किए जाने के बाद यह तार्किक रूप से आकांक्षा की जा सकती हैं कि प्रशासन अपने कार्यों को संविधानिक भावनाओं से युक्त होकर करें। इसके बावजूद इस सन्दर्भ में इसने मूल्यों को बनाए रखने के बजाए पतन को प्रदर्शित किया है।

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

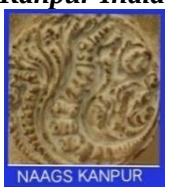


***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# ब्रिटिश पूंजीपति एवं भारतीय उद्योग

**डॉ शशि शेखर मिश्रा**
सहायक अध्यापक
चौधरी सुंदर सिंह इंटर कॉलेज
महोबा उत्तर प्रदेश

भारत में ब्रिटिश शासनकाल में विकसित होने वाले उद्योग निम्नलिखित इस प्रकार थे

**1. सूती कपड़ा उद्योग –**

भारत में पहला सूती कपड़ों का कारखाना बम्बई में स्थापित किया गया। ''1861–62 में कपास की अच्छी फसल होने के कारण सूती वस्त्र के उद्योग को और अधिक बढ़ावा मिला जिसके फलस्वरूप व्यापारियों में एक नये औद्योगिक पूँजीवाद का जन्म हुआ।''[1] 1879 में भारत में सूती कपड़ों के 56 कारखाने स्थापित हो चुके थे जिनके मालिक अंग्रेज अधिकारी ही थे। ''1880–95 के मध्य के समय में सूती वस्त्र के उद्योग में अत्यधिक वृद्धि हुई और कारखानों की संख्या दुगने से भी अधिक 144 हो गई।''[2] कारखानों में हुई वृद्धि के फलस्वरूप अनेकों लोगों को रोजगार के अवसर प्राप्त हुये। ''1900–01 के बीच के समय में कुल 35 करोड़ 30 लाख पौण्ड सूत तथा 42 करोड़ 20 लाख गज कपड़े का उत्पादन होता थो जो कि 1947 में बढ़कर 1 अरब 33 करोड़ पौण्ड और कपड़े का 3 अरब 77 करोड़ गज हो गया था।''[3]

सूती कपड़े के इस उद्योग में जबकि निरन्तर प्रगति होती रही किन्तु 1895 के बाद इसमें शिथिलता आ गई। ''1895–1905 के मध्य के समय में भारत में आये अकालों के परिणाम स्वरूप सूती वस्त्रों का उत्पादन स्तर घट गया। दूसरी ओर 1902 की अमरीकी सट्टेबाजी की वजह से रूई की कीमत में वृद्धि हो गई जिसका भारतीय सूती वस्त्र के उद्योग पर घातक प्रभाव पड़ा।''[4] ऐसी परिस्थितियों में सूती वस्त्र उद्योग में मन्दी आ गई। ''1900–01 में भारत ने 1 अरब 87 करोड़ 50 लाख गज कपड़े का आयात किया था। 1913–14 में यह आयात सबसे अधिक 2 अरब 40 करोड़ गज

---

[1]. डा0 ताराचन्द : भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, खण्ड – 3, पृष्ठ संख्या – 81
[2]. गाडगिल, डी0आर0 : दि इंडस्ट्रियल आफ इंडिया इन रीसेंट टाइम्स, पृष्ठ संख्या – 74–75
[3]. डा0 ताराचन्द : भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, खण्ड–3, पृष्ठ संख्या – 81
[4]. देसाई, ए0आर0 : भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ0 सं0 – 84

था।''[5] परन्तु इसी बीच 1905 ई0 में स्वदेशी आन्दोलन प्रारम्भ होते ही अंग्रेजों व भारतीय उद्योगपतियों में प्रतिस्पर्धा की भावना जागृत हुई और इस कारण 1913–14 के बीच सूती कारखानों की संख्या सम्पूर्ण भारत में 264 हो गई जिसमें लगभग 2 लाख श्रमिक कार्य करते थे।

**2. पटसन उद्योग –**

भारत में पटसन का उत्पादन बहुत ही धीमी गति से प्रारम्भ हुआ। 1855 ई0 में बंगाल में रिशरा नामक स्थान पर पहली पटसन मिल की स्थापना हुई थी। ''विश्व में पटसन से निर्मित सामानों की माँग अधिक होने के कारण ब्रिटिश पूँजीपति बिना किसी संकोंच के पूँजी की पूरी सहायता प्रदान कर रहे थे तथा इस उद्योग को सरकार का भी संरक्षण प्राप्त था।''[6] इसलिए 1882 ई0 तक भारत में 20 पटसन की मिलें स्थापित हो गई थी। ''प्रथम विश्व युद्ध के दौरान पटसन के उद्योग की बहुत अधिक प्रगति हुई और 1913–14 के मध्य पटसन मिलों की संख्या 641 हो गई।''[7] किन्तु 1929 ई0 की आर्थिक मन्दी के कारण इस उद्योग को काफी मुसीबतों को झेलना पड़ा। ''पटसन के उद्योग को अत्याधिक नुकसान देश के विभाजन के फलस्वरूप हुआ। बंगाल का पूर्वी हिस्सा जहाँ पटसन की उपज अधिक होती थी, पाकिस्तान के हिस्से में चली गयी।''[8] अतः 1947 के पश्चात भारत के पास कुल 113 पटसन की मिले शेष रह गई और उत्पादन की मात्रा में कमी हो गई।

3. कोयला उद्योग –

भारत में औद्योगिक विकास की गति में तीव्रता लाने के लिये कोयले का उत्पादन अधिकाधिक मात्रा में होना आवश्यक था। 1880 में देश में मात्र 56 कोयला खाने थी। ''किन्तु भारत की अधिकाशं अच्छी कोयला खानों पर ब्रिटिश अधिकारियों का नियन्त्रण था और भारतीयों को दूसरे व तीसरे स्तर की कोयला खाने उपलब्ध थी।''[9] भारत में रानीगंज की कोयला खान सबसे प्रसिद्ध थी। बाद में बिहार, बंगाल व उड़ीसा की कायेला खाने में से भी उत्पादन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई, जिससे 1894–95 ई0 में कोयला खानों की संख्या 123 हो गई। कोयले में लगातार वृद्धि होने के कारण 1914 तक लगभग 1,51,376 मजदूर खानों में कार्यरत थे। 1937 ई0 तक कोयले का उत्पादन 2,50,00,000 टन प्रतिवर्ष किया जाता था।

**4. लोहा एवं इस्पात उद्योग –**

किसी भी देश की प्रगति व विकास में धातु व मशीनी उद्योग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रथम महायुद्ध के दौरान भारत में ऐसे उद्योग लगभग न के बराबर थे। ''1914 के पूर्व भारत में रेलवे को छोड़कर लोहा व इस्पात के बड़े उद्योगों की बहुत कम संख्या थी।''[10] भारत में इसीलिए सूती वस्त्र उद्योग व जूट उद्योग की प्रगति के बावजूद भी भारतीय औद्योगिक विकास का स्तर निम्न था। ''1870 तथा 1914 के बीच के काल में भारत में अभियंत्रण के नाम पर रेलवे के कारखाने तथा पीतल एवं लोहे के कुछ ढलाईघरों की स्थापना की गई थी।''[11] 1873 में बिहार में स्थित झारिया नामक स्थान पर ''कारगार आयन वर्क्स'' तथा 1907 में जमशेदजी टाटा ने ''लौह–इस्पात कम्पनी''

---

[5]. डा0 ताराचन्द : भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, खण्ड–3, पृष्ठ संख्या – 82
[6]. डा0 ताराचन्द : भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, खण्ड–3, पृष्ठ संख्या – 82
[7]. देसाई, ए0आर0 : भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ संख्या – 84
[14]. चोपड़ा, पुरी, दास : भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, पृष्ठ संख्या – 205
[9]. चोपड़ा, पुरी, दास : भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, पृष्ठ संख्या – 208
[10]. दत्त, आर0पी0 : आज का भारत, पृष्ठ संख्या – 156
[11]. गाडगिल, डी0आर0 : दि इंडस्ट्रियल आफ इंडिया इन रीसेंट टाइम्स, पृष्ठ संख्या – 117–18

की स्थापना की। इस कम्पनी ने 1911 में कच्चा लोहा तथा 1913 में इस्पात बनाना प्रारम्भ किया था। बाद में युद्धकाल के दौरान 1918 ई0 में हीरापुर में ''इण्डियन आयरन स्टील कम्पनी'' की स्थापना की गई। ''भारत में 1913 ई0 में इस्पात का उत्पादन मात्र 91,000 टन था जबकि 1918 ई0 में 1,24,000 टन था।''[12] प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात् भारत में कारखानों का अधिकाधिक विकास हुआ उत्पादन स्तर में भी काफी वृद्धि हुई। ''1921–22 में 2 लाख 70 हजार टन कच्चा कोयला तथा 1 लाख 70 हजार टन इस्पात की उत्पादन मात्रा में वृद्धि हुई।''[13] सन् 1923 ई0 में भद्रावती में ''मैसूर स्टेट आयरन वर्क्स'' के नाम से एक कारखाने की स्थापना की गई जो कि भारत में द्वितीय विश्व युद्ध के समय तक 10 लाख टन से भी अधिक अच्दी किस्म का लोहा बनाने लगा था तथा 1947 तक 25 लाख टन से भी अधिक मात्रा में इस्पात का उत्पादन करने लगा।

**चीनी उद्योग –**

भारत में 1918 के पश्चात चीनी उद्योग का आरम्भ हुआ था। 1922–23 ई0 में चीनी का कुल उत्पादन 84,000 टन था। ''भारत में 1931 ई0 तक कुल 30 चीनी मिले थीं जिनमें लगभग 1,58000 टन चीनी का उत्पादन किया जाता था।''[14] चीनी उद्योग की अभूतपूर्व प्रगति एवं उन्नति के कारण ''1932 ई0 में ब्रिटिश सरकार द्वारा चीनी उद्योग को संरक्षण प्रदान किया गया जिसके फलस्वरूप चीनी उद्योग की और अधिक वृद्धि हुई।''[15] सम्पूर्ण देश में 1936 ई0 तक 135 चीनी मिलें थीं जो कि 9 लाख 19 हजार टन प्रतिवर्ष चीनी का उत्पादन करती थीं। 1938–39 में यह मात्रा बढ़कर 10,40,048 हो गई थी तथा 1940 ई0 तक भारत में कुल 161 चीनी मिले स्थापित हो चुकी थी। भारतीय चीनी मिलों को सरकारी संरक्षण प्राप्त होने के कारण बहुत समृद्ध हुई।

**कागज उद्योग –**

भारत में कागज के उद्योग की सर्वप्रथम स्थापना 1879 ई0 में लखनऊ में हुई तदोपरान्त 1882 ई0 में टीटागढ़ में 1885 ई0 में पूना में, 1889 ई0 रानीगंज में हुई थी। ''भारत में 1922–23 ई0 में लगभग 23,576 टन कागज का उत्पादन किया जाता था।''[16] द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात् देश में कागज की मांग बहुत अधिक बढ़ गई और स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सरकार ने विशेष ध्यान दिया।

**सीमेन्ट उद्योग –**

अंग्रेजों के शासन – काल में सीमेन्ट उद्योग की स्थापना प्रथम विश्व युद्ध के समय तक हो चुकी थी। भारत में 1914 ई0 तक सिर्फ तीन सीमेन्ट कम्पनियाँ थीं जोकि निरन्तर बहुत ही तीव्र गति से उत्पादन कर रही थीं। भारत में पोरबन्दर नामक स्थान पर ''इण्डियन सीमेन्ट कम्पनी''[17] कटनी में, ''कटनी सीमेन्ट एण्ड इण्डस्ट्रियल कम्पनी'', और बूंदी में ''पोर्टलैण्ड सीमेन्ट कम्पनी'' इत्यादि कम्पनियाँ कार्यरत थी। ''1914 तक इन कम्पनियों का सीमेन्ट उत्पादन प्रतिवर्ष 1,000 टन था जोकि 1925 ई0

---

[12]. देसाई, ए0आर0 : भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ0 सं0 – 86
[13]. डा0 ताराचन्द : भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, खण्ड– , पृष्ठ संख्या – 83
[14]. चोपड़ा, पुरी, दास : भारत का सामाजिक, सांस्कृति और आर्थिक इतिहास, पृष्ठ संख्या – 207
[15]. डा0 ताराचन्द : भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ संख्या – 82
[16]. डा0 ताराचन्द : भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ संख्या – 82
[17]. देसाई, आर0ए0 : भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ0 सं0 – 88

में 2,50,000 टन हो गया था।''[18] किन्तु माँग में कई गुना वृद्धि होने के साथ ही साथ सीमेन्ट के उत्पादन में भी वृद्धि होने लगी। ''1938–39 तक भारत में लगभग 1,170,000 टन प्रतिवर्ष कुल उत्पादन किया जाता था।''[19]

**चर्म उद्योग :**

ब्रिटिश काल में चमड़े के आधुनिक उद्योग का भी निर्माण किया गया था। अंग्रजों ने चर्म उद्योग की उन्नति व विकास के लिए आधुनिक तरीकों का भी इस्तेमाल किया। ''सर्वप्रथम 1860 ई0 में कानपुर में ''हार्नेस एण्ड सैडलरी'' नामक फैक्ट्री की स्थापना की तभी से कानपुर चमड़ा उद्योग का मुख्य केन्द्र बन गया।''[20] बाद में बम्बई एवं मद्रास में भी चर्म उद्योग की फैक्ट्रियों की भी स्थापना की गई। चर्म उद्योग को अधिकाधिक विकसित करने के उद्देश्य से 1930 ई0 में ''हाइड्रस सेस इन्क्वायरी कमेटी'' की भी स्थापना की गयी।

**एल्युमीनियम उद्योग –**

ब्रिटिश शासन – काल में भारत में एल्यूमीनियम के उद्योग को भी विकसित किया गया था। 1937 ई0 में कलकत्ता के निकट ''एल्यूमिनियम कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया लिमिटेड'' एवं ''एल्यूमीनियम प्रोडक्शन'' नामक कम्पनियों की स्थापना की गयी थी। ''द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् भारत में 1943 ई0 में ''एलवाये'' में भी एक कारखाने का निर्माण किया गया। इस कारखाने में बहुत बड़े पैमाने पर एल्यूमीनियम की चादरों का निर्माण किया जाता था।''[21]

भारत के औद्योगीकरण नीतियों के फलस्वरूप नवीन उद्योगों का जन्म तो अवश्य हुआ लेकिन भारतवासियों की दशा और भी अधिक दयनीय होती गयी और ब्रिटिश सरकार व नागरिक अधिक सम्पन्न हो गये। ''19वीं शताब्दी में श्रमिकों के काम के घंटे बढ़ा दिये गये और बहुत ही कम मजदूरी निश्चित की गयी। उनके रहने का स्थान भी गंदी तथा घनी–बस्तियों में था और बहुत ही अमानुषिक तरीके से स्त्री व बच्चों से काम करवाया जाता था।''[22]

**व्यापार पर प्रभाव –**

व्यापारिक क्षेत्र में ब्रिटिश सरकार ने भारत के सन्दर्भ में किसी भी लाभप्रद कार्य को कार्यान्वित नहीं किया। ''19वीं शताब्दी में अंग्रेजों को उद्योग के क्षेत्र में एकाधिकार प्राप्त हो चुका था तथा विश्व के बाजारों में उनका प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। 1875 के पश्चात् विश्व के बाजारें में अन्य यूरोपीय देशों के प्रतिद्वन्दी आ जाने से उनका प्रभुत्व घटने लगा। किन्तु भारत में राजनीतिक प्रभाव के कारण उन्होंने अपनी स्थिति फिर सुदृढ़ बना ली।''[23] प्रथम विश्व युद्ध के समय तक भारत के 2/3 हिस्से पर ब्रिटिश माल का अधिकार था। अंग्रेजों ने भारतीय व्यापार को अपने उद्देश्यों की पूर्ति का महत्वपूर्ण साधन बनाया।

''भारत का 'विदेशी व्यापार' उसकी कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था पर आधारित था किन्तु भारत मात्र कच्चे माल का उत्पादक ही था।''[24] अतः भारतीय माल के उत्पादन पर और उसके निर्यात पर अंग्रेजों का ही नियन्त्रण था। भारत का विदेशी व्यापार ही

---

[18]. चोपड़ा, पुरी, दास : भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक इतिहास, पृष्ठ संख्या – 209
[19]. देसाई, ए0आर0 : भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ संख्या – 88
[20]. चोपड़ा, पुरी, दास : भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक विकास, पृष्ठ संख्या – 209
[21]. चोपड़ा, पुरी, दास : भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, पृष्ठ संख्या – 209
[22]. डा0 ताराचन्द : भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, खण्ड – 3, पृष्ठ संख्या – 119
[23]. दत्त, आर0पी0 : आज का भारत, पृष्ठ संख्या – 161
[24]. डा0 तारचन्द : भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, खण्ड–3 पृष्ठ संख्या – 113

भारतीय उद्योग धन्धों की हानि का प्रमुख कारण था। भारत में विदेशी व्यापार की जो स्थिति विद्यमान थी वह भारत के लिए किसी भी प्रकार से हितकर नहीं थी। भारत से प्रतिवर्ष लगभग 40 करोड़ धनराशि के बदले उसे कुछ नहीं मिलता था।''[25] इस प्रकार भारतीय पूँजी का भारत में अस्तित्व हो रहा था और अंग्रेज भारतीय पूँजी के स्थान पर विदेशी पूँजी पर अधिक जोर दे रहे थे।

प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व तक ''भारत में ब्रिटेन से आयात कुल सामान का 63 प्रतिशत था और भारत से इंग्लैण्ड के लिए केवल 25 प्रतिशत निर्यात किया जाता था।''[26] भारत में जिन वस्तुओं का आयात किया जात था वे सामान्य जनता के लिए अनावश्यक होती थी। भारत में खाद्यान्न की कमी के बावजूद फैशन के सामानों का आयात किया जाता था। इन सामानों के आयात के विरोध में 6 जुलाई, 1889 को ''बंगवासी समाचार पत्र'' ने प्रकाशित किया – ''हम भारतवासियों को बालों को बढ़ाने के लिए न ही किसी सुगन्धित तेल एवं चेहरे की सुन्दरता बनाये रखने के लिए किसी भी पाउडर की जरूरत नहीं है..... हम ऊनी व रेशमी कपड़ों से भी तन नहीं ढ़कना चाहते हैं, यदि भारत के जुलाहों का पतन भी हो जाये तो हम वृक्ष की छाल से अपना तन ढक लेंगे और यदि वह भी कहीं नहीं मिली तो हम नग्न ही रहे लेंगे परन्तु अंग्रजों से हम यही प्रार्थना करते हैं कि वे भारत को उसके हाल पर छोड़ दें और कम से कम भारतवासियों को जीवित तो रहने दीजिए।''[27]

19वीं शताब्दी के अन्त में भारत में इंग्लैण्ड से आयात सामान की मात्रा में तेजी से परिवर्तन होने लगे। ''1884 से 1879 तक भारत में जो कुल सामान विदेशों से निर्यात किया गया था उसका 82 प्रतिशत भाग इंग्लैण्ड के सामान का था।''[28] किन्तु अगले दस सालों में इंग्लैण्ड से भारत में आयात की मात्रा धीरे–धीरे क्रमशः घटती चली गई। ''1884–89 के समय में ब्रिटेन से निर्यात किया गया सामान का प्रतिशत 82 प्रतिशत से घटकर 79 प्रतिशत हो गया था। 1899–1904 तक की अवधि मे यह 66 प्रतिशत था 1904–14 तक के समय में मात्र 63 प्रतिशत शेष रह गया।''[29] लेकिन प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् आयात के मुकाबले निर्यात अधिक प्रभावशाली था। भारत अब मात्र कच्चे माल का निर्यातक बन गया था। ''1939–40 तक की अवधि में इंग्लैण्ड से भारत में अब आयात की मात्रा 25.2 प्रतिशत रह गयी थी और भारत से इंग्लैण्ड को निर्यात की गई मात्रा से 35 प्रतिशत वृद्धि की गई।''[30] भारत से जो भी सामान इंग्लैण्ड निर्यात किया जाता था वे चाय, चमड़ा, कपास, तिलहन आदि प्रमुख थे जबकि ूसरी ओर सूती कपड़े, लोहा और इस्पात के सामान तथा कागज के आयात में कमी कर दी गई। ''भारत से निर्यात में तेजी के फलस्वरूप यहाँ के किसानों पर अत्याधिक दबाव पड़ने लगा जिससे वे गैरजरूरी वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए मजबूर थे।''[31]

द्वितीय विश्व युद्ध के समय भारतीय व्यापार में कई और परिवर्तन हुए। ''द्वितीय विश्व युद्ध के समय तक विश्व के अन्य देश जैसे अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, बर्मा आदि इंग्लैण्ड से सफलतापूर्वक होड़ ले रहे थे जिससे कि भारतीय व्यापार को बहुत

---

[25]. नौराजी, दादाभाई : पावर्टी एण्ड अन – ब्रिटिश रूल इन इण्डिया, पृष्ठ संख्या – 569
[26]. डा0 ताराचन्द : भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, खण्ड–3 पृष्ठ संख्या – 115
[27]. डा0 बिपिन चन्द्र : भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव एवं विकास, पृष्ठ संख्या – 131
[28]. दत्त, आर0पी0 : आज का भारत, पृष्ठ संख्या – 161
[29]. दत्त, आर0पी0 : आज का भारत, पृष्ठ संख्या – 161
[30]. डा0 ताराचन्द : भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ संख्या – 115
[31]. डा0 ताराचन्द : भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ संख्या – 11114–115

अधिक मात्रा में लाभ प्राप्त हुआ।''[32] 1939–40 में भारतीय सामानों के आयात में अमरीका का 9.0 प्रतिशत भाग, कनाडा का 8.0 प्रतिशत भाग, आस्ट्रेलिया का 1.4 प्रतिशत, जापान का 11.7 प्रतिशत तथा बर्मा का 19.0 प्रतिशत भाग होता था जबकि ब्रिटेन का 25.2 प्रतिशत भाग उन्हीं सामानों में सम्मिलित होता था। इस तरह भारत में इंग्लैण्ड के औद्योगिक पूँजीवादी शोषण का युग समाप्ति की ओर बढ़ता ही जा रहा था। ''भारत 1936 से ही इंग्लैण्ड के सामानों का प्रमुख खरीददार नहीं रहा जैसा कि वह पूर्व के सौ वर्षों तक था। 1937 में इंग्लैण्ड के सामानों की खरीददारी भारत की दूसरी जगह थी और 1938 ई0 में तीसरी।''[33] इस तरह भारत के बाजारों में इंग्लैण्ड के सामानों की मौजूदगी में भारी कमी आई। अतः ''तब अंग्रेजी सरकार ने भारतीय उद्योगों को संरक्षण देने की नीति अपनायी और कपास, पटसन के अतिरिक्त सूत्री वस्त्र उद्योग, लौह और इस्पात, रसायन, सीमेन्ट, चीनी आदि का विकास तेजी से प्रारम्भ हुआ और तभी से व्यापार सन्तुलन का प्रतिकूल प्रभाव मिटने लगा।''[34]

[38]. दत्त, आर0पी0 : आज का भारत, पृष्ठ संख्या – 163

[33]. दत्त, आर0पी0 : आज का भारत, पृष्ठ संख्या – 163

[34]. डा0 ताराचन्द : भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ संख्या – 118

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# बुन्देलखण्ड के बाँदा–चित्रकूट क्षेत्र में स्वदेशी आन्दोलन

**डॉ. कृष्ण पाल**
असिस्टेंट प्रोफेसर इतिहास विभाग
एकलव्य पीजी कॉलेज
धुरेडी रोड बाँदा उत्तर प्रदेश

बुन्देलखण्ड का बाँदा–चित्रकूट क्षेत्र औद्योगिक दृष्टिकोण से हमेशा पिछड़ा रहा है। यहाँ का औद्योगिक और आर्थिक विकास कृषि पर आधारित था। प्राकृतिक आपदा तथा कृषकों की स्थिति खराब होने के कारण यहाँ का कृषि पर आधारित उद्योग समाप्त होते गये। इस कारण यहाँ की मण्डियों तथा बाजारों की दशा अत्यंत दयनीय होती गयी। सन् 1943 में उत्तर भारत की यात्रा करने वाले अधिकारी डेविसन ने लिखा है कि बाँदा नगर उत्तरी भारत में कपास की प्रसिद्ध मण्डी थी। यहाँ का कपास दूर–दराज के नगरों कानपुर, इलाहाबाद, कलकत्ता तक जाता था। लेकिन 1842 में अमेरिकन काटन आ जाने से यहाँ की कपास के निर्यात में 25 प्रतिशत की गिरावट आ गयी। बाँदा नगर में कपास की गांठ बांधने की मिल थी। स्वतंत्रता पूर्व कर्वी में कानपुर के उद्योगपति सेठ जमुनालाल कमलापति ने जिनिंग प्रेसिंग (कपास), दाल एवं आयल मिल लगवायी थी। लेकिन उपनिवेशवादी नीति के कारण बन्द हो गई। स्पष्ट है कि इस क्षेत्र के सभी उद्योग व्यवसाय कृषि जनित और स्थानीय कच्चा माल की उपलब्धता के आधार पर विकसित थे। पर्याप्त मात्रा में खनिज पदार्थों की उपलब्धता के बावजूद उद्योगों के संरक्षण व तकनीकि उपलब्धता न होने के कारण यह क्षेत्र हमेशा से पिछड़ा रहा है तथापि इस क्षेत्र में हस्त कौशल पर आधारित उद्योग विकसित थे और परम्परागत रूप से लोग अपने व्यवसाय को आगे बढ़ाते थे। यह क्षेत्र सूती वस्त्र (गाजी कपड़ा), कांसे के बर्तन, आभूषण, पत्थर की कटाई, मूर्तिकला, रत्नों की कटाई व पालिश, लकड़ी के सामान, मिट्टी के खिलौने, बर्तन, सरौता, दरी आदि के उत्पादन के लिये प्रसिद्ध था। लेकिन अंग्रेजों की शोषण की नीति से देश के परम्परागत उद्योग धन्धे जो कृषि और हस्त कौशल पर आधारित थे, धीरे–धीरे समाप्त हो गये। उनमें लगे हजारों लोग–कारीगर, बढ़ई, लोहार, बुनकर, रफूगर, भूमिहीन मजदूर कृषक व समाज के तमाम सर्वहारा वर्ग के लोग 1857 के संग्राम में शामिल रहे। 19वीं शताब्दी के अंतिम दौर में पुनः राष्ट्रवाद का उदय हुआ और बुद्धिजीवी वर्ग ने मजदूर वर्ग को उसकी ताकत का अहसास कराया। स्वदेशी आन्दोलन के दौरान इस वर्ग को नई चेतना का

अहसास हुआ। बदलती हुई परिस्थितियों में श्रमिक संगठनों ने मजदूरों की स्थितियों को सुधारने तथा उनके अधिकारों के लिये आन्दोलन किये। 1920 में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (एटक) की स्थापना हुई। गाँधीवादी आन्दोलनों में इन सर्वहारा वर्ग के लोगों ने खुलकर भाग लिया। बाँदा–चित्रकूट जनपद में साइमन कमीशन के विरोध के समय, सविनय अवज्ञा और नमक आन्दोलन के समय हड़तालें की गईं। जैसा कि सी. आई.डी. की डायरी से जानकारियाँ मिलती हैं। इसमें कोई दो राय नहीं गाँधीवादी आन्दोलन में सर्वहारा वर्ग (शिल्पकार, कामगार, मजदूर, उत्पीड़िन, कृषक मजदूर) गाँधी जी की ताकत बने।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को गति और ऊर्जा प्रदान करने के लिये 'धन' की व्यवस्था करना भी चुनौतीपूर्ण कार्य था। संगठन बनाने, अस्त्र–शस्त्र खरीदने, मुकदमा लड़ने, जुलूस निकालने, पत्र–पत्रिकाओं को छपवाने, बन्दियों के घरों की आर्थिक व्यवस्था को देखने व रचनात्मक कार्यों के लिये धन की आवश्यकता पड़ती थी। लेकिन क्रांति के ज्वार से यह समस्या कमजोर सिद्ध हुई। 'जहाँ चाह वहाँ राह' की कहावत चरितार्थ हुई। आन्दोलन को गतिमान रखने के लिये अनेक पूंजीपति, छोटे–मोटे व्यवसायी भी आन्दोलन से जुड़ गये। इस सन्दर्भ में जमनलाल बजाज, झाडीलाल, लल्लू भाई मेहता, सैमुअल एरो, लाल शंकर इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। हर एक स्वदेश प्रेमी का चवन्नी, अठन्नी या एक रुपये का योगदान करोड़ों रु0 के कोष के रूप में इकट्ठा हो जाता था। बाँदा में कांग्रेस के कर्णधार कुँअर हर प्रसाद सिंह ने खुलकर सहयोग प्रदान किया। पं.मातादीन शर्मा और मथुरा प्रसाद खरे ने अग्निहोत्री जी के दिशा–निर्देशन में धन–संग्रह करते थे। पैसे रुपये के साथ–साथ लोग अनाज, आटा, जमीन का दान भी करते थे।

बाँदा जनपद में चौधीर प्रयाग सिंह, लाला केदारनाथ, सेठ जुगुलकिशोर, आनन्दी प्रसाद, झाडीलाल, मानालाला, वंशीधर ओवर सियर, जयंती प्रसाद, इं. लक्ष्मीदास, दुर्गा प्रसाद, बलभद्र प्रसाद, प्रागीदास, ओरीलाल, रामस्वरूप सिंह, नारायण प्रसाद, बट्टूलाल आदि ने तन, मन, धन से आन्दोलन में मदद की। चौधरी प्रयाग सिंह ने आर्य समाज के लिये भूमि प्रदान की। रोचक तथ्य यह है कि स्वतंत्रता प्रेमी खादी वस्त्रों को बेचकर स्वदेशी का प्रचार के साथ–साथ आर्थिक विपन्नता को दूर करते थे।

इस धन का प्रयोग पुस्तकालय की स्थापना, मीटिंग की व्यवस्था, समाचार–पत्रों को छापने तथा बन्दियों के घरों की मदद में किया जाता था। पं.गोदीन शर्मा जब ऋषि कुल हरिद्वार में आयुर्वेद की शिक्षा ले रहे थे, वह स्वयं को बेंचकर आन्दोलन के लिये आर्थिक मदद की पेशकश की थी। इस प्रकार जिले के तमाम स्वतंत्रता प्रेमियों ने मुक्तहस्त से आन्दोलन में आर्थिक सहयोग प्रदान किया।

शिक्षक और शिक्षार्थी समाज और देश के जागरुक प्रहरी होते हैं। शिक्षा से जागृति आती है और शिक्षा से ही स्वतंत्रता, समानता और अधिकारों का ज्ञान होता है। इन मौलिक अधिकारों की प्राप्ति के लिये कई देशों और समाजों में क्रांतियाँ और विद्रोह हुए। प्राचीन भारत में आचार्य चाणक्य और चन्द्रगुप्त मौर्य की गुरु–शिष्य परम्परा ने न केवल भारत को यूनानी दासता से मुक्त कराया बल्कि मगध के अत्याचारी शासक घनानन्द की हत्याकर अखण्ड भारत का निर्माण किया। आधुनिककाल में जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने मुगल केन्द्रीय सत्ता को नष्ट कर दिया और देशी रियासतों को हराकर उन्हें पराभूत कर दिया और फिर ब्रिटिश क्राउन ने सम्पूर्ण भारत पर अधिकार कर यहाँ की सांस्कृतिक विरासत को नष्ट कर दिया, तब फिर भारतीय मनीषियों,

समाज सुधारकों ने पुनः देश की सामाजिक, आर्थिक आजादी के लिये लोगों को जागृत करने का काम किया।

गाँधी जी का समाज पर व्यापक प्रभाव था। उसके पीछे उनकी पद्धति, कार्यशैली, उनका व्यक्तित्व, कर्तव्य परायणता, सादगी, रचनात्मक कार्यक्रमों पर बल, सामाजिक सद्भाव, निम्न वर्ग की उत्थान की भावना, स्वदेशी विचारधारा आदि था। इन्हीं सब कारणों से समाज का सर्वहारा वर्ग कृषक, मजदूर, छोटे व्यापारी, दलित आदि उनसे जुड़ गया। उनके व्यक्तित्व व कार्यशैली का प्रभाव बाँदा–चित्रकूट जनपद के लोगों पर पड़ा। जनपद के हजारों लोग भारत माता की जय, गाँधी जी की जय का नारा लगाते हुए जेल गये और यातनाएँ सही। विद्यार्थियों ने विद्यालय व वकीलों ने वकालत और अध्यापकों व इंजीनियरों ने अपनी सरकारी नौकरी छोंड़ दी। इसके उदाहरण इस जनपद में मिलते हैं।

भारत में बींसवीं सदी का उदय स्वदेशी आन्दोलन के साथ हुआ, जिसमें राष्ट्रवाद तथा गाँधीवादी आन्दोलनों को बड़ा बल मिला। स्वदेशी आन्दोलन से ग्रामीण व शहरी छात्र, युवक, महिलाएँ पहली बार सक्रिय राजनीति में आए। स्वदेशी विचारधारा महज राजनीति तक सीमित नहीं थी, अपितु कला, संगीत, विज्ञान, उद्योग व अन्य क्षेत्रों में भी इस आन्दोलन का प्रभाव पड़ा। गाँधी युग में स्वदेशी विचारधारा का प्रभाव बाँदा–चित्रकूट जनपद के सभी वर्गों पर पड़ा। स्वदेशी विचारधारा से प्रभावित लोगों ने विदेशी कपड़ों की होली जलाई, शराब की दुकानों में धरना प्रदर्शन किया, चरखा का प्रचार किया, खादी वस्त्रों का प्रचार किया, शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना की, कर न देने जैसी तमाम घटनाएं हुईं। जनपद में कई विद्यालय खोले गये। खादी भण्डार खोले गये। हिन्दी भाषा को प्रोत्साहन दिया गया। हिन्दी साहित्य सभा (1917) तथा नागरी प्रचारिणी पुस्तकालय की स्थापना बाँदा नगर में की गई। लक्ष्मीनारायण अग्निहोत्री, कुँवर हरप्रसाद सिंह, बाबा महावीर दास आदि क्रांतिकारियों ने गाँव–गाँव जाकर खद्दर का प्रचार, शराब बन्दी का प्रचार–प्रसार किया। महिलाओं ने सूत काता और शक्कर की जगह गुड़ का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया।

किसी भी देश पर क्षेत्र की सभ्यता तथा संस्कृति पर वहाँ की स्थिति तथा जलवायु का प्रभाव पड़ता है। तत्कालीन परिस्थितियाँ मनुष्य के जीवन को प्रभावित करती हैं फलस्वरूप मानवीय संस्कृति हमेशा प्रगतिशील रहती है। प्राचीनकाल से लेकर आधुनिककाल तक भारत में क्रमशः यूनानी, शक, पल्लव, मुस्लिम तथा इसाई आक्रमण हुए। लेकिन इन विजातीय संस्कृतियों के लोग भारत की मूल संस्कृति को प्रभावित नहीं कर सके। इसके बावजूद विशाल भारतीय हृदय ने सभी को अपने में समाहित कर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अपनी मूलभावन को प्रदर्शित किया। हमारी संस्कृति विविधता में एकता स्थापित किये हुए है। धार्मिक विविधता के बावजूद भी सामाजिक एकता के कारण समाज के सभी वर्गों ने देश की आजादी के लिये मिलकर लड़ाइयाँ लड़ी और प्राणों का बलिदान दिया।

समाज का निम्नतम् वर्ग दलित ने भी देश की आजादी की लड़ाई में स्वयं को पीछे नहीं रखा। तिलकमांझी, सिद्धू संथाल, मातादीन, चेतराम जाटव, बल्लू मेहतर, बांके चमार, झलकारी बाई, ऊदा देवी, मक्का पासी, ऊधम सिंह आदि तमाम दलितों के नाम इतिहास में अमर हैं। इसी प्रकार बाँदा में मुलवा चमार, गंगादीन चमार आदि के नाम मिलते हैं जिन्होंने गाँधीवादी आन्दोलन में भाग लिया।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध सबाल्टर्न अध्ययन (निम्नवर्गीय प्रसंग) पर आधारित है। सबाल्टर्न अध्ययन इतिहास लेखन की एक ऐसी विचारधारा है, जिसमें आम जनता,

गरीब, किसान, चरवाहा, कामगार, स्त्री समाज, दलित जातियों के संघर्षों और विचार को बहुत करीब से समझने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार के इतिहास लेखन में प्रो.रणजीत गुहा, प्रो.ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, प्रो. जेड.ए.जैदी, प्रो.सुशील श्रीवास्तव, प्रो. राजेन्द्र सिंह आदि ने कार्य किया है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में इनके विचारों को समाहित करते हुए जनपद में स्वतंत्रता आन्दोलन में सर्वहारा वर्ग की भूमिका को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

रणजीत गुहा ने भारत के किसानों और कबीलों के मौजूदा इहिासकारों की आलोचना की है जिसमें किसान आन्दोलनों को आकस्मिक और अनियोजित बताया और विद्रोह की चेतना को नकारा है। इन्होंने 'निम्नवर्गीय प्रसंग के प्रथम भाग में अपने लेख 'स्वर्ग में और धरती पर एक प्रति ईश्वर का जीवनवृत्त' में भारतीय धर्म ग्रन्थों में लेखों मिथकों, कहानियों के माध्यम से भारतीय समाज में फैले अंधविश्वासों, रीतिरिवाजों और परम्पराओं, छुआछूत पर कुठाराघात किया है। गुहा ने अपने शोध 'चन्द्रा की मौत' में मध्य 19वीं शताब्दी के बंगाल से एक कानूनी वृत्तान्त को कुशलता पूर्वक उपयोग करते हुए पितृसत्तात्मक संस्कृति और स्थानीय न्याय की प्रक्रिया का एक 'निम्न जाति' की स्त्री की अस्तित्वगत दुर्दशा के सन्दर्भ में अत्यंत संवेदनशीलता से विश्लेषण किया है।

प्रो.ज्ञानेन्द्र पाण्डेय ने राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बन्धित विचार व्यक्त किये हैं। उन्होंने लिखा है कि आधुनिक काल के इतिहास के साथ जुड़ी हिंसा को नए सामाजिक, आर्थिक और वैचारिक ढ़ांचों (पूँजीवाद, राष्ट्रवाद, राष्ट्र राज्य) के निर्माण की प्रक्रिया का एक हिस्सा मानना, या एक रोड़े के रूप में देखना वास्तव में इन सारे विविध संघर्षों को आधुनिक राज्य के जीवन चरित में समाहित करना है। इन्होंने 'निम्नवर्गीय प्रसंग भाग प्रथम' में लिखा है–'हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय आन्दोलन एक बड़ा और विस्तृत आन्दोलन था। यह एक बहुमुखी प्रक्रिया थी जिसमें विभिन्न वर्ग, समुदाय, जातियाँ और क्षेत्र अपनी–अपनी विशिष्ट भूमिका में दृष्टिगोचर हुए। वह लिखते हैं–औपनिवेशिक भारत में और अन्यत्र भी प्रभुत्व केवल आर्थिक दबाव के बलबूते पर ही कायम नहीं रहता। निम्नजन को उनकी गौणता का अहसास विविध प्रसंगों में रोजमर्रा तौर पर भी कराया जाता है। ज्ञानेन्द्र पाण्डेय ने पूर्वी भारत में 19वीं शताब्दी के आखिर में चले गोरक्षा आन्दोलन की जटिलता का विश्लेषण प्रस्तुत किया है जिसमें प्रतीकवाद, वर्ग हित और सार्वजनिक क्षेत्र परस्पर गुथे हुए हैं।

शाहिद अमीन के अनुसार कांग्रेस के नेता जिस दृष्टि से महात्मा को देखते थे और जनता जिस दृष्टि से महात्मा को देखती थी उसमें काफी फर्क था। हालांकि महात्मा का संदेश 'अफवाह' के रूप में चारों ओर फैल जाता था परन्तु इसके पीछे आर्थिक दर्शन और राजनीति काम करती थी–अच्छा आदमी बनने की जरूरत, शराब, जुआ और हिंसा का त्याग, कताई करना और साम्प्रदायिक सद्भाव बनाए रखना।

दीपेश चक्रवर्ती ने 'मजदूर वर्ग की परिस्थितियों की जानकारी के लिए शर्ते' में कलकत्ता के जूट मजदूर (1890–1940) के विशेष संदर्भ में निष्कर्षरूप में लिखा कि ''कलकत्ता के जूटमिल मजदूरों की परिस्थितियों का इतिहास यदि राज्य तथा पूँजीपतियों से प्राप्त कागजात के आधार पर लिखने का प्रयास किया जाय तो इन परिस्थितियों के बारे में हमारी जो जानकारी है उसमें कुछ रिक्तियाँ दिखाई देंगी। इस सम्बन्ध में हमने यह तर्क दिया है कि जिस प्रकार हर जानकारी का इतिहास होता है उसी प्रकार रिक्तियों का भी इतिहास होता है। वास्तव में यही वह इतिहास था जिसने जानकारी प्रदान की जो संग्रहालयों में रखे कागजात में मिलती है और वे रिक्तियाँ भी उन्हीं कागजूद में मौजूद हैं।

पार्थ चटर्जी ने अपने लेख 'राष्ट्र और उसकी महिलाएँ' में ऐतिहासिक तथ्य दिया कि औपनिवेशिक भारत के अंतिम चरण में जनता का जो भाग व्यवहार में 'राष्ट्र' की हैसियत रखता था, उससे आने वाली मध्यवर्गीय स्त्रियों का जीवन ऐसे राष्ट्रवादी आन्दोलन के दौर में ही सबसे अधिक तेजी से बदला जितनी तेजी से कि पिछले सौ वर्षों में प्रत्येक पीढ़ी की स्त्रियाँ बड़ी सच्चाई के साथ कह सकती थीं कि उनका जीवन पिछली पीढ़ियों के जीवन से स्पष्ट रूप से भिन्न था। औपनिवेशिक काल में ये परिवर्तन अधिकतर राजनीतिक आन्दोलन के दायरे से बाहर घटित हुए–एक ऐसे क्षेत्र में जिसमें राष्ट्र अपने को तब भी स्वतंत्र समझता था।

रंजन कुमार (कानपुर) ने बाँदा एवं फतेहपुर जिलों में भारत छोंड़ो आन्दोलन के दौरान जेल गये लोगों का सरकारी आंकड़ा एकत्रित किया जिसमें निष्कर्ष निकाला कि भारत छोंड़ो आन्दोलन के दौरान मुस्लिमों की सहभागिता न्यून स्तर पर थी।

राजेन्द्र सिंह ने बाँदा जनपद में मानव संसाधन विकास पर शोध कार्य किये जिसके लिए विभिन्न वर्षों की जनगणना पुस्तिका, सी.ई.लुआर्ड एवं डी.एल. ब्रोकमैन, के गजेटियर से प्राप्त आंकड़ों का प्रयोग किया गया। उन्होंने अपने शोध पत्र ''बाँदा जनपद में आधुनिक शिक्षा का उद्भव'' शीर्षक में इस क्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा एवं सामाजिक समीकरणों का अनुशीलन किया। साथ ही उन आंकड़ों को प्रस्तुत किया जिनमें गाँधीवादी आन्दोलनों के कारण छात्रों ने अपनी पढ़ाई छोड़ दी, जिसके कारण स्कूलों एवं कॉलेजों में ड्राप आउट प्रतिशत बढ़ा। राजेन्द्र सिंह ने अनेक शोध पत्र लिखे जिनकी विषय–वस्तु यहाँ के मानव संसाधन विकास से सम्बन्धित थी।

पुरुषोत्तम सिंह ने बुन्देलखण्ड में अपने अध्ययन को नगरीकरण प्रवृत्तियों एवं दुर्गों के अवदान से जोड़ा है। उन्होंने माना कि बुन्देलखण्ड विशेषकर बाँदा में ब्रिटिश काल में नई–नई बस्तियों की उत्पत्ति हुई तथा इनका महत्व धीरे–धीरे बढ़ता गया।

बाँदा जनपद में मानव संसाधन विकास के साथ–साथ राष्ट्रवादी प्रवृत्तियाँ बढ़ती चली गयी परन्तु 1940 के बाद मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग के कारण साम्प्रदायिकता का विकास हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कांग्रेस ने तुष्टिकरण की नीति अपनायी तथा वे लोग जो मुस्लिम लीग के लिए चन्दा इकट्ठा करते रहे, पाकिस्तान के निर्माण की मांग का समर्थन करते रहे, कांग्रेस ने उन्हें 1951 के विधानसभा चुनावों में टिकट दिया। 1947 में विभाजन के परिणाम स्वरूप बाँदा शहर के कई मुस्लिम परिवार पाकिस्तान के सिंध प्रान्त में चले गये जबकि सिंध प्रान्त के अनेक गैर–मुस्लिम बाँदा शहर में आकर बस गये।

स्वतंत्रता संग्राम सेनानी श्री भुवनेश्वर प्रसाद शुक्ल ने साक्षात्कार में जानकारी दी कि तत्कालीन जमींदार अब्बास अली का करिंदा हादी देश के बंटवारे के बाद पाकिस्तान चला गया था। अब्बास अली (बिहार) को आठ आने की जमींदारी प्राप्त थी। उसका करिंदा हादी (इलाहाबाद) मऊ क्षेत्र में अत्याचार कर जबरन कर वसूलता था। बाँदा के विद्वान तथा समाज सेवी बी.डी. गुप्ता ने साक्षात्कार में जानकारी दी कि बाँदा के मजिस्ट्रेट जफर अली (अनेररी) तथा वकील 'कारी साहब' देश के बंटवारे के समय बाँदा छोड़कर पाकिस्तान चले गये थे।

**निष्कर्ष के मुख्य बिन्दु :**

- 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में जनपद में ब्रिटिश सरकार के खिलाफ बाँदा नवाब के साथ–साथ यहाँ की आम जनता ने भाग लिया।
- औपनिवेशिक नीतियों के कारण यहाँ का किसान, शिल्पकार, कामगार, नवयुवक बेरोजगार हुए अतः आम जनता ने राजकोष लूटे, सार्वजनिक सम्पत्तियाँ नष्ट की।

- कांग्रेस की स्थापना के बाद इस जनपद में भी राजनीतिक जाग्रति आयी और सर्वहारा वर्ग के लोग भी आजादी के लिए उत्सुक हुए।
- बाँदा जनपद में भी गाँधी जी का जनमानस में व्यापक प्रभाव था।
- इस जनपद में गाँधीवादी आन्दोलनों में किसानों, शिल्पकार, कामगार, दलितों, शिक्षकों, विद्यार्थियों, वकीलों, पत्रकारों और मजदूरों ने भाग लिया।
- जनपद के नेताओं का चन्द्रशेखर आजाद व उस समय की क्रांतिकारी संगठनों से सम्पर्क था।
- जनपद के नेता भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सम्मेलनों में भाग लेते थे।
- गाँधी जी व आर्य समाज के प्रभाव से जनपद में हिन्दी भाषा का प्रचार, स्वदेशी व खादी का पर्याप्त प्रचार–प्रसार हुआ।

**सन्दर्भ :**


1. चक्रवर्ती, स्पिनॉक गायत्री, सबाल्टर्न स्टडीज, डिकंस्ट्रक्टिंग हिस्ट्रोग्राफी, पृ.सं.1
2. स्केवाच, हेनरी, राइटिंग कल्चर हिस्ट्री ऑफ कालेनिअल एण्ड पोस्ट कालोनिअल इण्डिया, पृ.सं.140
3. भारतीय इतिहास लेखन की विभिन्न दृष्टियाँ और विषय, पृ.सं.22
4. शाहिद, अमीन, ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, निम्नवर्गीय प्रसंग, भाग–1, पृ.सं.15
5. शाहिद, अमीन, ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, निम्नवर्गीय प्रसंग, भाग–1, पृ.सं.16–35
6. भारतीय इतिहास लेखन की विभिन्न दृष्टियाँ और विषय–2, पृ. -22&23

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# बम का दर्शन

**प्रोफेसर आदेश गुप्ता**
प्रोफेसर इतिहास विभाग
दयानंद एंगलो वेदिक कॉलेज कानपुर

संसार के पराधीन देशों की स्वाधीनता के युद्ध का एक ही मार्ग सामने आया था, वह था हिंसा का प्रयोग। महात्मा गाँधी ने उस मार्ग को न अपनाकर अहिंसा का मार्ग देश के सम्मुख रखा। इस अहिंसा के मार्ग को उन्होंने कितने ही रूपों में देश के सम्मुख प्रस्तुत किया। परन्तु उनका 1921 का पहला चौरी–चौरा में लोगों के हिंसा मार्ग के अपनाने से असफल हो गया और महात्मा जी ने उस प्रयत्न को 'हिमालय पर्वत के समान भूल' कहकर स्थगित कर दिया। उसके पश्चात् ही ब्रिटिश सरकार हिन्दू और मुसलमानों मे फूट–डलवाने मे सफल हो गई और 5–6 वर्षो तक इन झगड़ों ने देश के कोने–कोने को जड़ से हिला दिया। परन्तु महात्मा गाँधी ने हिम्मत नहीं हारी। उनका प्रयत्न लेखो, भूत हड़तालो, चरखाकरधो द्वारा चलता ही रहा। कांग्रेस में भी दो दल हो गये थे। एक महात्मा गाँधी के साथ रहा जो असहयोग में विश्वास करता था। दूसरा वह दल जो असेम्बली द्वारा अपनी मांगो को साम्राज्य वादियों के सामने रखना चाहता था। इस दूसरे दल के नेता थे पण्डित मोती लाल नेहरू।

कहते है सत्य कभी–कभी बड़ा कडुवा होता है। इस कथन की सत्यता महात्मा गांधी को दूसरे विश्वयुद्ध के आरम्भ में ही ज्ञात हो गई। जिन उच्चकोटि के नेताओं को वह समझते थे कि उनका अहिंसा में पूर्ण तथा अटूट विश्वास है उन्होंने ब्रिटिश सरकार को यह प्रस्ताव दिया कि यदि वह भारत को युद्ध के अन्त में स्वराज्य देने का वादा करें तो वे लोग उसके साथ युद्ध में सहयोग देंगे। अभिप्राय यह कि उनका अहिंसा में विश्वास केवल एक नीति भर था, पूर्ण नहीं था। महात्मा गाँधी ने इस प्रस्ताव का पूर्ण रूप से विरोध किया, परन्तु यह उनकी अकेली ही ध्वनि थी और महात्मा जी को कांग्रेस की चार आने वाली सदस्यता से भी त्याग पत्र देना पड़ा।

परन्तु क्रांतिकारी तो अधिक सत्यवादी थे। वे तो डंके की चोट पर कहते थे कि वे हिंसा के मार्ग में विश्वास करते हैं। इसी विश्वास को उन्होंने महात्मा गाँधी के लेख Cult of the Bomb के उत्तर Philosophy of the Bomb में दर्शाया।

लाहौर में वार्षिक कांग्रेस सेशन में 26 जनवरी 1930 के दिन समस्त भारत में स्वतंत्रता दिवस मानने की घोषण की थी। दल ने उसी दिन महात्मा गाँधी के बम पार्टी

का Cult of the Bomb उत्तर बम का दर्शन Philosophy of the Bomb के द्वारा देने का निश्चय किया।

26 जनवरी को भारत के प्रमुख नगरों में प्रातःकाल लोगों के घरों में कालेजो के हॉस्टलों में, अदालतों में, व्यापार घरो में एक पर्चा पाया गया, जिसका शीर्षक था Philosophy of the Bomb उस पर्चे में उस पर्चे में महात्मा गाँधी जी के लेख का पूर्णतया उत्तर दिया गया था कि गाँधी जी अपने अहिंसा मार्ग की सराहना करते है, परन्तु उनका क्रांतिकारियों के प्रति दोष निकालना अत्यन्त निरर्थक है। जो युवक अपने काम, अपने बलिदान को बिना प्रयास की आशा से करते हैं और हसते–हसते फाँसी पर भी चढ़ जाते हैं, या गोली से उड़ा दिये जाते है, वे उन लोगों से कहीं अधिक सराहनीय है जो यह समझते है कि 6 महीने के लिए जेल जाने से या नमक का कानून तोड़ने से स्वाधीनता प्राप्त कर लेगे। उस पर्चे का आशय इस प्रकार था– क्रांतिकारी दल पर महात्मा गाँधी ने उनके प्रति कायरता आदि का जो लाछन लगाया है, दल ने इस 'बम के दर्शन' का पर्चा बाँटकर अपना विचार छोड़ा है कि वही इस बात का निर्णय करें कि क्रांतिकारी कायर है या वीर।

''क्रांतिकारी हिंसा, हिंसा की खातिर नहीं करते। वे अपने विश्वास के अनुसार न्याय चाहते है और अपने उद्देश्य की पूर्ति में अपना सब कुछ बलिदान कर देते हैं। वे आथ्मक या शारीरिक बल में भेद नहीं करते। दोनों का ही अपने–अपने स्थान पर प्रोग करते हैं। क्रांति का अभिप्राय समझाते हुए पर्चे में लिखा था कि इसका लक्ष्य एक नई न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था है जिससे पूँजीवाद को समाप्त कर श्रेणीहीन समाज की स्थापना और देशी तथा विदेशी शोषण से जनता मुक्त हो, आत्मनिर्णय द्वारा जीवन व्यतीत करने का अवसर मिले और शासन मजदूर श्रेणी का हो।''

''भारत का युवक सामाजिक अन्याय और शोषण के विरूद्ध विद्रोह पर तुला हुआ है। यही विद्रोह आतंकवाद का रूप ले जरा हैं। जो क्रांति का आरम्भिक चिन्ह है। आंकवाद अन्यायी शोषक के ह्रदय को दहलाता है और पीड़ित तथा दलित जनता को प्रतिकार द्वारा आत्मविश्वास, उत्साह और साहस देता है। फिर भी दल का लक्ष्य आतंकवाद नहीं हैं। आतंक का मार्ग क्रांति में परिणित होगा और क्रांति सर्वसाधारण जनता की रजनैतिक और आर्थिक स्वतंत्रता में परिणित होगी। क्रांतिकारी क्रान्ति के मार्ग में विश्वास करते है। उनके सामने संसार के दूसरे उदाहरण मौजूद है। कांग्रेस बजाय ब्रिटिश साम्राज्य के विरूद्ध लड़ने के क्रांतिकारी दल के पीछे पड़ रही हैं। महात्मा गाँधी भारत को क्रूरता के साथ बदलने वाले को अपना मत्र बनाते हैं। देश पर अपना जीवन निछावर करने वालों को कायर और उनके एक्शनों को जधन्य कहते हैं। जनता क्रांतिकारियों के साथ ही है, यह तो लाहौर कांग्रेस ने स्पष्ट कर दिया। गांधी जी का यह भ्रम है कि जनता उनके साथ है, जनता तो उसके साथ ही होी है जो उनसे प्रेम करता है और उससे घृणा करती है जो उसे दुख देता है। इस बात में भारत की जनता, दूसरे देशों की जनता से भिन्न नहीं है। आखिर गाँधी जी ने कितने डायर, ओडायर, रीडिंग या इरविन का प्रेम से अपनी ओर कर लिया और फिर ब्रिटिश साम्राज्य तो बहुत दूर हैं।''

भारत की स्वतंत्रता के लिए किये गये प्रयासों में विविध आंदोलनों का और उसमें भी क्रांतिकारी आंदोलन का एक विशेष स्थान रहा है। सन् 1857 से 1947 तक ये क्रांतिकारी आंदोलन के प्रयास कभी व्यक्तिगत रूप से तो कभी सामूहिक रूप से चलते रहे। सशस्त्र क्रान्ति करने के इरादे से चल निकलने वाले देश प्रेमी निश्चय ही प्राणों की बाजी लगाने वाले जीवन निर्मोही युवक थे। अपने भविष्य की चिंताओं से

घिरने की अपेक्षा वर्तमान में कुछ कर गुजरने को ही ये युवक लालायित हो उठते थे। हमसे जब कभी क्रांतिकारी आंदोलन को उपन्यास का विषय बनाया है तो उन्होंने क्रांतिकारी चरित्र को लेकर उन्हे विभिन्न पहलुओ से देखने का निश्चित रूप से प्रयास किया है। फाँसी की रस्सी को चूमने वाले, राष्ट्रीय गीत गाते झूमने वाले, गोली के शिकार बनने वाले, साम्राज्यवादियों के सामने अड़िग रहने वाले क्रान्तिकारियों के भावलोकन का मूल्यांकन जरूर किया हैं। जब पराधीनता में जीवन मूल्यों का पतन होता हैं, राष्ट्रीय संस्कारों की हत्या होती है, प्रगति की गति शून्य होती है, नैतिक साहसो के अभाव में आवाज बुलंद नहीं होती तब देश को आजाद बनाने के लिए कुछ युवक अपने भविष्य की चिंता को छोड़ आवेश से आगे आते है। उनमें सरफरोशी की तमन्ना रहती हैं। अपनी कुर्बानी से वे न्याय की स्थापना करते हैं। जान हथेली पर लेकर खेलते रहते हैं और आतंक निर्माण कर राजव्यवस्था को झकझोरते है। तब कहीं देश आजाद होता है। ऐसी अवस्था में उपन्यासकारों ने अगर अपने विषय क्रांतिकारी आंदोलन न बनाया होता तो ही आश्चर्य होता।

हिन्दी उपन्यास इस विषय को लेकर प्रमुख उपन्यास मिलते हैं। इनमें सिर्फ दुर्गा प्रसाद खत्री के ''रक्तमंडल'', ''लालपंजा'', ''प्रतिशोध'', 'दादा कामरेड' यशपाल का जैसे उपनिवेशो में अत्यधिक सही मात्रा में क्रान्तिकारी आंदोलन को चित्रित किया गया हैं क्रांतिकारी संस्था, संस्था का सद्देश्य, सदस्यों की दी जाने वाली प्रतिज्ञाएँ, शाखाओं का कार्य, बागी, फरेबी, मुखबिर सदस्यों की जानकारी, उनकी भूमिका का स्वरूप, जनता की बिगड़ी अवस्था की जानकारी, दल की प्रचार व्यवस्था, छपे साहित्य द्वारा प्रचार कार्य, विदेशी सत्ता के विरोध में जनता को भड़काने के लिए प्रेरित करने वाले उपाय आदि विविध प्रकार की जानकारी कम अधिक रूप में जितनी उपरोक्त उपन्यासो से मिलती है उतनी अन्य उपन्यासों में कम। इन उपन्यासों को छोड़ बाकी उपन्यासों में क्रान्तिकारी आंदोलन के बारे में जानकारी न के बराबर हैं। जो कुछ वह है, एकदम ऊपरी तौर का दिखावटी नकली है। बाकी उपन्यासों में क्रान्तिकारी आन्दोलन की अन्तर्गत खूबियों को नहीं दिखाया है। क्रांतिकारियों की सिर्फ यही कल्पना है कि कहीं गोली दाग देने से तथा मित्र को जेल से मुक्त करने से ही क्रांति होती है। जो भी क्रांति का दर्शन प्रस्तुत करना चाहते थे वह जनमानस तक पहुँचा देने में वे असमर्थ रहे है। स्वतंत्रता के महान प्रश्न को लेकर सशस्त्र क्रान्ति करने वाले क्रांतिकारी तथा क्रांतिकारी आंदोलन का चेतनामय चित्रण करने में प्रतिभाशक्ति में सक्षमता का अभाव रहा है। देश की बिगड़ी अवस्था देख उनकी प्रतिभा तथा उनकी लेखनी प्रक्षुब्ध नहीं हुई। सशस्त्र क्रांति के पथ को प्रदीप्त प्रकाश प्रदान नहीं किया। इन सबके पीछे एक ही महत्वपूर्ण कारण काम कर रहा है। और वह है हमारे उपन्यासकारों की क्रांतिकारी आन्दोलन के प्रति अनास्था। जिस नेतृत्व में यह क्रांतिकारी आंदोलन चल रहा था तथा जिस दर्शन का उसे आधार था उसमें हमारे उपन्यासकारों का अविश्वास ही था। इतने सारे उपन्यासों को देखने के बाद और भी एक बात स्पष्ट होती है कि पराधीन सत्ता के प्रभाव में क्रांतिकारी आंदोलन का चित्रण करने की निर्मयता उपन्यासकारों में नहीं थी। गांधीवाद जोखिम का पथ नहीं था, कोई भी अपनी क्षमता के अनुसार गांधीवार में योगदान दे सकता था।

अब क्रांतिकारी चरित्रों के परखने से हामरे सामने उनका कोन सा स्वरूप प्रस्तुत होता है? इतिहास सम्मत क्रांतिकारियों के गुण उनके कार्य की विवेचना पहले अध्याय में होने से उन्हें यहाँ दोहराने की अवश्यकता नहीं है। हिंदी उपन्यास में जो भी क्रांतिकारी चरित्र पाये जाते है उनमें से अधिकांश चरित्र इतिहास सम्मत क्रांतिकारियों

के चरित्रों से मेल नहीं खाते। हमारे अधिकांश क्रांतिकारियों के चरित्रों से मेल नही खाते। हमारे अधिकांश क्रांतिकारी चरित्रप्रेमी रहे हैं। इन प्रेमियों में भी दो वर्ग मिलते है। एक वर्ग में स्त्री क्रांतिकारी को प्रेम में भटकाती है तो दूसरे वर्ग में क्रान्ति कर्म की प्रेरणा देती हैं।

आतंकवाद को सशस्त्रक्रांति को सही मानने वाले पात्रों में ''रक्तमंडल'', ''लालपंजा'', ''मदर'', बलिदान जैसे उपन्यासो के पात्रों का समावेश होता हैं। बाकी उपन्यासों के पात्र क्रांतिकारी आंदोलन की भूमिका में आस्था रखते हुए भी बदलती स्थिति के अनुसार अपनी भूमिका में परिवर्तन करते हैं। क्रांतिकारी आंदोलन के चित्रित वातावरण से तथा क्रांतिकारी चरित्र के प्रभाव से जनसामान्य को सशस्त्र क्रांति में सहयोग देने की प्रेरणा मिले।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में येागदान देने के लिए सभी क्रांतिकारियों को आज पूरा देश उनके सौर्य, पराक्रम तथा उनके बलिदान के लिए याद करता है और गर्व महसूस करता है कि हमारे देश में एसे वीर सपूतो का जन्म हुआ। जिन्होंने अपने प्राणों की परवाह किये बिना देश की आजाद कराने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिा। उनका बलिदान आज सभी के लिए प्रेरणा का स्त्रोत है। उनके समर्थको ने उन्हे शहीद शीर्षक दिया। वे सभी अर्थो में शहीद थे उन्होंने जिस प्रकार से देश को ब्रिटिश शासन के चंगुल से मुक्त कराने में अपना योगदान दिया उन्हें उनके इस सौर्य के लिये सारा देश उनका ऋणी रहेगा।

**संदर्भ-**


1. अहीर, राजीव, 'आधुनिक भारत का इतिहास', स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा0लि0 नई दिल्ली
2. 'आज' कार्यालय द्वारा प्रस्तुत स्वतंत्रता संग्राम, वाराणी संवत् 2028
   – विश्वनाथ 'वैशम्पायन', अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद
3. दी ट्रिब्यूनल : लाहौर, 3 मार्च 1931
4. दी लीडर, इलाहाबाद : 1 मार्च 1931
5. ग्रोवर, बी0एल0, 'आधुनिक भारत का इतिहास'
6. गुरुदेव सिंह 'देवल' : द रोल ऑफ द गदर पार्टी इन द नेशनल मूवमेंट
7. मन्मयनाथ 'गुप्त' : दे लिब्ड डैजरेसली (दिल्ली 1989)
8. मन्मयनाथ 'गुप्त' : भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलनों का इतिहास (दिल्ली 1966)
9. निगम; नन्दकिशोर, 'बलिदान', (चन्द्रशेखर आजाद की रोमांचकारी जीवनी)
10. प्रोफेसर, सिन्हा, कन्हैया प्रसाद, 'महान क्रान्तिकारी श्याम बर्थवार'
11. प्रवणेश कुमार चटर्जी की याचिका
12. डॉ0 सिंह तंवर, श्याम, 'भूले बिसरे क्रांतिकारी'

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# नागपुर के भोसलों का पूर्वी नर्मदांचल पर आधिपत्य (1799 –1818)

**अभिलाषा गौर**
एसोसिएट प्रोफ़ेसर इतिहास विभाग
दयानंद गर्ल्स कॉलेज कानपुर

1799–1818 के काल में पूर्वी नर्मदांचल के इस क्षेत्र में कई शक्तियों ने प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप किया जिसने ना केवल इस काल का इतिहास निर्मित किया बल्कि इस काल के उपरांत का घटनाक्रम भी नियत किया। इन शक्तियों में पूना का पेशवा एवं उनकी राजनीति, सिंधिया, होल्कर एवं अंग्रेज, थे। स्थानीय सत्ता केंद्र, भोसले पर पिंडारियों के निरंतर धावों ने अहम् भूमिका निभाई। रिचर्ड वेलेजली ने 17 मई 1798 को कलकत्ता में गवर्नर जनरल का पद ग्रहण किया उसने सात वर्ष तक इस पद पर कार्य किया एवं 30 जुलाई 1805 को त्याग पत्र दिया। वह अत्यन्त महत्वाकांक्षी, साहसी एवं दूरदर्शी था। आक्रामक वेलेजली ने पूना के रेजीडेंट कर्नल पामर, हैदराबाद के रेजीडेंट जे0ए0 पेट्रिक को अपनी प्रसिद्ध सहायक संधि प्रथा की नीति के पालन के निर्देश दिए। रिचर्ड वेलेजली का भाई आथर वेलेजली फरवरी 1797 से भारत में कर्नल पद पर कार्य कर रहा था। यही बाद में ड्यूक ऑफ वेलिंगटन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इनका तीसरा भाई हेनरी, रिचर्ड के साथ ही उसके सचिव के रूप में भारत आया। अन्य योग्य अंग्रेज फ्लोज, एलफिंस्टन, मैल्काम जेकिंस एवं पैट्रिक भी अत्यन्त प्रतिभाशाली साहसी एवं अपने देश के प्रति अगाध प्रेम रखने वाले व्यक्ति थे।

पूना की सत्ता बाजीराव द्वितीय (जो दिसम्बर 1796 में गद्दी पर बैठा) एवं दौलतराव सिंधिया जैसे अनुभवहीन, अयोग्य युवाओं के हाथों में थी। ये दोनों ही कुचक्री, अबाध्य एवं हठी प्रवृत्ति के थें बाजीराव एवं नाना फड़नवीस के मध्य निरन्तर संघर्ष चलता रहा यहाँ तक कि नाना को कैद करने के पश्चात् उसके समर्थकों– गंगाधर पंत, त्रिम्बकराव परचुरे, बाबूराव वैद्य नाना के ससुर विष्णुपंत गद्रे, पेशवा परिवार के सेवक अप्पा बलवन्त मेहेण्डेले को बाजीराव द्वारा प्रताड़ित किया गया। उनसे धन प्राप्त करने हेतु उन्हें कोड़े मारे गए व दुर्व्यवहार किया गया। बाजीराव ना ही प्रशासनिक व्यवस्था का संचालन कर पा रहा था ना ही धन की व्यवस्था कर सका। वहीं उसके शत्रुओं की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी अंत में 14 नवम्बर 1798 को बाजीराव ने नाना से करबद्ध निवेदन किया कि वह उसकी सहयता करें व राज्य को बचा ले। यद्यपि नाना को पुनः मंत्री पद दिया गया किन्तु उसने प्रशासन, अर्थ

व्यवस्था, आदि किसी भी कार्य में रूचि नहीं ली वह अस्वस्थ एवं मानसिक रूप से त्रस्त था, वह बाजीराव तथा दौलतराव के तिरस्कृत, अपमानजनक व्यवहार से हताश परित्यक्त एवं असहाय था। अंततः रोगग्रस्त होने के कारण 13 मार्च 1800 को उसकी मृत्यु हो गई।

दौलतराव सिंधिया एवं शर्जाराव घाटगे ने तात्कालिक राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। दौलतराव, महादजी सिंधिया का उत्तराधिकारी था। उसे महादजी की प्रशिक्षित, अनुशासित सेना मिली थी। उसका मंत्री जीवबा दादा बख्शी नाना का समर्थक था, जीवबा की मृत्यु के पश्चात् बालोबा पगनिस मंत्री बना।

नाना ने दौलतराव की सेवा में शर्जाराव घाटगे का प्रवेश करवाया ताकि वह नाना का सहयेाग कर सकें तुलोजी उर्फ सखाराम घाटगे कोल्हापुर के निकट दक्षिण में स्थित मागल गाँव का था, वह अत्यन्त दुर्बुधि व षड़यंत्रकारी स्वभाव का व्यक्ति था इतिहास में उसे शर्जाराव घाटगे के नाम से जाना जाता है। शर्जाराव की चौदह वर्षीय पुत्री बैजाबाई से दौलतराव का विवाह पूना में 26 फरवरी 1798 को हुआ। शर्जाराव ने दौलतराव सिंधिया को नियंत्रित कर लिया परन्तु उसके समक्ष एक जटिल समस्या उत्पन्न हो गई, जिसका दौलतराव सिंधिया शर्जाराव उचित हल नहीं निकाल सके। महादजी सिंधिया की मृत्यु के पश्चात् उसकी तीन पत्नियाँ– लक्ष्मीबाई, भागीरथीबाई तथा यमुनाबाई जीवित थी। ये तीनों ही प्रभावशाली एवं अनुभवी महिलाएँ थी यह सैन्य एवं प्रशासनिक कार्य में भी दक्ष थी। दौलतराव ने इनके जीवन निर्वाह हेतु पर्याप्त प्रावधान करने का वचन दिया था। जीवबा दादा बख्शी की मृत्यु के पश्चात् इन तीनों स्त्रियों के निर्वहन की उपेक्षा होने लगी। नाना ने अप्रत्यक्ष रूप से महिलाओं का पक्ष लिया। ये स्त्रियाँ उज्जैन से दक्षिण भारत को चल पड़ी। दौलतराव की सेना का अधिकांश भाग, विशेषतः सारस्वत वर्ग, पुराने सेवक, जीवाबा का पुत्र नारायणराव बख्शी, सरदार मुजफ्फरखान एवं अमृतराव (पेशवा का भाई) की सहानुभूति इन स्त्रियों के साथ थी जन साधारण का भी विचार था कि स्त्रियों की मांग न्यायपूर्ण है एवं महादजी सिंधिया की विधवाओं के साथ ऐसा कपटपूर्ण व्यवहार नहीं होना चाहिए मार्ग में शर्जाराव ने महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार किया महादजी की योग्य पत्नी लक्ष्मीबाई ने दौलतराव के शिविर पर आक्रमण कर उसे अत्यधिक हानि पहुँचाई। जब भी दौलतराव ने महिलाओं से समझौता वार्ता करनी चाही वे शर्जाराव और उसके पाँच परामर्शदाताओं को उन्हें सौंपने की माँग करती रही।

महिलाओं की इस शक्तिशाली सेना व उन्हें प्राप्त जनसाधारण की सहानुभूति से दौलतराव व बाजीराव त्रस्त हो गए। बाजीराव के मतानुसार नाना इस समस्या का हल ढूंढ सकता था अतएव उसे रतनगढ़ से पूना बुलाया गया। दौलतराव भी समझ चुका था कि शर्जाराव घाटगे को हटाने से ही यह समस्या सुलझेगी। नागपुर के भोसलों ने भी महिलाओं का पक्ष लिया था। नारायण बख्शी जो पूर्वी नर्मदांचल में था महिलाओं के दल में शामिल हो गया। जागोबा बापू तथा लाखोबा दादा ने भी इनकों सहायता दी। यशवंतराव होल्कर भी इनसे आ मिला। महिलाओं ने सम्राट से भी सहायता मांगी और बेगम समरू भी उनसे मिलीं अब दौलतराव का पक्ष कमजोर हो गया, उसके तोपखाना प्रमुख पेरोन एवं अम्बाजी इंगले ने महिलाओं का पीछा किया, उन्होंने दतिया में शरण ली, 1801 के निर्णायक युद्ध में महिलाओं की हार हुई। यह संघर्ष उत्तर से दक्षिण तक के विस्तृत क्षेत्र में चार वर्षों तक चला। इस गृहयुद्ध ने मराठा प्रमुखों के मध्य अविश्वास एवं वैमनस्य को गहरा किया जिसका प्रभाव हर क्षेत्र में उपस्थित मराठा सत्ता पर पड़ा।

इस प्रकार बाजीराव, दौलतराव एवं शर्जाराव घाटगे की इस दुष्ट तिकड़ी ने अपने अन्यायपूर्ण कृत्यों से समस्त मराठा साम्राज्य के पतन को निकट ला दिया।
यशवंतराव होल्कर की भी तात्कालिक मराठा राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका थी। वह तुकोजी होल्कर का पुत्र था। शर्जाराव एवं दौलतराव ने मुकोजी के पुत्र मल्हारराव की हत्या कर दी। यशवंतराव ने स्वयं को शक्तिशाली बनाने व धन की खोज में कई व्यक्तियों से मैत्री करने के प्रयास किए, 1799 में वह भोसलों से सहायता प्राप्त करने नगपुर गया। दौलतराव व बाजीराव की आज्ञानुसार भोसलों ने उसे 30 जनवरी 1800 को बंदी बना लिया परन्तु वह भाग निकला और नर्मदा के क्षेत्र में भटकता रहा। उसका भाई बिठोजी होल्कर महाराष्ट्र में था जहाँ दौलतराव एवं बाजीराव के अन्यायपूर्ण आचरण से कुपित व्यक्ति उससे मिल गए। बिठोजी ने दक्षिण भारत में अमृतराव को सहयोग करने के नाम पर विद्रोह का आरम्भ किया जो कि 1799 से 1803 तक चार वर्षों तक चला उत्तर भारत में यशवंतराव भी निरंतर संघर्ष कर रहा था। पेशवा द्वारा बिठोजी को 16 अप्रैल 1801 में हाथी के पैरों तले कुचलवा दिया गया। दौलतराव व शर्जाराव ने नर्मदा तट पर यशवंतराव से युद्ध किया। परन्तु 1801 में दोनों पक्षों ने समझौता कर लिया इसमें यशवंतराव को समग्र रूप से लाभ हुआ, उसकी प्रतिष्ठा व प्रसिद्धि दूर–दूर तक फैल गई।

1802 में यशवंतराव ने दक्षिण भारत की ओर प्रस्थान किया। रघुजी भोसलें भी पूना पहुँचा उसने पेशवा को परामर्श दिया कि यशवंतराव से ससम्मान वार्ता कर सुलह कर लें। यशवंतराव ने अत्यन्त अनुभवी पाराशर दादाजी (पूर्व में पानीपत के तृतीय युद्ध में भाग ले चुके थे) को पेशवा के पास भेजा। अहिल्याबाई के सचिव गोविंद पंत ने भी बाजीराव को समझाने का प्रयास किया। परन्तु बाजीराव ने टालने एवं बहाने बनाने की नीति अपनाई और यशवंतराव की उचित माँगों की ओर भी ध्यान नहीं दिया। यशवंतराव निरंतर पेशवा से ससम्मान विनम्र आग्रह करता रहा परन्तु पेशवा ने उसकी उपेक्षा ही की, जब यशवंतराव आगे बढ़कर गोदावरी नदी तक पहुँचा तब पेशवाको संकट का आभास हुआ उसने यशंवतराव के दूत से आग्रह किया कि वह उसे वापस ताप्ती नदी तक जाने की सलाह दे। रघुजी भोसले के दूत व यशवंतराव के दूत ने स्पष्टतः पेशवा को बतलाया कि विगत चार माह से यशवंतराव के आग्रह की उपेक्षा की जा रही है। बाजीराव ने विनम्र एवं मृदु व्यवहार से परिस्थिति संभालने का प्रयत्न किया किन्तु उसके मंत्री बालोजी कुजर ने उसे ऐसा करने से रोका और अब बाजीराव ने पुनः यशवतंतराव के घोर विरोध की नीति अपना ली।

यशवंतराव ने शांति समझौते के सारे प्रयत्नों की असफलता के पश्चात् आक्रमण का निश्चय किया। उसने अहमदनगर विजित कर लूट लिया उसके सरदार फतहसिंह मान एवं मीर खाँ ने विजयें प्राप्त की बारामती में यशवंतराव की विजय से पूना में भय व्याप्त हो गया।

अब भी यशवन्तराव ने पेशवा से अनुरोध कि आप स्वामी हैं अतएव शिंदे व होल्कर के झगड़े का न्यायपूर्वक समाधान करें। साथ ही यशवंतराव ने बालोजी कुजर एवं दाजीबा देशमुख को पेशवा प्रतिनिधि के रूप में वार्ता हेतु होल्कर खेमें में आने की शर्त रखी। परन्तु बाजीराव ने कुजर के प्रभाव में आकर कोई भी शर्त मानने से इंकार कर दिया। अंत में 25 अक्टूबर 1802 को संघर्ष में पेशवा की पराजय हुई। इस पराजय के उपरांत पेशवा पूना से भाग गया।

पेशवा ने अंग्रेजों से बसई की संधि कर ली। दिसम्बर 1805 में बाजीराव एवं कर्नल फ्लोज ने इस पर हस्ताक्षर किए। होल्कर पूना में था परन्तु अंग्रेज व पेशवा की संधि के उपरान्त उसने व अमृतराव ने इस गठबंधन से शत्रुता मोल लेना उचित नहीं समझा। बाजीराव पुनः पेशवा बना। अंग्रेजों ने कई परिवर्तन किए। जिसमें नर्मदा नदी के दक्षिण क्षेत्र का दायित्व कर्नल वेलेजली को दिया गया। बाजीराव ने पास ना तो अधिकार थे ना ही धन था, वह नाममात्र का पेशवा था।

भोसला आधिपत्य में गढ़ा–मंडला राज्यः–

तात्कालीन अस्थिर, अनिश्चित राजनैतिक परिस्थितियों का प्रभाव पूर्वी नर्मदांचल के इस राज्य पर पड़ना निश्चित था जो कि भोंसलों के अधीन था। सागर के बुंदेलों से पूर्ण रूप से इस राज्य को प्राप्त करने के पश्चात् रघुजी भोंसला ने रघुनाथ बाजी घाटगे (नाना घाटगे) को इस सूबे का प्रशासनिक उत्तरदायित्व प्रदान किया। नाना घाटगे को इस क्षेत्र का दीर्घकालीन अनुभव था। उसने यहाँ युद्ध लड़े थे वह यहाँ की स्थानीय राजनीति तथा प्रत्येक वर्ग की महत्वाकांक्षा से वह भली भाँति परिचित था। रघुनाथ बाजी स्वयं वीर, उत्साही होने के साथ ही विनम्र भी था, उसके व्यक्तिगत गुणों के कारण ही उससे उदार शासन की अपेक्षा थी। रघुजी ने नर्मदा नदी के दोनों तटों का सम्पूर्ण क्षेत्र उसके नियंत्रण में दिया था। इस समूचे राज्य को संभालने में सहायतार्थ नियुक्त व्यक्तियों में उसके पुत्र–भगवानराव घाटगे, भगवंतराव घाटगे, भ्राता नारायण बाजी घाटगे, बेनीसिंह–सेना सहित, गोविंदराव बक्षी, महिपतराव घाटगे आदि थे। इन सुयोग्य व्यक्तियों की सहायता से नाना घाटगे ने शीघ्र ही समूचे सूबे में कुशल प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित की। उसे भोसला राज्य के सर्वोच्च सम्मान जरीपटका से सम्मानित किया गया था। रघुनाथ बाजी घाटगे के काल की इस सूबे की घटनाओं में सिंधिया होल्कर का युद्ध एवं पिंडारियों का आक्रमण प्रमुख है।

पिंडारी सरदार अमीर खान ने एक बार पुनः भोंसलों के इस सूबे पर आक्रमण किया, रघुनाथ बाजी घाटगे की सेना ने तुरन्त सिकरिया जोधपुर से आगे बढ़कर मोर्चा संभाला, दोनों पक्षों में भीषण संघर्ष हुआ, गोविंद त्रिंबक बक्षी घायल हो गया, सेना के सरनौबत की युद्ध में मृत्यु हो गई। अमीर खान की सेना को भी क्षति पहुँची और उसे भागना पड़ा। युद्धस्थल से भागती हुई सेना का भोंसलों की सेना में सेवास तक पीछा किया। इस निर्णायक पराजय के उपरांत अमीर खान ने आगामी दस वर्षों तक मंडला राज्य की ओर हमला करने का विचार भी नहीं किया। पिंडारी उस काल के आक्रामक योद्धा थे। अमीर खाँ पिंडारी और भी दुस्साहसी एवं क्रूर था उसे होल्कर का समर्थन प्राप्त था। उसे बुरी तरह पराजित करने से मराठा सेना श्रेष्ठता सिद्ध हो गई।

दौलतराव सिंधिया एवं रघुजी भोसले के मध्य सहयोग एवं सद्भाव था। इस समय दौलतराव के राज्य में विद्रोह हो रहे थे। शिंदे महिलाएँ दौलतराव के विरूद्ध सहायता पाने हेतु अनेक शक्तिशाली पुरूषों से सम्पर्क कर रही थीं। दौलत राव सिंधिया ने भोसला राजा से आग्रह किया कि विद्रोहियों की सहायता ना की जाए। रघुजी ने मंडला के सूबेदार नाना घाटगे एवं अन्य सभी सत्ता प्राप्त अधिकारियों को निर्देश दिए कि सिंधिया के विरूद्ध विद्रोहियों को सहायता ना दी जाए।

भोसलों की बड़ी सैन्य टुकडियाँ एवं तोपखाना गढ़ा–मंडला राज्य में था। इससे स्पष्ट है कि भोसला राजा के लिए इस जागीर का अत्यधिक महत्व था इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि सिंधिया ने आषाढ़ मास में वर्ष 1800 में रघुजी से होल्कर के विरूद्ध सैन्य सहायता करने का निवेदन किया। परन्तु रघुजी ने सेना व तोपखाने के

मंडला में होने की सूचना दी। वर्षाकाल में बाढ़ एवं उस क्षेत्र के ऊबड़–खाबड़ एवं भूमि मृदु होने के कारण सेना व तोपखाने का संचालन नहीं हो सकता था।

दौलतराव सिंधिया, यशवतंतराव के विद्रोह को समाप्त करना चाहता था। उसने रघुजी से भी गढ़ा–मंडला में होल्कर के आक्रमण से सतर्क रहने को कहा। रघुजी ने उसे आश्वस्त किया कि गढ़ा–मंडला का सूबेदार रघुनाथ बाजी घाटगे सतर्क वीर एवं साहसी है वह अपने सूबे की रक्षा कर सकेगा।

सिंधिया–होल्कर संघर्ष एवं पूर्वी नर्मदांचलः–

यशवंतराव के भाई बिठोजी होल्कर को पेशवा ने पूना में हाथी के पैरों तले कुचलवा दिया। तत्पश्चात् 1801 में होल्कर व सिंधिया के मध्य भीषण युद्ध हुआ जो 'नर्मदा तट का युद्ध' के के नाम से प्रसिद्ध है। इस युद्ध का विस्तार नर्मदा के दक्षिणी तट से उत्तर में इंदौर उज्जैन तक था। यह युद्ध लगभग चार मास तक चलता रहा। शर्जाराव घाटगे भी दौलतराव की सहायता हेतु आया; इनकी सम्मिलित सेना ने होल्कर को पराजित कर दिया परन्तु 30 अक्टूबर 1801 को यशवंतराव की सेना ने शर्जाराव को पराजित कर दिया। अंत में दोनों के मध्य समझौता हो गया। पेशवा को सर्वोपरि मान दोनों ने उसके आदेशानुसार युद्ध समाप्त कर दिया। इस समझौते ने यशवंतराव को मान्यता प्रदान कर दी। पेशवा ने सिंधिया एवं होल्कर को बराबरी का स्वीकार कर लिया।

इसी घटनाक्रम ने पूर्वी नर्मदांचल क्षेत्र को भी प्रभावित किया रघुजी भोंसला ने आशंकित हो अपने नर्मदा तटीय क्षेत्रों को सुरक्षा प्रबंध किया। नामदार खान को भारी तोपखाने समेत नागपुर से होशंगाबाद भेजा गया, मुहम्मद जमान भी सेना समेत यहीं आ गया, गढ़ा–मंडला के सूबेदार की सेना का बक्षी गोविंदराव त्रिंबक जो उस समय नागपुर में था, अतिशीघ्र अपनी सेना समेत वापस गढ़ा–मंडला आ गया। इनके अतिरिक्त गुण्डो शंकर बिनीवाले एवं चौरागढ़ के निकट उपस्थित येसाजी विश्वनाथ को भी शीघ्रातिशीघ्र होशंगाबाद पहुँचने का आदेश नागपुर के राजा ने दिया, कुछ समय पश्चात् युद्ध क्षेत्र विस्तृत होने पर उसने बेनीसिंग सुखराम को अपनी सेना समेत बरार के निकट तक जाने का आदेश दिया। बेनीसिंह तीव्र गति से जबलपुर छोड़ बरार की दिशा में चला गया। अपने प्रदेश की पूर्ण सुरक्षा व्यवस्था कर भोसलों ने दौलतराव सिंधिया की सहायता के अनुरोध पर ध्यान दिया।

रघुजी भोंसला ने एक सैन्य दल सुखराम अवधूत के नेतृत्व में दौलतराव की सहायता हेतु भेजना स्वीकृत किया, इसके एवज में उसने गुन्हेर चौनसाबाड़ी के प्रदेश की मांग की इस क्षेत्र की अनुमानित आय दस लाख रूपये थी। दौलतराव ने भी इस मांग को स्वीकृत कर लिया और भोसलों ने सहायता भेज दी। होल्कर सिंधिया के संघर्ष का नर्मदा नदी के इस भाग पर प्रत्यक्षतः कोई प्रभाव नहीं पड़ा, अभी होल्कर का भय कम ही हुआ था कि एक नए संघर्ष का सामना रघुजी भोंसले को करना पड़ा, यह संघर्ष था– आंग्ल–मराठा युद्ध।

इस युद्ध का तात्कालिक कारण वसई की संधि का अनुमोदन था। वेलेजली जानता था कि सिंधिया व भोसले के अनुमोदन के बगैर इस संधि का परिपालन नहीं हो सकता है। 4 जुलाई 1803 में सिंधिया, भोसला एवं कर्नल कॉलिन्स के मध्य वार्ता हुई परन्तु बसई की संधि का अनुमोदन नहीं हो सका। अंग्रेजों ने युद्ध की घोषणा कर दी एवं 6 सैन्य टुकड़ियाँ सिंधिया–भोसले को घेरने के लिए भेज दी। इस व्यूह की कमान इन अंग्रेजों के हाथों में थी– पूना के निकट कर्नल वेलेजली, औरंगाबाद में कर्नल स्टीवन्स, बंगाल की ओर से कैम्पबेल, मालवा से कर्नल लेक, गुजरात में कर्नल मरे।

भोसलें को 29 अक्टूबर 1803 में बेलेजली ने अड़गाँव में परास्त किया फिर शंभु भारती के विश्वासघात से अंग्रेजों ने गाविलगढ़ भी जीत लिया। गाविलगढ़ के किले की सेना का नेतृत्व बेनीसिंह कर रहा था। मुख्य द्वार पर वह स्वयं अपनी सेना समेत था। कर्नल चामर्स एवं कर्नल केनी के आक्रमण का प्रतिरोध करते हुए बेनीसिंह मारा गया, कर्नल केनी की भी मृत्यु हो गए। बेनी सिंह का गढ़ा–मंडला राज्य की विजय व सुरक्षा व्यवस्था में अत्यधिक योगदान था। उसकी मृत्यु से रघुनाथराव बाजी घाटगे ने एक विश्वासपात्र वीर खो दिया। अंत में 17 दिसम्बर 1803 को रघोजी व कम्पनी के मध्य संधि हुई। एलिचपुर के निकट देवगाँव में इस संधि पर भोसला राजा की ओर से मुख्तार (मुख्त्यार) यशवंत रामचंद्र ने हस्ताक्षर किए। संधि की कई शर्तें थीं, परन्तु वेलेजली ने भोसलों से मंडला का राज्य नहीं लिया और यह प्रान्त भोसलों को रखने की अनुमति मिल गई। एक दूसरी शर्त के अनुसार रेजिडेन्ट एलफिन्सटन को नागपुर में नियुक्त किया गया। व्यंकटराव बक्षी ने रघुजी भोंसला एवं रेजिडेन्ट की भेंट करवाई थी। रेजीडेन्ट भोसला राजा के साथ नागपुर आया और मुख्य नगर से दूर सीताबर्डी नामक स्थान पर उसने अपना कार्यालय एवं निवास बनाया। भोसला राजा के राज्य में एलफिन्स्टन ने दरबारियों को रिश्वत बांटना जासूस नियुक्त करना, प्रत्येक वार्ता, राज्य की नीतियों की जानकारी प्राप्त करना, आदि कार्यों को अंग्रेजों की नीति के अनुरूप ही अंजाम दिया। जयकृष्ण राव, यशवंतराव रामचंद्र, श्रीधर पंडित उसके प्रमुख सूत्र थे जिन्हें अंग्रेजों की ओर से बड़ी धनराशि एवं बाद में पेंशन भी दी गई। देवगांव की संधि से लगभग 65 लाख वार्षिक आय का प्रदेश भी भोंसला राजा को गंवाना पड़ा, उसे अपनी सेना घटानी पड़ी जिससे हजारों सैनिक बेरोजगार हो गए। पिंडारियों के दल इन सैनिकों का साथ पाकर और भी शक्तिशाली हो गए। इन परिस्थितियों में भोसला राज्य का पतन आरम्भ हो गया।

भोसला राज्य की प्रत्येक घटना का प्रभाव पूर्वी नर्मदांचल पर पड़ना निश्चित था। इस युद्ध के पूर्व ही रघुजी ने मंडला राज्य के प्रशासनिक दायित्वों को विभक्त कर दिया। नर्मदा नदी के दक्षिणी तट, एवं जबलपुर की सूबेदारी–रघुनाथ बाजी घाटगे को दी गई। महिपतराव घाटगे को चौरागढ़ का दुर्ग एवं साहेबराव हजारी को मंडला का सबेदार नियुक्त किया गया।

युद्धोपरांत रघुजी इस क्षेत्र पर अधिक ध्यान नहीं दे सका, अब उसे अपने सीमित संसाधनों से ही पूरा राज्य संभालना था। दूसरी ओर उसके शत्रु उसके विरूद्ध एक हो रहे थे। गढ़ा–मंडला के इस राज्य को भोपाल के मुहम्मद वजीरखान, होल्कर, सिंधिया एवं पिंडारी सरदार अमीर खान हस्तगत करना चाहते थे भोसलों की दुर्बल स्थिति का लाभ उठाने हेतु भोपाल के मुहम्मद वजीरखान एवं पिंडारी सरदार अमीरखान में समझौता हो गया। दोनों ने अपने–अपने निकट के क्षेत्र को लक्ष्य बनाया वजीरखान ने होशंगाबाद पर कब्जा कर लिया दूसरी ओर अमीरखान सागर की ओर से गढ़ा–मंडला पर आक्रमण हेतु तैयार हो गया। एक अन्य स्थानीय ज़मींदार मर्दानसिंह ने भी अमीरखान से समझौता कर लिया था। यह मर्दानसिंग धामोनी का ज़मींदार था वर्ष 1802 में रघुनाथराव बाजी घाटगे ने इसे परास्त कर पदच्युत कर दिया था। इस प्रकार मुहम्मद वजीरखान, पिंडारी अमीरखान एवं मर्दानसिंग की सम्मिलित शक्ति का मुकाबला रघुनाथ बाजी घाटगे को करना था।

इस विपरीत समय में रघुनाथ घाटगे की सेना भी विभक्त थी। उसका सेनापति नवलसिंग था (बेनी सिंह जो सैन्य प्रमुख था, की मृत्यु गाविलगढ़ दुर्ग में अंग्रेजों से संघर्ष करते हुए हो गई थी, पूर्व में उल्लेखित है) नवलसिंग ने दो मोर्चो पर सेना

नियुक्त की थी। एक बटालियन जबलपुर में थी, एवं दूसरी कटंगी में थी। रघुनाथ बाजी घाटगे के पास मात्र सौ सैनिक थे। रघुनाथ बाजी घाटगे ने एक बटालियन एवं चार तोपें धामोनी भेजी, यहीं मर्दानसिंग भी था जिसे अमीरखान ने सहायता भेजी।

वजीरखान ने सर्वप्रथम होशंगाबाद को विजित किया रघु जी भोसला ने त्वरित कार्यवाही का आदेश दिया। भोसलों की सेना ने होशंगाबाद को घेर लिया। साथ ही भोसलों ने भोपाल पर आक्रमण कर वजीर खान पर दबाव बनाने की रणनीति बनाई। किन्तु पिंडारी सरदार अमीरखान ने रघुनाथ बाजी घाटगे को पत्र के माध्यम से कड़ी चेतावनी दी और स्पष्टतः लिखा कि यदि भोपाल पर आक्रमण हुआ तो वह (पिंडारी सरदार) अपने मित्र मुहम्मद वजीरखान की राजधानी बचाने हेतु मंडला के सूबेदार से युद्ध करेगा। अंग्रेज रेजीडेन्ट एलफिन्सटन आश्चर्यचकित एवं निराश था। आंग्ल–मराठा युद्ध के पश्चात् कई राजाओं एवं ज़मींदारों ने गवर्नर जनरल से प्रार्थना की थी कि वह मराठों के अधीन हीं रहना चाहते हैं क्योंकि मराठों के शासन से उनके राज्य में कुशासन व अव्यवस्था निर्मित हुई है। बाह्यशत्रुओं यथाः पिंडारी, सिंधिया, निजाम, होल्कर का भय भी भोंसला राजा के कारण बढ़ गया है। अतएव वे अंग्रेज सरकार की अधीनता में रहना चाहते हैं। इन ज़मींदारों में रायगढ़ के जुझारसिंह, गांगपुर के इंद्र सूर्यदेव एवं वीरबंधु, वामरा के त्रिभुवनदेव, सारंगढ़ के विश्वनाथ सहाय, बरगढ़ के रणजीत सिंह, सम्बलपुर की रानी रतनकुँवरि, सोनपुर की रानी लकीप्रिया आदि थें इनका हस्ताक्षर समेत निवेदन मानकर गवर्नर–जनरल ने 9 जून 1804 को एक सूचना भोसला राजा रघुजी को भेजी एवं इन राजाओं के अंग्रेजी राज्य में विलय को मानने के लिए उसे बाध्य किया। इन राज्यों से भोंसलों को साढ़े तीन लाख रूपये प्रतिवर्ष की आय होती थी। रेजीडेट इसी प्रकार अन्य राज्यों को भी हस्तगत करना चाहता था। वह भोंसला राजा को पिंडारी, भोपाल के नवाब एवं होल्कर का भय दिखाकर इसके इस राज्य को भी हथियाना चाहता था। परन्तु गढ़ा–मंडला में शक्तिशाली मराठा सूबेदारों के शासन के कारण यह उद्देश्य टल गया। भोसला राजा के गढ़ा–मंडला के सूबेदार रघुनाथ बाजी घाटगे ने अपने सूबे को भोपाल के मुहम्मद वजीर खाँ एवं पिंडारी सरदार अमीरखाँ के आक्रमण से सुरक्षित कर लिया किन्तु उसके पुत्र भगवानराव की मृत्यु हो गई। अपने पुत्र की मृत्यु से वह अत्यन्त शोक संतप्त हो गया और इसी आघात से 4 जून 1804 को उसका निधन हो गया। सागर के मराठों से गढ़ा–मंडला प्राप्त करने से लेकर अपनी मृत्यु तक रघुनाथ बाजी घाटगे (नाना घाटगे भी कहा जाता है) ने अपने सीमित संसाधनों से भी अपने सूबे को प्रत्येक आपदा से सुरक्षित रखा। उसे नागपुर के भोंसला राज्य का सर्वोच्च सम्मान 'जरीपटका' भी दिया गया था। वह योग्य सेनापति व नेतृत्वकर्त्ता था। नारायण बाजी घाटगे को वर्ष 1804 में गढ़ा–मंडला के सूबेदार पद पर नियुक्त किया गया, उसे अपने बड़े भाई रघुनाथ बाजी घाटगे के साथ इस क्षेत्र में कार्य करने का अनुभव था। परन्तु रघुनाथराव के काल की समस्याएँ और भी जटिल रूप में उसके समक्ष थीं, जैसे पिंडारी एवं उनका सरदार अमीरखाँ, तथा अंग्रेज। मराठा शक्ति के उदय के साथ ही पिंडारियों का उदय होता है यह अत्यन्त शक्तिशाली अश्वारोही दल था जो मराठा सेनाओं के साथ होते थे, परन्तु युद्ध भूमि पर यह दल युद्ध समाप्त होने के पश्चात प्रवेश कर विरोधी की सम्पत्ति, शिविर, हथियार को लूट लेते थे। शिवाजी के काल से ही ये मराठों के सहायक रहे हैं। पानीपत के तृतीय युद्ध के पश्चात् इन्होंने मध्य भारत (प्रमुखतः मालवा) को अपना ठिकाना बनाया। सिंधिया, होल्कर, पवार के संरक्षण में इन्होंने और भी शक्ति प्राप्त कर दुर्दमनीय सेनाएँ बना ली इनकी सेना में कोई भी वीर सैनिक लूटपाट, हिंसा के उद्देश्य से शामिल हो सकता था।

मराठों की सेनाओं के भंग होने से व अंग्रेजों के द्वारा राज्यों की सेनाएँ भंग करने से पिंडारियों की संख्या बढ़ती गई। महादजी सिंधिया के काल में पिंडारी सरदार हीरा व बुरहान ने महादजी के अधीन रहकर प्रगति की सिंधिया ने उनकी सेवा से प्रसन्न हो उन्हें नर्मदा के उत्तर में विंध्याचल श्रेणी के समीप नेमावर की जागरी प्रदान की। बाद में हीरा के पुत्र दोस्त मुहम्मद एवं वालिस मुहम्मद भी सिंधिया के सहायक रहे।

करीम खाँ नामक वीर पिंडारी को यशवंतराव होल्कर ने शरण दी थी। करीम खाँ ने भोपाल राज्य एवं सिंधिया के क्षेत्र में लूटमार की। नामदार खाँ उसका विश्वस्त साथी था एवं चीतू के साथ भी उसने मैत्री की किन्तु चीतू कुछ समय पश्चात् सिंधिया से मिल गया। यशवंतराव के दो अन्य विश्वसनीय पिंडारी सरदार अमीर खाँ एवं शहामत खाँ थे।

1816 के पश्चात् यह स्पष्ट हो गया कि पिंडारी एवं मराठा दोनों के प्रमुख शत्रु अंग्रेज हैं तब पेशवा बाजीराव के विश्वस्त बालोजी कुंजर एवं त्र्यम्बक जी डिंगले ने अंग्रेजों के विरूद्ध पिंडारियों का सहयोग किया। अंग्रेजी सरकार ने वृहद येाजना बनाकर पिंडारियों के दमन का कार्य किया। जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है– चार्ल्स मेटकॉफ को उत्तर के शासकों से एवं जॉन मैल्कॉम को दक्षिण के शासको से संधि करने भेजा गया। शासकों से स्पष्टतः कहा गया कि पिंडरियों को शरण देना ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध कार्य समझा जाएगा। इस कूटनीतिक कार्य के पश्चात् पिंडारियों के विरूद्ध युद्ध किया गया। एक सेना जनरल आक्टरलोनी के अधीन यमुना पर एवं दूसरी सर टॉमस हिस्लाप के अधीन नर्मदा पर नियुक्त की गई। पिंडारियों को पूना, नागपुर एवं इंदौर के शासकों ने थोड़ी सहायता दी।

संयुक्त अभियान में करीम खाँ वासिल मुहम्मद को राजस्थान के शाहाबाद में पराजित किया गया। वे दोनों पलायन कर गए। अंत में वासिल मुहम्मद ने जहर खाकर आत्महत्या कर ली, करीम खाँ ने 15 फरवरी 1818 को जनरल माल्कम के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। नामदार खाँ ने भोपाल के निकट देवराजपुर नामक स्थान पर कर्नल ऐडम्स के समक्ष आत्म समर्पण कर दिया चीतू जंगल में भाग गया जहाँ उसे चीता खा गया। करीम खाँ को गोरखपुर के निकट एक जागीर देकर बसाया गया।

यशवंतराव होल्कर के विश्वस्त पिंडारी सरदार अमीर खाँ ने यशवंतराव की मृत्यु के पश्चात् उसकी विधवा तुलसीबाई को सहयेाग दिया। परन्तु दिसम्बर 1817 में अंग्रेजों ने उसे टोंक की जागीर प्रदान की एवं उसकी सेना वेतन चुका देने का भी वचन दिया। इस प्रकार अमीर खाँ पिंडारी टोंक के नवाब बन गए व होल्कर पक्ष का त्याग कर दिया। इन्हीं अमीर खाँ पिंडारी ने पूर्वी नर्मदांचल के राज्य में निरन्तर उपद्रव किया। नागपुर के भोसलों के इस सूबे की सीमाओं पर सदैव ही संघर्ष होता रहा।

**संदर्भ**

1. गुप्ते काशीराम राजेश्वर नागपुर कर  भोसलेयाची बखर पृष्ठ 197
2. नागपुर रेजिडेंसी के रिकॉर्ड खंड 1 पृष्ठ 18
3. कोलारकर शरद, (संपादक) रघु जी भोसले यांची पत्रे नागपुर 1986 पृष्ठ 61 लेख 30
4. सरदेसाई गोविंद सखाराम, मराठों का नवीन इतिहास भाग 3 द्वितीय संस्करण 1972 पृष्ठ 378

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# 1857 का विद्रोह एवं चिनहट का युद्ध

**शिखा पांडे**
एसोसिएट प्रोफ़ेसर इतिहास विभाग
दयानंद गर्ल्स कॉलेज कानपुर

सन् 1857 का विद्रोह अपनी निर्धारित तिथि 31 मई 1857 से बीस दिन पूर्व ही प्रारम्भ हो गया। क्रांति की ज्वाला शीघ्र ही पूरे उत्तर भारत विशेषकर अवध प्रान्त में फैल गई। अवध के शासक वर्ग में पहले से ही ब्रिटिश सरकार के प्रति रोष व्याप्त था जिसके विभिन्न कारणों की हम पूर्व अध्याय में विस्तृत रूप से व्याख्या कर चुके है। भू–अधिग्रहण की नीति, हड़प की नीति इत्यादि से अवध के राजाओं तथा तालुकदारों में रोष व्याप्त था इसके अतिरिक्त कुशासन के गलत आरोप तथा यह मिथ्या आरोप कि अवध की जनता अपने शासको से मुक्ति पाना चाहती है, अवध के शासक और शासित व्यक्ति को उद्विग्न करने को यह आरोप पर्याप्त था। अवध में क्रांति इतना वृहद स्वरूप ग्रहण कर लेगी इसका अंदाजा ब्रिटिश सरकार को नही था, न ही वे ये अनुमान लगा पाए कि क्रांति का प्रसार इतना व्यापक होगा कि छोटे–छोटे गाँवों का पूरा सहयेाग क्रांतिकारियों को मिलेगा। परन्तु क्रांति के प्रसार ने यह सिद्ध कर दिया कि ब्रिटिश सरकार भारतीयों को समझने में असफल रही और आम जनमानस ने बढ़–बढ़कर हिस्सा लेकर क्रांति का सफल बनाने का प्रयास किया।

ऐसा ही प्रयास बैसवारे के शंकरपुर तहसील के तालुकदार राना बेनी माधो सिंह ने किया। उनको अवध के नवाब तथा अपने तालुके के आम–जन का भरपूर सयहोग मिला जिसकी वहज से क्रांति के प्रारम्भ (मई 1857) से दिसम्बर 1858 तक वे लगातार संघर्षरत रहे तथा अंग्रेजों से विभिन्न स्थानों पर मोर्चा लेते रहे और अन्त तक उनके हाथ नहीं लगे। इस अध्याय में हम राजा बेनी माधों सिंह द्वारा 1857 की क्रांति में किये गए अभूतपूर्व योगदान का विस्तृत वर्णन करेंगे।

अवध में अंग्रेजी शासन स्थापित होने के बाद बैसवाड़ा की निजामत को समाप्त कर दिया गया तथा सलोन को जिला मुख्यालय बनाया गया। कैप्टन बैरो को डिप्टी कमिश्नर बनाया गया। सलोन के समीप केशवापुर में कम्पनी की छावनी थी जहाँ कम्पनी के सैनिक रहते थे। डिप्टी कमिश्नर बैरो ने प्रथम भू–बन्दोबस्त में तालुकदारों के गाँवों तथा जमीनो को जब्त कर लिया था, जिसके फलस्वरूप उनमें असंतोष फैल गया था। परन्तु जून तक इस क्षेत्र में शांति बनी रही। कैप्टन बैरो की रिपोर्ट के

अनुसार ''पहली जून तक तालुकदारों में कोई बागी तेवर या बगावती लक्षण नहीं दिखाई दे रहे थे सभी ने अपनी रबी का लगान जमा कर दिया था।[1]'' कैप्टन आर0एल0 थामसन के अधीन केशवपुर छावनी में 6 कम्पनी रहती थी, जिसके सैनिक अंग्रेज अधिकारियों के प्रति अवध की अन्य छावनियों की अपेक्षा अधिक वफादार दिखाई देते थे।[2] मई में क्रांति का प्रारम्भ हो गया था परन्तु विद्रोह सैनिक छावनियों तथा सैनिकों तक ही सीमित रहा। अवध तथा आस–पास के क्षेत्रों में आम जनता तथा तालुकदार जून माह तक शांत रहे। ऐसा लगता था कि वे प्रतीक्षा कर रहे थे कि घटनाएँ क्या मोड़ लेती हैं। ऐसा नहीं था कि आम जनता में रोष व्याप्त नहीं था परन्तु इस रोष को जाग्रत करने का कोई प्रयास नहीं किया गया। जब अवध क्षेत्र के हर प्रान्त में विद्रोही सफलता प्राप्त करने लगे और अवध में ब्रिटिश साम्राज्य ताश के पत्तों की तरह ढेर होने लगा[3] तब तालुकदारों ने भी प्रयास करने प्रारम्भ किए। 9 जून को क्रांतिकारी सलोन की ओर बढ़ने लगे तब उनके उत्साह को देखकर मेजर बैरो व उनके सहयोगियों को सलोन से भागना पड़ा। नाइन जो राना बेनी माधो का ननिहाल था, वहाँ के कनपुरिया तालुकदार के नेतृत्व में क्रांतिकारियों ने सलोन के नव स्थापित कचहरी के रिकार्ड फूँक दिए। 10 जून की दोपहर को डिप्टी कमिश्नर अपने परिवार और अमले के साथ भागे और प्रतापगढ़ जिले के तालुकदार हनुमंत सिंह की शरण में पहुँचे जहाँ से उन्हें सुरक्षित इलाहाबाद भेज दिया गया।[4] बैरो के भाग जाने के बाद बैसवाड़े में राना बेनी माधों के नेतृत्व में क्रांतिकारियों ने आजादी की घोषणा कर दी। सभी ताल्लुकदारों ने अपनी जमीनें फिर हथिया ली। आम जनता तथा अन्य तालुकदार क्रांतिकारियों के साथ अंग्रेजों के विरूद्ध खड़े हो गए। लोगों ने बेनी माधो तथा अन्य तालुकदारों और जमींदारों का साथ दिया तथा अंग्रेजों को लगान देना बंद कर दिया। लगान की रकम क्रांतिकारियों को दी जाने लगी। इस क्रांति का नेतृत्व बेनी माधो के हाथ में था। जिला गजेटियर रायबरेली के अनुसार ''जिले में सबसे प्रमुख क्रांतिकारी शंकरपुर के राजा बेनी माधो अवध के निष्कासित बादशाह के प्रति अपनी स्वामी भक्ति प्रदर्शित करके अंग्रेजों से अन्तिम दम तक युद्ध करते रहे।''[5] अंग्रेज इतिहासकारों का यह मानना हैं कि राजा बेनी माधो का अंग्रेजी सरकार के प्रति मोर्चा लेने का प्रमुख कारण प्रथम भू–बन्दोबस्त द्वारा उनके गाँवों का जब्त हो जाना था इसलिए उनका विरोध इतना मुखर था, जैसा कि एच0आर0 नेविल ने लिखा ''उनकी वफादारी बादशाह के प्रति सही थी। परन्तु यह आशंका नहीं की जा सकती है कि वे भू–बन्दोबस्त में अपने तमाम गाँव जब्त होने के कारण अंग्रेजों के कट्टर विरोधी हो गए थे।''[6]

तालुकदारों ने क्रांति में हिस्सा लेने में भले ही समय लगाया हो परन्तु एक बार उनके क्रांति में शामिल होते ही सम्पूर्ण अवध क्षेत्र में क्रांति फैल गई। अपनी जमीने वापस लेते ही उनके अधीन जनता उनके साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी हो गई। यह जनता इन तालुकदारों, जमींदारों के प्रति निष्ठावान थी क्योंकि उनके सम्बन्ध पीढ़ियों के थे। इसके अतिरिक्त वे सभी सैनिक जो अवध क्षेत्र के थे क्रांति का प्रारम्भ होते ही ब्रिटिश सेना को छोड़कर वापस अपने गाँवों को लौट आए। इन सैनिकों ने न

---

[1] फ्रीडम स्ट्रगल इन उत्तर प्रदेश, भाग–2, 1958, पृ0 38

[2] नेविल, एच0आर0, जिला गजेटियर, रायबरेली, 1924, पृ0 146

[3] गब्बिन्स म्यूटिनीज़ इन अवध, पृ0 118

[4] जिला गजेटियर, रायबरेली, 1976, पृ0 36

[5] जिला गजेटियर, रायबरेली, 1976, पृ0 37

[6] नेविल, एच0आर0 जिला गजेटियर, रायबरेली, 1924, पृ0 147

केवल अपने नेताओं को सैन्य बल प्रदान किया वरन् उनको अंग्रेजी रणनति, युद्ध तकनीकि का भी परिचय दिया जो तालुकदारों के लिए उपयोगी सिद्ध हुई। इस प्रकार अपनी जनता का सहयोग ले दिल्ली विजय के पश्चात आत्मविश्वास से ओत–प्रोत अवध का नेतृत्व लखनऊ पर कब्जे की रणनीति बनाने लगी। राना बेनी माधो भी उन्हीं तालुकदारों में शामिल थे जो लखनऊ पर नवाबी कब्ज़ा पुनः स्थापित करने का स्वप्न देख रहे थे।

**चिनहट का युद्ध (30 जून 1857):–**

यह अवध के लोगों का अंग्रेजों के कब्जे से लखनऊ को मुक्त कराने का प्रथम प्रयास था। जनू 1857 के अंत में सूबे के विभिन्न भागों से क्रांतिकारी अपनी सेनाओं के साथ लखनऊ की तरफ बढ़ने लगे। वे सभी लखनऊ से बीस मील की दूरी पर स्थित बाराबंकी के नवाबगंज में एकत्रित हो रहे थे। ऐसा माना जाता है कि वे सभी कानपुर में नाना साहब के सम्पर्क में थे। कानपुर में नाना साहब ने 23 जून 1857 को अंग्रेजी बैरको पर हमला कर दिया। जनरल हावर ने कानपुर में अंग्रेजी सेना व उनके परिवार को नदी के रास्ते सुरक्षित निकल जाने की शर्त पर आत्म समर्पण कर दिया।[7] अंग्रेज जब घाट पर पहुँचे तो क्रांतिकारियों ने उन पर आक्रमण कर दिया अधिकांश ब्रिटिश सेना मारी गई। लगभग 200 स्त्रियों तथा बच्चों को नाना साहब ने अपने किले में ठहरा दिया। कुछ अंग्रेज नाव से भाग निकले। डौंडियाखेड़ा के राव रामबक्स सिंह ने इन भागे हुए अंग्रेजों को पकड़ने का आदेश दिया। लगभग 13 अंग्रेज अधिकारी व सैनिक मौर्वे थामसन के नेतृत्व में जान बचाने के लिए नदी के रास्ते भागकर, डौंडियाखेड़ा के मंदिर में पहुँच गए। वहाँ जनता ने उन पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजों ने बचाव में गोलियाँ चलाई जिससे जदुनाथ सिंह जो डौंडियाखेड़ा के राजा राव रामबक्स सिंह के रिश्तेदार थे उनकी मृत्यु हो गई। जनता ने मंदिर के पास ही कन्डों को एकत्रित कर उनमें आगे लगा दी। धुँए से परेशान अंग्रेज सैनिक गोलियाँ चलाते हुए मंदिर से निकलने का प्रयास करने लगे। 6 अंग्रेज मारे गए केवल 7 ही नदी तट तक पहुँचने में सफल हुए। वे सातों जान बचाने के लिए नदी में कूद गए। उनमें से भी तीन मारे गए। केवल चार अंग्रेज सैनिक ही नदी में आगे बढ़ पाए। राजा मुरारमऊ ने उन चारों को शरण दी। इस तरह 9 अंग्रेज बैसवाड़े में मारे गये ओर बैसवाड़ा पूरी तरह अंग्रेज सत्ता से मुक्त हो गया।[8]

जब लखनऊ में एकत्रित सेना को अंग्रेजों की हार का पता चला वे सब जोश में भरकर लखनऊ कूच करने बढ़े।[9] तालुकदार एवं जमींदार 28 जून 1857 को लखनऊ के समीप बाराबंकी के नवाबगंज से लखनऊ पर आक्रमण करने बढ़े। उनकी संख्या लगभग 7000 थी। क्रांतिकारियों की सेना का विस्तृत विवरण गबिन्स ने दिया है उनके अनुसार व्रिदोहियों की सेना में उनके प्रान्तों में स्थित सभी सैन्य दल शामिल थे..... उनके पास सिकरोरा तथा फैजाबाद से प्राप्त 2 नौ पौड की बंदूकों के समूह थे, प्रत्येक में 6 बंदूके थी इस प्रकार कुल 12 तोपें थे। इसके अतिरिक्त उनके पास तीन या चार देसी बंदूके थी जो युद्ध में किसी उपयोग की नहीं थी। जिनको वे विभिन्न जिलों से लाए थे। उनकी सेना में 700–800 घुडसवार थे जो सुल्तानपुर तथा अवध की रेजिमेन्ट से लाए हुए थे। पैदल सेना का संयोजन निम्नवत् था– फैजाबाद से केवल 22वीं

[7] थॉम्पसन, मौवरे, स्टोरी ऑफ कानपुर (लंदन) 1859, पृ0 148–149

[8] सिंह, वासुदेव, बैसवाड़े का इतिहास (शोध प्रबन्ध), चैनपुर, उन्नाव, 1994, पृ0 166–173

[9] गब्बिन्स, म्यूटिनीज़ इन अवध, लंदन, 1858, पृ0 181

रेजिमेंट के पैदल सैनिक, अवध से सलोन की पैदल सेना से कुछ सैनिक इसके अतिरिक्त सिकरोरा, गोंडा, दरियाबाद, सुल्तानपुर तथा सीतापुर के सैनिक। मिलिट्री पुलिस में पहला रेजिमेंट सुल्तानपुर तथा दूसरा सीतापुर था।

गबिन्स द्वारा वर्णित क्रांतिकारी सेना का यह वर्णन अधूरा है क्योंकि वह यह नहीं जानता था कि दुश्मन सेना में केवल सैनिक नहीं अपितु तालुकदार तथा नवाब के अफसर भी शामिल थे जो अंग्रेजी शक्ति से अवध को मुक्त कराने के लिए प्रयासरत थे। सर्वप्रथम महमूदाबाद के राजा ने सीतापुर में एकत्र हो रही सेना को नेतृत्व प्रदान किया जो उनके नायक खान अली खान के नेतृत्व में चिनहट में लड़ी। इस प्रकार अनेक तालुकदार सेनाएं इकट्ठी कर रहे थे, विशेषकर दक्षिणी अवध के तालुकदार अस्त्र–शस्त्र सैनिक तथा लोगों को एकत्र करने में व्यस्त थे। संभवतः बेनी माधो भी इस तालुकदारी सेना में अपने सैनिकों के साथ शामिल थे। कानपुर में अंग्रेजों की पराजय के बाद वे अपनी विजय के प्रति निश्चित थे। क्रांतिकारियों तथा अंग्रेजों की फौजों का मुकाबला 30 जून 1857 को चिनहट में हुआ। अंग्रेज पराजित हुए तथा अपनी तोपें और युद्ध का सामान वहीं छोड़कर रेजेडेंसी में भागकर अपनी जान बचाई। कैवना ने चिनहट की हार के बाद लिखा कि 'पराजित पक्ष का मनोबल गिर गया वहाँ जीते हुए विद्रोहियों की साख अपनी आँखों में बढ़ गई।'

अंग्रेजों की चिनहट में पराजय की खबर आग की भाँति फैल गई। जनता को यह विश्वास हो गया कि अंग्रेजी साम्राज्य का अन्त निश्चित है और कुछ ही समय में नवाबी सत्ता दुबारा स्थापित हो जाएगी। तालुकदारी सेना की विजय से अभीभूत होकर आस–पास के जिलों के तालुकदार तथा किसान भी क्रांति में शामिल होने लगे। इसकी पुष्टि एक पत्र से होती है जिसके अनुसार ''सलोन कस्बे में हनुमान प्रसाद तथा उसके आदमियों ने लगभग दो हजार लोगों की सेना तैयार कर ली उनका उद्देश्य गदर है। उन्होंने सरकारी खज़ाने को लूट लिया है। कोई भी सरकारी आदमी उस कस्बे में नहीं हैं वहाँ केवल गोलियों और बंदूकों की आवाजें आती हैं। कुछ आदमी लोगों को गदर में शामिल होने को उकसाते है– जो उनकी बात नहीं मानते उनसे दुर्व्यवहार किया जाता है।''[10] यह पत्र अवध के आस–पास के क्षेत्र की स्थिति को दर्शाता है कि किस प्रकार क्रांति का प्रसार सम्पूर्ण अवध में हो चुका था।

चिनहट विजय के पश्चात् क्रांतिकारियों का मुख्य ध्येय लखनऊ था। पराजित अंग्रेजों ने रेजीडेंसी में शरण ली और क्रंतिकारियों ने रेजीडेंसी के चारो तरफ घेरा डाल दिया जो 12 हफ्तों तक चला। अवध में क्रांति का अर्थ लखनऊ पर कब्जा था। ब्रिटिश तथा क्रांतिकारियों के बीच चली अवध की इस लड़ाई को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं–

**प्रथम चरण–** 30 जून 1857 (चिनहट युद्ध) से सितम्बर 1857 जब हैवलॉक तथा आउट्रम की सेनाओं ने रेजीडेंसी पर वापस कब्जा कर लिया।

**द्वितीय चरण–** सितम्बर 1857 – मार्च 1858

**तीसरा चरण–** मार्च 1858 के पश्चात जब संघर्ष लखनऊ से निकलकर आस–पास के क्षेत्रों में फैल गया। इसी चरण में बिरजिस कद्र तथा बेगम के लखनऊ से पलायन के पश्चात् राना बेनी माधो ने बैसवारा तथा आस–पास के क्षेत्र में क्रांतिकारियों को एकत्र

[10] शेख इनायत अशरफ का पत्र अशरफ हुसैन को ता0 3 जुलाई 1857, फॉरेन डिपार्टमेंट सीक्रेट कन्सलटेशन, 28 अगस्त 1857, नं0 310; मुखर्जी, रूद्रांक्षु, रिबीलियन इन अवध 1857–58 (शोध प्रबन्ध) ऑक्सफोर्ड 1980, पृ0 133

कर संघर्ष जारी रखा। चिनहट की विजय के पश्चात् उत्साहित क्रांतिकारी एक नायक की तलाश में जुट गये जिनके नाम पर वे स्वयं को संगठित कर सकें। काफी मशक्कत के पश्चात् यह तय हुआ कि बेगम हजरत महल के 14 वर्षीय पुत्र बिरजिस कद्र को अवध का अगला नवाब बनाया जाय। 5 जुलाई 1857 को नवाब बिरजिस कद्र को गद्दी पर बैठाया गया तथा उनकी माँ बेगम हजरत महल को उनकी संरक्षिका बनाकर शासन चलाने का वास्तविक भार सौपा गया। इस क्रांतिकारी सरकार में शामिल हुए छोटे राजाओं की सूची में राना बेनी माधो का भी नाम था जो निम्नवत् थी–

- राजा मान सिंह तथा उनके सहयेागी
- गुरबक्स सिंह
- नवाब अली खाँ
- बेनी माधो
- लाल माधो कालकांकर के
- चौधरी हनुमंत सिंह (संडीला)

चिनहट के युद्ध के पश्चात् नवगठित सरकार में इन राजाओं को प्रमुखता देना यह दर्शाता है कि अवश्य ही चिनहट की विजय में इनका महत्वपूर्ण योगदान था। चिनहट की पराजय के पश्चात् अंग्रेजों ने भागकर रेजीडेंसी में शरण ली। रेजीडेंसी का निर्माण सन् 1775 में नवाब आसफुद्दौला ने कैसरबाग और बड़े इमामबाड़े के मध्य गोमती नदी के किनारे एक ऊँचे टीले पर अंग्रेज रेजीडेंट के रहने के लिए करवाया था। इनके पूर्वी गेट पर कैप्टन बेली के नेतृत्व में एक गारद (फौजी दस्ता) तैनात थी इसी कारण इसका नाम 'बेली गारद' भी पड़ा। अवध का प्रथम चीफ कमिश्नर हेनरी लारेंस इसी रेजीडेंसी से शासन का संचालन करता था। इसी रेजीडेंसी में क्रांतिकारी सेना से पराजय के पश्चात् अंग्रेजों ने शरण ली। क्रांतिकारियों ने चारों तरफ से रेजीडेंसी को घेर रखा था। पहली जुलाई की रात मच्छी भवन की भी सेना बुला ली गई। जिससे वहाँ 3600 लोग हो गए इनमें 2700 हिन्दुस्तानी सैनिक, 500 यूरोपियन सैनिक और 400 फिरंगी महिलाएँ और बच्चे शामिल थे। रेजीडेंसी में अफरा–तफरी का माहौल था।

रीज के शब्दों में– ''रेजीडेंसी में अव्यवस्था फैल गई थी। अपने सामान की चिंता न कर औरतें और बच्चे सभी जगहों से रेजीडेंसी में भागकर आ रहे थे। सबको अपनी जान की चिंता थी। पुरूष हथियार लेकर खाईयों में छिप रहे थे।''[11] अंग्रेजी सत्ता केवल रेजीडेंसी तक सिमट कर रह गई थी। अतः रेजीडेंसी को वापस पाने का अथक प्रयास प्रारम्भ किया। उधर रेजीडेंसी को घेरने वाली सेना का विवरण देते हुए मान सिंह ने लिखा कि कम से कम 35000 विद्रोहियों ने रेजीडेंसी को घेर रखा है जिसमें 10000 विभिन्न रेजीमेंट के विद्रोही सिपाही हैं और विभिन्न तालुकदारों ने रेजीडेंसी घेरने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

क्रांतिकारियों की स्थिति इतनी मजबूत थी कि हेनरी लॉरेन्स को लगा कि वे केवल पन्द्रह या बीस दिन तक ही टिक सकेंगे। 2 जुलाई को चीफ कमिश्नर हेनरी लारेंस की तोप का गोला लगने से मृत्यु हो गई। 3 जुलाई को जुडीशियल कमिश्नर एम0सी0 ओमनी के सिर में गोली लगी तथा उनकी भी मृत्यु हो गई। 7 जुलाई को रीज ने लिखा आज तक हमारे बहुत से लोग मारे गए, प्रतिदिन औसतन 15 से 20

[11] रीज, ए पर्सनल नैरेटिव ऑफ दि सीज़ ऑफ लखनऊ (लंदन 1858); पृ0 91–92

लोगों की मृत्यु हुई है।[12] रेजीडेंसी के अन्दर बंद अंग्रेज निरन्तर हताश हो रहे थे। अंग्रेजों की यह हताशा गबिन्स द्वारा दिए इस कथन से स्पष्ट होती है जिसमें उसने बताया कि ''कर्नल इंग्लिस ने एक बार कहा कि अन्तिम समय आने पर स्त्रियों को गोली से उड़ा दिया जाए।'' यह कथन अंग्रेजों की मानसिक दुर्बलता तथा हताशा को दर्शाता है और पहली बार वे भारतीयों के युद्ध कौशल से परास्त हो गए।

उधर भारतीय खेमा उत्साह से भरा हुआ था। लखनऊ के दक्षिण में स्थित उन्नाव में ग्रामीणों तथा क्रांतिकारियों में अंतर करना कठिन हो गया था। प्रत्येक व्यक्ति अपना सर्वस्व निछावर करने को तैयार बैठा था। अपने राजा की एक आवाज पर वे एकत्र हो अंग्रेजों से दिन रात मोर्चा लेने में लगे थे। इन्हीं क्रांतिकारी ग्रामीणों ने हैवलॉक को कानपुर से लखनऊ आने के मार्ग में बाधा उत्पन्न करने में कोई कसर न छोड़ी। हैवलॉक कानपुर को नील के हवाले कर लखनऊ पर कब्जा करने के इरादे से निकला। परन्तु क्रांतिकारियों ने उसके प्रयास को विफल कर दिया। 25 जुलाई को छोटी नावों के सहारे उसने नदी पार की, उसकी सेना में 1500 आदमी थे, जिनमें 60 घोड़े और 16 तोपें थी। 28 तारीख को वह मंगलवार पहुँचा और 29 को उन्नाव के समीप पहुँच गया परन्तु वहाँ उसे क्रांतिकारियों का सामना करना पड़ा। उन्नाव के पश्चात् बशीरतगंज में भी क्रांतिकारियों ने हैवलॉक को कड़ी टक्कर दी। तीस जुलाई तक उसके 88 आदमी मारे गए या घायल हो गए। तीन अगस्त को नील ने उसे 250 आदमी तथा 5 तोपे भेजीं। आखिरकार 5 अगस्त 1857 को बशीरतगंज में विद्रोहियों को पराजित किया परन्तु उसे पता चला कि 30000 विद्रोही तथा 50 बंदूके उसका रास्ता रोकने के लिए तैयार हैं वह फिर वापस लौट गया। जहाँ एक ओर उसकी सेना की संख्या घटती जा रही थी वहीं कानपुर, उन्नाव, बिठूर में क्रांतिकारियों की सेना में लगातार इजाफा हो रहा था। 16 अगस्त को बिठूर पर हमले के पश्चात् जब वह वापस आया तो उसको 37000 दुशमनों ने घेर रखा था।[13] 17 अगस्त को ही अवध नरेश ने राना बेनी माधो को आजमगढ़ और जौनपुर का प्रशासक नियुक्त किया तथा जनता को यह आदेश दिया कि वे राना बेनी माधो के आदेशों का पालन करें तथा अंग्रेजों को हराने में सहयोग करें। हैवलॉक द्वारा लखनऊ पहुँचने के प्रयासो को बार–बार विफल कर क्षेत्रीय जनता ने क्रांति में अपना सहयोग दिया। यह हमारा दुर्भाग्य है कि जहाँ ब्रिटिश पक्ष का इतिहास जानने के अनेक स्रोत हैं हमारी जनता ने कभी भी इन युद्धों में अपनी भागीदारी को लिपिबद्ध नहीं किया। एक अंग्रेज अफसर ने हैवलॉक की सेना के विफल प्रयासों के पश्चात् लिखा– ''ऐसा प्रतीत होता है कि हम कभी लखनऊ नहीं पहुँच पाएंगे। हम तीन तरफ से 50 तोपों और 3000 आदमियों द्वारा घिरे है, हमारे आदमी उनकी अपेक्षा बहुत कम हैं– प्रत्येक गाँव हमारे खिलाफ है, जमींदार भी हमारे खिलाफ उठ खड़े हो गए हैं..... वे हमारे चारों तरफ छोटे–छोटे समूहों में हैं।''[14]

यह सभी घटनाएँ दर्शाती हैं कि विद्रोह कितना व्यापक था परन्तु इसके पश्चात् भी एक लम्बे समय तक कुछ इतिहासकारों ने इसे सैनिक विद्रोह ही कहा जो सर्वथा अनुचित है। चार्ल्स बॉल ने अपनी पुस्तक 'दि हिस्ट्री ऑफ इंडियन म्यूटिनी' में लिखा कि ''प्रत्येक गाँव अभेद्य किले में परिवर्तित हो गए तथा ग्रामीणों ने स्वयं को सर्वश्रेष्ठ

[12] रीज, ए पर्सनल नैरेटिव ऑफ सीज ऑफ लखनऊ (लंदन, 1858), पृ0 130

[13] ग्रांट, सर होप, इन्सीडेन्ट्स इन सिपॉय वार 1857–58, लंदन, पृ0 144–100

[14] फॉरेस्ट, कर्नल टाइटलर का टेलीग्राम कमांडर इन चीफ को, 6 अगस्त 1857, पृ0 173

दुर्ग रक्षक में परिवर्तित कर लिया।''[15] हैवलॉक के खेमे से प्राप्त खतों के आधार पर चार्ल्स बॉल ने अवध के ग्रामीणों को मिट्टी की दीवार के पीछे बैठकर ब्रिटिश सेना के छक्के छुडाने के लिए सर्वश्रेष्ठ दुर्ग रक्षक की उपाधि दी। उन्नाव के ग्रामीणों ने हैवलॉक की लखनऊ की राह दुष्कर कर दी। अवध के तालुकदारों को मिट्टी के कच्चे दुर्गों ने ही सुरक्षा प्रदान की। (क्षेत्र के तालुकदारों के दुर्गों की सूची परिशिष्ट–1 में दी गई है)। हैवलॉक के प्रयासों को विफल करने में अवध की युद्धरत जनता तथा विद्रोही सैनिको ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उधर रेजीडेंसी के हालात दिन प्रतिदिन खराब होते जा रहे थे। इन्स लिखते है ''20 जुलाई से 9 अगस्त तक 8 बार और 10 अगस्त से 4 सितम्बर तक 16 बार सुरंगे लगाकर रेजीडेंसी पर हमले किए गए।''[16] आउट्रम ने भी लखनऊ में क्रांतिकारियों की ऐसी ही गतिविविधयों का जिक्र करते हुए बताया कि क्रांतिकारियों ने बहुत ही सुन्दर तरीके से हमारे सभी सुरक्षा ठिकानों तक लगभग 6 सुरंगें बना ली है। इन सुरंगों से तोपे–निशाने पर लगा दी गई थीं। इनमें से कुछ तो मात्र 50 गज की दूरी पर ही थीं।

[15] बॉल, चार्ल्स, दि हिस्ट्री ऑफ इंडियन म्यूटिनी, 2 भाग (लंदन), पृ0 17

[16] इन्स, लखनऊ एण्ड अवध इन दि म्यूटिनी (लंदन) 1895, पृ0 165–199

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

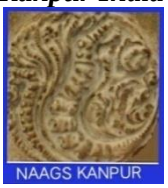


***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# साक्षरता दर एवं लिंगानुपात सहसम्बंध–जनपद अम्बेडकर नगर का एक भौगोलिक अध्ययन

**दीपक विश्वकर्मा**
शोध छात्र, भूगोल विभाग
वी0एस0एस0डी0 कालेज कानपुर
सी0एस0जे0एम0वि0वि0 कानपुर
**डॉ० राणा प्रताप यादव**
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, भूगोल विभाग
वी0एस0एस0डी0 कालेज कानपुर, उ0प्र0

साक्षरता एवं लिंगानुपात किसी मानव समाज के महत्वपूर्ण जनांकिकीय पहलू है। जो उस समाज के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास को दिशा देते हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र जनपद अम्बेडकर नगर के साक्षरता दर एवं लिंगानुपात सहसम्बंध के अध्ययन पर आधारित है। साथ ही लिंगानुपात एवं साक्षरता दर में एक दशक (2001–2011) के अंतर्गत परिवर्तन के स्वरूप का भी अध्ययन जिला जनगणना हस्तपुस्तिका एवं सांख्यिकी पत्रिका से प्राप्त द्वितीयक आंकड़ों के आधार पर किया गया है। जिसमें वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध विधि का प्रयोग किया गया है। साक्षरता दर एवं लिंगानुपात सहसम्बंध की गणना हेतु कार्ल पियर्सन सहसम्बंध गुणांक का प्रयोग किया गया है। अध्ययन से पता चलता है कि जनपद में साक्षरता और लिंगानुपात के मध्य नकारात्मक सम्बंध है। अर्थात् साक्षरता दर और लिंगानुपात के मध्य कोई सम्बंध नहीं पाया गया है। इसके बजाय कुछ अन्य सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारक है जो जनपद में लिंगानुपात के प्रतिरूप को प्रभावित कर रहे हैं। जनपद में साक्षरता दर (72.20 प्रतिशत) प्रदेश के औसत साक्षरता दर से अधिक है। जनपद में सर्वाधिक साक्षरता बसखारी विकासखंड (72.94 प्रतिशत) एवं सबसे कम भीटी विकासखंड (69.69 प्रतिशत) में पाया गया है। साक्षरता दर, विशेषतः महिला साक्षरता दर, में तीव्र सुधार हुआ है। साक्षरता दर में अकबरपुर एवं भियांव विकासखंड में संतोषजनक सुधार हुआ है। जबकि बसखारी विकासखंड में सुधार की प्रक्रिया सबसे दयनीय है। जनपद का लिंगानुपात प्रदेश के लिंगानुपात से अधिक है जिसमें सर्वाधिक रामनगर विकासखंड में है। जनगणना वर्ष 2001 एवं 2011 के मध्य लिंगानुपात में सर्वाधिक सुधार एवं ह्रास क्रमशः भीटी एवं जहांगीरगंज विकासखंड में हुआ है। अनुसूचित जातियों में लिंगानुपात

जनपद के औसत लिंगानुपात से भी अधिक है। कुल लिंगानुपात में भियांव एवं जहांगीरगंज विकासखंड में क्रमशः 50 एवं 43 अंक की तीव्र गिरावट दर्ज हुई है। साक्षरता दर संतोषजनक होने के बावजूद लिंगानुपात में गिरावट की यह प्रवृत्ति जनपद में प्रमुख समस्या है। जिसके विभिन्न सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारक जिम्मेदार हैं। लिंगानुपात में ह्रास के अध्ययन के साथ ही जनपद में साक्षरता दर एवं लिंगानुपात में वृद्धि हेतु विभिन्न सुझाव इस शोध–पत्र में सुझाए गए हैं।

**मुख्य बिंदु** –साक्षरता दर, लिंगानुपात, कार्ल पियर्सन सहसम्बंध गुणांक, अम्बेडकर नगर।

**प्रस्तावना –** साक्षरता और लिंगानुपात किसी भी समाज या देश के दो सबसे महत्वपूर्ण जनांकिकीय पहलू हैं, क्योंकि वह समाज या देश के सामाजिक–आर्थिक विकास की गति को निर्धारित करते हैं। कम लिंगानुपात और कम साक्षरता दर वाले क्षेत्र को विश्व का पिछड़ा या अविकसित क्षेत्र माना जाता है। साक्षरता जनसांख्यिकी के महत्वपूर्ण पहलुओं में से एक है और इसे सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक उन्नति का काफी विश्वसनीय सूचकांक माना जाता है। साक्षरता दर की गणना करने के कई तरीके हैं । भारत में, इसकी गणना सात वर्ष और उससे अधिक आयु के साक्षर व्यक्ति के आधार पर किसी विशेष अवधि में देश या राज्य की कुल जनसंख्या के आधार पर की जाती है। साक्षरता को सात वर्ष से अधिक उम्र के बच्चों की किसी भी भाषा में समझ के साथ पढ़ने और लिखने की क्षमता के रूप में परिभाषित किया जाता है। साक्षर व्यक्ति की बेहतर समझ होती है जो कन्या भ्रूण हत्या में कमी, पुरुषवादी एवं रूढ़िवादी सोच में बदलाव, महिलाओं के प्रति सम्मान एवं परंपरावादी सोच में परिवर्तन हेतु सहायक होता है। साक्षर समाज महिलाओं के लिए गैर–भेदभाव पूर्ण वातावरण का निर्माण करता है। इस प्रकार यह माना जाता है की एक साक्षर समाज में लिंगानुपात अधिक होगा और जनसंख्या में पुरुषों की संख्या और महिलाओं की संख्या लगभग बराबर होगी। एक निश्चित समय में किसी समाज में पुरुषों एवं महिलाओं के बीच प्रचलित समानता की सीमा को मापने के लिए लिंग अनुपात भी एक महत्वपूर्ण सामाजिक संकेतक है। उच्च लिंगानुपात एक सभ्य एवं शिक्षित समाज की विशेषता है जिसमें पुरुषों के समान ही महिलाओं को भी समान प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। निम्न लिंगानुपात या लिंग अनुपात में असंतुलन तीव्र सामाजिक विघटन को जन्म देता है। साक्षरता दर एवं लिंगानुपात एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े होते हैं। सामान्यतः उच्च साक्षर समाज में उच्च लिंगानुपात पाया जाता है। प्रस्तुत शोध–पत्र में साक्षरता दर एवं लिंगानुपात के मध्य इसी सम्बंध का अध्ययन जनपद अम्बेडकर नगर के संदर्भ में किया गया है।

**अध्ययन क्षेत्र–** अध्ययन क्षेत्र जनपद अम्बेडकरनगर मध्य गंगा मैदान में स्थित पूर्वी उत्तर प्रदेश का एक जनपद है( चित्र संख्या– एक )। सन् 1995 में जनपद अम्बेडकर नगर का निर्माण, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा एक विधायी प्रक्रिया के माध्यम से जनपद फैजाबाद के पूर्वी भाग के दो तहसील, यथा– अकबरपुर एवं टांडा को अलग करके, किया गया। जनपद का अक्षांशीय विस्तार $26^{0}09'$ उत्तर से $26^{0}40'$ उत्तरी अक्षांश एवं

देशांतरीय विस्तार $82^0 12'$ पूर्व से $83^0 05'$ पूर्वी देशांतर के मध्य है। जनपद का कुल क्षेत्रफल 2350 वर्ग किलोमीटर है। जनपद के पश्चिम में फैजाबाद जनपद, पूर्व एवं दक्षिण–पूर्व में आजमगढ़ जनपद, उत्तर में बस्ती, संत कबीर नगर एवं गोरखपुर जनपद तथा दक्षिण एवं दक्षिण–पश्चिम में सुल्तानपुर जनपद प्रशासनिक सीमा का निर्धारण करते हैं। जनपद में पांच तहसील( टांडा, भीटी, अकबरपुर, आलापुर एवं जलालपुर) एवं नौ विकासखंड (टांडा, जहांगीरगंज, रामनगर, बसखारी, भीटी, भियांव, अकबरपुर, कटेहरी, जलालपुर) है। जनपद के कुल जनसंख्या 23,97,888 है जो कि उत्तर प्रदेश की कुल जनसंख्या का 1.20 प्रतिशत है। जनपद में जनघनत्व 1020 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर, लिंगानुपात 978 महिलाएं प्रति 1000 पुरुष एवं साक्षरता दर 72.33प्रतिशत है।

प्रस्तुत शोध–पत्र 2001 एवं 2011 की अवधि के जनगणना से प्राप्त द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है। आवश्यकतानुसार आंकड़ों का संकलन जिला जनगणना हस्त पुस्तिका जनपद अम्बेडकरनगर 2001 एवं 2011 तथा जिला सांख्यिकीय पत्रिका जनपद अम्बेडकरनगर से किया गया है। परिभाषा एवं अवधारणात्मक समझ के लिए पुस्तकों, शोध–पत्रों एवं भारतीय जनगणना का अध्ययन किया गया है। आंकड़ों को आवश्यकतानुसार मानचित्रा, सारणियों एवं आरेखो के साथ दर्शाया गया है। जनपद में साक्षरता दर एवं लिंगानुपात के मध्य सम्बंध को निर्धारित करने के लिए सहसम्बंध तकनीक का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में साक्षरता दर निराश्रित चर के रूप में एवं लिंगानुपात आश्रित चर के रूप में है। जनपद अम्बेडकर नगर के सभी विकासखंडों में साक्षरता दर एवं लिंगानुपात के मध्य सहसम्बंध का आकलन करने के लिए कार्ल पीयर्सन के सहसम्बंध गुणांक का प्रयोग किया गया है। क्योंकि पियर्सन सहसम्बंध दो सतत चर के बीच रैखिक संबंध का मूल्यांकन करता है। रैखिक सम्बंध के अंतर्गत ऐसे सहसम्बंध का आकलन किया जाता है जिसमें एक चर में परिवर्तन दूसरे चर में अनुपातिक परिवर्तन से जुड़ा होता है।

**जनपद में साक्षरता दर–** किसी देश में साक्षर जनसंख्या का अनुपात उसके सामाजिक–आर्थिक विकास का सूचक होता है, क्योंकि इससे रहन–सहन के स्तर, महिलाओं की सामाजिक स्थिति, शैक्षणिक सुविधाओं की उपलब्धता तथा सरकार की नीतियों का पता चलता है[7]। साक्षरता का शाब्दिक अर्थ होता है व्यक्ति के साक्षर होने का गुण। सामान्य अर्थ में साक्षर व्यक्ति वह है जो किसी भाषा में पढ़ना और लिखना जानता है। विभिन्न राष्ट्रों में साक्षरता की माप की परिभाषा के लिए प्रयुक्त आधारों में अंतर पाया जाता है। भारत में सात वर्ष या उससे अधिक आयु का व्यक्ति जो किसी भी भाषा में समझ के साथ पढ़ और लिख सकता है, को साक्षर के रूप में परिभाषित किया गया है। कुल जनसंख्या में साक्षर व्यक्तियों का अनुपात साक्षरता दर कहलाता है। जनपद अम्बेडकर नगर में साक्षरता दर का विश्लेषण विकासखंड स्तर पर किया गया है ।

जनगणना– 2011 के अनुसार जनपद अंबेडकर नगर में साक्षरता दर 72.20 प्रतिशत है जो कि प्रदेश के औसत साक्षरता दर (67.7 प्रतिशत)से अधिक है। वहीं जनगणना 2001 में जनपद में साक्षरता दर मात्र 58.43 प्रतिशत थी (तालिका–1)। जनपद में साक्षरता दर की इस तीव्र वृद्धि के पीछे कुछ प्रमुख आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक कारक जिम्मेदार रहे हैं। यथा– जन जागरूकता, लैंगिक समानता पर बल, शिक्षण संस्थाओं का विकास, शिक्षा के द्वारा रोजगार प्राप्त की लालसा तथा सरकारी प्रोत्साहन। विकासखंड स्तर पर कुल साक्षरता दर में सबसे अधिक साक्षरता दर जनगणना– 2011 में बसखारी विकासखंड (72.94 प्रतिशत) एवं सबसे कम भीटी विकासखंड (69.69 प्रतिशत) में पाया गया है। पिछली जनगणना– 2001 के अनुसार भी सर्वाधिक साक्षरता दर बसखारी विकासखंड (60.07 प्रतिशत) एवं सबसे कम अकबरपुर विकासखंड (54.28 प्रतिशत) में दर्ज हुआ है। जनगणना– 2001 में सभी विकासखंडों के साक्षरता दर क्रमशः निम्नलिखित हैं– बसखारी विकासखंड 72.94, रामनगर 72.64, जलालपुर 72.62, जहांगीरगंज 72.42, टांडा 71.37, कटेहरी 70.91, भियांव 70.60, अकबरपुर 70.58 एवं भीटी 69.69 प्रतिशत (तालिका–1)।

**तालिका–1 जनपद अम्बेडकर नगर :साक्षरता दर (प्रतिशत)**

| क्र0 सं0 | विकासखण्ड | वर्ग | साक्षरता दर 2001 | साक्षरता दर 2011 | अन्तर |
|---|---|---|---|---|---|
| .1 | टाण्डा | कुल | 557.06 | 71.37 | 14.31 |
| | | पुरूष | 68.73 | 80.19 | 11.46 |
| | | महिला | 44.73 | 62.12 | 17.39 |
| 2. | बसखारी | कुल | 60.07 | 72.94 | 12.87 |
| | | पुरूष | 72.26 | 81.76 | 9.5 |
| | | महिला | 47.79 | 63.84 | 16.05 |
| 3. | रामनगर | कुल | 58.36 | 72.94 | 14.58 |
| | | पुरूष | 72.83 | 83.07 | 10.24 |
| | | महिला | 44.30 | 62.39 | 18.09 |
| 4. | जहाँगीरगंज | कुल | 59.98 | 72.42 | 12.44 |
| | | पुरूष | 75.13 | 83.07 | 7.94 |
| | | महिला | 45.40 | 61.45 | 16.05 |
| 5. | जलालपुर | कुल | 58.46 | 72.62 | 14.16 |
| | | पुरूष | 71.55 | 82.23 | 10.68 |
| | | महिला | 45.14 | 62.77 | 17.63 |
| 6. | भियॉव | कुल | 54.95 | 70.60 | 15.65 |
| | | पुरूष | 70.49 | 81.79 | 11.30 |
| | | महिला | 39.89 | 59.56 | 19.67 |
| 7. | भीटी | कुल | 55.66 | 69.69 | 14.03 |
| | | पुरूष | 70.20 | 80.21 | 10.01 |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| | | महिला | 40.95 | 59.22 | 18.27 |
| 8. | कटेहरी | कुल | 55.41 | 70.91 | 15.50 |
| | | पुरूष | 69.53 | 81.11 | 11.58 |
| | | महिला | 41.24 | 60.67 | 19.43 |
| 9. | अकबरपुर | कुल | 54.28 | 70.58 | 16.30 |
| | | पुरूष | 66.92 | 80.35 | 13.43 |
| | | महिला | 41.22 | 60.77 | 19.55 |

**स्रोत : जिला जनगणना हस्तपुस्तिका, जनपद अम्बेडकर नगर, 2001 एवं 2011**

जनपद में पुरुष एवं महिला साक्षरता दर जनगणना 2011 में क्रमशः 81.64 एवं 62.63 प्रतिशत है, जबकि यह जनगणना 2001 में क्रमशः 71.37 एवं 45.30 प्रतिशत थी (तालिका–1)। इस प्रकार महिलाओं की साक्षरता दर में तुलनात्मक रूप से अधिक वृद्धि हुई है। जनपद में पुरुष साक्षरता दर सबसे अधिक रामनगर एवं जहांगीरगंज विकासखंड (83.07 प्रतिशत) में तथा सबसे कम टांडा (80.19 प्रतिशत) विकासखंड में है। वही पिछली जनगणना में पुरुष साक्षरता दर सबसे अधिक एवं सबसे कम क्रमशः जहांगीरगंज (75.13 प्रतिशत) एवं अकबरपुर विकासखंड (66.92 प्रतिशत )में थी। महिला साक्षरता की बात की जाए तो यह जनगणना 2011 में सबसे अधिक बसखारी विकासखंड (63.84 प्रतिशत) में तथा सबसे कम भीटी विकासखंड (59.22 प्रतिशत) में दर्ज की गई है। जबकि पिछली जनगणना में भी बसखारी विकासखंड (47.79 प्रतिशत) में सबसे अधिक एवं भियांव विकासखंड (39.89 प्रतिशत) में सबसे कम महिला साक्षरता दर पाई गई है (तालिका–1)। जनगणना 2001 एवं 2011 के मध्य साक्षरता दर में तीव्र सुधार को देखा जाए तो कुल साक्षरता दर एवं पुरुष साक्षरता दर में अकबरपुर विकासखंड एवं महिला साक्षरता दर में भियांव विकासखंड में तीव्र सुधार हुआ है। वहीं कुल साक्षरता दर, पुरुष साक्षरता दर एवं महिला साक्षरता दर में सबसे कम सुधार बसखारी विकासखंड में दर्ज किया गया है।

**लिंगानुपात–** लिंगानुपात किसी प्रदेश की महत्वपूर्ण जनांकिकीय विशेषता होती है, जो उस क्षेत्र के सामाजिक–आर्थिक स्थिति को व्यक्त करने का एक प्रमुख संकेतक है। इससे समाज में स्त्रियों की स्थिति के सम्बंध में महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त होती है। स्थान विशेष में निवास करने वाले मानव समूह में स्त्रियों और पुरुषों की संख्या के मध्य अनुपात को लिंगानुपात कहते हैं। भारत में प्रति हजार पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या के रूप में लिंगानुपात की गणना की जाती है[11]। जिस समाज में लिंग भेदभाव अनियंत्रित होता है वहां लिंगानुपात स्त्रियों के प्रतिकूल होता है। जिसमें समाज में व्याप्त स्त्री–भ्रूण हत्या, स्त्री–शिशु हत्या एवं स्त्रियों के प्रति घरेलू हिंसा की प्रथा मुख्य रूप से जिम्मेदार कारक होती है। जनपद में लिंगानुपात का विश्लेषणात्मक अध्ययन विकासखंड स्तर पर दो भागों, यथा–कुल लिंगानुपात एवं अनुसूचित जातियों में लिंगानुपात में विभाजित कर किया गया है।

**कुल लिंगानुपात–** जनपद में लिंगानुपात दोनों ही जनगणना वर्ष 2001 एवं 2011 में समान 978 महिला प्रति 1000 पुरुष रहा है। जनपद का लिंगानुपात प्रदेश के औसत लिंगानुपात से अधिक है, जो प्रशंसनीय है । विकासखंड स्तर पर लिंगानुपात का आकलन करने पर जनगणना 2011 के अनुसार विकासखंडों का क्रम क्रमशः निम्न है– रामनगर 1006, जहांगीरगंज 1002, भियांव 998, भीटी 994, कटेहरी 988, अकबरपुर 976, जलालपुर 965, बसखारी 962 एवं टांडा विकासखंड में 946 महिलाएं प्रति एक हजार पुरुष है (तालिका–2)। वहीं पिछली जनगणना 2001 में विकासखंडों का क्रम निम्न रहा था– जहांगीरगंज 1029, भियांव 1013, रामनगर 1011, कटेहरी 984, बसखारी 978, जलालपुर 974, भीटी 973, अकबरपुर 960 एवं टांडा विकासखंड में 936 महिलाएं प्रति 1000 पुरुष (तालिका–2)। जनगणना 2011 में पांच विकासखंड यथा– रामनगर, जहांगीरगंज, भियांव, भीटी एवं कटेहरी विकासखंड का लिंगानुपात जनपद के औसत लिंगानुपात से ऊपर एवं चार विकासखंड औसत से नीचे रहा है। जनगणना 2001 में भी पांच विकासखंड यथा– बसखारी, रामनगर, जहांगीरगंज, भियांव एवं कटेहरी का लिंगानुपात औसत से ऊपर था। दोनों जनगणना के मध्य लिंगानुपात में परिवर्तन को देखा जाए तो सर्वाधिक सुधार भीटी विकासखंड में एवं सर्वाधिक ह्रास जहांगीरगंज विकासखंड में देखा गया है। लगभग पॉच विकासखंडों में लिंगानुपात की मात्रा में ह्रास हुआ है, जो समस्या का विषय है।

**तालिका–2 जनपद अम्बेडकर नगर : लिंगानुपात**

| क्र0 सं0 | विकासखण्ड | जनगणना 2001 | | जनगणना 2011 | |
|---|---|---|---|---|---|
| | | कुल लिंगानुपात | अनुसूचित जातियों में लिंगानुपात | कुल लिंगानुपात | अनुसूचित जातियों में लिंगानुपात |
| 1. | टाण्डा | 936 | 954 | 946 | 955 |
| 2. | बसखारी | 978 | 987 | 962 | 969 |
| 3. | रामनगर | 1011 | 1036 | 1006 | 1013 |
| 4. | जहाँगीरगंज | 1029 | 1049 | 1002 | 1006 |
| 5. | जलालपुर | 974 | 984 | 965 | 963 |
| 6. | भियॉव | 1013 | 1038 | 998 | 988 |
| 7. | भीटी | 973 | 966 | 994 | 983 |
| 8. | कटेहरी | 984 | 989 | 988 | 997 |
| 9. | अकबरपुर | 960 | 984 | 976 | 987 |

**स्रोत : जिला जनगणना हस्तपुस्तिका, जनपद अम्बेडकर नगर, 2001 एवं 2011**

**अनुसूचित जातियों में लिंगानुपात–** जनपद अम्बेडकर नगर में अनुसूचित जातियों का प्रतिशत एक–तिहाई के लगभग होने के कारण अनुसूचित जातियों में लिंगानुपात की गणना का अध्ययन स्पष्ट परिदृश्य के लिए आवश्यक है। जनपद में अनुसूचित जातियों का लिंगानुपात जनगणना 2011 में 982 रहा है, जो कि पिछली जनगणना (2001) में 994 महिला प्रति 1000 पुरुष था। इससे स्पष्ट है कि कुल लिंगानुपात के साथ ही अनुसूचित जातियों के लिंगानुपात में भी पिछले एक दशक में कमी दर्ज हुई है। साक्षरता दर में वृद्धि के बावजूद लिंगानुपात में गिरावट सामाजिक–आर्थिक दृष्टिकोण से चिंता का विषय है। जनगणना 2011 के अनुसार जनपद में विकासखंड स्तर पर अनुसूचित जातियों में लिंगानुपात का क्रम क्रमशः निम्न है – रामनगर 1013, जहांगीरगंज 1006, कटेहरी 997, भियांव 988, अकबरपुर 987, भीटी 983, बसखारी 969, जलालपुर 963, एवं टांडा विकासखंड में 955 महिला प्रति एक हजार पुरुष है (तालिका–2)। पिछली जनगणना (2001) में सर्वाधिक एवं निम्न लिंगानुपात क्रमशः भियांव एवं टांडा विकासखंड में रहा है। अनुसूचित जातियों के लिंगानुपात में इस समय अंतराल (2001–2011) में पांच विकासखंडों में तीव्र ह्रास दर्ज किया गया है। इसमें भियांव एवं जहांगीरगंज विकासखंड में क्रमशः 50 एवं 43 अंक की तीव्र गिरावट हुई हैं। कुछ विकासखंडों में नाम मात्र का सुधार देखा गया है।

**साक्षरता दर एवं लिंगानुपात में सहसम्बंध –** जनपद अम्बेडकर नगर में साक्षरता दर एवं लिंगानुपात के मध्य सहसम्बंधों के अध्ययन के उपरांत यह निष्कर्ष निकला कि दोनों ही जनगणना वर्षों, यथा– 2001 एवं 2011, में लिंगानुपात पर साक्षरता दर का प्रभाव नगण्य रहा है। सामान्य मान्यता यह है कि जहां पर साक्षरता दर का प्रतिशत उच्च रहा है वहां पर लिंगानुपात निम्न पाया जाता है। जबकि अध्ययन क्षेत्र में परिस्थिति इसके विपरीत पाई गई है। जनगणना 2001 में साक्षरता दर 58.43 प्रतिशत रही है इसके बावजूद भी लिंगानुपात अधिक रहा है। वहीं जनगणना 2011 में साक्षरता दर में वृद्धि तो हुई लेकिन लिंगानुपात में कमी दर्ज की गई है। जनगणना वर्ष 2001 में साक्षरता दर एवं लिंगानुपात के मध्य कार्ल पियर्सन सहसम्बंध गुणांक का मान +0.303 प्राप्त हुआ है। जिससे यह स्पष्ट है कि इन दोनों जनांकिकीय गुणों के मध्य कम धनात्मक सहसम्बंध पाया गया है अर्थात 2001 में जनपद में लिंगानुपात पर साक्षरता का प्रभाव अल्प रहा है। जनगणना 2011 में जनपद में साक्षरता दर एवं लिंगानुपात के मध्य काल पियर्सन सहसंबंध गुणांक का मान –0.163 प्राप्त हुआ है। अर्थात साक्षरता दर एवं लिंगानुपात के मध्य अल्प ऋणात्मक सहसंबंध पाया गया है। साक्षरता दर का प्रभाव लिंगानुपात पर नकारात्मक रहा है। साक्षरता दर में वृद्धि का लिंगानुपात पर कोई भी प्रभाव नहीं रहा है।

उपर्युक्त विश्लेषणात्मक अध्ययन के उपरांत यह ज्ञात होता है कि वर्तमान अध्ययन के मामले में साक्षरता दर और लिंगानुपात स्वतंत्र हैं एवं साक्षरता दर में वृद्धि पुरुष–महिला के बीच की खाई को भरने में मददगार नहीं है। यह लोगों की सोच में बदलाव लाने में

असफल रही है। जनपद में साक्षरता दर का स्तर उत्तर प्रदेश की साक्षरता दर (67.68 प्रतिशत) से अधिक एवं भारत की औसत साक्षरता दर (74.04 प्रतिशत) से कम रहा है[12]। जनपद में पिछली जनगणना (2001) की तुलना में साक्षरता में संतोषजनक वृद्धि देखी गई है, जो सामाजिक विकास के दृष्टिकोण से अच्छा संकेत है लेकिन इसके साथ ही महिला साक्षरता में सुधार उस स्तर का नहीं रहा है। जिस कारण पुरुष एवं महिला साक्षरता दर में अंतराल आज भी अधिक है। जनपद का लिंगानुपात उत्तर प्रदेश एवं भारत के औसत लिंगानुपात से अधिक है। जनपद में लिंगानुपात का स्तर अच्छा पाया गया है। दोनों जनगणना वर्षों (2001 एवं 2011) में जनपद का कुल लिंगानुपात समान (978 महिलाएं प्रति एक हजार पुरुष ) रहा है। पिछले एक दशक (2001–2011) के दौरान जनपद के पांच विकासखंडों ( बसखारी, रामनगर, जहांगीरगंज, जलालपुर एवं भियांव) में लिंगानुपात में ह्रास देखा गया है। जिसमें सर्वाधिक ह्रास जहांगीरगंज विकासखंड (–27) में हुआ है।

LOCATION AND EXTENT OF THE STUDY AREA

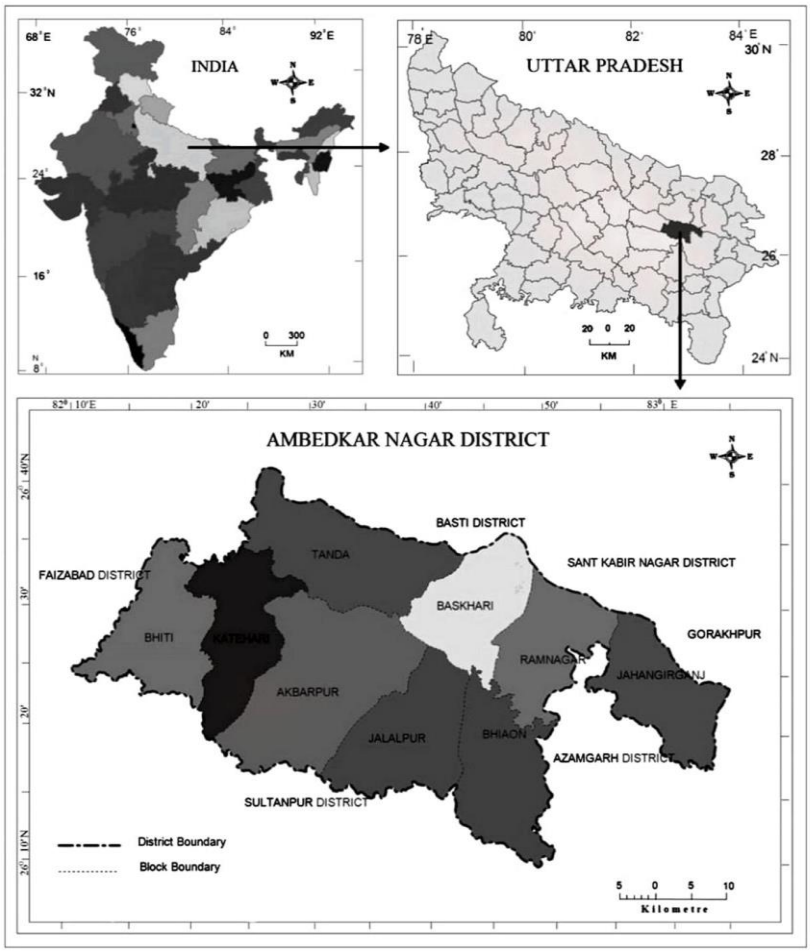

इसके साथ ही कुछ विकासखंड जैसे भीटी (+21), अकबरपुर (+16), टांडा (+10) एवं कटेहरी (+4) विकासखंड में लिंगानुपात में सुधार आया है। जनपद के अनुसूचित जातियों में लिंगानुपात अम्बेडकरनगर, उत्तर प्रदेश एवं भारत के औसत लिंगानुपात से अधिक है परंतु कुल लिंगानुपात में ह्रास की भांति ही अनुसूचित जातियों के लिंगानुपात में भी गिरावट आई है। भियांव विकासखंड में यह गिरावट (–50) सबसे अधिक है। जनपद में लिंगानुपात में इस तरह ह्रास के पीछे कई कारण उत्तरदाई रहे हैं। जिनमें प्रमुख हैं– महिलाओं को आर्थिक भार के रूप में समझना। इन एक दशक के मध्य महंगाई में तेजी से वृद्धि हुई है जिससे महिलाओं के पालन पोषण एवं शादी खर्चों में वृद्धि हुई जिस कारण महिलाओं की आर्थिक भार के रूप में सोच को समाज में बल मिला है। अतः शिक्षा को और अधिक प्रभावशाली बनाना आवश्यक है जो महिलाओं और लड़कियों के प्रति समाज के मनोविज्ञान को बदल सकता है। अन्यथा असंतुलित लिंगानुपात भविष्य में कई सामाजिक एवं सांस्कृतिक समस्याएं पैदा करेगा। इन सभी अप्रत्यक्ष प्रयासों से ही लिंगानुपात में वृद्धि होगी साथ ही साक्षरता का प्रतिशत और भी सुदृढ़ होगा। लिंगानुपात में प्रत्यक्ष सुधार हेतु महिलाओं की आर्थिक भार के रूप में सोच को विभिन्न प्रचार माध्यमों एवं शिक्षा के माध्यम से बदलना होगा। दूसरा बड़ा प्रयास सरकार द्वारा लड़कियों की शादी में आर्थिक सहायता देकर किया जा सकता है जिससे परिवार के आर्थिक भार में कमी आये। कन्या–भ्रूण हत्या, स्त्री–शिशु हत्या एवं शारीरिक हिंसा हेतु कठोर कानून बनाएँ जाए साथ ही इनका पारदर्शी तरीके से पालन किया जाए। अध्ययन क्षेत्र में उपर्युक्त तरीकों के अलावा समाज में व्याप्त परंपरावादी एवं रूढ़िवादी सोच को बदलना जरूरी है, क्योंकि जनपद में लिंगानुपात साक्षरता की बजाय रूढ़िवादी सोच से अधिक प्रभावित है।

## संदर्भ :–


1. Chandna,R.C.(2012). Geography of Population. Kalyani Publication, New Delhi, p.337
2. District Census Handbook Ambedkar Nagar- 2011, part XII-A, p.14
3. Sule, B.M. and Barkade,A.J.(2012). Correlation Between Literacy And Sex Ratio In Solapur District Of Maharashtra:A Geographical Analysis, Social Growth,Vol.I, Issue:IV, pp.37-44.
4. Majumdar,P.K.(2013).Indian Demography:Changing Demography Scenario In India,Rawat Publication, Jaipur
5. District Census Handbook Ambedkar nagar- 2011, part XII-A, p.5
6. District Census Handbook Ambedkar nagar- 2011, part XII-A, p.1
7. Maurya,S.D.(2013).Population Geography. Sharda Pustak Bhawan, Prayagraj, p.325
8. District Census Handbook Ambedkar nagar- 2011, part XII-A, p.14
9. District Census Handbook Ambedkar nagar- 2011, part XII-A, p.1

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# श्रीमद्भागवत के विभिन्न सन्दर्भों में प्रेम की उत्कृष्टता

**डॉ, सत्य प्रकाश सिंह**
असिस्टेंट प्रोफेसर दर्शनशास्त्र विभाग
महाराज बलवंत सिंह पीजी कॉलेज
गंगापुर वाराणसी

सम्पूर्ण सृष्टि में जीव मात्र का लक्ष्य अपने परम उद्गम ईश्वर के पास पहुँचना ही है। विभिन्न धर्म, दर्शन एवं मत साधन के सन्दर्भ में विभिन्नता रख सकते हैं किन्तु साध्य सबका एक ही है। भारतीय जन–मानस ने यह पूर्णतः स्वीकार किया है कि वह निराकार, निर्गुण, परम तत्व अथवा आप्तकाम, पूर्णकाम, परम निष्काम, आत्माराम, परम स्वतन्त्र, साकार तत्व प्रेम के वशीभूत होकर भक्तों के सामने प्रकट होते हैं। तात्पर्य यह है कि निर्गुण, निराकार, निर्विकार ब्रह्म अनन्त प्राणियों को मुक्ति देने वाला स्वयं नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त ब्रह्म, प्रेम बन्धन में भक्तों का खिलौना बन जाता है –

अहो चित्रमहा चित्रमहो चित्रे वन्दे तत्प्रेमबन्धनम्।
यद्बद्धं मुक्तिदं मुक्तं ब्रह्म क्रीडामृगीकृतम्।।

ईश्वर को स्वीकार करने वाले विश्व के वे सभी धर्म और सम्प्रदाय जो अवतारवाद को स्वीकार नहीं, करते, उनकी भी यह मान्यता है कि ईश्वर को प्राप्त करने अथवा प्रसन्न करने का सर्वोत्तम किंवा एकमात्र मार्ग प्रेम ही है। इसीलिए प्रेम ही ईश्वर है अथवा ईश्वर ही प्रेम है, का सिद्धान्त स्वीकार करने वाली विचारधारायें फली–फूली हैं। भारत में प्रवेश के पश्चात इस्लाम धर्मावलम्बियों ने भी सूफी सम्प्रदाय के रूप में प्रेम के महत्व को अङ्गीकार किया है।

यद्यपि भारतीय भक्ति परम्परा में भगवान से किसी भी सम्बन्ध से प्रेम किया जा सकता है किन्तु यहाँ ईश्वर के अलौकिक प्रेम की चार धारायें विद्यमान रही है। दास्य प्रेम, सख्य प्रेम, वत्सल प्रेम एवं मधुर प्रेम। प्रेम के इन सभी मार्गों में उच्चतम उपलब्ध प्रेमी एवं प्रेमास्पद का अभेद रूप ही है। श्रीमद्भागवत में इस उत्कृष्ट प्रेम का साक्षात् स्वरूप गोपियाँ हैं। ''पु०जीभूतम् प्रेम गोपाङ्गनानांमूर्तीभूतम्'' में गोपियों का प्रेम ही कृष्ण है। श्रीमद्भागवत ग्रन्थ प्रेम की उत्कृष्टता को ही सर्वथा स्वीकार करता है। भगवान कृष्ण के प्रति ब्रजवासियों का दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर प्रेम सर्वथा अपने चरम स्वरूप में दिखायी पड़ता है क्योंकि प्रेम तत्व का प्राकट्य अधिकाधिक रूप में वहाँ ही होता है, जहाँ जितना ही सन्निधान, जितना ही अंतरंगता, जितनी ही प्रत्यक्षता अधिक

होती है और यह अत्यन्त सन्निहित, अत्यन्त अंतरंग और अति प्रत्यक्ष प्रेम द्वैत को नष्ट कर देता है, तब वेद कहते हैं, , ''आत्मनस्तु कामाय सर्वप्रियम् भवति।''

प्रेम तत्व मीमांसा

प्रेम, प्रेमा तथा प्रियता इन समानार्थक शब्दों के मूल में एक ही प्रिय भाव है। ''प्रीणातीति प्रियः''– व्युत्पत्ति के अनुसार जो प्रीति आमोद को दे उसे प्रिय कहते हैं। 'प्री' तर्पणे धातु से 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' से 'क' प्रत्यय होने पर प्रिय शब्द निष्पन्न होता है।

[1] ''प्रेमा ना प्रियता हार्द प्रेम स्नेहा''[2] प्रियस्थ भावः प्रेम उभयलिङ्गी शब्द को निर्माण 'पृथ्वादिभ्यः इमनिज्वा'[3] प्रिय+ इमनिच् प्रत्यय, ''प्रिय स्थिर'' इत्यादि सूत्र[4] से प्रिय के स्थान में 'प्र' आदेश होने से 'प्रेमन्' शब्द बनता हैं, जिससे प्रेम, प्रेमा आदि रूप होते हैं। प्रेमा शब्द का अर्थ सौहार्द्र, स्नेह, भक्ति तथा सर्वस्व समर्पण आदि शब्दों के भावों से हैं। 'प्रियत्व' शब्द 'तस्य भावस्त्वतलौ'[5] से 'त्व' और 'तल' प्रत्यय होने से बनता है। प्रेमा, प्रियत्व, प्रियता आदि शब्द प्रिय के उस भाव अर्थात् अस्तित्व – निष्पादक धर्म को बतलाते हैं, जिसके विद्यमान रहने पर ही 'प्रिय' प्रिय रह सकता है और उसे प्रिय कहा जा सकता है। प्रेम की विद्यमानता में ही 'प्रिय' शब्द का अर्थ चरितार्थ होता है। प्रिय शब्द के भाव को पूर्ण करने वाले चार मुख्य लक्षण हैं – 'प्रिय सुखसुखित्वम्,' प्रेम केवल प्रियतम के सुख के लिए ही होता है, 'प्रियानुकूलाचरणम् प्रेम में केवल प्रिय के अनुकूल ही आचरण होता है, 'प्रियसुखकामातिरिक्त कामराहित्यम्', प्रिय सुख कामना के अतिरिक्त प्रेम में स्वकाम का अत्यन्त अभाव होता है तथा वाचाम्गोचरत्वम्' प्रेम वाणी के द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता है। वह मूकास्वादवत् अनिर्वचनीय होता है।

प्रेम शब्द से उपलब्ध भाव को व्यक्त करने के लिए अनेकों और भी शब्द अन्य ग्रन्थों की तरह श्रीमद्भागवत में उपलब्ध हैं, परन्तु यह स्पष्ट रहना चाहिए कि उपरोक्त चार तत्वों के अभाव में प्रेम काम हो जाता है। प्रेम की तरह ही प्रणय, परिचय तथा राग शब्द भी व्यवहृत हैं, अतः इनके अर्थ भी स्पष्ट होना उचित है। 'प्र+णि प्रापणे' धातु से एरच्[6] से अच्' प्रत्यय करने से प्रणय शब्द निष्पन्न होता है। परस्पर अवलोकन आदि से जो प्रेम प्रकर्ष को प्राप्त हो जाता है, जिसमें किसी एक के अनेक अपराध करने में भी प्रेम में कमी नहीं आती है, उस प्रकार के अविरल प्रेम को प्रणय कहते हैं। इसी प्रकार अधिक समय तक साथ रहने से परिचय (परि+चि+अप् = परिचय) होता है। यह प्रणय की दृढ़ता का परिचायक है। राग शब्द में प्रिय वस्तु के प्रति मन में होने वाला अनुकूल भाव छुपा हुआ है। 'र०जनम् रागः , र०जसे भावे घञ'। 'रज्यते अनेन इति रागः'। 'करणे घञ्'। राग शब्द ही प्रेम की भाव भूमि का परिचायक है। शिशुपाल महाकाव्य की व्याख्या करते समय मल्लीनाथ ने कहा है – ''अभिमतविषयाभिलाषः रागः'' अर्थात् मनोनुकूल विषय को प्राप्त करने की अभिलाषा का नाम राग है।[7] वैष्णवाचार्य रूप गोस्वामी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'उज्जवलनीलमणि' में लिखा है –

---

[1] पाणिनि सूत्र, 3/1/35
[2] अमरकोश, 1/7/27
[3] पाणिनी सूत्र, 5/1/122
[4] पाणिनी सूत्र, 6/4/157
[5] पाणिनी सूत्र, 5/1/119
[6] पाणिनी सूत्र, 3/3/56
[7] शिशुपाल महाकाव्य, 4/56

दुःखमप्यधिके चित्ते सुखेत्वेनैव व्यज्यते।
यतस्तु प्रणयोत्कर्षात् स राग इति कीर्त्यते।।

अर्थात् दुःख भी सुख रूप में ही चित्त को अधिक भासता है। चूँकि प्रणय का उत्कर्ष भी राग से होता है, इसलिए इसे राग कहते हैं। प्रेम शब्द का तत्व अत्यन्त गहन और विद्वत दुर्लभ है कि प्रायः महापुरुषों ने इसे मात्र अनुभूति का विषय बताकर अनिर्वचनीय कहते हुये बात समाप्त की है। प्रेम दर्शन के परम आचार्य देवर्षि नारद[8] का मन्तव्य अवश्य ही अवलोकनीय है – 'अनिर्वचनीयं प्रेम स्वरूपम्। मूकास्वादन वत्। प्रकाश्य ते क्वापि पात्रे। गुण रहितं कामना रहितं प्रतिक्षण वर्धमानं अविच्छिन्नं सूक्ष्मतरं अनुभव रूपम्। तत् प्राप्यतदेवावलोकयति, तदेव श्रृणोति, तदेव भाषयति, तदेव चिन्तयति।' धर्म सम्राट स्वामी करपात्री जी के विचार है[9] –

''कोई आन्तर मधुर वेदना को, तो कोई स्नेहात्मक अन्तःकरण की वृत्ति को ही प्रेम कहते हैं। यद्यपि वधू आदि में राग, यागदि में श्रद्धा, गुरु आदि में भक्ति तथा सुखादि की इच्छा, ये सभी प्रेम के ही रूप हैं, तथापि सुख मात्र का अनुवर्तन करने वाली अन्तःकरण की सात्विकी वृत्ति ही प्रेम है। यह प्राप्त, अप्राप्त और नष्ट में भी रहती है, जबकि इच्छा नष्ट और प्राप्त में नहीं होती है। प्रेम रसज्ञ लोग रसस्वरूप परमात्मा को ही प्रेम कहते हैं। द्रवीभूत अन्तःकरण पर अभिव्यक्त रस स्वरूप परमात्मा ही प्रेम के रूप में प्रकट होता है।

प्रेम की सहज भूमिका सौन्दर्य आकर्षण से प्रारम्भ होती है। सांसारिक आकर्षण में भी सौन्दर्य एक महत्वपूर्ण कारक होता है। भारतीय साहित्य में सौन्दर्य से सम्बन्धित रचनाओं का विपुल भण्डार है। प्रसिद्ध कहावत है कि सौन्दर्य वस्तु में न होकर नेत्रों में होता है। सौन्दर्य के विभिन्न आयाम, प्रकृति के अवयव आदि प्रेमवर्द्धन का कारण बनते हैं। मानव मन की सौन्दर्य लालसा ही उसे प्रेम पथ का पथिक बनाती है। श्रीमद्भागवत ग्रन्थ में वर्णित सभी प्रकार के सौन्दर्य के परम आश्रय भगवान श्रीकृष्ण हैं। वह सौन्दर्य के अपरिमित निधि हैं। जिस सौन्दर्य समुद्र के एक नन्हें से कण को पाकर प्रकृति अभिमान के मारे फूल रही है और नित नये–नये असंख्य रूप धर–धर कर प्रकट होती और विश्व को विमुग्ध करती रहती है। आकाश का अप्रतिम सौन्दर्य, शीतल मन्द सुगन्ध वायु का सुख स्पर्श सौन्दर्य, अग्नि–जल–पृथ्वी का विचित्र सौन्दर्य, अनन्त विचित्र पुष्पों के विविध वर्ण और सौरभ का सौन्दर्य, विभिन्न पक्षियों के रंग–बिरंगे सुखकर स्वरूप और उनकी मधुर काकली का सौन्दर्य, बालकों की हृदय–हारिणी माधुरी, ललनाओं का ललित लावण्य तथा माता–पत्नी मित्र आदि का मधुर स्नेह सौन्दर्य – यह सभी एक साथ मिलकर भी जिस सौन्दर्य सुधा सागर के एक क्षुद्र सीकर की भी समता नहीं कर सकते, उस सौन्दर्य राशि की लालसा वाञ्छित है। मानव बुद्धि, चित्त, मन, सारी इन्द्रियाँ, शरीर के समस्त अङ्ग, अवयव और रोम–रोम उस सौन्दर्य राशि के लिए व्याकुल हो और उसकी खोज करे – यही लक्ष्य है। इस सौन्दर्य लालसा को मिटाना नहीं पड़ता, यह अमर हो जाती है और बढ़ते–बढ़ते मुक्ति सुख को भी खोकर स्वयं शाश्वत रहती है।[10] वह ऐसा सौन्दर्य है, जसे दिन–रात अनन्त काल तक अविरत देखते रहने पर भी तृप्ति नहीं होती और परम सात्विक प्रेम को पाल–पोसकर उस उत्कृष्टता

[8] नारदीय भक्ति सूत्र, 51–55

[9] कल्याण, भगवत्प्रेम अंक, वर्ष–77, पेज–82

[10] पोद्दार, हनुमान प्रसाद, श्रीराधामाधव विन्तन; गीता प्रेस, गोरखपुर, सं0–2018, पेज–543, 544

तक पहुँचाती है, जहाँ दर्शन की बढ़ी हुयी लालसा दर्शन से भी अधिक सुखदायिनी होती है।

यदि मन का अखण्ड प्रवाह सौन्दर्य, माधुर्य, सुधा जल निधि भगवान के श्री अङ्ग की ओर हो, पदनखमणिचन्द्रिका या अमृतमय मुख चन्द्र के माधुर्य रसास्वादन में दृष्टि आसक्त हो जाय, तब कुछ अवशिष्ट नहीं रहता। महानुभावों ने इसी को परम पुरुषार्थ स्वीकार किया है। नारदीय भक्ति सूत्र में प्रेमा रूपा भक्ति के ग्यारह प्रकार बताते समय गुण 'महात्म्यासक्ति रूपा शक्ति[11]... को दूसरे स्थान में रखा है। पुराणों में भगवान के जितने भी अवतारों की चर्चा आती है, वह सभी अप्रतिम सौन्दर्य का सुख देने वाले हैं। जब कच्छप, बाराह आदि रूप मुनि जन–मन को बरबस आकर्षित कर लेते हैं, तब राम कृष्णादि पूर्णावतारों की सौन्दर्य झाँकी का क्या कहना, परम ग्यानी ब्रह्म वेत्ता अत्यन्त विरक्त विदेह राज जनक परवश होकर कह उठते हैं –

इनहि बिलोकत अति अनुरागा, बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा।
सहज बिराग रूप मन मोरा, थकित होत जिमि चन्द्र चकोरा।।[12]

सौन्दर्य राशि श्रीकृष्ण

भगवान के दिव्य मंगलमय विग्रह की गंभीरता अपार है, किसी में उसे ग्रहण करने का सामर्थ्य नहीं है। भगवान का मधुर मन्द हासोपेत कटाक्षयुक्त दिव्यातिदिव्य मुखारविन्द नेत्र वालों का परम सौख्यमय विश्राम स्थान है। भगवान के दिव्यातिदिव्य सौन्दर्य में प्राकत उपमान केवल इतना ही प्रयोजन सिद्ध करते हैं कि इनके माध्यम से भगवत्सौंदर्य का ध्यान करते – करते मन विशुद्ध हो जाय और वह अचिन्त्य– अप्राकृत मंगलमय दिव्य रूप प्रेमी के सामने प्रकट हो सके। भगवान कृष्ण के उपमान चन्द्र, नीलमणि, नीलकमल, श्यामघन आदि सभी मात्र क्षीण चित्र ही प्रस्तुत कर सकते हैं। उनके मंगलमय विग्रह के सौन्दर्य की महिमा को सिद्ध करने में यह सभी उपमान अक्षम ही सिद्ध होते हैं। महेन्द्र नीलमणि, नूतन नील नीरधर और नील सरोरुह की जो उपमायें दी जाती है, उनसे बहुत से विवक्षित अंश सूचित होते हैं। 'महेन्द्र नीलमणि' से दीप्तिमत्ता, चिक्कणता, दृढ़ता तथा नीलिमा सूचित होती है, 'नूतन नीलधर' से नीलिमा, रस्यता, तापाप्नोदकता और गंभीरता सूचित होती है और 'नील सरोरुह' से नीलिमा, सुकोमलता, शीतलता और सौगन्ध्य सूचित होता है पर इन सब प्राकृत उपमानों से अप्राकृत का यथार्थ बोध नहीं होता। इन सबसे अनन्त कोटि गुणित ये गुण भगवान में हैं।[13] श्रीकृष्ण के मनमोहिनी सौंदर्य का वर्णन श्रीमद्भागवत में अनेक स्थलों पर उपलब्ध है किन्तु यह उल्लेखनीय है कि श्रीकृष्ण के सौन्दर्य सम्बन्ध से भारतीय संसकृत एवं हिन्दी साहित्य में जितना कुछ लिखा गया है, उतना शायद ही किसी और के बारे में लिखा गया है। यह वो सौन्दर्य है जिसे देखकर मुनियों के तपः क्षीण मनों में भी जीवन का संचार हो जाता है –

नवाम्बुदल सद्द्युतिर्नवतडिन्मनोज्ञाम्बरः
सुचित्र मुरलीस्फुरच्छदमन्दचन्द्राननः।
मयूर दल भूषितः सुभगतारहार प्रभः
समे मनमोहनः सखिं तनोति नेत्र स्पृहाम्।।

---

[11] नारदीय भक्ति सूत्र– 82

[12] तुलसीदास कृत रामचरतिमानस, बालकाण्ड

[13] स्वामी करपात्री जी महाराज, 'भक्ति सुधा', राकृष्ण धनुका प्रकाशन, वृन्दावन 1995, पेज– 346

श्रीमद्भागवत का दशम स्कन्ध प्रायः श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओं से सम्बन्धित है, अतः वहाँ पग–पग पर इनके प्रेम वर्द्धक सौन्दर्य के प्रसङ्ग मिलते हैं। एक उत्कृष्ट उपमा का उदाहरण अवलोकनीय है – ''रास लीला के संकल्प करते ही चन्द्रमा ने प्राची दिशा के मुख मण्डल पर अपने शीतल किरण रूपी कर कमलों से लालिमा की रोली, केसर मल दी, जैसे बहुत दिनों के बाद अपनी प्राणप्रिया पत्नी के पास आकर उसके प्रियतम पति ने उसे आनन्दित करने के लिए ऐसा किया हो।[14] भगवान का दिव्यातिदव्य सौन्दर्य माधुर्य ऐसा ही है। एक क्षण के लिए भी उस सौन्दर्य का लेश मात्र भी किसी पर प्रकट हो जाय तो फिर वहाँ से वह लौट नहीं सकता। श्री भगवान् के सौन्दर्य से ही लीला धाम को सौन्दर्य प्राप्त होता है और बृज का पल्लव पल्लव सौन्दर्य का प्रतीक बन जाता है। श्रीकृष्ण के प्राकट्य के साथ ही वृन्दावन, गोकुल आदि लीला स्थली के कण–कण, तृण–तृण एक अद्भुत सौन्दर्य को गृहण कर श्रीकृष्ण प्रेम लालसा से परिपूर्ण भक्तों के हृदय में प्रेम ज्वाला को और भी बढ़ाते हैं।

श्रीकृष्ण दिव्य चिन्मय शरीर है। सम्पूर्ण सौन्दर्य उनमें ही विश्राम पाता है।

सत्यज्ञानानन्तानन्दमात्रैकरसमूर्तयः[15]

श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करने वाले दशम स्कन्ध के चौंदहवें अध्याय का सैतालीसवां और पन्द्रहवें अध्याय का बयालीसवां श्लोक द्रष्टव्य है –

बर्हप्रसूननवधातु विचित्रिताङ्ग प्रोद्दामवेणुदलशृङ्गखोत्सवाढयः।
वत्सान् गृणन्ननुगगीतपवित्रकीर्ति र्गोपीहगुत्सवदृशिः प्रविशेश गोष्ठम्।।
तं गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धबर्ह वन्य प्रसून रुचिरेक्षण चारु हासम।
वेणं कणन्तमनुगैरनुगीतकीर्तिं गोप्योदिट्टक्षित ट्टशोऽभ्यगमन् समेताः।।

प्रेम, भक्ति, माधुर्य, यह भावों के स्वरूप किंवा स्तर हैं। भाव की पक्वावस्था का नाम प्रेम है। चित्त के सम्पूर्ण रूप से निर्मल और अपने अभीष्ट में अतिशय ममता होने पर ही प्रेम का उदय होता है। प्रेम को वही हृदय धारण कर सकता है जो निर्मल हों। मन को निर्मलता सात्विक संस्कारों से प्राप्त होती है। इस प्रकार से सात्विक संस्कार युक्त निर्मल हृदय में जब अभीष्ट प्रियतम का महिमा ज्ञान पहुँचता है, तो चित्त को आकर्षित करता है और प्रेम को जन्म देता है। यही प्रेम भक्ति बनकर उत्कृष्ट होता है और माधुर्य बनकर कल लाभ प्रदान करता हे। गीता में श्रीकृष्ण ने स्वयं ही प्रेम पद्धति का विवरण दिया है –

मच्चिता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।।
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धि योगं तं येन मामुपयान्ति ते।।[16]

तात्पर्य यह है कि हृदय में किसी की लगन लग जाय, दिल में कोई प्रवेश कर जाय, किसी की रूप माधुरी आंखों में समा जाय और किसी के लिए उत्कट अनुराग हो जाय, तब प्रीति का जन्म जानना चाहिए। निर्विवाद रूप से श्रीमद्भागवत में प्रेम के अभीष्ट यमुना पुलिन कु०ज बिहारी श्री कृष्ण ही हैं। परम ऐश्वर्य धारी श्रीकृष्ण के प्रति

---

[14] स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन् प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ।। – श्रीमद्भावगत महापुराण 10/29/2

[15] तम्यां तमोवन्नैहारं खद्योतार्चिरिवाहनि।
महतीतरमायैश्यं निहत्यात्मनि यु०जतः।। श्रीमद्भावगत महापुराण, 10/13/45

[16] श्रीमद्भागवत गीता, 10/9/10

चित्त वृत्ति समर्पण हो जाना और निष्काम अनन्य प्रेम हो जाना ही श्रीमद्भागवत वर्णित प्रेम है, भक्ति है और उत्कृष्टावस्था में माधुर्य है, जिनके असाधारण सौन्दर्य और माधुर्य ने बड़े–बड़े महात्मा, ब्रह्मज्ञानी और तपस्वियों के मन को बरबस खींच लिया, जिनकी सबसे बढ़ी हुयी अद्भुत, अनन्त, प्रभुतामयी पूर्ण ऐश्वर्य शक्ति ने शिब्रह्मा तक को चकित कर दिया। उन सबके मूल आश्रय तत्व स्वयं भगवान श्रीकृष्ण का जो अनुकूलता युक्त अनुशीलन का भाव है, उसका नाम भक्ति है। इसकी प्राप्ति का एक क्रमबद्ध मार्ग है। परमात्मा सर्वज्ञ है, वह हमारे हृदय की समस्त इच्छाओं को जानता है। परमात्मा सर्वशक्तिमान है, वह हमारी सब इच्छाओं को पूर्ण करने में समर्थ है। परमात्मा परम दयालु है। वह हमारी इच्छाओं को पूर्ण किये बिना नहीं रह सकता। परमात्मा हमारा परम सुहृद है। हमारे प्रेम न करने पर भी वह हमसे प्रेम करता है और हमें कभी नहीं छोड़ता। परमात्मा के इस स्वभाव पर जिसका विश्वास हो गया, वह उससे प्रेम किये बिना नहीं रह सकता।[17] और जब प्रेम उत्पन्न हो जाता है तो हृदय पिघलकर अश्रुधारा बन जाता है तथा पुलकित हो शरीर प्रेमानन्द में अवरुद्ध वाणी से महाप्रभु चैतन्य देव के रूप में कह बैठते हैं – ''नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा।'' श्रीमद्भागवत का विचार है कि इस परम पवित्र प्रेम के उत्पन्न होने पर जिस हृदय में भाव सिन्धु हिलोरें न ले उसे हृदय कहना ही व्यर्थ है –

तदश्मसारं हृदयं बतेदे यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधैयैः।

[17] स्वामी, अखण्डानन्द सरस्वती, 'साधन और ब्रह्मानुीभूति', सत् साहित्य प्रकाश्न, मुम्बई, 2004, पेज–44

*Kanpur Philosophers, ISSN 2348-8301*
*International Journal of humanities, Law and Social Sciences*
*Published biannually by New Archaeological & Genological Society*
*Kanpur India*

***Vol. IX, Issue I(B), July 2022***
DOI: 10.13140/RG.2.2.34832.89603
www.kanpurhistorians.org

# कादम्बरीहर्षचरितयोः काव्यसौन्दर्यम्

**प्रो. प्रसूनदत्तसिंहः**
अधिष्ठाता, मानविकी भाषासङ्कायश्च
महात्मागान्धीकेन्द्रीयविश्वविद्यालयः, मोतिहारी, बिहारः
**सुपर्णा सेनः**
शोधच्छात्रा, संस्कृतविभागः
महात्मागान्धीकेन्द्रीयविश्वविद्यालयः, मोतिहारी, बिहारः

प्राचीनकालादेवगद्यकाव्यस्येतिहासे सर्वोच्चमहिमामण्डितस्य बाणभट्टस्य सार्वभौमप्रतिष्ठाव्याहतास्ति। कादम्बर्यां हर्षचरिते च कवेर्बाणस्यकविप्रतिभायाः व्याप्तिर्गभीरता च दृश्येते। **'बाणोच्छिष्टंजगत्सर्वम्'** ,वाक्यमिदं संस्कृतसाहित्यजगत्सम्बन्धाःसर्वे जनाः जानन्ति।भोजनानन्तरंभोजनपात्रे यत्किञ्चिदवशिष्टं विद्यते तदेवोच्छिष्टमित्यभिधीयते। कविर्बाणभट्टःसंस्कृतसाहित्यजगतः सर्वाणिक्षेत्राणिस्वलेखन्या प्रतिपादयति। तर्हि बाणस्योच्छिष्टमेवसर्वं जगत्नास्त्यत्रसंशयः। गद्यकवीनां कृते आदर्शभूताबाणभट्टस्य रसभावपूर्णा शैली काव्यसौन्दर्यं वा सर्वदा सर्वेषां पाठकानां चित्तं हरति।कादम्बर्यां हर्षचरिते चकाव्यसौन्दर्यं कीदृगासीत्शोधलेखेऽस्मिन्नालोच्यते।

**सङ्केतशब्दाः**– बाणस्य रचनाशैली, बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्, बाणभट्टः,गद्यकाव्यम्, हर्षचरितम्,कादम्बरी।

**बाणभट्टस्य काव्यसौन्दर्यम्** –संस्कृतगद्यलेखकेषु नितान्तप्रवीणो महाकविरस्ति बाणभट्टः।गोवर्धनाचार्यानुसारेणतु सरस्वत्यधिकप्रागल्भ्यतां प्राप्तये बाणो बभूव–

**"जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथावगच्छामि।**
**प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति" ।।**

कादम्बरीहर्षचरितञ्चबाणभट्टस्यातीवप्रसिद्धेगद्यकाव्ये वर्तेते।गद्यकाव्येषु साधारणतःनवीनार्थः,ग्राम्यत्वदोषरहितायथार्थवस्तुवर्णना,सर्वजनसुबोधःशब्दानां द्वित्रार्थाभिधानम्, विभावादिभिर्झटितिसर्वजनसंवेद्यः शृङ्गारादिरसः,ओजपूर्णानामक्षराणां विन्यास एकत्रदुर्लभंभवति।तद्यथा कविना बाणेनोच्यते–

**"नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः ।**
**विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्"।।**

बाणभट्टस्य गद्यकाव्ययोस्तु विषयस्य नवीनता, कल्पनाया मौलिकता, रोचका स्वभावोक्तिः, स्पष्टः श्लेषः , रसस्य सहजानुभूतिः, दृढबन्धयुक्ता पदावली चपाठकैर्दृश्यन्ते।एवं

महाकविना बाणभट्टेन गद्यशैल्या आदर्शः सूचितः। बाणभट्टस्य गद्यकाव्ययोःभावानांयथार्थचिन्तनमभिनवार्थानांकल्पनाचदृश्येते ।महाकविर्बाणःस्वरचनासुवर्णनासौन्दर्यस्याभिनवत्वं दर्शयितुं भाषाभावशब्दार्थालङ्काररसादीनांसंयोगमकरोत्।

बाणभट्टः पाञ्चालीरीत्यनुसारेण अर्थगौरवसम्पन्नानां सुकुमारशब्दान्नरचयत् ।तेन वैदर्भीगौडीलाट्यादीनां रीतीनां प्रयोगोऽपि क्रियते । कयाचिदेकयाशैल्या बाणभट्टः कविर्नासीत्। स हि विषयानुसारेण स्वकीयां शैलीं परिवर्त्तयति। विषयानुसारेणशब्दप्रयोगानामुदाहरणार्थं वयंकादम्बर्यां लक्ष्म्या प्रतारितानां नृपाणामवस्थावर्णनाःपश्यामः—**"केचिच्छ्रमवशशिथिलशकुनिगलपुटचपलाभिःखद्योतोन्मेषमुहूर्तमनोहराभिर्मनस्विजनगर्हिताभिः सम्पद्भिः प्रलोभ्यमानाधनलवलोभावलेपविस्मृतजन्मनोऽनेकदोषोपचितेन दुष्टासृजेवरागावेशेनबाध्यमाना विविधविषयग्रासलालसैः पञ्चभिरप्यनेकसहस्रसंख्यैरिवेन्द्रियैरायास्यमानाः प्रकृतिचञ्चलतया लब्धप्रसरेणैकेनापिशतसहस्रतामिवोपगतेनमनसाकुलीक्रियमाणाविह्वलतामुपयान्ति"।**

साहित्यदर्पणकारस्याचार्यविश्वनाथस्य मतानुसारेणौजगुणप्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बरपूर्णसमासवहुला रचना गौडीरीतिर्भवति ।विन्ध्याटव्या वर्णनायां महाकविर्विकटशब्दैःसहसमासानां प्रयोगं कृतवान् ।उदाहरणंयथा—**"क्वचित्प्रलयवेलेव महावराहदंष्ट्रासमुत्खातधरणिमण्डला,क्वचिद्दशमुखनगरीवचटुलवानरवृन्दभज्यमानतुङ्गशालाकुला, क्वचिदचिरनिर्वृत्तविवाहभूमिरिव हरितकुशसमितकुसुमशमीपलाशशोभिता,क्वचिदुन्मत्तमृगपतिनादभीतेव कण्ठकिता"** ।आचार्यविश्वनाथः साहित्यदर्पणेमाधुर्य्यब्यञ्जकैर्वर्णैरावृत्तिरल्पवृत्तिर्वा ललितात्मिका रचना वैदर्भीरीतिरूपेण प्रतिपादयति ।एवं कादम्बर्यांवैदर्भीरीत्या उदाहरणं यथा—**"न परिचयं रक्षति,नाभिजनमीक्षते, न रूपमालोकयते, न कुलक्रममनुवर्तते, न शीलं पश्यति,न वैदग्ध्यं गणयति, न श्रुतमाकर्णयति, न धर्ममनुरुध्यते, न त्यागमाद्रियते, न विशेषज्ञतां विचारयति, नाचारं पालयति, न सत्यमवबुध्यते, न लक्षणं प्रमाणीकरोति। गन्धर्वनगरलेखेव पश्यत इव नश्यति" ।**

बाणभट्टस्य गद्यकाव्ययोःमुक्तकवृत्तगन्ध्युत्कलिकाप्रायचूर्णकाणां चतुर्णां गद्यकाव्यानां प्रयोगःदृश्यते ।साहित्यदर्पणकारस्याचार्यविश्वनाथस्य मतानुसारेण मुक्तकवृत्तगन्ध्युत्कलिकाप्रायचूर्णकञ्च गद्यकाव्यस्य भेदा भवन्ति।मुक्तकं भवति समासरहितम्,वृत्तगन्धिर्वृत्तभागान्वितं भवति, उत्कलिकाप्राये दीर्घः समासो भवति,चूर्णकेऽल्पसमासो भवति ।कादम्बर्यां मुक्तकस्योदाहरणं यथा—**"यश्च मनसि धर्मेण, कोपे यमेन, प्रसादे धनदेन, प्रतापे वह्निना, भुजे भुवा, दृशि श्रिया, वाचि सरस्वत्या, मुखे शशिना, बले मरुता, रूपे मनसिजेन, तेजसि सवित्रा चेति"**।वृत्तगन्धिगद्यस्योदाहरणं यथा—**"अम्बिकाकरतलमिव रुद्राक्षग्रहणनिपुणम् शिशिरसमयसूर्य्यमिव कृतोत्तरासङ्गम्, वडवानलमिव सततपयोभक्ष्यम्, शून्यनगरीमिव दीनानाथविपन्नशरणम्, पशुपतिमिव भस्मपाण्डुरोमाश्लिष्टशरीरम्, भगवन्तं जाबालिमपश्यम्"**।हर्षचरिते समासाढ्यढाक्षरयुक्तस्योत्कलिकाप्रायस्योदाहरणंयथा—**"कुलशशिखरखरनखरप्रचयप्रचण्डचपेटापाटितमत्तमातङ्गोत्तमाङ्गमदच्छटाच्छुरितचारुकेसरभारभास्वरमुखे केसरिणि वनविहाराय विनिर्गतेनिवासगिरिगुहां कः पातिपृष्ठतः"**।कादम्बर्यामल्पसमासयुक्तस्यचूर्णकस्योदाहरणं यथा—**"आसीदशेषनरपतिशिरः समभ्यर्च्चितशासनः पाकशासनइवापरः, चतुरुदधिमालामेखलाया भुवो भर्त्ता, प्रतापानुरागावनतसमस्तसामन्तचक्रः, चक्रवर्तिलक्षणोपेतः, चक्रधर इव करकमलोपलक्ष्यमाणशङ्खचक्रलाञ्छनः, हर इव जितमन्मथः, गुहः इवाप्रतिहतशक्तिः, कमलयोनिरिव विमानीकृतराजहंसमण्डलः"।**

चूर्णकेऽकठोराक्षरं स्वल्पसमासश्च तिष्ठत इति छन्दोमञ्जरीकारःगङ्गादासोऽपिप्रतिपादयति ।

धवलगृहस्य वर्णनायां प्रभाकरवर्धनस्यमृत्युदृश्यस्य वर्णनायामुज्जयिनीवर्णनायांविन्ध्याटवीवर्णनायां च ओजो गुणः प्रधानरूपेण दृश्यते।कादम्बर्यां हर्षचरिते च माधुर्यगुणस्य प्राधान्येऽपि ओजप्रसादौ गुणौ विरलौ न स्तः।

बाणस्य रचनासु श्रुतिस्मृतिदर्शनरामायणमहाभारतव्याकरणादिनांशास्त्राणां प्रतिफलनमभवत्। हर्षचरिते कविर्विविधशास्त्रपारदर्शिताविषये स्वस्यकथानामुल्लेखनमकरोत्–**"सम्यक्पठितः साङ्गो वेदः। श्रुतानि यथाशक्ति शास्त्राणि"**।अपि चकादम्बर्यां राजभवनस्य वैशिष्ट्यवर्णनाप्रसङ्गे **"पुराणमिव विभागावस्थापितसकलभुवनकोशम्","महाभारतमिव अनन्तगीताकर्णनानन्दितनरम्", "व्याकरणमिवप्रथममध्यमोत्तमपुरुषविभक्तिस्थितानेकादेशकारकाख्यातसम्प्रदानक्रियाव्ययप्रपञ्चसुस्थितम्,"रामायणमिवकपिकथासमाकुलम्"**इत्यादिप्रयोगैःपाठकामहाकवेर्विविधशास्त्रपारङ्गताविषयान्जानन्ति ।

अलङ्कारप्रयोगेऽद्वितीयः कविर्बाणैवभवति। बाणभट्टस्य गद्यकाव्यव्योरुपमारूपकमुत्प्रेक्षापरिसङ्ख्यैकावलीश्लेषो विरोधाभासादयोऽलङ्काराविद्यमानाः सन्ति।उपमालङ्कारे प्रस्फुटं सुन्दरञ्च साम्यमुपस्थाप्यते। कादम्बर्यामुपमालङ्कारस्योदाहरणद्वये यथा–

- **"नवयौवनकषायितात्मनश्च सलिलानीव तान्वेव विषयस्वरूपाण्यास्वाद्यमानानि मधुरतराण्यापतन्ति मनसः "।**
- **"लतेव विटपकानध्यारोहति, गङ्गेववसुजनन्यपितरङ्गबुद्बुदचञ्चला" ।**

उपमानोपमेययोरभेदः प्रस्तुताप्रस्तुतयोरभेदो वा रूपकालङ्कारस्य प्रमुखा विशेषता । रूपकालङ्कारस्योदाहरणद्वये यथा–

- **"गुरुपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षममजलस्नानमनुपजातपलितादिवैरूप्यमजरं बृद्धत्वमनारोपितर्मेददोषं गुरुकरणमसुवर्णविरचनमग्राम्यं कर्णाभरणमतीतज्योतिरालोको नोद्वेगकरः प्रजागरः"**– अत्र सर्वत्राधिकाररूढवैशिष्ट्यरूपकालङ्कारोविद्यते।

अपि च–

- **"इयं हि सुभटखड्गमण्डलोत्पलवनविभ्रमभ्रमरी"।**

काव्यप्रकाशानुसारेण वस्तुवृत्तेनाविरोधेऽपि विरुद्धयोरिव यदभिधानम् स विरोधभासालङ्कार एव। कादम्बर्यां विरोधाभासस्योदाहरणं यथा–

- **"अनुज्झितधबलतापि सरागैव भवति यूनां दृष्टिः" ।**

आचार्यमम्मटस्य मतानुसारेणोत्प्रेक्षायामलङ्कारयुपमेयस्य समेन सम्भावनमुत्कोटिकसंशयो वा भवति । उत्प्रेक्षा बाणभट्टस्य प्रियोऽलङ्कारः।कादम्बर्यां हर्षचरिते चबहुषु स्थानेषु उत्प्रेक्षायाः छटा परिदृश्यते।उदाहरणानि यथा–

- **"कमलिनी सञ्चरणव्यतिकरलग्ननलिननालकन्टकक्षतेव न क्वचिदपि निर्भरमाबध्नाति पदम् "।**
- **"कमललोभनिलीनैरलिभिरिववृत्तावुद्धर्त्तुंनाशकच्चरणौ। मृणाललोभेन च चरणनखमयूखलग्नैर्भवनहंसैरिव सञ्चार्यमाणा मन्दमन्दं बभ्राम" ।**
- **"अग्निकार्यधूमेनेव मलिनी क्रियते हृदयम्" ।**

परिसङ्ख्यालङ्कारनिर्णयप्रसङ्गे काव्यप्रकाशस्य वृत्तावुक्तमस्तियत् **"प्रमाणान्तरावगतमपि वस्तु शब्देन प्रतिपादितं प्रयोजनान्तराभावात् सदृशवस्त्वन्तरव्यवच्छेदाय यत् पर्यवस्यति, सा भवेत् परिसङ्ख्या"।**

कादम्बर्यामेतादृशस्य परिसङ्ख्यालङ्कारस्योदाहरणंयथा–

- **"अन्तस्तरलता हारलतानाम्, वर्णपरीक्षा कनकानाम्"।**

हर्षचरिते यथा–

- **"अस्मिंश्च राजनि यतीनांयोगपट्टकाः, पुस्तकर्मणां पार्थिवविग्रहाः, षट्पदानां दानग्रहणकलहाः,वृत्तानां पादच्छेदाः, अष्टापदानां चतुरङ्गकल्पना, पन्नगानां द्विजगुरुद्वेषाः, वाक्यविदामधिकरणविचाराः"**इति।

साहित्यदर्पणकारस्य मतानुसारेण यदा पूर्वं पूर्वं प्रति विशेषणत्वेन परं परं स्थाप्यतेऽपोह्यते वा तदैकावल्यलङ्कारो भवति।कादम्बर्यां महाकविरेकावल्यलङ्कारस्य प्रयोगं कृतवान्–**"क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन, नवयौवनेन पदम्"।**

श्लेषेशब्दचयनेरसप्रतिपादनेऽलङ्कारसृजने च वाणो भवति पञ्चाननः।बाणस्य गद्यकाव्ययोःमूल्यायणं कृत्वा संस्कृतपण्डितश्चन्द्रदेवोक्तवान् यत–

**"श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे**
**चापरेऽङ्कारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने।**
**आसर्वत्र गभीरधीरकविताविन्ध्याटवी चातुरी,**
**सञ्चारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः"।।**

**उपसङ्हारः**

अन्तिमे एतद्वक्तुं शक्यते यत् बाणस्य गद्यकाव्ययोःपात्रचित्रणं प्रकृतिवर्णनं चासाधारणेस्तः।अलङ्कारप्रयोगे रूपकल्पनिर्माणे चरित्रचित्रणे च बाणे भवत्यसाधारणी कवित्वशक्तिः।एतेसर्वे गुणाः तिष्ठन्त्यपि कादम्बर्यां हर्षचरिते च विद्यमानैर्दीर्घसमासयुक्तपदैरनेके समये पाठकवर्गानिरुत्साहाभवन्ति। बाणस्य काव्यकानने विचित्रपुष्पाणां वर्णाढ्यसमारोहाः सन्त्यपि तत्र साधारणानां जनानां प्रवेशोऽधुनापिदुष्करएवास्ति।बेवरमहोदयोबाणगद्यं भारतीयसघनविपिनमिव भयावहं हिंसकपशुमिवाप्रसिद्धं तथा कठिनशब्दैर्मण्डितमिति प्रतिपादयति–

**"In Short, Bana's prose is an Indian wood where all progress is rendered impossible by the undergrowth until the traveller cuts out a path for himself and where even then he has to reckon with malicious wild beasts in the shape of unknown words that affright him."**

परन्तु एतत्वाक्यं सर्वथा न समीचीनम्। चित्रणस्य सजीवतायै पाञ्चालिरीतेः कविना बाणभट्टेन यथा विषयानुसारः शब्दप्रयोगः कृतः तथा गुरुगम्भीरविषयस्य वर्णनायां तेनसमासयुक्तानां दीर्घवाक्यानामाश्रयो नीतः । कादम्बर्यां हर्षचरिते च यथा समासबद्धदीर्घवाक्यानां प्रयोगाः लभ्यन्ते तथा यत्र तत्र लघुवाक्यानां प्रयोगं कृत्वा तेन सशक्त्या प्रभावोत्पादिका स्वशैली प्रदर्शिता। कादम्बरीगद्यकाव्यस्यान्तर्गते शुकनासोपदेशेउपदेशपरिमितवाक्यानि अत्यन्तानि सरलानि मधुराणि व्यजनादीप्तानि च । बाणस्य रचनाशैल्याः प्रशंसां कृत्वा धर्मदाससूरिणा यथार्थमेवुक्तम्

**"रुचिरास्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनोहारिणि ।**

तत् किं तरूणी  नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य”।।

**सहायकग्रन्थाः**


१) हर्षचरितम, महाकविबाणभट्टविरचितम्, व्याख्याकारआचार्यः श्रीमोहनदेवपन्तः, मोतिलालबनारसीदासः, दिल्ली, २००१

२) कादम्बरी, बाणविरचिता,पाण्डेयः श्रीरामतेजशास्त्री, 'अर्चना'हिन्दीटिकोपेता, चौखम्बाविद्याभवनम्, वाराणसी, २००७

३) कादम्बरी,महाकविश्रीबाणभट्टविरचिता, व्याख्याकारः पण्डितः श्रीकृष्णमोहनशास्त्री, चौखम्भा प्रकाशनम, वाराणसी,२०१७

४) संस्कृतसाहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्यायः, चौखम्बाविद्याभवनम्, वाराणसी, १९६३

५) Harshacarita of Banabhatta P-V Kane Gurgaon back Road Bombay] 1918

६) आर्यासप्तशती,श्रीगोवर्धनाचार्यविरचिता,पण्डितकेदारनाथशर्मणा काशिनाथपाण्डुरङ्गपरब इत्यनेन वासुदेवशर्मणा च संशोधिता, निर्णयसागरप्रेस्, मुम्बई, तृतीयसंस्करणम्१९३४

७) काव्यप्रकाशः, मम्मटभट्टः, बङ्गानुवाद आलोचना चरू विजया गोस्वामी, सदेशप्रकाशनम्, कलकाता– ७००००६,द्वितीयसंस्करणम् २००७

८) साहित्यदर्पणः, विश्वनाथकविराजकृतः,बङ्गानुवादः डॉ.विमलाकान्तःमुखोपाध्यायः, संस्कृतपुस्तकभाण्डारम्,कलकाता–६, द्वितीयसंस्करणम्, २०१३